अलकारो
का
स्वरूप-
विकास

डी० लिट्० के लिए स्वीकृत प्रबन्ध

अलंकारों का स्वरूप-विकास

डॉ ओम्प्रकाश

नेशनल पब्लिशिंग हाउस
२३ दरियागज दिल्ली ११ ००६
द्वारा प्रकाशित

प्रथम सस्करण १६७३

• मूल्य ४५ ००

भारती प्रिंटस
दिल्ली ११ ३२
द्वारा मुद्रित

ALAMKARON KA
SWAROOP VIKAS
(Thesis)
by Dr OM PRAKASH

यो भूमौ प्रतिभूरभूच्च महता
लोकोत्तर कर्मभि
य निर्माय विधिश्चकार जनन
श्रेष्ठ कुलश्रेष्ठक
स्वर्गस्थो हितमीक्षते बहुतर
नित्य जनानां सदा
ग्रन्थ श्री जयदेव ! तुभ्यमनुज
नाथ नतनाप्यते ॥

प्रस्तावना

निरक्त मे यास्क ने गाग्य का नामोल्लेख करते हुए उपमा अलकार का विवेचन प्रस्तुत किया है। तदनन्तर भरत ने उपमा के साथ-साथ तीन अन्य अलकारो का विवेचन किया है। अलकार वणन की शलियाँ हैं इनका विकास एव इनका नामकरण शन शन मनन एव अध्ययन के फलस्वरूप कालक्रम से होता ही रहा है, यहाँ तक कि अग्रेजी से आगत कतिपय वणन शलियो की स्वीकृति एव नामकरण आधुनिक युग का योग है। एक अलकार से विकसित होकर दो सौ अलकारा तक के विकास का अध्ययन रोचक होने के साथ-साथ ज्ञानवद्धक भी है। इसम साहित्य एव साहित्यशास्त्र दोना के उत्तरोत्तर विकास की छाया दष्टिगत होती है। इस विकास यात्रा म हमको ज्ञात होता है कि कतिपय वणन शलियाँ (अलकार) पहले विद्यमान नही थी और यह भी कि कतिपय वणन शलियाँ विद्यमान तो थी परन्तु उनका नामकरण पीछे हुआ। अलकारो के भेद कही स्वतन्त्र अलकार बन गए हैं कही एक विशेष अलकार के साम्य वैषम्य से दूसरे अलकार की उदभावना आचाय ने स्वय की है। ऐसे स्थल भी है जहा एक अलकार के भेद का स्वरूप दूसरे अलकार के भेद के स्वरूप से टकराकर अध्यता के माग म गतिरोध उत्पन्न कर देता है। और ऐसे स्थलो की भी कमी नही जहा भेदोपभेद इतने सूक्ष्म हो गये हैं कि गम्भीर पाठक भी चकित रह जाता है।

इस प्रकार एक उपमा अलकार से लगभग दो सौ अलकारो की सख्या तक अलकार का विकास हुआ है। लगभग पचास अलकार तो लोकप्रिय एव सवविदित हैं परन्तु अनेक ऐसे हैं जिनकी उदभावना बहुत पीछे हुई। कविराज मुरारिदान ने भारतीय परम्परा म कतिपय नवीन अलकार (जसे 'अनवसर') निकाले तो आजकल के आचार्यों ने ध्वन्यथ-व्यजना आदि। एक सहस्राब्दी से अधिक के समय म अनेक बार अलकारो का वर्गीकरण हुआ इनकी व्युत्पत्ति खोजी गयी तथा इनमे वज्ञानिकता का प्रतिपादन किया गया। फिर भी आज का विद्वान अपने

को अलकारो से कटा हुआ समझता है। इसका मुख्य कारण यह है कि अलकार या तो अति-शास्त्रीय समझे गये हैं या अतिप्राचीन, इनके विकास को समझने का प्रयत्न ही नही किया गया। प्रस्तुत ग्रन्थ म अलकारो के स्वरूप विकास का वज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है और भेदो की शास्त्रीय परीक्षा की गयी है। यह अलकारो के इतिहास का एक चित्र भी प्रस्तुत करता है और अलकारो की शास्त्रीयता को आधुनिक परिवेश भी प्रदान करता है।

ग्रथ के नौ अध्याय हैं। 'विषय प्रवेश' मे अलकार की सत्ता, नामकरण, भेदोपभेद, वर्गीकरण एव सख्या पर विचार करके नवीन अलकारो की कल्पना का विश्लेपण किया गया है। अन्त म प्रस्तुत अध्ययन की दिशा के सकेत हैं कि इतिहास मे जिस अलकार का प्रथम उल्लेख जिस काल म मिलता है उसस अलकारो का कालक्रम ज्ञात करके एक-एक अलकार के स्वरूप विकास का उसी कालक्रमानुसार अध्ययन है। सुविधा के लिए प्रत्येक अलकार को काल क्रमानुसार एक सख्या भी प्रदान कर दी गयी है। प्रथम उल्लेख के लिए काव्यशास्त्रीय ग्रथ प्रमाण माने गये हैं, उनके रचना-काल को अधिकारी विद्वानो के प्रमाण पर ही स्वीकार कर लिया गया है। इस अध्ययन म प्रत्येक आचाय अथवा कवि को बीच म लाना उचित नही समझा गया, यह बात हिन्दी के आचार्यों के सम्बन्ध मे विशेष रूप से ज्ञातव्य है। सकडो कवियो ने हिन्दी मे अलकार विषय पर लिखा है, परन्तु हमने केवल पाँच आचार्यों को आधार बनाया है— केशवदास, देवदत्त, भिखारीदास कन्हैयालाल पोद्दार तथा रामदहिन मिश्र। अलकार-साहित्य का इतिहास देना हमारा अभीष्ट नही है (उसको पी एच० डी० के शोध प्रबन्ध 'हिन्दी अलकार-साहित्य' म देखा जा सकता है)। अत केवल पाँच हिन्दी-आचाय, जिनका अलकारो के स्वरूप विकास की दृष्टि से महत्त्व है, यहाँ आधार बनाय गये हैं। सस्कृत के वे कवि भी नही लिये गये जिन्होने मम्मट रुय्यक के आधार पर अलकार वणन की योजना बनायी और किसी की प्रशसा अथवा स्तुति मे एक अलकार-ग्रन्थ लिख दिया। प्रस्तुत अध्ययन म उदाहरणो का विश्लेपण भी नही किया गया, केवल लक्षणो एव भेदोपभेदो से विकास के सूत्र खोजन का यह एक विनम्र प्रयास है।

प्रथम अध्याय म प्रथम विवेचित अलकार उपमा के स्वरूप विकास का अध्ययन है। गाग्य से प्रारम्भ होकर यास्क तथा पाणिनि पर होता हुआ जब उपमा अलकार भरत म प्रकट हुआ तो आचार्यों की परम्परा का हमने उदघाटन कर दिया। सस्कृत के तेरह तथा हिन्दी के पाच प्रमुख आचार्यों की बीस रचनाएँ (अप्पय्यदीक्षित तथा देवदत्त की दो-दो रचनाएँ हैं) इस अध्याय म अध्ययन का आधार हैं। यथावश्यकता अन्य विद्वानो की सहायता भी ले ली गयी है।

द्वितीय अध्याय मे भरत द्वारा विवेचित शेप तीन अलकारो के स्वरूप विकास का अध्ययन है। इनका क्रम अन्त साक्ष्य के आधार पर, रूपक, दीपक, यमक है। यह अध्याय, एक प्रकार से तीन भागो म विभक्त है, और प्रत्यक भाग म एक एक अलकार का उसी काल क्रम से विकास की दृष्टि से अध्ययन करता है। यहाँ भी सस्कृत के तरह तथा हिन्दी के पाँच आचाय आधार बन हैं और स्वरूप का विकास लक्षण भेद-वणन म पयवसित माना गया है।

तृतीय अध्याय स भामह प्रथम आचाय बन जाते हैं। यह अध्याय भामह के 'काव्यालकार'

परिशिष्ट' भी है जिसमें इतर नवीन अलकारो का वणन एव अध्ययन है। मम्मट-पूर्व युग के भोज, अनात काल के शोभाकर मिश्र, तथा सामान्य आचाय वाग्भट के कतिपय नवीन अलकार इस शीर्षक म हैं। यहाँ न शेष सभी आचाय हैं और न स्वीकृत आचार्यों के सम्पूर्ण नवीन अलकार—इस निर्णय का दायित्व हमारे अध्ययन पर है।

नवम अध्याय मे हिन्दी के आचार्यों द्वारा कल्पित नवीन अलकारा का वणन एव अध्ययन है। इस अध्याय मे हस्तलिखित पुस्तको को आधार नही बनाया गया, केवल प्रकाशित प्रामाणिक एव प्रसिद्ध रचनाओ के आधार पर हिन्दी माध्यम के योगदान का अध्ययन है। केशव देव, भूषण दास के अतिरिक्त मुरारिदान पोद्दार दीन रसाल आदि के योगदान का इसी रूप म अध्ययन है। पाश्चात्य अलकारा को रामदहिन मिश्र के काव्यदपण से ग्रहण किया गया है।

अन्त म उपसहार तथा 'परिशिष्ट हैं। उपसहार म प्रस्तुत अध्ययन क सामान्य निष्कर्ष एकत्र किये गये है। परिशिष्ट 'एक म सहायक पुस्तको की सूची है तथा परिशिष्ट दो म अलकारा की अकारादिक्रम से पृष्ठमर्दभिनी अनुक्रमणिका है।

अलकार विषय का अध्ययन संस्कृत एव हिन्दी म, अब शोध प्रबन्ध के निमित्त भी चल पडा है। संस्कृत के कतिपय विद्वाना की रचनाएँ प्रकाशित होकर विषय को स्पष्ट करने म आज अधिक सहायता प्रदान कर रही हैं। केवल दिल्ली विश्वविद्यालय म ही हम रीतिकाल के आचार्यों पर कतिपय शोध काय पूण करा चुके हैं जिनमे से कुछ प्रकाशित भी है। परन्तु अलकार विषय का सर्वांगीण विवेचन जिसम कालक्रम के सूत्र के सहारे स्वरूप विकास का अध्ययन हो अभी तक देखने म नही आया। इस शोध प्रबन्ध की यही मौलिकता है और मुझे आशा है कि इसम अध्ययन की समृद्धि की सूचना मिलती है। आज से बीस वष पूव सन १९४१ म हिन्दी-अलकार साहित्य का इतिहास' प्रस्तुत करने पर आगरा विश्वविद्यालय न मुझे पी एच० डी० उपाधि प्रदान की थी। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध उस अध्ययन का पूरक है। इसम इतिहास का स्पश नही है—दूसरा के निष्कर्ष प्रामाणिक मान लिये गये हैं। केवल सद्धान्तिक विवेचन है—कालक्रम से एक एक अलकार के स्वरूप का वज्ञानिक अध्ययन। आशा है अन्य विषया के इसी पद्धति के अध्ययन भी भविष्य मे सामने आने लगेंगे।

प्रस्तुत अध्ययन म संस्कृत भाषा म लिखित काव्यशास्त्रीय ग्रन्था की पर्याप्त सहायता ली गयी है क्योकि अलकार का तीन चौथाई से भी अधिक साहित्य संस्कृत म ही है। यदि मैं समस्त संस्कृत भाग का सवत्र हिन्दी-अनुवाद करता तो ग्रन्थ का आकार अनावश्यक रूप से बढ जाता और इस विषय के अधिकारी विद्वान संस्कृत तो जानते ही हैं। अत अनेक स्थला पर मूल पाठ म संस्कृत आती गयी है, अध्ययन का अग बनकर। मुझे विश्वास है कि संस्कृत के कारण यह प्रबन्ध वज्ञानिकता म दूर नही हुआ।

यह निवेदन किया जा चुका है कि एक सहस्र स अधिक वर्षों म लिखी गई प्रभूत सामग्री इस विषय क लिए सामने रखी है—ग्रन्थ, वत्ति, विवत्ति व्याख्या, अनुवाद इतने अधिक हैं कि प्रत्येक से उपकृत होना सम्भव नही है। अस्तु मैंने यह प्रयत्न किया है कि मैं सारी सामग्री का एक बार विषय के सम्बन्ध म देख लू। और यदि वह उपयोगी नही है तो उसके सकेत मैंने नही दिये—अनुवादा के विषय म मुझे यह विशेष रूप से कहना है।

हि दी के आचाय-कवियो एव आचार्यों की सख्या भी कम नही, उन सबकी रचनाएँ एक बार मेरे पूव शोध प्रब ध म चर्चित भी हो चुकी हैं। अस्तु, आचाय-कवियो एव आधुनिक आचार्यों म से प्रत्येक के विचारो से 'लाभ उठाना' न उचित है और न आवश्यक। और इस ग्रहण-त्याग म केवल विषय विषयक विवेक ही शरण दे सका है।

इस अवसर पर मैं उन सभी विद्वानो के प्रति आभार प्रकट करना चाहता हूँ जिनके ग्र थो एव विचारो से मुझको सहायता प्राप्त हुई है और मैं अलकारो के स्वरूप विकास का एक विशेष पद्धति के अनुसार अध्ययन कर सका हूँ। आशा है कि इस अध्ययन का उपयोग अलकारो के व्यवस्थित एव समाजोपयोगी स्वरूप को समझने म हो सकेगा।

आगरा विश्वविद्यालय के अधिकारियो ने प्रस्तुत ग्र थ की रचना पर मुझे डी० लिट० उपाधि प्रदान की थी, और नेशनल पब्लिशिग हाउस के स्वामी श्री क हैयालाल मलिक ने प्रकाशित कर इसको अधिकारी विद्वानो के समक्ष प्रस्तुत कर दिया है, मैं दोनो के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। अलकार विषय के अध्ययन म प्रस्तुत ग्र थ एक अतिरिक्त सोपान मात्र है इसकी साथकता विषय को अधिक सुलभ बनाने म है। मुझ आशा है कि इससे भावी अध्ययन को गति एव स्फूर्ति प्राप्त हो सकेगी।

मेरी प्रत्येक रचना पर सबसे अधिक प्रस नता पूज्य अग्रज डा० जयदेव कुलश्रेष्ठ को होती थी। पर तु दुर्भाग्यवश वे अब इस ससार म नही रहे। यह ग्र थ मैं उनकी स्वगस्थ आत्मा को सादर समर्पित करता हूँ।

—ओम्प्रकाश

वस त पचमी
स० २०२९ वि०

अनुक्रम

विषय-प्रवेश १-१४

प्रथम अध्याय १५-५२

प्रथम विवेचित अलकार

१ उपमा	१५

द्वितीय अध्याय ५३-१०१

भरत द्वारा विवेचित शेष तीन अलकार

२ रूपक	५३
३ दीपक	७४
४ यमक	८७

तृतीय अध्याय १०२-१५५

'काव्यालकार' के द्वितीय परिच्छेद मे अतिरिक्त विवेचित अलकार

५ अनुप्रास	१०२
६ आक्षेप	११०
७ अर्थान्तरन्यास	११६
८ व्यतिरेक	१२१
९ विभावना	१२५
१० समासोक्ति	१२९
११ अतिशयोक्ति	१३२
१२ हेतु	१३७
१३ सूक्ष्म	१४०
१४ लेश	१४१
१५ यथासख्य	१४३
१६ उत्प्रेक्षा	१४६
१७ स्वभावोक्ति	१५२

५१ दृष्टान्त २३३
(ग) वामन द्वारा कल्पित अलकार
५२ वक्रोक्ति २३६
५३ व्याजोक्ति २३८

षष्ठ अध्याय २४१-२८४

रुद्रट द्वारा उदभावित अलकार
(क) वास्तव मूल के नवीन अलकार
५४ समुच्चय २४१
५५ भाव २४४
५६ पर्याय २४५
५७ विषम २४७
५८ अनुमान २४९
५९ परिकर २५१
६० परिसख्या २५२
६१ कारणमाला २५४
६२ अन्याय २५५
६३ उत्तर २५६
६४ सार २५९
६५ अवसर २६०
६६ मीलित २६०
६७ एकावली २६२
(ख) औपम्य-मूल के नवीन अलकार
६८ मत २६३
६९ प्रतीप २६४
७० उभयन्यास २६६
७१ भ्रान्तिमान २६६
७२ प्रत्यनीक २६८
७३ पूर्व २६९
७४ साम्य २६९
७५ स्मरण २७०
(ग) अतिशय मूल के नवीन अलकार
७६ विशेष २७१
७७ तदगुण २७३
७८ अधिक २७४
७९ असगति २७५
८० पिहित २७७
८१ व्याघात २७८
८२ अहेतु २८०
(घ) श्लेष-मूल के नवीन अलकार
८३ अर्थश्लेष २८०

सप्तम अध्याय २८५-३१७

मम्मट, रुय्यक, विश्वनाथ, जगन्नाथ द्वारा उदभावित अलकार
(क) मम्मट द्वारा उदभावित नवीन अलकार
८४ विनोक्ति २८५
८५ सम २८७
८६ सामान्य २९१
८७ अतदगुण २९३
(ख) रुय्यक द्वारा उदभावित नवीन अलकार
८८ परिणाम २९५
८९ उल्लेख २९८
९० विचित्र ३००
९१ मालादीपक ३०२
९२ अर्थापत्ति ३०४
९३ विकल्प ३०७
९४ भावोदय, भावसंधि, भावशबलता ३०९
(ग) विश्वनाथ द्वारा उदभावित नवीन अलकार
९५ श्रुत्यनुप्रास ३११
९६ अन्त्यानुप्रास ३१२
९७ भाषासम ३१३
९८ निश्चय ३१४
९९ अनुकूल ३१४
(घ) जगन्नाथ द्वारा उदभावित नवीन अलकार
१०० तिरस्कार ३१५

अष्टम अध्याय ३१८ ३५७

सस्कृत के कतिपय आचार्यों द्वारा उदभावित नवीन अलकार
(क) जयदेव द्वारा उदभावित नवीन अलकार
१०१ स्फुटानुप्रास ३१८
१०२ अर्थानुप्रास ३१९
१०३ उन्मीलित ३१९
१०४ परिकराकुर ३२१
१०५ प्रौढोक्ति ३२२
१०६ सभावना ३२३
१०७ प्रहर्षण ३२३
१०८ विषादन ३२५
१०९ विकस्वर ३२६
११० असम्भव ३२८
१११ उल्लास ३२८
११२ पूर्वरूप ३२९
११३ अनुगुण ३३०

११४ अवज्ञा ३३१
११५ भाविकच्छवि ३३२
११६ अत्युक्ति ३३३

(ख) अप्पय्यदीक्षित द्वारा उदभावित नवीन अलकार

११७ प्रस्तुताकुर ३३४
११८ व्याजनिन्दा ३३५
११९ अल्प ३३६
१२० कारकदीपक ३३७
१२१ मिथ्याध्यवसिति ३३८
१२२ ललित ३३९
१२३ अनुना ३४०
१२४ मुद्रा ३४०
१२५ रत्नावली ३४१
१२६ विशेपक ३४२
१२७ गूढोक्ति ३४२
१२८ विवतोक्ति ३४३
१२९ युक्ति ३४४
१३० लोकोक्ति ३४५
१३१ छेकोक्ति ३४५
१३२ निरुक्ति ३४६
१३३ प्रतिपेध ३४६
१३४ विधि ३४७

(ग) इतर आचार्यों द्वारा उदभावित नवीन अलकार

(I) भोज द्वारा उदभावित नवीन अलकार

१३५ वितक ३४८
१३६ प्रत्यक्ष ३४८
१३७ आप्तवचन ३४९
१३८ उपमान ३५०
१३९ अभाव ३५०
१४० समाधि ३५१

(II) वाग्भट द्वारा उदभावित नवीन अलकार

१४१ अन्य ३५३
१४२ अपर ३५४

(III) शोभाकर मित्र द्वारा उद्भावित नवीन अलकार

१४३ असम ३५४
१४४ उदाहरण ३५५

नवम अध्याय ३५८-३८०

हिन्दी भाषा के आचार्यों द्वारा उदभावित अलकार

(क) केशवदास द्वारा उदभावित नवीन अलकार

१४५ गणना ३५८

(ग) द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समान वक्ष परिपस्वजाते।
तयोरेक पिप्पल स्वादवत्त्यनश्नन्न यो अभिचाकशीति ॥ (१०,१६४,२०)

ऋग्वेद मे उदाहरण ही नही अलकारों के नाम तक मिल जाते हैं। दो मन्त्रो म 'उपमा' शब्द का प्रयोग देखिए—

त्वमग्ने प्रयतदक्षिण नर वर्मेव स्यूत परि पासि विश्वत ।
स्वादुक्षदमा यो वसतौ स्यानकज्जीवयाज यजते सोपमा दिव ॥ (१,३१ १५)
सहस्रसामाग्निवेशि गणीशे शत्रिमग्न उपमा केतुमय ।
तस्मा आप सयत पीपय त तस्मिन क्षत्रममवत्त्वेषमस्तु ॥ (५,३४,६)

वस्तुत "वदिक मन्त्रो मे अलकारो की सत्ता स्पष्टत विद्यमान है। यही क्यो ? उपमा शब्द भी ऋग्वेद मे (५।३४।६ तथा १।३१।१५) उपलब्ध होता है जिसका सायण ने अथ किया है—उपमान या दष्टान्त। परन्तु इसका अथ यह नही है कि इतने प्राचीन काल म उपमा का शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया गया था। यह केवल सामान्य निर्देश है इसका विशेष ऐतिहासिक मूल्य नही हो सकता।"[1]

स्वरूप-विवेचन

वदिक अध्ययन के साथ साथ अलकारो के स्वरूप विवेचन का अध्ययन प्रारम्भ होता है। प्रारम्भ मे 'अलकार का अध्ययन व्याकरण निरुक्त का अग था। वेदाध्ययन के छह[2] अग थे—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द तथा ज्योतिष। व्याकरण सबसे महत्त्वपूण शास्त्र रहा है निरुक्त भी इसको आदर देता था और कालान्तर मे अलकार शास्त्र भी इसको नमन करता रहा। वयाकरण गार्ग्य के विचारो को निरुक्तकार ससम्मान उद्धृत करते हैं, उन उद्धरणों का एक प्रसग[3] अलकार के स्वरूप विवेचन का बीज बन गया है। कालान्तर म उद्भट ने अलकार विवेचन प्रसग मे व्याकरण को आधार बनाया तथा उपमा आदि अलकारो के भरत दण्डी आदि मे प्रचलित 'अर्थानुरोधेन' किये गये भेदो को व्याकरणानुरोधेन[4] करते हुए भावी आचार्यों के लिए एक नवीन माग ही खोल दिया। ध्वनिकार न व्याकरण को सब शास्त्रो का आधार मानत हुए वैयाकरणों के प्रति अमित श्रद्धा अर्पित की है—

प्रथमे हि विद्वांसो वयाकरणा । व्याकरणमूलत्वात सवविद्यानाम। (ध्वन्यालोक १ १३)

कितने ही अलकारो के विवेचन मे अलकार की सहायता व्याकरण ही करता है और

---

१ भारतीय साहित्यशास्त्र प्रथम खण्ड पृ १४।

२ शिक्षा कल्पो व्याकरण निरुक्त छन्दोविचिति ज्योतिष च षडङ्गानि।

३ अथात उपमा । यदतत् तत्सदृशमिति गार्ग्य ।३।१३।

४ उद्भट तथा मम्मट ने व्याकरण को आधार बनाकर अलकारों क विवेचन को एक वज्ञानिकता प्रदान कर दी है इनक तथा इनके अनुयायियो के अलकार-लक्षण तक एव न्याय शास्त्र की कसौटी पर अत्यन्त प्रामाणिक हैं।

'अष्टाध्यायी' के बिना अलकार की सूक्ष्मता स्पष्ट नही हो पाती। पतजलि न महाभाष्य (२, १,५५) मे उपमान की जो व्याख्या 'गौरिव गवय' पर समन्वित की है उसका, चमत्काराभाव के कारण, उत्तर आचाय अलकार के उदाहरण रूप मे खण्डन[1] करते हैं। 'विभावना' अलकार के लक्षण मे 'क्रिया फल' पदों का प्रयोग किया जाय अथवा 'कारण काय' का—यह प्रश्न व्याकरण के कारण ही उठ खडा हुआ था। 'सहोक्ति' अलकार 'चैत्रेण सह मैत्रो भुक्ते' मे नही है, यह व्याकरण की आशका के कारण ही स्पष्ट करना आवश्यक बन गया था। अस्तु, व्याकरण-वेदाग के अन्तगत अलकार का अध्ययन प्रारम्भ हुआ और दीघ काल तक व्याकरण, अलकार का सहायक एव सहयोगी बना रहा।

व्याकरण के पश्चात अलकार का दूसरा सहायक निरुक्त है। उद्भव काल मे अलकार का विवेचन व्याकरण की सहायता से परन्तु निरुक्त के अन्तगत होता था। निरुक्त वेदमन्त्रो की व्याख्या मे सहायक है, उस व्याख्या मे आलकारिक सौन्दय का उदघाटन भी सम्मिलित है। कालान्तर में अलकार का महत्त्व बढ जाने से वेद के सप्तम[2] अग के रूप म अलकार की शास्त्र रूप म कल्पना की गई। समस्त काव्यशास्त्र 'अलकार नाम से प्रचलित रहा जिसका प्रमाण प्रारभिक ग्रन्थो के नामो मे[3] अलकार-पद का प्रयोग है। "वज्ञानिक अध्येताओ ने काव्य के प्रथम लक्षित प्रभावक धम को अलकार' सज्ञा दी, क्योंकि इस धम का फल काव्य का अलकार या सजावट थी। तदनन्तर विकास के फलस्वरूप प्रभावक धम के दूसरे रूप भी आचार्यों ने देखे परन्तु दीघ कालपयन्त वे उन सब धर्मों का वणन 'अलकार' नाम से ही करते रहे। परिवतन आया और 'अलकार का क्षेत्र सकीण बन गया।'[4] सकीण अथ म अलकार काव्य का 'शोभाकर' धम मात्र है। प्रस्तुत अध्ययन में अलकार का इसी सकीण अथ म ग्रहण हुआ है।

नामकरण

सस्कृत भाषा म अधिकतर नाम व्युत्पत्तिपरक हैं। अलकार' शब्द की भी व्युत्पत्ति है एव अलकार विशेष के नाम की भी। कतिपय अलकारो के लक्षण न देकर प्रतिपादक यह मान बैठे हैं कि अलकार के नाम से उसका लक्षण स्वयमेव[5] विदित हो जायगा। इसी आधार पर हिन्दी के कतिपय आचार्यों ने कुछ अलकारो को 'लक्षण-नाम प्रकाश' माना है। मुरारिदान तो प्रत्येक अलकार का लक्षण उसके नाम म ही सिद्ध करते हैं।

---

१ सर्वोऽपि हृद्यलकार. कवि समय प्रसिद्धयनरोधेन हृद्यतया काव्य शोभाकर एव अलकारतां भजते। अत गोसदृश गवय इति नोपमा। (चित्रमीमांसा)

२ 'उपकारकत्वात्लकार सप्तममगम् इति यायावरीय। ऋते च तत्स्वरूप-परिज्ञानात् वदार्थानवगति ॥ (काव्य मीमांसा)

३ यथा 'काव्यालकार (भामह) काव्यालकार-सार-सग्रह' (उदभट) काव्यालकार-सूत्र' (वामन) काव्यालकार (रुद्रट) वाग्भटालकार (वाग्भट) आदि।

४ हिन्दी-अलकार-साहित्य पृ० १

५ स्यात् स्मृति भ्रान्ति-सन्देहैस्तन्वानकतिनयम। ५।३१। (चन्द्रालोक)

फिर भी यह कहना अवनानिक होगा कि अलग लक्षण की आवश्यकता नही है अर्थात नाम ही लक्षण का द्योतक है। सामान्यत कुछ गुणो अथवा अपेक्षाओ को ध्यान म रखकर नामकरण किया जाता है, तथापि नाम लक्षण का पर्याय अथवा विकल्प नही है। अलकारो के नामकरण की निम्नलिखित रीतियाँ लक्षित होती हैं—

(क) किसी महत्त्वपूर्ण गुण के वाचक शब्द से अलकार का नामकरण। इस रीति का सबसे महत्वपूर्ण नाम रूपक है। भरत ने रूप निवर्णनायुक्त' तथा 'किंचित सादृश्यसम्पन्न यद्रूप' लक्षणाशो म 'रूप' पद का प्रयोग किया है, तो भामह ने और भी स्पष्ट कह दिया है कि 'उपमानेन यत्तत्वमुपमेयस्य रूप्यते'। यही रूप रूपक अलकार का आधार है। अधिकतर अलकारो के नाम इसी प्रकार से, विशेष आधारभूत शब्दो से, बने हैं। 'उपमा' 'दीपक' 'यमक' आदि का नामकरण इसी रीति से हुआ है।

(ख) गुण के पर्यायवाची शब्द से अलकार का नामकरण। इस रीति का महत्वपूर्ण नाम 'समासोक्ति' है। 'सक्षिप्त' उक्ति को समासोक्ति नाम दिया गया। भामह एव दण्डी दोनो ने ही समास के पर्याय सक्षेप' को लक्षण का अश बनाया है —

सा समासोक्तिरुद्दिष्टा सक्षिप्तार्थतया यथा। (भामह)
उक्ति सक्षपरूपत्वात सा समासोक्तिरिष्यते। (दण्डी)

(ग) प्रादेशिक अभिरुचि का द्योतक नाम। इसका प्रसिद्ध उदाहरण 'लाटानुप्रास है जो लाट प्रदेश के निवासियो म अति प्रचलित होने के कारण उस नाम से प्रसिद्ध हुआ। काव्यशास्त्र की रीतियाँ तो केवल प्रादेशिक अभिरुचि के कारण प्रदेश-नामा स ही प्रसिद्ध हो गइ—गौडी पाचाली वदर्भी।

(घ) एक अलकार के विरोधी गुणा के लिए उस अलकार का विपयय सूचक नाम। यह दो प्रकार मे बना है—निषेधात्मक उपसग जोडकर, तथा विपयय-सूचक शब्द रखकर। प्रथम के उदाहरण हैं, अवसर' से 'अनवसर' मीलित' से 'उन्मीलित' तद्गुण' स 'अतद्गुण हेतु से 'अहेतु', सम, स 'असम' 'विपम, 'तुल्ययोगिता' से अतुल्ययोगिता' परिवृत्ति' से 'अपरिवृत्ति। द्वितीय के उदाहरण हैं— सहोक्ति स विनोक्ति' सामान्य स विशेष प्रत्यण से विपादन, 'मिथ्याध्यवसिति से सत्याध्यवसिति'।

(ङ) अलकार विशेष से किंचित भिन्न होने के कारण उस नवीन अलकार क नाम म अन्य पद जोडकर। यथा 'परिकराकुर', भाविकच्छवि', 'उत्प्रेक्षावयव विरोधाभास दीपकयोग।

(च) दो अलकारो के नामा म योग स। यथा उपमारूपक 'सामान्यविशेषक विशेषकामालित।

(छ) कुछ अलकारो के नाम केवल प्रशसात्मक हैं। यथा 'छेकानुप्रास छकोक्ति'।

(ज) कुछ अलकारों के नाम इतने समान हैं कि उनम प्राय भ्रान्ति हो जाती है। यथा, 'पर्यायोक्त तथा 'पर्याय, विनोक्ति', विशेष' तथा विशेषक' युक्ति एव 'युक्त।

इन नामो की विशेषताओ एव रीतियों के अतिरिक्त अप्रस्तुत प्रशसा म 'प्रशसा पद

कतिपय आचार्यों के लिए भी भ्रामक रहा है, निदशना' को उद्भट म 'विदशना' लिखा गया है श्लिष्ट पुराना नाम था, उनके स्थान पर श्लेष' नया नाम आ गया, 'ससन्देह' को नये आचाय सन्देह', तथा सशय' भी लिखते हैं, 'भाविकत्व' को आगे चलकर भाविक' कहने लगे, 'काव्यहेतु' आगे चलकर 'काव्यलिंग' नाम स प्रचलित हुआ, का यदृष्टान्त' केवल 'दृष्टान्त' रह गया, 'अन्यो य' को 'परस्पर', एव 'सार' को 'उदार' लिखा गया, ,भ्रांतिमत्' भ्रम' बनकर रह गया, अर्थापत्ति' को 'काव्यार्थापत्ति' भी कहते हैं।

अलकारा के अधिकतर नाम सनापद हैं, केवल कुछ ही विशेषण पद है। 'सूक्ष्म', 'विषम', 'अधिक' 'सामान्य', 'विचित्र', अनुकूल, 'असभव' 'ललित', अमित', 'युक्त' आदि। अलकारा के कुछ नामो का सम्बन्ध न्याय (न्यायशास्त्र एव लोकन्याय) से है—दीपक, अर्थापत्ति अनुमान, अभाव, सिंहावलोकन। अप्रस्तुत प्रशसा' हिन्दी मे अन्योक्ति'[1] तथा 'अन्त्यानुप्रास हिन्दी में 'तुक' नामा स प्रसिद्ध हुए। अलकारा क उक्ति पन्तात नाम कदाचित सख्या म सबसे अधिक हैं।

भेदोपभेद

अलकारो क विवचन के साथ ही उनक भेदो की चचा प्रारभ हो गई थी। गार्ग्य, यास्क, तथा भरत मे उपमा के भेदो के नाम बतलाकर उनके लक्षण उदाहरण दिय गय हैं। इस परम्परा म भेदो का आधार 'अथानुरोध' था, अर्थात् जसा प्रयोग पाया जाय वसा ही उस भेद का नाम रख दिया जाय। दण्डी, और आग चलकर भोज भेदा के विस्तार के लिए प्रसिद्ध हैं। अनेक भेदो को देकर भी आचाय यह सोचते हैं कि अभी न्याय नहीं हुआ, अत पाठक के लिए यह परामश है कि शेष भेद वह लोक व्यवहार स स्वयमव[2] सीख लें।

जो आचाय स्वभावोक्ति को कान्य की धुरी मानते हैं उनम सामान्यत अलकारो के भेदोपभेद 'अर्थानुरोधेन प्राप्त होते ह। इसक विपरीत जो वग वक्रोक्ति अतिशयोक्ति को कान्य का प्राण मानता है उसन न्याकरण एव न्यायशास्त्र की सहायता से अलकारो का विवेचन किया है और 'प्रयोगानुरोधेन अलकारा क भेदापभेद बनाये हैं। व्याकरण के प्रयोग के अनुरोध स उदभट ने सवप्रथम उपमा के भेदा का विस्तार किया और अन्य अलकारो के सम्बन्ध मे भी यह न्यवस्था करने का सकेत द दिया। आगे चलकर मम्मट एव जगन्नाथ इसी परम्परा क समथक है।

अलकार भेदा की एव भेदो क उपभदो की सख्या अलकार विशेष के सम्बन्ध म एक सौ छिहत्तर तक पहुँची है। छह आठ तक पहुँचना ता सामान्य बात है। व्याकरणानुरोधेन भेदाप

---

१ अन्योक्ति नाम की कल्पना रुद्रट ने की थी परन्तु इस नाम की प्रसिद्धि हिन्दी म हुई सस्कृत मे नही। रुद्रट की कल्पना क उपरान्त भी सस्कृत के आचाय इसका पुराने अप्रस्तुत प्रशसा नाम स ही वणन करते रहे।

२ ये नापा लक्षण नोक्तास्ते ग्राह्या काव्य-लोकत। १६। ५६। (नाटयशास्त्र)

भेदो की व्याख्या म आचाय कभी कभी यह नहीं बतलाता कि उसकी सम्मति म उस अलकार क कितन भेद हैं उस स्थिति मे विवत्तिकार का मत प्रामाणिक बन जाता है और विवत्तिकारो म सख्या क विपय म मतभेद भी हो सकते हैं। यह तथ्य उपमा के प्रसग म देखा जा सकता है।

भेद का एक आधार शाब्द आर्थ' है, अन्य 'साधर्म्य-वधर्म्य है, अन्य वाच्य गम्य' है अन्य विधि निषेध' है क्वचित शुद्ध मिश्र है कही जाति-गुण द्रव्य क्रिया' हैं। सत असत' भी हैं सम-न्यून', अय-अनय भी। लक्षण क अग यथा काय लिंग विशेषण' अथवा सामान्य विशेष भी भेदो के आधार बन जाते हैं। कहीं 'काल आधार बन गया है, तो कही नञ्। इस प्रकार उदाहरणा म सामान्य सकत ग्रहण करके, उनको व्याकरण-न्याय की कसौटी पर परखकर आचार्यों न भेदापभेदा का प्रसार किया है। इस प्रणाली स भेदोपभेदा क क्षेत्र परस्पर म स्वतन्त्र रहते हैं अर्थानुरोधेन विभाग के समान अपन पक्षा को एक दूसरे क क्षेत्रो म नहीं फलाते।

भेदोपभेदा की दष्टि स एक विचित्रता यह है कि अलकार का मूल लक्षण भेद विशेष पर मर्यादित नहीं होता। अनुप्रास' क प्रसग म 'लाटानुप्रास भेद को लेकर परवर्त्तर आचार्यों न इस समस्या को उठाया है और उसी आधार पर लाटानुप्रास' को अनुप्रास का भेद मात्र मानन म असहमति प्रकट की है। लग अलकार के दो 'रूप अलग अलग हैं, मानो दो स्वतन्त्र अलकार बनान एक नाम स बाँध दिये हो। इसी प्रकार विशेष तथा अधिक अलकारो क विषय म समझना चाहिए। दीपक अलकार के उपभेद, पारस्परिक असन्तोष क कारण ही, कुछ समय बाद म पहुँचकर अलग अलग रहने लगते हैं मालादीपक तो दीपक' स दूर जाकर माला स मल जोल रखने लगा है।

वर्गीकरण

के बीज भामह में खोजे जा सकते हैं। 'काव्यालकार' मे 'शब्दार्थो' को 'काव्यम' का लक्षण दिया गया है, अतः काव्यसम्बन्धी समस्त विशेषताओं का अध्ययन 'शब्द' एवं 'अर्थ' के शीर्षकों में करना स्वाभाविक ही है। इस वर्गीकरण का सबसे महत्त्वपूर्ण विवाद 'श्लेष' अलकार को लेकर है, वह किस वर्ग मे जायगा? और समाधान यही बन सका है कि 'शब्दश्लेष' तथा 'अर्थश्लेष' दोनो का अलग-अलग वर्गों में अध्ययन किया जाय, फिर भी इस विषय पर मतभेद है कि श्लेष कहाँ शब्दालकार है और कहा अर्थालकार? रुद्रट ने 'श्लेषोऽप्यस्यापि' लिखकर श्लेष को 'उभयालकार' माना है।

अस्तु वर्गीकरण का दूसरा प्रयत्न अलकारो को 'त्रिवर्ग' मे रखने का है—शब्दालकार, अर्थालकार तथा उभयालकार। 'उभयालकार' सामान्यतः श्लेष, वक्रोक्ति, ससृष्टि, सकर आदि ही माने जा सकते हैं। परन्तु रुद्रट के कथन को किसी अन्य रूप में लेकर 'भोज' ने 'उभयालकार' का विवेचन करने के लिए एक स्वतन्त्र परिच्छेद ही लिखा है[1]—'इदानीमुभयालकार विवेचनाय परिच्छेद मारभते' इस परिच्छेद के अन्तर्गत चौबीस उभयालकारो का वर्णन है। 'भोज का उभयालकार विवेचन एक स्वतन्त्र परम्परा का अनुयायी है। उन्होने चौबीस उभयालकारो में जिन अलकारो का समावेश किया है उनमें श्लेष और ससृष्टि को छोडकर किसी भी दूसरे अलकार को किसी भी परिचित आलकारिक ने उभयालकार नहीं माना है।'[2] त्रिवर्ग की मूल परम्परा रुय्यक में फिर ध्यान आकृष्ट करती है। अलकार सर्वस्व में उसके अनेक सकेत मिलते हैं—

(क) इह अर्थपौनरुक्त्य शब्दपौनरुक्त्य शब्दार्थपौनरुक्त्य चेति
त्रय पौनरुक्त्यप्रकारा। (पृ० १६)

(ख) एवमेते शब्दार्थोभयालकारा सक्षेपत सूत्रिता। तत्र शब्दालकारा यमकादय। अर्थालकारा उपमादय। उभयालकारा लाटानुप्रासादय। (पृ० २५६)।

रुय्यक के मत का समर्थन करते हुए विश्वनाथ ने भी पुनरुक्तवदाभास को उभयालकार मानना अधिक उचित बतलाया है। जगन्नाथ तक इस 'त्रिवर्ग' के सकेत[3] मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि 'त्रिवर्ग' का क्षेत्र सीमित था। जो शब्दालकार हैं, वे तो शब्दालकार हैं ही, एव जो अर्थालकार हैं वे भी अर्थालकार ही रहेंगे, शेष जो दोनो ओर भटके हुए हैं केवल उन अलकारो को ही उभयालकार कहा जायगा। इस वर्ग में मुख्य तो सकर-ससृष्टि हैं क्योंकि इसमें शब्दालकार तथा अर्थालकार दोनो का सयोग हो सकता है। फिर श्लेष का नाम है क्योंकि उसकी प्रवृत्ति उभयात्मिका है। अन्त मे परिशिष्ट रूप में वक्रोक्ति एव पुनरुक्तवदाभास को जोडा जा सकता है, परन्तु यह सर्वमान्य नही।

वर्गीकरण का तीसरा प्रयत्न वामन में है। 'काव्यालकार सूत्र' के चतुर्थ आलकारिक'

---

१ अलकार मीमासा पृ० १५६।
२ भारतीय साहित्यशास्त्र और काव्यालकार भाग १ पृ० ४६।
३ तद् त्रिविधम् शब्दचित्रम् अर्थचित्रम् उभयचित्रमिति। (पृ० १६)

अधिकरण मे 'शब्दालकार विचार' तथा 'उपमा विचार के अनन्तर 'उपमा प्रपच विचार' है, जिसमे अट्ठाईस अलकारो का वणन है। वामन के अनुसार 'तन्मूल चोपमा' है। यद्यपि आलोचको ने वामन के उपमा विषयक सिद्धान्त को वर्गीकरण' नही बतलाया तथापि इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि प्रसार की इच्छा से विभाजन का जन्म होता है और समाहार की इच्छा से वर्गीकरण का, वामन ने अनेक अलकारो को उपमा के प्रपच मानकर उनको उपमा से सम्बद्ध कर दिया है, जो इससे अलग हैं अर्थात उपमा के प्रपच नही हैं उनका वणन ही नही किया—स्वभावोक्ति काव्यलिग एव दृष्टान्त जैसे अलकारों को भी छोड दिया गया है। वामन ने वर्गीकरण का अधूरा प्रयत्न किया है, इसीलिए उसको मान्यता नही मिली। 'भामह तथा दण्डी ने अतिशयोक्ति और वक्रोक्ति का तथा वामन ने औपम्य की महत्ता का गान वर्गीकरण को दृष्टि म रखकर नही किया था। अलकारो के व्यापक तत्त्व की ओर इस निर्देश ने यह अवश्य मानना होगा, अलकारो को वगश न सही पर किन्ही सामान्य तत्त्वो के अन्तगत रहने का दिशासकेत कर दिया था।[१] 'भामह तथा उद्भट का अलकार वर्गीकरण तो तत्कालीन स्कूलो पर आश्रित था, परन्तु वामन न समस्त अर्थालकारो को उपमा का प्रपच माना जिस मान्यता के सकेत दण्डी म खोजे जा सकते हैं, रुद्रट का वर्गीकरण वामन शली का है।[२]

अस्तु रुद्रट न वामन शली पर अलकारो क वर्गीकरण का व्यापक प्रयत्न किया। मूल अर्थालकार चार है—वास्तव, औपम्य, अतिशय तथा श्लेष। निशेष[३] अर्थालकार इन चार के ही विशेष' अर्थात 'प्रपच अर्थात उपभेद हैं। रुद्रट स पूव वास्तव औपम्य अतिशय और श्लेष इन चारो तत्त्वो के सम्बन्ध मे व्यापक चर्चा हो चुकी थी। भामह 'सषा सर्वैव वक्रोक्ति का सिंहनाद कर चुके थ। दण्डी ने 'श्लेष सर्वासु पुष्णाति प्रायो वक्रोक्तिषु श्रियम्' कहकर श्लेष की तथा भिन्न द्विधा स्वभावोक्तिवक्रोक्तिश्चेति वाङ्मयम कहकर स्वभाव (वास्तव) तथा वक्रोक्ति (अतिशय) की महिमा का पुन प्रचार कर दिया था। वामन का 'प्रतिवस्तु प्रभृति उपमाप्रपच सूत्र रुद्रट को सुनाई पड ही रहा होगा।[४] रुद्रट का वर्गीकरण दोहरा है—अलकारा क दो वग हैं, शब्दालकार तथा अर्थालकार, पुन अर्थालकार के चार उपवग है वास्तव औपम्य अतिशय और श्लेष। अत प्रसिद्ध वर्गीकरण को उपवर्गीकरण कहना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। यह उपवर्गीकरण भी वज्ञानिक नही है, यह तो वामन-शली का चार अर्थालकारो का महत्त्व-स्वीकार ही है। एसा भी प्रतीत होता है कि एक ही अलकार एक से अधिक वर्गों म है। सहोक्ति समुच्चय' और 'उत्तर' वास्तव वग म भी हैं और

१ अलकार-मीमांसा पृ १८।

२ हिन्दी-अलकार साहित्य पृ २२।

३ अर्थस्यालकारा वास्तवमौपम्यमतिशय श्लेष।
एषामेव विशेषा अन्ये तु भवन्ति निशेषा ॥७।९॥

४ भारतीय साहित्यशास्त्र और काव्यालकार, पृ० ६६।

औपम्य वग मे भी उत्प्रेक्षा' और 'पूव' औपम्य-वग म भी हैं, 'हेतु' वास्तव तथा अतिशय दोनो वर्गों मे आ गया है।'[1] वर्गीकरण का यह प्रथम व्यवस्थित प्रयास था। इसका सदोष होना स्वाभाविक है । रुद्रट को भी श्रेणी विभाग की इस अपूणता का भान रहा होगा, नही तो उन्हे अनेक अलकारो का दो दो वर्गों मे क्यो रखना पडता।'[2] उदभट के समान रुद्रट ने इस वर्गीकरण म, 'वग शब्द का प्रयोग कही नही किया, वे तो चार ही अर्थालकार मानते हैं और शेष अर्थालकारो को इन्ही चार के विशेष अथवा 'भेद ।

वर्गीकरण का एक सफल प्रयास रुय्यक ने किया। अलकारा के प्रथमत दो वग हो सकते हैं— शुद्ध' तथा मिश्र' । शुद्धालकारो को आठ वर्गों मे रखा जा सकता है—सादश्याश्रय विरोधमूल, तक यायमूल, वाक्य यायमूल गूढाथप्रतीति पर, तथा चित्तवत्ति पर आश्रित। इन वर्गों के भी उपवग हैं। यथा सादृश्याश्रय अलकारो के भेदाभेदप्रधान, अभेदप्रधान तथा भेद प्रधान तीन उपवग है। रुय्यक का प्रयत्न अत्य त समय है और उसम वैज्ञानिकता का निर्वाह किया गया है । इसीलिए उत्तर आचार्यो ने रुय्यक के वर्गीकरण को प्राय मान्यता दी है और अलकारो के विवेचन मे उनके वग का प्रसग भी ला दिया है। 'शुद्ध तथा मिश्र अलकारा म से प्रथम को सामान्यत दो श्रेणियो मे बाँट सकते हैं—वस्तुमूलक तथा चित्तवत्तिमूलक। उपमा से लेकर उदात्त तक के समग्र अलकार वस्तुमूलक हैं। वस्तुमूलक अलकारो मे कुछ मे तो वस्तु या अथ का निगूढ होता है जिनके लिए 'गूढाथप्रतीति-पर' नामक एक नवीन वग है उन्हे छोडकर शेष अलकारो को 'सम्बन्ध' तथा 'न्याय इन दो आधारो पर विभाजित किया गया है । सम्बन्ध म रुय्यक ने 'सादृश्य' तथा विरोध' को लिया है।—न्याय को रुय्यक ने 'तक' वाक्य तथा लोक की तीन श्रेणियो मे रखा है। 'शृखलाबन्ध को भी शृखला न्याय नाम दिया जा सकता है विद्यानाथ ने दिया भी है।[3] इस प्रकार रुय्यक का वर्गीकरण अधिक वज्ञानिक तथा पूण है। आगे चलकर विद्यानाथ ने 'एकावली' के अष्टम उन्मेष मे अर्थालकारो का वणन रुय्यक के वर्गीकरण के आधार पर ही किया है और बाईस वर्गों के सकेत[4] दिय हैं 'एकावली म यद्यपि इस वर्गीकरण पर बल नहीं दिया गया, फिर भी कारिका वृत्ति तथा टीका मे इसक बीज निहित हैं। यह कहना कठिन है कि आचाय इस वर्गीकरण को कितना महत्त्व देता है, फिर भी उसके मस्तिष्क म यह विद्यमान अवश्य मानना पडेगा।'[5]

सख्या

गाग्य ने केवल एक अलकार 'उपमा का विवेचन किया था। भरत ने 'रूपक , दीपक

---

१ हिन्दी अलकार-साहित्य, पृ० २२।

२ भारतीय साहित्यशास्त्र और काव्यालकार पृ० ६६ ।

३ विस्तार के लिए देखिए अलकार-मीमांसा पृ० १८३ से १६७ तक।

४ भारतीय साहित्यशास्त्र और काव्यालकार पृ० ७७ ।

५ विस्तार के लिए देखिए 'हिन्दी अलकार-साहित्य , पृ० ३६ ४० ।

६ हिन्दी-अलकार-साहित्य पृ० ४०।

और 'यमक' को मिलाकर चार अलकारो का विवेचन किया। शन शन यह सख्या दो सौ से ऊपर तक पहुच जाती है, जिसमे सस्कृत माध्यम का योग अपेक्षाकृत बहुत अधिक है, हिन्दी माध्यम का कम। यो तो अलकारो की सख्या (१६वी शती के प्रारभ तक) १६१ तक पहुँच गई किन्तु सभी समीक्षक इस बात पर एकमत हैं कि इन नवीन अलकारो का आविर्भाव केवल अपनी अपनी अलकार प्रतिभा का प्रदशन करने के लिए अधिक हुआ था, इन नवीन अलकारो म चमत्कार अधिक नही था।[1] हिन्दी माध्यम से जन्मे हुए अलकारो की सख्या भी तीस से अधिक है।

भरत और भामह के बीच कितने आचाय और है इस ज्ञान के लिए हमारे पास प्रामाणिक रचनाएँ उपलब्ध नही हैं, परन्तु स्वय भामह ने उनका सकेत दिया है और उन सबके मत से नवीन अलकारो का विवेचन किया है। भामह प्रथम आचाय हैं जिन्होने बडी सख्या म नवीन अलकारो का विवेचन किया है, 'काव्यालकार' मे छत्तीस नवीन अलकार हैं जिनका दो परिच्छेदो मे वणन है। दण्डी की ख्याति अलकार भेदो के लिए है—उनम नवीन अलकार तो केवल तीन हैं। उद्भट ने सात नवीन अलकारो का विवेचन किया जिनमे दो नये भेद अनुप्रास के हैं और प्रतिवस्तूपमा को स्वतन्त्र अलकारत्व प्राप्त हो गया है। वामन ने केवल दो नवीन अलकारो की कल्पना की। इस प्रकार वामन तक तिरेपन अलकार प्रसिद्ध हो चुके थे।

रुद्रट ने फिर नवीन अलकारो की बडी सख्या मे कल्पना की। रुद्रट काव्यालकार म तीस नवीन अलकार हैं, चार पाच को छोडकर सबको उत्तर आचार्यों ने मान्यता दी है। रुद्रट और मम्मट के बीच जो ग्रन्थ मिलते हैं उनम भोज का सरस्वती-कठाभरण' मुख्य है, परन्तु अनेक नवीन नामो के होते हुए भी उस ग्रन्थ का अलकारो के विकास म कोई महत्त्वपूण योग नही है। अग्निपुराण एव 'सरस्वती कठाभरण' दोनो ही सग्रह-ग्रन्थ हैं इनम मौलिकता तथा सिद्धान्त का प्रश्न नही उठता, केवल रुचि के अनुसार ग्रहण-त्याग-परिवतन की झलक मिलती है।

मम्मट स अलकारो के विकास मे एक नया अध्याय प्रारम्भ हुआ। प्रचलित तिरासी अलकारो (जिनम भोज के नवीन अलकार सम्मिलित नही हैं) म से कुछ को मम्मट न छोड दिया है और अपन चार नवीन अलकारो को जोडकर भी केवल सात शब्दालकारो एव इकसठ अर्थालकारो का वणन किया है। मम्मट, रुय्यक, विश्वनाथ एव जगन्नाथ अलकारो पर अकुश रखना चाहते थ। फिर भी मम्मट ने चार, रुय्यक ने सात (भावोदय आदि तीनो को एक मे गिनकर), विश्वनाथ ने पाच, तथा जगन्नाथ ने एक नवीन अलकार की कल्पना की है और खडन करने के उपरान्त भी अलकार-सख्या एक शतक पर पहुँच गई है।

अलकार-सख्या के प्रसग मे जयदेव एव अप्पय्य दीक्षित के नाम महत्त्वपूण हैं। जयदेव ने सोलह एव अप्पय्यदीक्षित ने अठारह नवीन अलकारो की कल्पना की है, कुवलयानन्द म सौ[2]

---

१ अलकार-मीमांसा पृ० १४३।

२ इत्थ शतमलकारा लक्षयित्वा निर्दशिता।
प्राचामाधुनिकानां च मतान्यालोच्य सर्वत ।।१६६।।

अलकारो का वणन एव पद्रह' अलकारो का परिचय मिलता है—जिनम शब्दालकार सम्मिलित नही है। इस बीच म कुछ आचाय एक दो छुट पुट अलकारो की भी कल्पना करते रहे। पर तु शोभाकर मित्र का प्रयत्न फिर एक वार सख्या बढान की दिशा म था। 'रुय्यक के बाद शोभाकर न ही लगभग छत्तीस अलकार और बढ़ा दिये थे जिनम स प्राय सभी का उल्लेख जयरथ ने अलकारोदाहरण' म किया है।[2] जब तक शोभाकर का समय निश्चित नही होता तब तक यह कहना कठिन है कि शोभाकर के अपने नवीन अलकार कितने है।

अस्तु अलकार विवेचन अपने साथ डेढ सौ स्वीकृत एव लगभग पचास अस्वीकृत अलकारो की थाती लेकर हि दी म आया था। रीतिकाल मे नव निर्माण कम था, फिर भी लगभग बीस अलकार ऐसे दिखलाई पडते है जिनको नवीन कहा जा सकता है—अकले केशव के ही नवीन अलकार छह है। आधुनिक युग अलकारो स कतराता है, फिर भी अलकार सख्या म इसने बीस नाम तो जोड ही दिय हैं। कवल हि दी माध्यम से प्रसारित इन पचास अलकारो का अलकार विकास म अपना कोई न कोई योगदान अवश्य है। प्रस्तुत प्रब ध म एक सौ बहत्तर प्रमुख अलकारो क विकास का अध्ययन है।

नवीन अलकारो की कल्पना

एक अलकार चार और फिर दो सौ तक किस प्रकार पहुँच जाता है, यह स्वय एक रोचक विषय है। प्रारम्भ म लोकप्रिय सौ दय विधाओ का चयन हुआ था और प्रसिद्ध चमत्कारो को ही स्वत त्र अलकारत्व प्रदान किया जाता था। अत प्रारभिक अलकारो का सौ दय इतना स्पष्ट है कि न उसके स्वरूप पर विवाद खडा हुआ और न उनकी स्वीकृति का खण्डन करने की आवश्यकता हुई। यदि कही प्रश्न चि ह है तो सिद्धा तो को लेकर, दष्टिकोण का अ तर है उसकी उपलब्धि से असहमति नहीं है। भामह तथा दण्डी वक्रोक्ति—स्वभावोक्ति क अलग दृष्टिकोणो को लेकर चले। इसलिए भामह न हेतु सूक्ष्म लेश के अलकारत्व का खण्डन किया, जिसका वैसा ही कठोर उत्तर दण्डी न दिया था। रुद्रट स पूव के तिरेपन अलकारो म से भामह के उपमारूपक' तथा 'उत्प्रेक्षावयव' एव दण्डी के आवत्ति ने ही दम तोडा है, शेष पचास जीवित हैं और स्वस्थ हैं। यदि 'रसवत आदि पर प्रश्नचि ह लगा है तो सद्धा तिक मतभेद के कारण ही, इनको अलकार माना जाय या गुणीभूत व्यग्य? इनमे सौ दय नही है ऐसा तो कोई नहीं कहता। इन पचासो म एकसी ही शक्ति है एकसा ही प्रभाव है—ऐसा सोचना ही अवनानिक है, कहाँ समासोक्ति' कहाँ 'भाविक! कहा 'हेतु और कहा 'का यहेतु' (का यलिंग)! पर तु अपने-अपने क्षेत्र म सब अपने अपने ढग स प्रतिष्ठित हैं।

प्रथम अधशती जितनी प्रतिष्ठित थी उतनी द्वितीय अधशती नही। इस समाज के कुछ अलकार निश्चय ही प्राचीनो की असावधानी का सकेत देते हैं। रुद्रट के 'परिसख्या, अ यो य,

---

१ एवं पञ्चशान्यामप्यलकारान् विदुर्बुधा ।१७१।।

२ अलकार-मीमासा पृ० १४३।

'मीलित, प्रतीप, प्रत्यनीक, 'तदगुण, असगति आदि, मम्मट क विनोक्ति, रुय्यक के परिणाम उल्लेख' आदि, जयदेव के परिकराकुर, 'प्रहृषण आदि' अप्पय्यदीक्षित क मुद्रा, 'निरुक्ति आदि का सौन्दय निर्विवाद है। वस्तुत ये अलकार स्वत त्र सौन्दय के अभिधान हैं। इनकी लोकप्रियता कम है, सौन्दय यून नही है। इनको महत्त्व की दष्टि से आप छोड सकते हैं सौ दय की रिक्तता के कारण नही। परन्तु इस अधशती के ऐसे सदस्य भी हैं, कम से कम आवे जो अनायास ही आकृष्ट नही करते, वे सौन्दय के बिखरे कण हैं। कुछ ऐस भी हैं जिनका सौन्दय सायास भी प्रभावित नही करता। इनकी कल्पना किसी सामान्य स्फुरणा के कारण हुई होगी। रुद्रट क 'भाव मत 'साम्य आदि जयदेव के प्रौढोक्ति भाविकच्छवि आदि इसी प्रकार क हैं। इनके नामो से ही यह सकेत मिल जाता है कि इनकी कल्पना किसी क्षिप्रता का परिणाम है।

तृतीय अधशती म से कितने उपयोगी है यह सोच विचारकर ही निश्चित करना होगा। कुछ भेद स्वत त्र अलकार बन गय हैं यथा कारक दीपक। कुछ अलकारो की कल्पना विपयय रूप म हुई जैस अहेतु, विनेपक। कुछ अन्य अलकारो के उपरूप है यथा भाविकच्छवि। प्रमाण अलकारा म सौन्दय खोजना ही पडेगा, सहज उपलब्ध नही है। जिन अलकारो का चमत्कार बहुत ही सीमित क्षेत्र म हुआ है उनम प्राण भी उतना ही कम है। शोभाकार के दो अलकारा को ही अन्या से मान्यता मिली है— असम तथा उदाहरण' को।

शेप अलकारो की कल्पना सामान्य विचारको ने की है वह भी किसी विशेष सौन्दय से आकृष्ट होकर नही कदाचित पाण्डित्य प्रदशन के लिए ही। हिन्दी के आचार्यों ने प्राय इसी प्रकार के अलकारो की कल्पना की है। यदि कोई कवि नवीन उदाहरण बनाकर उससे अलकार का प्रतिपादन करता है तो उसकी कृत्रिमता स्वत सिद्ध हो जाती है। मुरारिदान के प्रतिमा अलकार म एक नायिका अपने प्रिय की अनुपस्थिति म उसकी बहन को देख देखकर ही दिन काटती है। बिहारीलाल भटट ने दीपक एव अनुप्रास क योग से 'दीपयोग' अलकार बना दिया वह भी दीपक' को सदोपता मे ग्रहण करके।

अस्तु अलकारो की कल्पना जब तक साधन थी तब तक जिन अलकारो का जन्म हुआ व अमर हैं, सौन्दय का अभिधान बनकर। परन्तु जब अलकारो की कल्पना साध्य बन गई पडितो ने सोचा कि कोई नया अलकार निकालना चाहिए, और निकाल भी लिया तो जो अलकार निकले वे प्रामाणिक नही थे। यह सयोग-मात्र नहीं है कि अलकारो के विकास मे जब गतिहीनता आ गई थी उस समय विकसित होने वाले अलकार मूल्य म कम हैं।

प्रस्तुत अध्ययन की दिशा

प्रस्तुत अध्ययन म हमने अलकारों को कालापेक्ष्यता म देखा है। जिस अलकार का प्रथम उल्लख जब मिलता है तभी उसका समय मान लिया गया है। इस प्रकार यह अलकारों का कालक्रम से अध्ययन है। सुविधा के लिए प्रत्येक अलकार को एक सख्या दे दी गई है जिसस कालक्रम का अपने-आप ध्यान आ जाता है। 'प्रथम उल्लेख अभिव्यक्ति को भी स्पष्ट करना

होगा। भामह 'हेतु सूक्ष्म-लेश' मे अलकारता नही मानते परन्तु इसी कारण उन्होने इन अलकारों की चर्चा की है । प्रस्तुत अध्ययन मे ये नाम भामह के साथ ही जुडे हैं जो इनको अलकार नही मानते। कौन आचाय पहले था और कौन पीछे, इसका निणय उन आचार्यों पर छोड दिया गया है जो उस विषय के मौलिक चिन्तक हैं। फलत भामह, दण्डी, अप्पय्य दीक्षित जगन्नाथ इनमे से किसने पहले लिखा है—यह निणय हमने दूसरो से ही लिया है, स्वय नही किया । आकर ग्रन्थो के लेखको के बीच म कुछ ऐसे टीकाकार या विवेचक हुए हैं जिन्होने इन अलकारो की भी प्रसगत चर्चा की है। प्रस्तुत अध्ययन उन तक नही जा पाया। फलत आकर ग्रन्थो के कालक्रम के अनुसार उनमे वर्णित अलकारों के क्रम को हमने अलकारो की कल्पना का कालक्रम मान लिया है। आकर ग्रन्थो की रचना तिथि बदल जाने पर, अथवा टीकाकारो के उल्लेख स अथवा किसी शिलालेख हस्तलिखित ग्र थ आदि के प्रकाश मे आने पर इन अलकारो मे दो चार के 'प्रथम उल्लेख' का कालक्रम बदल भी सकता है ऐसी आशका सदा बनी रहगी। कालक्रम को यहा पर उल्लेख पर आश्रित माना गया है, जन्म पर आश्रित नही। जिन अलकारो को भामह ने द्वितीय परिच्छेद मे लिखा है, वे भामह कल्पित नहीं हैं, परन्तु प्रथम उल्लेखक भामह ही हैं इसीलिए उनका वणन भामह के साथ है।

विवेचन मे यह काल क्रम विकास का द्योतक है। जिस उपमा अलकार का प्रथम उल्लेख गार्ग्य न किया था, वह पूर्वाचार्यों से उत्तराचार्यों तक क्रमश आता हुआ किस प्रकार से अपने स्वरूप को विकसित करता रहा है यही इस अध्ययन का उद्देश्य है। प्रत्येक उत्तर आचाय के सम्मुख प्रतिष्ठित पूव आचार्यों का अलकार विवेचन था। कितनी ही बार उसने पूर्वाचाय की शब्दावली अपना ली, कितनी ही बार उसने विचार को अपनी शब्दावली मे लिख दिया। कुछ आचाय पूर्वाचाय का खण्डन या मण्डन करके अपने विचार का प्रतिपादन करते हैं यह खण्डन मण्डन कहीं-कहीं शब्दोपात्त है तो कहीं कहीं अध्ययन से स्पष्ट होता है। जो आचाय अलकार प्रतिपादन के लिए प्रसिद्ध हैं केवल उनके विवेचन को ही आधार बनाकर विकास का सूत्र ग्रहण करन की यहा चेष्टा की गई है बीच के किसी आचाय (यथा हेमचन्द्र वाग्भट आदि) को केवल वहीं लिया गया है जहा विवेचन क्रम मे इसका उल्लेख आवश्यक था । जो विद्वान् अलकार को गौण मानकर चाटूक्ति को मुख्यता देते हैं अथवा जिनम मम्मट रुय्यक आदि का ही शान्त अनुकरण है उनको विवेचन के बीच मे लाने की आवश्यकता का अनुभव नही हुआ।

स्वरूप विकास का अध्ययन करते हुए इस बात को महत्त्व दिया गया है कि किस आचाय ने किस आचाय के विचार का खण्डन अथवा मण्डन किया और उस खण्डन मण्डन से अलकार विशेष के स्वरूप विकास पर क्या प्रभाव पडा। जिस प्रकार उद्भट ने उपमा भेदो की परम्परा का खण्डन करके व्याकरण के अनुसार भेदोपभेदो की नवीन परम्परा चलाई यह लक्षित तथ्य उपमा के विकास के अध्ययन म बडा सहायक है। इसी प्रकार भामह ने कुछ अलकारो का खण्डन किया, परन्तु दण्डी ने उनको उतना ही अधिक महत्त्व दिया। जगन्नाथ म भी इस खण्डन मण्डन स अनेक सहायक सकेत मिलते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन अलकार लक्षण तक सीमित रहा है, क्योकि लक्षण ही अलकार के स्वरूप का वाचक है। लक्षण के साथ उसकी 'वृत्ति अथवा कविकृत 'व्याख्या को भी लक्षण के समान ही महत्व दिया गया है। प्राय ये लक्षण पूर्वालकार के लक्षण की सापेक्ष्यता से लिखे गये हैं। या तो ये सूत्र हैं या सूत्रवत सक्षिप्त हैं। प्रारम्भिक लक्षण वणनवत् थे, उत्तर आचार्यों के लक्षणो में कसावट है—पद्य मे होने पर भी शब्दो की शिथिल अथवा अनावश्यक भरमार इनमे नही है।

अलकार के विकास म उसके भेदोपभेदो का भी महत्त्व है। प्राय एक अलकार के भेद आगे चलकर स्वतन्त्र अलकार बन जाते हैं। जो आचाय लक्षण म किसी अन्य से सहमत है वह भेदो मे भी सहमत होगा, यह आवश्यक नही है। जिस प्रकार लक्षण म व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित होता है, उसी प्रकार भेदोपभेदो मे भी। अत इस अध्ययन म लक्षणो के साथ साथ भेदोपभेदो स भी सहायता ली गई है।

विवेचन क्रम म उदाहरण अनिवाय है, परन्तु अध्ययन क्रम म हमने उदाहरणो को महत्त्व नही दिया। जिस आचाय ने अलकार विशेष का प्रथम उल्लेख किया उसके द्वारा दिया गया उदाहरण उस अलकार के मूल स्वरूप को समभाने म सहायक था, इसलिए उसकी सहायता एव उसका निदशन इस प्रबन्ध म है। अन्यत्र उदाहरण से विशेष लाभ न उठाया जा सका। इस अध्ययन का उद्देश्य अलकार का स्पष्टीकरण नही प्रत्युत अलकार के स्वरूप का विकास समझना है।

इस प्रकार लक्षण एव पारस्परिक साम्य वषम्य को ध्यान म रखकर अलकारो के काल क्रमिक विकास का यह प्रयत्न अलकारो के विकसित, परिवर्तित एव वैज्ञानिक स्वरूप को निश्चित करने म सफल होगा, एसी आशा है।

प्रथम अध्याय

प्रथम विवेचित अलकार--उपमा

गार्ग्य तथा यास्क

'उपमा शब्द का प्रयोग तो ऋग्वेद'[1] मे भी मिलता है परन्तु अलकार रूप म इसका शास्त्रीय विवेचन सवप्रथम[2] आचाय गाग्य ने किया था। गाग्य के विषय मे इतिहास को इतना विदित है कि निरुक्त की रचना के समय वयाकरणो के मध्य शाकटायन तथा गाग्य दो आचार्यों एव उनक सम्प्रदायो की प्रतिष्ठा थी यास्काचाय ने स्थान-स्थान पर शाकटायन के साथ मतभेद और गाग्य के साथ सहमति[3] प्रकट की है। निरुक्त के ततीय अध्याय मे उपमा का विवेचन करते हुए यास्क ने गाग्य कृत उपमा लक्षण को नामपूवक उदधत किया है—

अयात उपमा । यदतत्तत्सदशमिति गाग्य । तदासा कम ।
ज्यायसा वा गुणेन प्रख्याततमेन वा कनीयास वाऽप्रख्यात वोपमिमीते,
अथापि कनीयसा ज्यायासम ।।

'उसस भिन्न (अतद्) (उपमेय) का उस' (तद) (उपमान) के साथ सादृश्य[4] उपमा है। उपमा का 'कम' है गुण के आधार पर अनुत्कृष्ट का उत्कृष्ट के साथ अथवा अप्रख्यात का

---

१ त्वमग्ने प्रयतन्दक्षिण नर वर्मेव स्यूत परि पासि विश्वत ।
स्वादुक्षदमा यो वसतौ स्यानकृज्जीवयाज यजते सोपमा दिव ।। (१ ३१ १५)
सहस्रसामाग्निवेशि गृणीष शत्रिमग्न' उपमा केतुमय ।
तस्मा आप सयत पीपयन्त तस्मिन् क्षत्रममवत्त्वेषमस्तु ।। (५ ३४ ९)

२ किसी पौराणिक परम्परा का अनसरण करते हुए राजशेखर ने काव्य मीमासा मे लिखा है कि औपम्य का प्रथम वणन औपकायन ने किया था।

३ उदाहरणाथ निरुक्त के प्रथम अध्याय म यह प्रश्न उठाया गया है कि क्या उपसर्गों का अपना भी कोई अथ है। शाकटायन के अनुसार जिस प्रकार पद से अलग होकर वर्णों की कोई अभिधा शक्ति नहीं है उसी प्रकार नाम और आख्यात स वियक्त उपसर्गों म भी कोई अथ नहा रहता। गाग्य का मत भिन्न है कि उपसग वर्णों के समान अनथक नहीं है उपसग नाम और आख्यात के अथ में परिवतन ला देते हैं यह अथविक्रिया उपसर्गों की अथवत्ता के कारण ही है नामाख्यात का अथ सामान्य है उपसग-योग से वह विशष बन जाता है। यास्क गाग्य के साथ सहमत हैं।

४ तुलना कीजिए— साधर्म्यमुपमा भदे' (काव्य प्रकाश)

प्रख्यात के साथ सादृश्य। कुत्रचित (वेद मे)[1] *उत्कृष्ट का अनुत्कृष्ट के साथ सादश्य भी* दिखाया जा सकता है। उदाहरणाय—

तनूत्यजेव तस्करा वनगू रशनाभिदशभिरभ्यधीताम् ।
इय ते अग्ने न यसी मनीषा युक्ष्वा रथ न शुचयदभिरङ ग ॥ १०, ४, ६ ।

इस म त्र म ऋषि ने अग्नि का म थन करनेवाली बाहुओ (उत्कृष्ट) की तुलना तस्करो (अनुत्कृष्ट) से की है। इसी प्रकार—

कुह स्विददोषा कुह वस्तोरश्विना कुहाभिपित्व करत कुहोषतु ।
को वा शयुत्रा विधवेव देवर मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ ॥

इस म त्र म ऋषि ने अश्विनो (उत्कृष्ट) की तुलना देवर (अनुत्कृष्ट) से तथा यजमान (उत्कृष्ट) की तुलना विधवा (अनुत्कृष्ट) से की है। वेद के इन म त्रो मे *सादृश्य का आधार* क्रिया[2] है वस्तु अथवा गुण नही, प्रथम म त्र मे अभ्यधीताम तथा द्वितीय मे कृणुते क्रियाओ के अप्रस्तुत कर्ता अनुत्कृष्ट (पर तु प्रख्यात) तथा प्रस्तुत कर्ता उत्कृष्ट (पर तु अप्रख्यात) हैं, म त्रद्रष्टा अप्रख्यात की तुलना क्रिया साम्य के आधार पर प्रख्यात के साथ कर रहे हैं। गार्ग्याचाय ने उपमा के लक्षण म इतना ही आवश्यक माना है कि सादृश्य अप्रख्यात (अतद) का प्रख्यात (तद) के साथ होना चाहिए। यास्काचाय की व्याख्या 'अनुत्कृष्ट का उत्कृष्ट के साथ उपमा के लक्षण मे विशेष परिवतन नही करती प्रत्युत उपमा की सामा य प्रवत्ति की *द्योतक मात्र है क्योकि वे तत्काल ही उसका अपवाद भी प्रस्तुत कर देते हैं।*

निरुक्त के प्रथम अध्याय मे उन चार निपातो का वणन है जिनका 'उपमार्थे' प्रयोग होता है। वे हैं—इव, न, चिद् नु। 'इव का उपमार्थे प्रयोग लोक तथा वेद दोनो मे होता है। न का भाषा मे प्रतिषेधार्थीय प्रयोग होता है, पर तु वेद म प्रतिषेधार्थीय के साथ-साथ उपमार्थे

---

१ ज्यायसा उत्कृष्टन गुणन यो यस्मिन् द्र ये उत्कृष्टो गुणस्तन कनीयासम अनत्कृष्टगणम् उपमिमीते। तदयथा सिहो माणवक। सिहे शौयमुत्कृष्ट माणवकमतेनोपमिमीत सिह इव माणवको विक्रान्त इति। प्रख्याततमेन वा अप्रख्यातम उपमिमीते, प्रख्यातश्च द्रमा अप्रख्यातो माणवकस्त तेनोपमिमीते च द्र इव कान्तो माणवक इति। अथापि क्वचित कनीयसा गणन ज्यायासम् अपि सन्तमुपमिमीते। तन्ते छ दस्येव द्रष्टव्यम। (दुर्गाचायकृत—ऋ वर्थाख्या वृत्ति)।

२ तुलना कीजिए सेवत लषन सिया रघुबीरहि।
ज्यों अविवेकी पुरुष सरीरहि॥
कामिहि नारि पियारि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दास।
तिमि रघुवश निरन्तर, प्रिय लागहि मोहि राम॥ (तुलसी)

(सादृश्य का आधार 'सेवत तथा प्रिय लागहि क्रियाए हैं)।

३ तेषामेते चत्वार उपमार्थे भवन्ति। इवेति भाषायां चान्वध्याय च अग्निरिवेन्द्र इवति। नेति प्रतिषधार्थीयो भाषाया उभयमन्वध्याय च नेन्द्र देवममसत इति प्रतिषधार्थीय पुरस्तादुपाचारस्तस्य यत्प्रतिषधति 'दुमदामो न सुरायाम्' इत्युपमार्थीय उपरिष्टादुपाचारस्तस्य यनोपमिमाते। चिदित्यषोनेककर्मा आचाय श्चिदिद ब्रूयादिति पूजायाम् दधिचिदित्युपमार्थे दधिरूप अोन इति।
नु इत्येषोनेककर्मा 'इद नु करिष्यतीति हेत्वपदेश अथाप्युपमार्थे 'वृक्षस्य न ते पुरुहूत वया ।

भी। प्रतिषेधार्थीय 'न' का प्रयोग उसस पूव होता है जिसका यह प्रतिषेध करता है, यथा 'नेन्द्र देवममसत'। उपमार्थीय 'न का प्रयोग उसके पीछे होता है जिससे उपमा दी जा रही है, 'दुमदासो न सुरायाम्' इसका उदाहरण है। 'चिद' निपात अनेकार्थीय है, इसका उपमार्थ प्रयोग भी होता है यथा 'दधिचिद ओदनम । यहा 'दधिचिद्' का अथ 'दधि के समान' है। इसी प्रकार 'नु' निपात भी अनेकार्थीय है, इसका उपमार्थ प्रयोग निम्नलिखित मन्त्र मे द्रष्टव्य है—

अक्षो न चक्रयो शूर बृहन्प्रते मह्ना रिरिचे रोदस्यो ।
वक्षस्य नु ते पुरुहूत वया व्यूऽतयो रुरुहुरिन्द्र पूर्वी ॥

इन चार निपातो के अतिरिक्त आठ उपमावाचक शब्द और हैं। निघण्टु के ततीय अध्याय म[1] इन बारहो की सूची दी गई है। चार का विवेचन तो निरुक्त के प्रथम अध्याय मे हुआ है। शेष आठ का वणन यास्काचाय ने उपमा क भेदो के साथ निरुक्त के ततीय अध्याय म किया है।

उपमा क पाच भेद हैं—कर्मोपमा, भूतोपमा, रूपोपमा, सिद्धोपमा तथा लुप्तोपमा। कर्मोपमा के वाचक छह हैं—चार वे निपात जिनका विवचन ऊपर हो चुका है तथा दो अन्य निपात— यथा', 'आ'। निघण्टु म इनका क्रम है—इव यथा न, चिद नु, आ। ततीय अध्याय म सभी निपातो के साथ कर्मोपमा के उदाहरण नही दिये गये केवल कतिपय का उल्लेख है—

यथा वातो यथा वन यथा समुद्र एजति ।
भ्राज तो अग्नयो यथा ॥
आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगभो यथा।
अग्निन ये भ्राजसा रुक्मवक्षस ॥
चतुरश्चिद ददमानाद विभीयादा निधातो ।
जार आ भगम ॥

'कर्मोपमा' नाम की व्याख्या यास्काचाय ने नही की। पर तु दुर्गाचाय ने एक अन्य प्रसग[2] मे बतलाया है कि निरुक्त म 'कम' शब्द अथ' का द्योतक है। इस प्रसग म भी यदि उक्त स्पष्टीकरण को स्वीकार करलें तो कर्मोपमा उपमा का वह भेद माना जायगा जो वाचक शब्दो के प्रयोग द्वारा उपमा के अथ का भी द्योतक करता चले—कर्मोपमा उन वाचको स बनती है जिनम उपमा का अथ भी सन्निहित रहता है अन्य भदो मे या तो वाचक रहते नही अथव यदि रहत है तो उनम उपमा का अथ विद्यमान नही रहता।

'भूत' शब्द के प्रयोग से भूतोपमा' बनती है इसम उपमेय स्वय उपमान बन जाता है। उदाहरण है—

---

1 १ न्नमिव। २ इन्द यथा। ३ अग्निन ये। ४ चतुरश्चिन्द ददमानात। ब्राह्मणा व्रतचारिण। ६ वक्षस्य न ते पुरुहूत वया। ७ जार आ भगम। ८ मेषो भूतोऽभियन्नय। ९ तद्रूप। १० तदवण। ११ तदवत। १२ तथयपमा॥

२ कमशब्दो हि प्रायेणाथपर्यायवचन एतस्मिञ्छास्त्रे। (प्रथम अध्याय म अथ निपाता उच्चावचेष्वर्थेषु निपतन्त्युपमार्थेपि कर्मोपसंग्रहार्थेपि पदपूरणा पर वृत्ति)।

इत्था धीवन्तमद्रिव काण्व मेध्यातिथिम।
मेषो भूतोऽभिय नय ॥

'रूपोपमा के वाचक रूप', 'वण' तथा या हैं। निघण्टु म केवल 'रूप तथा 'वण के उदाहरण दिये गय हैं परन्तु निरुक्त मे 'था' का उदाहरण भी है—

हिरण्यरूप स हिरण्यसदृगपा नपात्सेदु हिरण्यवण ।
त प्रत्नथा पूवथाविश्वथेमथा ।

'सिद्धोपमा का वाचक वत' है यथा ब्राह्मणवत 'वपलवत । वत्तिकार[1] का मत है कि यह उपमा लोक म स्वयसिद्ध है इसलिए इसका नाम सिद्धोपमा रखा गया है। छा दस उदाहरण है— प्रियमेधवदत्रिवज्जातवेदो विरूपवत'।

लुप्तोपमा' का दूसरा नाम 'अर्थोपमा'[2] है इसको उत्तरकालीन[3] आचार्यों का 'रूपक' अलकार समझना चाहिए। यदि लुप्तोपमा अर्थोपमा है तो शष उपमाए शब्दोपमा कही जा सकती हैं। शब्दोपमा के दो वग बनेंगे—वे जिनके वाचको म सादृश्याथ रहता है अर्थात कर्मोपमा, तथा वे जिनके वाचको म सादश्याथ आरोपित किया जाता है अर्थात भूतोपमा, रूपोपमा तथा सिद्धोपमा। अर्थोपमा म इव आदि वाचक शब्दों का अनुच्चारण' रहता है। यास्क न इस के दो रूप बतलाय हैं—'सिंहो व्याघ्र इति पूजायाम' श्वा काक इति कुत्सायाम । इन रूपो म भरत के प्रशसोपमा तथा निन्दोपमा के बीज निहित थ।

उपमा की व्याख्या पाणिनि म भी पायी जाती है। उपमा अलकार के चार अग—उपमान, उपमेय साधारण धम तथा वाचक शब्द पाणिनि के समय स्पष्ट हो चुके थ। पाणिनिसूत्रा म इसका स्पष्ट सकेत है—

उपमानानि सामा यवचनै । २ १ ५५ ॥
उपमित व्याघ्रादिभि सामान्याप्रयोग । २ १ ५६ ॥
तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्या ततीयान्यतरस्याम । २ ३ ७२ ॥

पाणिनिसूत्रा म उपमा (पूर्णोपमा) क श्रौती आर्थी भेदा के बीज पाय जाते हैं। श्रौती उपमा यथा, इव वा शब्दा क प्रयोग म है और आर्थी तुल्य समान आदि उपमावाचक शब्दा के प्रयोग म। परन्तु वति प्रत्यय म श्रौती तथा आर्थी दोना प्रकार की उपमा हो सकती है पाणिनिसूत्र तत्र तस्यव (१ ५ ११६) क अनुसार वति प्रत्यय म श्रौती उपमा है, तथा तेन तुल्य क्रिया चेद्वति (५ १ ११५) के अनुसार वति प्रत्यय म आर्थी उपमा।

---

१ वृत्ति एषा सिद्धोपमा सिद्ध वपोरमा लोके।
२ अथ लुप्तोपमान्यर्थोपमानीत्याचक्षते।
३ दण्डी ने रूपक का लक्षण किया है— उपमव तिरोभूतभेदा रूपकमुच्यते ।
४ यास्क की सिद्धोपमा (लुप्तोपमा का रूप) भामह स आग लुप्तोपमा का एक रूप वजितावित्ता बन्द रही यास्क न उसको लुप्तोपमा नहीं माना था।

उपमा (पूर्णोपमा) के इन दोनो भेदो के तीन-तीन उपभेद हैं जिनका आधार पाणिनि का व्याकरण है। य उपभेद हैं—वाक्यगत, समासगत, तथा तद्धितगत।

इसी प्रकार लुप्तोपमा के पाच भेद पाणिनिसूत्रो की सहायता के बिना, समझे ही नही जा सकत। 'उपमानादाचारे (३ १ १०) सूत्र से 'क्यच प्रत्यय होन पर दो प्रकार की लुप्तोपमा होती है—एक, आधारअथ मे क्यच प्रत्यय, द्वितीय कमअथ म क्यच प्रत्यय। कर्तु क्यङ सलोपश्च' (३ १ ११) सूत्र से क्यङ प्रत्यय म लुप्तोपमा का तीसरा प्रकार है। 'उपमाने कमणि' (३ ४ ४५) सूत्र से ण्वुल प्रत्यय कम तथा कर्ता उपपद रहते हुए होता है और लुप्तोपमा के चतुथ तथा पचम प्रकार सिद्ध होते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भरत से पूव अलकार का अध्ययन व्याकरण का विषय था और लाक एव वेद की व्याख्या म कम मे कम उपमा अलकार की व्याख्या पर व्याख्याताओ का ध्यान रहता था। निरुक्त एव व्याकरण वेदागो से अलकारशास्त्र का स्पष्ट उदगम लक्षित होता है और उत्तर आचार्यो न भी अपने अध्ययन का इन शास्त्रो के आधार पर विस्तार किया है।

भरत

भरत न नाटयशास्त्र के सोलहवें अध्याय म चार अलकारो का वणन किया है उनम प्रथम अलकार उपमा है। काव्य व धो म सादृश्य के द्वारा जो तुलना की जाती है वह गुणाकृतिसमाश्रया[1] उपमा है। इस लक्षण मे 'गुणाकृतिसमाश्रया पद व्याख्यापेक्षी है। विवतिकार अभिनवगुप्त के अनुसार जिन इव आदि शब्दो द्वारा गुण (सादृश्य) द्योतित हो वे गुणाकृति है।[2] य शब्द उपमा के आश्रय हैं क्योकि इनसे गुण सादृश्य का ज्ञान होता है। इस व्याख्या के अनुसार उपमा म इव आदि शब्दो की विद्यमानता अनिवाय है परन्तु सत्य यह नही है। भरत न किचित्सदशी उपमा का जो उदाहरण[3] दिया है उसम इव आदि वाचक शब्द विद्यमान नही है। गुणाकृतिसमाश्रया का एक अथ यह भी हो सकता है कि उपमा म सादश्य का आश्रय 'गुण तथा 'आकृति' ह। 'मतगजा विराजन्ते जगमा इव पवता इस उदाहरण म मतगजा और पवता म आकृति सादश्य के साथ साथ जगमत्व रूपी गुण सादृश्य भी है। 'गुणाकृति पद का विग्रह तीनो प्रकार स हो सकता है— गुण तथा आकृति, 'गुण अथवा आकृति गुण गर्भित आकृति'।

उपमा म चार रूप हो सकत है—एक की एक के साथ, एक की अनेक के साथ, अनेक की

---

१ यत्किञ्चित् काव्यबन्धेषु सादृश्येनोपमीयत।
उपमा नाम सा ज्ञेया गुणाकृतिसमाश्रया ॥४४॥
(अन्यथा सकेत के अभाव में इस प्रसग म समस्त उद्धरण निणयसागर प्रस की प्रति के अनसार हैं।)

२ गुण सम्बन्ध आश्रियन द्योत्यन अननेति गुणाकृति इवादि शब्द आश्रीयमाणो यस्यामिति गुणाकृति समाश्रया। (षोडशाध्याय प ३२२)

३ सपणचन्द्रवदना नीलोत्पलदलेक्षणा।
मत्तमातगगमना सम्प्राप्तेय सखी मम ॥

एक के साथ, अनेक की अनेक के साथ। तुल्य त शशिना वदनम् एक (मुख) की एक (शशि) के साथ उपमा का उदाहरण है— श्येन-बर्हिणभासाना तुल्यार्थ म एक (अर्थ) की उपमा अनेक (भासानां) के साथ है, ' 'शशाङ्कवक्त्रप्रकान्ते ज्योतींषि तथा 'घना इव गजा क्रमश अनेक की एक के साथ तथा 'अनेक की अनेक के साथ के उदाहरण हैं।

उपमान की दृष्टि म रखकर उपमा के पाँच भेद हैं—प्रशंसा निन्दा, कल्पिता, सदृशी तथा किंचित्सदृशी। इनके उदाहरण ही प्रस्तुत किय गये हैं लक्षण नहीं। अन्त म भरत कहते हैं कि विद्वानों को संक्षेप मे उपमा के इतने ही भेद जानने चाहिए, जिन भेदों का यहाँ विवेचन नहीं है उनको काव्य और लोक से स्वयमेव ग्रहण कर लेना चाहिए।

जिस उपमा म उपमान प्रशस्य हो उस प्रशंसोपमा कहते हैं। यथा—

दृष्ट्वा तु तां विशालाक्षीं तुतोष मनुजाधिप।
मुनिभि साधिता कृच्छ्रात् सिद्धि मूर्तिमतीमिव॥ ५१॥

यहाँ विशालाक्षी की तुलना 'सिद्धि' (प्रशस्य) के साथ की गई है। यह एक से एक की उपमा का उदाहरण हुआ। यास्क के शब्दों म इसको अनुत्कृष्ट को उत्कृष्ट के साथ कर्मोपमा' कह सकते हैं। निन्दोपमा' इसके ठीक विपरीत है उसे 'उत्कृष्ट की अनुत्कृष्ट के साथ कर्मोपमा कहा जायगा। उदाहरण म प्रेमपात्र की तुलना दावाग्नि से दग्ध द्रुम (अनुत्कृष्ट) के साथ की गई है—

सा त भवगुणहीन सस्वजे कर्कशच्छविम।
वने कण्ठगत वल्ली शाव दग्धमिव द्रुमम्॥ ५२॥

कल्पितगुणयुक्त उपमान से तुलना कल्पितोपमा है—

मत्तगजा विराजन्ते जङ्गमा इव पर्वता॥ ५३॥

पर्वत जड होते हैं परन्तु कवि ने उनमे जंगमत्व गुण की कल्पना कर ली है। यह 'अनेक के साथ अनेक की उपमा है। इस भेद की दृष्टि से प्रशंसोपमा तथा निन्दोपमा के उदाहरण अकल्पितोपमा के उदाहरण हैं।

सदृशी उपमा को कुछ आचार्य 'असदृशी' मानते हैं। निर्णयसागर की प्रति मे सदृश न तथैव पाठ है और गायकवाड सीरीज की प्रति म सदृश तत्तवैव'। दोनों पाठों का आशय एक ही है। जो कर्म आज तुमने किया है वह तुम्हारे ही अनुरूप है' (उसके सदृश दूसरा कोई नहीं कर सकता)। इस उदाहरण म उपमेय का उपमान से पूर्ण सादृश्य है उपमेय ही उपमान है।

१ निर्णयसागर प्रेस की प्रति में ४६वें श्लोक का उत्तरार्ध तथा ४६वें श्लोक का पूर्वार्द्ध अतिरिक्त पाठ है जो गायकवाड सीरीज की प्रति म नहीं मिलता। दोनों ही प्रतियों में उपर्युक्त चार रूपों के उदाहरणों म क्रम भंग है प्रथम तथा चतुर्थ तो यथा स्थान हैं द्वितीय-तृतीय मे स्थान विपर्यय हो गया है।

२ उपमाया बधरैते भेदा ज्ञेया समासत।
ये शेषा लक्षण नोक्तास्ते ग्राह्या काव्यलोकत॥५६।

३ उपमानस्य प्राशस्त्यात प्रशंसोपमा। एवं सर्वत्र। (विवृति)

४ असदृशीत्यन्ये पठन्ति। (विवृति पृ० ३२३)

५ यत्रोपमेयस्यैवोपमानता सेयं सदृशी। (—वही पृ० ३२४)

यह चमत्कार 'अन वय तथा उपमेयोपमा दाना के सौ दय स भि न है।

किंचित्सदशी उपमा का उदाहरण है—

सपूणच द्रवदना नीलोत्पलदलेक्षणा।
मत्तमातगगमना सप्राप्तेय सखी मम ॥ ५५ ॥

सखी के भि न भि न अगो का सादश्य यहा विभि न उपमानो से वर्णित है। किसी उपमान क साथ पूण सादश्य न होने स अनेक उपमानो के साथ किंचित किंचित[1] सादश्य है । 'मत्तमातगगमना कहन स सखी की गति के साथ ही (किंचित) मातग की गति का सादश्य है, उसके शरीर, स्व भाव आदि के साथ नही। ,

नाटयशास्त्र म उपमावाचक शब्दो पर विचार नही किया गया, और न उपमा के भेद निश्चय करने म वाचको का कोई महत्त्व है। प्रथम तीन भेदा के उदाहरणो म 'इव' वाचक का प्रयोग है अ तिम दो क उदाहरणा म वाचक का अभाव है।

भामह

'काव्यालकार के द्वितीय परिच्छेद म भामह ने सवप्रथम अनुप्रास का वणन करके तदन तर भरत द्वारा वर्णित अलकारो का विपरीत क्रम स विवेचन किया है उपमा उस पचालकार वग म अ तिम (श्लोक सख्या ३० से ३८ तक) है। उपमा का लक्षण है—

विरुद्धेनोपमानेन देशकाल क्रियादिभि ।
उपमेयस्य यत्साम्य गुणलेशेन सोपमा ॥३०॥

इस लक्षण म 'विरुद्धेन', 'देश काल क्रियादिभि ', साम्यम' तथा 'गुणलशेन पद व्याख्यापेक्षी हैं। गाग्य 'तद' के साथ अतद क सादश्य को उपमा मानते थे उनका 'तद' प्रख्यात था और 'अतद्' अप्रख्यात। तद' और 'अतद परस्पर 'विरुद्ध' हैं। इसीलिए भामह के मत म उपमान उपमेय के विरुद्ध होना चाहिए। विरुद्ध का अथ भि न' है विरोधी या विपरीत नही। उपमेय और उपमान अलग अलग हा और अलग अलग जाति क हा। तुम्हारा मुख उसके मुख क समान सुदर है—इस वाक्य म अविरुद्धत्व क कारण कोई चमत्कार ही नहीं रहा। कुछ विद्वान्[2] विरुद्धत्व को 'देश-काल क्रियादिभि ' द्वारा परिसीमित करक 'विरुद्ध' का अथ 'भि न' मानते हैं और उपमा के लक्षण मे 'विरुद्ध' शब्द का प्रयाग 'अन वय' का व्यवच्छेदक सिद्ध करते हैं। यदि इसे स्वीकार कर लें ता उपमेय और उपमान भिन तो होगे, पर तु भि न जाति के होना आवश्यक नहीं।

'साम्य' तो 'सादृश्य' का पर्याय है। आगे चलकर विश्वनाथ ने उपमा के लक्षण म सादृश्य

---

१ किंचित्सदृशमित्ययमुपमान भवति। (विवृति पृ० २२४)

२ विरुद्ध सिम्प्ली मीन्स डिफरेंट नोट कोण्ट्रेरी। उपमा एराइजज व्हेअर सिमीलारिटी इज एक्सप्रस्ड बिटवीन टू डिफरेंट थी जक्ग्स। बट ह्वेअर वा ए पोइन्टिंग स्ट्रोक ए थिंग इज कम्पयड ट इटसल्फ ट रजस्ट इग्स मचलसनस इ थिन अमाउण्ट टू अनन्वय। (काव्यालकार बालमनोरमा सीरीज पृ० ७६ ८०)

के स्थान पर साम्य का प्रयोग[1] किया है। भामह ने सादृश्य का पर्याय 'गुणलेशन साम्यम' को माना है क्योंकि अगले श्लोक में, जहाँ गुणलेश नहीं है, साम्य के स्थान पर सादृश्य का प्रयोग है— यथवशब्दौ सादृश्यमाहतुर्व्यतिरेकिणा'। उपमेय और उपमान में भिन्नता तो अनेक प्रकार की होगी परन्तु साम्य गुणलेश का ही होगा। यही गुणलेश का साम्य उपमा का आधार है। भरत ने इसी साम्य को गुणाकृतिसमाश्रय बतलाया था। उपमेय उपमान में देश, काल, क्रिया आदि का विरोध (=अन्तर) होगा किन्तु किंचित (गुणलेश) का साम्य भी होगा जिसे उपमा का आधार माना जा सकता है। भामह का 'गुण' ('गुणलेश' में) भरत के गुणाकृति के समानान्तर समझना चाहिए।

उपमा के वाचक यथा तथा 'इव' हैं। 'यथवशब्दौ सादृश्यमाहतुर्व्यतिरेकिणो' श्लोकार्द्ध में द्विवचन का व्यवहार यह सूचित करता है कि वाचक केवल दो ही हैं। भरत ने वाचक पर विचार नहीं किया। यास्क ने कर्मोपमा के छह वाचक बतलाये हैं, जिनमें से न चिद नु तथा आ का भाषा में व्यवहार न रहा, केवल 'इव', यथा शेष रह गये। भामह ने केवल उन्हीं दो[2] को वाचक स्वीकार किया है। दण्डी ने इन दो के अतिरिक्त अन्य अनेक वाचकों का भी वर्णन किया है।

यथा तथा इव वाचकों के अभाव में भी उपमा सम्भव है (भामह ने लुप्तोपमा' संज्ञा[3] का व्यवहार नहीं किया)। इस वाचक लुप्तोपमा के दो भेद हैं—समासाभिहिता तथा वतिना भिहिता[4]। *वाचक के अभाव में समास द्वारा उपमेय और उपमान के सादृश्य की व्यंजना हो सकती है यथा कमलपत्राक्षी शशाङ्कवदना।* यदि ये दोनों उदाहरण एक ही प्रसंग के होते तो भरत की किंचित्सदृशी उपमा बन जाती भामह ने भरत द्वारा प्रयुक्त शब्दों के पर्याय[6] मात्र रख दिये हैं।

उपमेय और उपमान में क्रियासाम्य के लिए जो वत प्रत्यय होता है वह 'वतिनाभिहिता लुप्तोपमा का उदाहरण है। पाणिनि के दो सूत्रों से वत प्रत्यय होता है— तेन तुल्य क्रिया चेद वतिः तथा तत्र तस्येव। प्रथम सूत्र तुल्य क्रिया का विधान करता है, दूसरे में तुल्यता नहीं इसलिए उपमा का भी प्रश्न नहीं आता। उदाहरण है— द्विजातिवत अधीते 'गुरुवत अनुशास्ति। उपमा के इस भेद को यास्क ने सिद्धोपमा नाम दिया था, उनका ब्राह्मणवत ही यहाँ द्विजातिवत बन गया है।

---

१ साम्य वाच्यमवैधर्म्य वाक्यैक्य उपमा द्वयोः। (दशम परिच्छेद)।

२ निघण्टु में प्रथम इव है पश्चात यथा। भामह ने यथा को पूर्व रखा है इव को पश्चात। यद्यपि उदाहरण निघण्टु के क्रम से ही दिये हैं।

३ परा शब्द के प्रयोग से लुप्ता भेद की व्यंजना तो होती ही है।

४ क्रिया यथवशब्दाभ्या समासाभिहिता परा।३२।

५ वतिनापि क्रियासाम्य तद्वदेवाभिधीयते।३३।

६ सम्पूर्णचन्द्रवदना नीलोत्पलदलेक्षणा —भरत
शशाङ्कवदना कमलपत्राक्षी। —भामह

भामह न 'प्रतिवस्तूपमा को वाचक लुप्तापमा का एक रूप माना है। इसम 'यथा', 'इव विना भी समान वस्तु यास से 'गुण साम्य प्रतीति होती है—

समान वस्तु यासेन प्रतिवस्तूपमोच्यते ।
यथवानभिधानेऽपि गुण साम्य प्रतीतित ॥३४॥

इस लक्षण म वस्तु' का अथ विषय (भाव अथवा विचार) है, एक भाव या विचार का य भाव या विचार से 'गुण साम्य इस अलकार का प्राण है। 'यास का सवत है कि स्तु-कथन अलग अलग वाक्यो म हागा। गुण साम्य व्यग्य है, उसकी 'प्रतीति' होती है ाक्षात कथन नही। प्रतिवस्तूपमा क दो वाक्या म जिन दो धर्मों का कथन होता है उनम विकल्पना द्वारा साम्य स्थापित किया जाता है— साम्यमापादयति विरोधेऽपि तयो'।[1]

भामह न समकालीन आचार्यों द्वारा स्वीकृत उपमा के कुछ भेदा का खण्डन कर दिया है। े भेद हैं—नि दापमा, प्रशसोपमा, आचिख्यासोपमा तथा मालोपमा। प्रशसोपमा तथा नि दा मा व बीज निरुक्त म 'अनुत्कृष्ट की उत्कृष्ट के साथ तथा 'उत्कृष्ट की अनुत्कृष्ट के साथ ाम स विद्यमान थ, भरत ने इन भेदा का विवेचन किया। आगे चलकर दण्डी ने भी इनको स्वीकार किया है। 'आचिख्यासोपमा तथा 'मालोपमा का दण्डी ने प्रथम बार वणन किया है। भामह का तक है कि उपमा क 'सामा य गुण निर्देश'[2] स सभी भेदा का विवेचन स्वत हा गया, उनके उपमाना क आधार पर अलग भेद करन स व्यथ का विस्तार ही होगा। भामह का यह क उदभट म उपमा का व्याकरण के अनुसार भेद विस्तार करने का आधार बन गया है।

अग्निपुराणकार[3]

अग्निपुराण म आठ अर्थालकारा का विवेचन है—स्वरूप सादृश्य, उत्प्रेक्षा अतिशय, विभा वना विरोध हेतु तथा सम। सादृश्य अलकार क चार प्रकार हैं—उपमा, रूपक, सहोक्ति तथा अर्थान्तरन्यास। उपमा का लक्षण है—

उपमा नाम सा यस्यामुपमानोपमेययो ।
सत्ता चान्तरसामा ययोगित्वऽपि विवक्षितम् ॥८॥६॥
किंचिदादाय सारूप्य लोकयात्रा प्रवतते ॥८॥७॥

---

१ साध-साधारणत्वाद्गुणोऽत्र व्यतिरिच्यत ।
स साम्यमापादयति विरोधऽपि तयोयथा ॥३५॥

२ सामान्य-गुण निर्देशात् त्रयमप्युदित ननु ।
मालोपमादि सर्वोऽपि न न्याय्यान विस्तरो मधा ॥३८॥

३ 'अग्निपुराण का काल विवादास्पद है इसलिए प्रस्तुत अध्ययन म उसकी चचा पाद टिप्पणी म की गई है। उपमा का विवेचन इसका अपवाद है। उपमा विवेचन म अग्निपुराण एव काव्यादर्श का विशष साम्य है इसलिए इस प्रसग म इन दो ग्र थों का अध्ययन आगे-पीछे रखकर करना उचित प्रतीत होता है।

उपमान और उपमेय में अन्तर होते हुए भी सादृश्य का वर्णन उपमा का चमत्कार है। किंचित्सादृश्य के आधार पर ही लोक में इस सौन्दर्य का उपयोग होता है।

इस लक्षण में उपमा का आधार स्पष्ट हो जाता है—दो भिन्न वस्तुओं में किंचित समानता। आचार्यों ने इसी आधार 'तत्तत्समदर्शम' का आगे विस्तार किया है।

उपमा के दो भेद हैं—समासोपमा तथा असमासोपमा।[1] अभिधान के विग्रह से जहाँ उपमा का बोध स्पष्ट हो वहाँ समासोपमा अन्यथा असमासा है। इनके तीन-तीन उपभेद हो सकते हैं—वाचक उपमेय तथा वाचकोपमेय उभयपदों के आधार पर। उपमा के पुनः अठारह भेद हैं —

(क) धर्मोपमा—यत्र साधारणो धर्म कथ्यते।
(ख) वस्तूपमा—गम्यतेऽपि वा।
(ग) परस्परोपमा[2]—तुल्यमवाप्यमीयत यत्रान्योन्यन धर्मिणो।
(घ) विपरीतोपमा[3]—प्रसिद्ध अन्यथा तयो।
(ङ) नियमोपमा—व्यावर्त्ते नियमोपमा।
(च) अनियमोपमा—अन्यत्राप्यनुवर्त्तस्तु।
(छ) समुच्चयोपमा—अतोऽन्यधर्मबाहुल्य कीर्तनात्।
(ज) व्यतिरेकोपमा—यदुच्यतेऽतिरिक्तत्वम।
(झ) बहूपमा—यत्रोपमा स्याद बहुभि सदृश।
(ञ) मालोपमा—धर्मा प्रत्युपमान चेद।
(ट) विक्रियोपमा—उपमान विकारेण तुलना।
(ठ) अद्भुतोपमा—त्रलोक्यासभवि किमप्यरोप्य प्रतियोगिनि।
(ड) मोहोपमा—प्रतियोगिनमरोप्य तदभेदेन कीर्तनम।
(ढ) सशयोपमा—उभयोर्धर्मिणोस्तथ्यानिश्चयात।
(ण) निश्चयोपमा[4]—उपमेयस्य सशय्य निश्चयात।
(त) वाक्यार्थोपमा—वाक्यार्थेनव वाक्यार्थोपमा स्यादुपमानत।
(थ) असाधारणी[5]—आत्मोपमानादुपमाऽसाधारण्यतिशायिनी।
(द) अन्योपमा[6]—उपमेय यदन्यस्य तदन्यस्योपमा मता।
(ध) गगनोपमा—यद्युत्तरोत्तर याति।[8]

---

१ समासेनासमासेन सा द्विधा प्रतियोगिन।
विग्रहाद्भिधानस्य ससमासाऽन्ययोत्तरा॥
२ दण्डी की अन्योन्योपमा है।
३ दण्डी की विपर्यासोपमा है।
४ दण्डी की निर्णयोपमा के समीप है।
५ दण्डी का निर्णयोपमा है।
६ दण्डी की अतिशयोपमा है।
७ दण्डी का प्रतिवस्तूपमा से निकटता है।
८ उत्तरोत्तर क्रम से उपमा का सौन्दर्य।

गणना से ये उन्नीस भेद हैं परन्तु अग्निपुराण में अष्टादश[1] संख्या का उल्लेख है कदाचित प्रथम दो को एकत्र रखते हुए। उपमा के ये अष्टादश भेद किसी-न किसी रूप में 'काव्यादर्श' में भी पाये जाते हैं। क्रम से क्रम बारह भेदों के नाम भी 'अग्निपुराण तथा काव्यादर्श' में एक ही हैं शेष में किञ्चित परिवर्तन है।

इन भेदों के अनन्तर उपमान की दृष्टि से रखकर किये गये भरत के पाँच भेदों को अग्निपुराण में यथावत्[2] गिना दिया गया है उनकी व्याख्या तक नहीं की गई। यदि यह श्लोक प्रक्षिप्त नहीं है तो भरत के अग्निपुराणकार पर ऋण की सूचना देता है।

अग्निपुराण में उपमा भेदों के लक्षण बहुत स्पष्ट नहीं हैं, दण्डी में उन नामों को पाकर ही हम उनका क्षेत्र समझ पाते हैं। उदाहरण देने की तो प्रथा यहाँ पायी ही नहीं जाती।

दण्डी

'काव्यादर्श' के द्वितीय परिच्छेद में दण्डी ने बड़े विस्तार से उपमा तथा उसके 'प्रपंच'[3] का वर्णन किया है। उपमा का लक्षण अत्यन्त व्यापक एवं उदार है—'यथाकथञ्चित् सादृश्य यत्रोद्भूत प्रतीयते।

इस लक्षण में 'यथाकथञ्चित्' तथा 'प्रतीयते' दो शब्दों के कारण उपमा में सादृश्य मात्र समा गया और वैज्ञानिकता का लोप हो गया। भामह कृत लक्षण वैज्ञानिक है और उन्होंने उपमा के अनेक भेदों की आवश्यकता भी नहीं समझी। दण्डी का यथाकथंचित भरत के यत्किंचित[4] तथा अग्नि-पुराण के 'किंचिदादाय'[5] के मेल में है। इसका अभिप्राय यह है कि 'सादृश्य' कवि कल्पित ही होता है तथा सादृश्य का आधार उपमेय उपमान का गुण क्रिया[6] आदि कोई भी धर्म हो सकता है। 'प्रतीयते' का अभिप्राय है कि वाच्यत्व[6] के अतिरिक्त भी उपमा के साधन हो सकते हैं। दण्डी का 'उद्भूतम'[7] अन्य आचार्यों के चेतोहारि (उद्भट) 'चमत्कारि (वाग्भट), 'हृद्य' (हेमचन्द्र तथा अप्पय दीक्षित) 'सुन्दर (जगन्नाथ) आदि[8] का ही अर्थापन्न है। इस प्रकार दण्डी के अनुसार किसी भी धर्म के आधार पर जहाँ उपमेय और उपमान में रमणीय सादृश्य[8] की, कवि कल्पना कर लेता है वहाँ उपमा का सौन्दर्य समझना चाहिए।

---

१ विशिष्यमाणा उपमा भवन्त्यष्टादश स्फुटा ॥

२ *प्रशसा चैव निन्दा च कल्पिता सदृशी तथा।*
किंचिच्चासदृशी ज्ञेया उपमा पञ्चधा पुन ॥२१॥

३ उपमा नाम सा तस्या प्रपञ्चोऽय प्रदर्श्यते॥१४॥

४ यत्किंचित काव्यबन्धेषु सादृश्येनोपमीयते।

५ किंचिदादाय सारूप्य लोकयात्रा प्रवर्तते। ६ प्रभाख्या व्याख्या पृ० ११६।

६ विश्वनाथ ने वाच्यत्व तथा साम्य को सीमित किया है—साम्य वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयो।

७ रत्नश्री टीका में 'उद्भूतम' की व्याख्या इस प्रकार की है— उद्भूत व्यक्त भेदस्य परिस्फुटत्वाद उपमानोपमेयया। (पृ० ७२)

८ दण्डिनस्तु सादृश्यस्य प्रतीयमानता मात्राभिप्रायेणोपमा-व्यवहार। (विश्वेश्वर)

उपमा के भेदों में भी दण्डी अत्यन्त उदार हैं। उनके बताये हुए अनेक भेद आगे चलकर स्वतन्त्र अलंकार बन गये। विभाग में कोई तर्क दृष्टिगत नहीं होता, उसे अर्थानुरोधेन विभाग ही समझना चाहिए। आगे चलकर उद्भट ने व्याकरण प्रयोगानुरोधेन उपमा के भेद किये जिनको वैज्ञानिक देखकर सभी आचार्यों ने स्वीकार कर लिया।

धर्मोपमा में साधारण धर्म का साक्षात् प्रदर्शन[1] (अथवा निदर्शन)[2] रहता है अर्थात् साधारण धर्म शब्दोपात्त[3] है। इसके विपरीत वस्तूपमा में तुल्यधर्म प्रतीयमान[4] है साक्षात् नहीं। डा० एस० के० दे के अनुसार धर्मोपमा में उपमान उपमेय गत धर्म के लिए ही व्यवहृत होता है परन्तु वस्तूपमा में उपमान और उपमेय की पूर्णतः[5] तुलना की जाती है। 'अग्निपुराण' के अनुसार धर्मोपमा में धर्म की प्रधानता है और वस्तूपमा में वस्तु की धर्मोपमा में साधारण धर्म कथ्य है और वस्तूपमा में साधारण धर्म गम्य[6]। वस्तूपमा अप्पय दीक्षित आदि का धर्म-लुप्तोपमा है। वस्तूपमा के लिए यह आवश्यक है कि तुल्यधर्म प्रसिद्ध हो, अन्यथा साक्षात्प्रदर्शन के अभाव में उसकी प्रतीति न हो सकेगी। धर्मोपमा तथा वस्तूपमा के उदाहरण हैं—

अम्भोरुहमिवाताम्रं मुग्धे करतलं तव। (धर्मोपमा)
राजीवमिव ते वक्त्रं, नेत्रे नीलोत्पले इव। (वस्तूपमा)

उपमान और उपमेय का प्रसिद्धि विपर्यास[7] विपर्यासोपमा है। यह नव्याचार्यों का प्रतीप अलंकार है। विपर्यासोपमा में प्रसिद्धोपमान का अपमान[8] प्रतीत होता है, साक्षात् नहीं परन्तु निन्दोपमा तथा प्रतिषेधोपमा में यह अपमान प्रत्यक्ष है। 'अन्योन्योत्कर्षशंसिनी उपमा का नाम अन्योन्योपमा है। इसको नव्याचार्यों ने उपमेयोपमा तथा भोज ने उभयोपमा नाम से स्वतन्त्र अलंकार माना है। उपमेयोपमा को भामह ने भी एक स्वतन्त्र अलंकार माना था।

'नियमोपमा में उपमेय का साम्य उपमान तक ही नियमित करके अन्य के साथ साम्य की व्यावृत्ति[9] हो जाती है, तृतीय सदृश व्यवच्छेद इसमें विवक्षित है। 'अलंकारशेखर' में इसी

१ इति धर्मोपमा साक्षात् तुल्य धर्म प्रदर्शनात् ॥१५॥

२ काव्यलक्षण में तुल्य धर्म निदर्शनात् पाठ है।

३ रत्नश्री टीका पृ० ७२।

४ इति प्रतीयमानैकधर्मा वस्तूपमैव सा ॥१६॥

५ इन दि फर्स्ट दि उपमान इज सम्मन्ड अप मियरली टु ब्रिंग आउट दि नेचर आफ दि उपमेयगत धर्म इन दि सेकण्ड दि उपमान एज ए होल इज कम्पेयर्ड विद दि उपमेय एज ए होल दि टू बीइंग रिगार्डेड एज एण्टायरली एलाइक। (काव्यादर्श नोट्स पृ० ८३)

६ यत्र साधारणो धर्मः कथ्यते गम्यतेऽपि वा।
ते धर्म वस्तु प्राधान्यात् धर्म वस्तूपमे उभे॥

७ सा प्रसिद्धि विपर्यासाद् विपर्यासोपमेष्यते ॥१७॥

८ दि डिप्रेशन आफ दि प्रसिद्धोपमान इज ओनली इम्प्लाइड इन विपर्यासोपमा बट इज एक्सप्लिसिटली ब्रोट आउट इन दि अदर टू वैरायटीज। (नोट्स पृ० ८४)

९ इत्यन्यसाम्यव्यावृत्तेरियं सा नियमोपमा ॥१६॥

व्यावृत्ति का आग्रह किया गया है— यत्र इतर व्यावृत्त्या साम्यलाभ'। 'अनियमोपमा' में यह व्यावृत्ति अविवक्षित है। उदाहरण है— पद्मं तावत् तवा वेति मुखम अन्यच्च तादृशमस्ति चेदस्तु'। उपमान के विषय में नियम न होने के कारण यह अनियमोपमा कहलाती है।

'समुच्चयोपमा' में उपमान और उपमेय के साधारण धर्मों का समुच्चय होता है। चमत्कार के लिए तुल्य धर्म भिन्न भिन्न क्षेत्रों से आने चाहिए। उदाहरण में गुण क्रिया का समुच्चय है, मुख और चन्द्र में कान्ति गुण भी तुल्य धर्म है और ह्लादन क्रिया भी। अग्निपुराणकार ने तो स्पष्टतः विलक्षण'[1] का आग्रह किया है। बहूपमा' में उपमान अनेक होते हैं, 'समुच्चयोपमा' में तुल्यधर्म अनेक होते हैं।

उपमान और उपमेय में गुण क्रिया आदि का भेद रहते हुए भी[2] किंचिद भेद को दिखलाकर शेष भेद का निषेध 'अतिशयोपमा' है। 'इव' आदि साधर्म्य वाचक शब्द के अभाव में यहां साम्य व्यंग्य ही है। व्यतिरेक में उपमेय का उपमान पर आधिक्य[3] वर्णित रहता है, 'अतिशयोपमा' में इस प्रकार की व्यंजना नहीं होती। दण्डी ने व्यतिरेक को इसीलिए स्वतन्त्र अलंकार माना है। अतिशयोपमा का उदाहरण है—'त्वन्मुख त्वय्येव दृष्टं दिवि चन्द्रमा, इयत्येव भिदा, नान्या'।

'उत्प्रेक्षितोपमा' में भी साम्य व्यंग्य होता है, साथ ही किसी अन्य उक्ति की संभावना भी रहती[4] है। उदाहरण है— अस्या मुखश्री मय्येव इति इन्दो! विकत्थनरलम, यतः सा पद्मेऽपि अस्त्येव। उत्प्रेक्षा में उपमेय और उपमान का साम्य होता है, उत्प्रेक्षितोपमा में संभावना का इस साम्य से कोई सम्बन्ध नहीं। इस अलंकार में उत्प्रेक्षण का विषय मुख और चन्द्र का साम्य नहीं, प्रत्युत चन्द्र की गर्वोक्ति है, और इस गर्वोक्ति द्वारा साम्य की व्यंजना होती है। इसलिए यहां उपमा ही उत्प्रेक्षित है।

'अद्भुतोपमा' को नव्याचार्य अतिशयोक्ति कहते हैं। 'अलंकारशेखर' में इसको अभूतोपमा कहा गया है, परन्तु 'काव्यादर्श' में 'अभूतोपमा' एक अन्य भेद का नाम है। अग्निपुराण[5] में इसका लक्षण है कि उपमेय की तुलना उपमान के साथ कल्पित असंभव दशाओं में ही हो सकती है—यह कथन 'अद्भुतोपमा' है। यह भेद दण्डी के अभूतोपमा तथा 'असंभावितोपमा

---

१ बहूपमस्य साम्येऽपि वैलक्षण्यं विवक्षितम्॥

२ उपमानोपमेययो गुण क्रियादिभिः महत्यपि भेदे किंचिद भेद प्रदर्शन पुरस्सरं नान्यो भेद इति अभिन्नाध्यवसानेन उपमेयस्य गुण क्रियातिशयो वर्णितो भवति। (प्रभाख्या व्याख्या)

३ नापि व्यतिरेकः। उपमानाद् उपमेय गुणाधिक्यस्य अनुद्भवात। (प्रभाख्या व्याख्या)

४ अत्र चन्द्रमसा आत्मश्लाघाया अतात्त्विकत्वेन नायकस्य चाटूक्त्या संभावनयोत्प्रेक्षितत्वेन इयं उत्प्रेक्षितोपमा। (प्रभाख्या व्याख्या)। इत्युत्प्रेक्षया असतोऽपि तयाविकत्थनस्याध्यासेन वदनमिन्दुनोपमीयत इति।
(रत्नश्री टीका प ७४)

५ त्रलोक्यासंभवि किमप्यारोप्य प्रतियोगिनि।
कवितोपमीयते या प्रथते सादभुतोपमा॥

भेद से भिन्न है। अभूतोपमा' मे अभूत उपमान का कथन होता है अदभुतोपमा म उपमान विद्यमान तथा प्रसिद्ध है पर तु उसके विशेषण असभव होते हैं। 'असभावितोपमा म प्रस्तुत धर्मी के उन गुणा का कथन होता है जो उसम असभव हैं अदभुतोपमा' म प्रस्तुतधर्मी म किसी अन्य धर्मी के असभव धम का अधिरोपण होता है। अद्भुतोपमा' का भरत की कल्पितोपमा से साम्य है परन्तु कल्पितोपमा अप्रस्तुत म साम्यातिरेक के कारण प्रस्तुत के धम की कल्पना कर लेती है और यहा साम्य का अतिरेक नहीं इसलिए धम का अधिरोपण मात्र होता है। दण्डी ने अदभुतोपमा का जो उदाहरण[1] दिया है वही यत्किंचित परिवतन के साथ विश्वनाथ की 'असम्बन्धे सम्बन्ध ' अतिशयोक्ति का उदाहरण[2] है।

मोहोपमा सशयोपमा तथा निणयोपमा' न याचार्यों के भ्रान्तिमान, 'स देह तथा निश्चय अलकार हैं। सशयोपमा बीच की स्थिति है इसम दो विरुद्ध अर्थों का अवमश विद्यमान रहता है। तदनन्तर दशक ने यदि उपमान को उपमेय समझ लिया तो 'मोहोपमा' का चमत्कार हो गया, पर तु यदि उपमान को उपमान ही ग्रहण किया तो निणयोपमा' का सौ दय बना। इसीलिए भ्रान्त निणय से उत्पन्न 'मोहोपमा' तथा साधु निणय से उत्पन्न निणयोपमा परस्पर म विरोधी हैं। निणयोपमा का साम्य तत्त्वाख्यानोपमा से है, परन्तु निणयोपमा म सशय पूवक साधु निणय होता है और तत्त्वाख्यानोपमा म भ्रान्ति पूवक[3]। *अग्निपुराण मे 'निणयोपमा' का नाम 'निश्चयोपमा' है।*

श्लेषोपमा म अथश्लेष के द्वारा तुल्य धम का द्योतन होता है। समानोपमा मे समान शब्द अर्थात शब्दश्लेष द्वारा उपमान उपमेय के भिन्न[5] धर्मों का कथन होता है। अलकार शखर म दोनों को श्लेषोपमा के दो भेद माना गया है।

निन्दोपमा 'प्रशसोपमा तथा 'आचिख्यासोपमा का भामह ने खण्डन किया था। 'नाटय शास्त्र म निन्दोपमा तथा 'प्रशसोपमा भेदो का वणन मिलता है। सामान्यत उपमान म उपमेय से गुणाधिक्य होता है परन्तु विपर्यासोपमा' इसके ठीक विपरीत उपमेय म गुणाधिक्य का वणन करती है। प्रतिषेधोपमा म सादृश्य के प्रतिषेध द्वारा उपमेय म गुणाधिक्य दिखाया जाता है। निन्दोपमा' म उपमान का गुणाधिक्य तो रहता है उसके कुछ दोष[6] भी अंकित हो जाते हैं। यह निन्दोपमा भरत की 'निन्दोपमा' से भिन्न है, उसम उपमान मात्रस्य विपय प्रदानम' है निन्दा नही। प्रशसोपमा म उपमान के गुणाधिक्य का वणन करते हुए उपमेय

---

१ यदि पद्म किञ्चित विभ्रान्त-लोचन भवेत् तर्हि तै मुखश्रियं धत्ताम् ॥

२ यदि स्यान्मण्डले सक्तमिन्दोरिन्दीवरद्वयम् ।
तत्तोपमीयत तस्या वक्त्र चारु-लोचनम ॥

३ निणयोपमायां सशयपूवक तत्त्वाख्यानम। यत्र त भ्रान्तिपूवकमित्यनयोर्भेद । (प्रभाख्या व्याख्या)

४ श्लेषेण उपमा उपमानोपमेयगत-साधर्म्यं द्योत्यते यत्र सा श्लेषोपमेति निर्दिष्टा । श्लेषश्चात्र अथश्लेष । (प्रभा)

५ यत्र भिन्नयोरपि उपमानोपमेयधर्मयो समान-शब्द-वाच्यत्वात साधारण्यम् । (प्रभाख्या व्याख्या)

६ उदाहरण है— पद्म बहुरज चन्द्र क्षयी ताभ्या तवानन समानमपि सोत्सेकम् ॥

का गुणाधिक्य व्यग्य बन जाता है। यह भेद भी भरत के भेद से विशेष है। 'आचिख्यासोपमा' का वणन दण्डी तथा वामन ने किया है और खण्डन भामह ने। यहाँ 'आचिख्या' अथवा 'विवक्षा उपमेय के चारुत्व का पोषण करती है । उदाहरण है— मे मन चन्द्रेण त्वन्मुख तुल्यमिति आचिख्यासु वतते, स गुणो वा दोषो वा अस्तु'। यहा आचिख्या का उद्रेक है।

विरोधोपमा' विरोध की उदभावना[1] स साम्य का वणन करती है, यहा विरोध साम्य-पयवसायी[2] है । उदाहरण है— शतपत्र, शरच्चन्द्र और तुम्हारा मुख—ये तीनो परस्पर विरोधी हैं।' कमल और च द्र तो परस्पर विरोधी है ही उन दोना ही का मुख से विरोध इस गुण का व्यजक है कि मुख दोना ही से अपूव है। 'प्रतिषेधोपमा म सादश्य के प्रतिषेध द्वारा उपमेय के गुणोत्कष[3] का वणन होता है। नि दोपमा' मे प्रतिषेध नही होता। उदाहरण है— 'कलकिन जडस्य चन्द्रो ते मुखेन सह न जातु प्रतिस्पर्धितु शक्तिरस्तीति । यह भेद अर्वाचीना के व्यतिरेक से निकट है । पर तु व्यतिरेक' मे कुछ धर्मों के[4] आधार पर उपमान तथा उपमय का साम्य दिखाया जाता है, साथ ही कुछ ऐसा धम भी वर्णित रहता है जिसके कारण उपमेय इस धम से वचित उपमान से अधिक व्यजित हो।

विशेष साधन सम्पत्ति की विद्यमानता म भी उपमान उपमेय से सुन्दर नही है—इस प्रकार की विशेषोक्तिमूला साम्य यजक उक्ति को चटूपमा' कहत हैं। इसम उपमय के लिए प्रियोक्ति होती है। प्रेमचन्द्र शर्मा का मत है कि चटूपमा को विशेषोक्तिमूला होना चाहिए अ यथा उपमा मे सवत्र ही चटूक्ति मिलती है अत समस्त उपमा चटूपमा कहलावेंगी। 'तत्त्वाख्यानो पमा' म, परिस्फुट सादश्य के आधार पर जो भ्रम आ गया है उसका निराकरण करके तत्त्व का आख्यान किया जाता है। 'निणयोपमा' म सशयच्छेद के द्वारा निश्चय होता है, यहा विपर्यास निरास[6] द्वारा (भ्रा ति निवारण पूवक)।

असाधारणोपमा म उपमान की तुल्यता का अतिक्रमण करक उपमेय की असाधारणता के कारण स्वय स ही तुल्यता स्थापित की जाती है। औपम्य के असाधारणत्व[8] क कारण यह

---

१ विरोधोद्भावनेन साम्यवणनाद् विरोधोपमा। (रत्नश्री टीका पृ० ७८)

२ यस्य विरोधस्य साम्यपयवसायित्वादिय विरोधोपमा। (प्रभाख्या व्याख्या पृ १३४)

३ सादश्यप्रतिषधन उपमेय गणस्योत्कर्षो वर्णितो भवतीति प्रतिषधोपमा। (प्रभाख्या व्याख्या)

४ इन व्यतिरेक सम क्वालिटी और क्वालिटीज आर स्टटड ह्वियर इन दि उपमान एण्ड दि उपमेय आर डिक्लेयड टु बी ईक्वल टु वन एनअदर बट एट दि सेम टाइम एनअदर डिस्टिक्ट क्वालिटी पजस्ड बाइ दि उपमेय एड दिनाइट टु दि उपमान इज एडयस्ड हिच सवस टु एस्टब्लिश दि सुपीरियरिटी आफ दि उपमेय ओवर दि उपमान कम्बीन्ड एज ए होल। (नोटस पृ ६३)

५ विशेषोक्तिमूला एवेय चटूपमा। अयथा सवत्रोपमाया चटूक्तिसम्भवात सवत्रयमव स्यात इति प्रेमचन्द्रशर्माण। (व्याख्या)

६ उभयत्रापि तरङ्ग निश्चयाविशषात यद्यपि तत्त्व निश्चयस्तुल्य तथापि सशय छेदेन निश्चय, इह तु विपर्यास निरासेनेति महान भद। (रत्नश्री टीका पृ ७६)

७ आत्मनवाभवत् तु यमित्यसाधारणोपमा ॥३७॥

८ तेन च औपम्यस्य असाधारणत्व निष्पन्नम। अत इयम् असाधारणोपमा। (प्रभाख्या व्याख्या)

असाधारण उपमा कहलाती है। जगन्नाथ के 'असम' अलंकार में उपमान निषेध' तो होता है परन्तु 'सादृश्य' (औपम्य) का अभाव भी रहता है यहाँ तुलना आवश्यक है।

अभूतोपमा—उपमेय के वर्णन के लिए सम्भावना से कल्पित उपमान का वर्णन अभूतपूर्व ही अभूतोपमा है। उत्प्रेक्षा प्रस्तुत में अप्रस्तुत की सम्भावना करती है यथा मुख में चन्द्र की परन्तु अभूतोपमा प्रस्तुत में अप्रस्तुत धर्म की सम्भावना करती है इसका उदाहरण है—सर्वपद्मप्रभासार समाहृत इव क्वचित् त्वदाननं विभाति (तेरा मुख ऐसा सुशोभित होता है जैसे सब पद्मों की प्रभा का सार विधाता ने एक स्थान पर एकत्र कर दिया हो)।

तुम्हारे कानों तक मधुर मुख से निकली वाणी ऐसी निकली है जैसे चन्द्र से विष अथवा चन्दन से पावक यह असम्भावितोपमा का उदाहरण है। अद्भुतोपमा, अभूतोपमा तथा असम्भावितोपमा में किंचित् अन्तर है। अद्भुतोपमा विशेषतः एवं प्रसिद्ध उपमानों में (अन्यत्र से लेकर) असम्भव विशेषणों का समावेश कर देता है परन्तु अभूतोपमा अविद्यमान अप्रस्तुत का वर्णन करती है। असम्भावितोपमा अन्य अप्रस्तुत से लाकर विशेषणों का समावेश नहीं करती (जैसा अद्भुता में है) प्रत्युत उन विशेषणों की कल्पना करती है जो अप्रस्तुत में असम्भव हैं।

बहूपमा एक उपमेय के लिए गुणाश्रय और उपमानों के साम्य से उत्कर्ष का विधान करती है। इसका बीज भरत के लक्ष्य बहुभि में निहित था। दण्डी ने इसको विकसित करके दो भेद लक्षित किये—बहूपमा तथा मालोपमा। बहूपमा में अनेक उपमानों की योजना इसलिए की जाती है कि उनका संयुक्त गुण प्रभाव उपमेय के गुण को व्यक्त कर सकेगा मालोपमा के उपमानों में से प्रत्येक समर्थ है उनकी माला केवल प्रतिभा प्रदर्शन मात्र के लिए है। मालोपमा में पूर्ववाक्यस्थ पद का उत्तर से सम्बन्ध भी रहता है (बहूपमा में नहीं)। नव्याचार्यों ने दोनों अलंकारों को मालोपमा नाम ही दिया है।

दण्डी ने बहूपमा तथा मालोपमा के बीच में विक्रियोपमा का वर्णन किया है। उपमान के विकार से तुलना के कारण यह तो विक्रियोपमा है। यथा 'चन्द्रबिम्बादिवोत्कीर्णं तवाननम्।

वाक्यार्थोपमा—जहाँ एक वाक्यार्थ से अन्य वाक्यार्थ की उपमा दी जाय वहाँ वाक्यार्थो

---

१ सर्वथोपमा निषेधोपमाख्योऽलंकारः।
२ प्रस्तुते अप्रस्तुतस्य धर्मिणः यत्र सम्भावना तत्रोत्प्रेक्षा। अत्र तु प्रस्तुते अप्रस्तुतधर्मस्य सम्भावना
३ स्वयं विद्यमानस्य धर्मिणः यत्रान्यधर्मिणा समेतनकल्पनया साम्यवचिह्नवर्णनम्।
४ नोट्स पृ ८८
५ वही पृ ९५ ९६
६ बहूपमायां केवलमुपमाबाहुल्यम्। अस्यां तु पूर्ववाक्यस्थपदस्य उत्तरत्र सम्बन्धः एवमुपमाबाहुल्यम्।
७ उपमानविकारेण तुलना विक्रियोपमा। (अग्निपुराण)
८ यत्रोपमेयमानविकारतयोच्यते सा विक्रियोपमा। (अलंकारशेखर)

पमा है। वाक्यार्थोपमा, वाक्योपमा नहीं है। यहा वाक्याथ से अभिप्राय पूण उक्ति चित्र है, जिसकी तुलना उसी प्रकार के दूसरे चित्र स की जाती है। 'चचल नत्र वाल एव द त रश्मि से आलोकित तुम्हारे आनन की भ्रमद्भृङ्ग एव आलक्ष्यकेसर पकज जैसी शोभा है'—इस उदाहरण म सावयव आनन का सावयव कमल स साम्य उपमानोपमेयात्मक वाक्यद्वय[1] द्वारा वर्णित है। इस भेद के दो रूप हो सकत हैं—जहा 'इव' शब्द एक बार आवे, जहा 'इव' शब्द अनेक बार आवे। यदि वाक्य म स्थित प्रत्यक पदाथ क साथ साम्यावबोध[2] की इच्छा न हुई तो प्रधान उपमान के साथ एक 'इव' शब्द का प्रयोग होगा, अन्यथा प्रत्यक उपमान क साथ 'इव' शब्द आवगा। साम्यबोध, एक दशा म अगी वाक्य का तो शाब्द होगा, शेष का उन्नयनो द्भव, दूसरी दशा म सवत्र ही शाब्द होगा।

एक वस्तु का प्रथम प्रतिपादन करके उसके समान अप्रस्तुत का प्रस्तुत वस्तु समथन के लिए प्रतिपादन करते हुए साम्य प्रतीति प्रतिवस्तूपमा अलकार है। यह प्रतिपादन वाक्यान्तर[3] द्वारा होता है और इसम सादृश्यावबोध इवादि के प्रयोग स नहीं व्यजना से होता है। उपमा वाचक शब्द के नित्य अभाव क कारण भामह, रुद्रट आदि न प्रतिवस्तूपमा को उपमालकार नहीं माना परन्तु दण्डी का उपमालकार बहुत व्यापक है उसम सभी साम्य समाविष्ट हो जाते हैं। दण्डी क इस प्रतिवस्तूपमा म दृष्टान्त अलकार का भी अन्तर्भाव है क्योंकि वस्तु प्रतिवस्तु भाव तथा बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव का अन्तर यहा स्वीकार नहीं किया गया। जगन्नाथ का भी यही विचार था कि 'एकस्यैवालकारस्य द्वौ भेदौ प्रतिवस्तूपमा दृष्टा तश्च'।

दण्डी ने तुल्ययोगोपमा' को उपमा का एक भद माना है और तुल्ययोगिता को एक स्वतन्त्र अलकार। एक क्रिया क द्वारा न्यूनगुण वस्तु को यदि गुणाधिक वस्तु क साथ मिला दिया जाय तो उस चमत्कार को तुल्ययोगोपमा कहते हैं। इस प्रकार एकजातीय क्रियायोग से हीनाधिक प्रस्तुताप्रस्तुत म साम्यकीतन तुल्ययोगोपमा है[4]। दण्डी की तुल्ययोगोपमा तथा तुल्ययोगिता म मुख्य भेद दो बातो म माना जा सकता है। एक तुल्ययोगिता मे उपमानोपमेयभाव की अपेक्षा नहीं है इसलिए साम्य न वाच्य है और न व्यग्य यथाकथचित् प्रतीत होता है, तुल्य योगोपमा म उपमानोपमेयभाव की विवक्षा है इसलिए साम्य वाच्य है। दो तुल्ययोगिता की प्रवृत्ति स्तुतिनिन्दा की है परन्तु तुल्ययोगोपमा की प्रवृत्ति समत्वापादन की है। अर्वाचीन आचार्यों क अनुसार तुल्ययोगिता म प्रकृतो और अप्रकृतो का एक धम सम्बन्ध होना चाहिए।

---

१ अत्र सावयवस्य आननस्य सावयवेन पद्मेन साम्यम् उपमानोपमेयात्मकवाक्यद्वयेन वर्णित।

२ यदा वाक्यस्थिति प्रतिपदाथ-साम्यावबोधनेच्छा तदा प्रत्यपमान पुरत इवशब्दप्रयोगस्य आवश्यकत्वात अनेकेवशब्दप्रयोग। (प्रभाख्या व्याख्या)

३ न्यमनात प्रस्तुतवस्तुसमथनाय वाक्यान्तरेण प्रतिपादनात। साम्यप्रतीति इवादिशब्दप्रयोगाभावेपि व्यंजनया सादृश्यावबोध

४ एकजातीयक्रियया प्रस्तुताप्रस्तुतयो हीनाधिकयो साम्यकीर्तन तुल्ययोगोपमा इति फलितम।

उपमा का अंतिम भेद हेतूपमा है। साम्य का हेतु रूप में प्रस्तुत करने के कारण इसको हेतूपमा कहते हैं। दण्डी ने इसका लक्षण नहीं दिया। उदाहरण है—'हे राजन् तुम कांति से चन्द्र का, तेज से सूर्य का, धैर्य से समुद्र का अनुकरण करते हो।' व्याख्याकार के अनुसार कांति आदि हेतु हैं इसलिए यह हेतूपमा का सौन्दर्य है।

उद्भट

उद्भट ने 'काव्यालंकार-सार-संग्रह' के प्रथम वर्ग में आठ अलंकारों का विवेचन किया है, चार शब्दालंकार और फिर चार अर्थालंकार। अर्थालंकारों का नाम-परिगणन क्रम है रूपक, उपमा, दीपक तथा प्रतिवस्तूपमा, परन्तु विवेचन का क्रम रूपक, दीपक, उपमा तथा प्रतिवस्तूपमा है। उपमा विवेचन सात श्लोकों में है और भामह के अनुकरण पर उपमा के भेद व्याकरण के अनुसार प्रतिपादित किये गये हैं। उद्भट के अनुसार उपमा का लक्षण है—

यच्चेतोहारि साधर्म्यमुपमानोपमेययोः।

मिथो विभिन्नकालादिशब्दयोरुपमा तु तत् ॥१।१५॥

इस लक्षण में दो गुणों पर बल है—साधर्म्य तथा विभिन्न। 'साधर्म्य', 'सादृश्य' तथा 'साम्य' समानार्थी हैं, कदाचित इसी हेतु से काव्यशास्त्रियों ने इनका प्रयोग स्वेच्छा से ही किया है। भामह ने एक स्थान पर (काव्यालंकार २ ३०) उपमा के लक्षण में 'साम्य' शब्द का प्रयोग किया था, दूसरे स्थान पर (काव्यालंकार २ ३१) 'सादृश्य' का। ऐसा प्रतीत होता है कि भामह के मत में सादृश्यम् तथा गुणलेशेन साम्यम् समानार्थी हैं, उद्भट ने भामह के सादृश्य के अर्थ में साधर्म्य शब्द का प्रयोग किया है।

भामह ने उपमा लक्षण में 'देश काल क्रियादिविरुद्धत्व'[1] का समावेश किया था, उद्भट ने इस विशेषता का लगभग उसी शब्दावली में आग्रह किया है। इन्दुराज ने लघुवृत्ति में इस विशेषता को और भी स्पष्ट कर दिया है 'कालादयोऽत्र शब्द प्रवृत्तिनिमित्तभूता विवक्षिता। मिथः परस्पर विभिन्ना कालादयः[2] प्रवृत्तिनिमित्तभूता ययोः शब्दयोस्तथाविधौ शब्दौ वाचकौ ययोः उपमानोपमेययोः इति बहुव्रीहिगर्भो बहुव्रीहिः। 'गौरिवाय गौः' इत्यभिधानं तु न प्रवृत्तिनिमित्तभेदः, गोत्वस्यैवकस्य प्रवृत्तिनिमित्तत्वात्। तेनैवविधे उपमानोपमेयभावो न भवति।

चेतोहारि पद की उपमा के लक्षण में आवश्यकता नहीं[3] थी, यह विशेषता तो अलंकार का सामान्य लक्षण है।

उपमा के दो भेद हैं—पूर्णा तथा लुप्ता। पूर्णोपमा तीन प्रकार की होती है—वाक्य में, समास में, तथा तद्धित में। वाक्यावसेया—श्रौती तथा आर्थी दो प्रकार की है। श्रौती पूर्णोपमा

---

1 विरुद्धेनोपमानेन देश काल क्रियादिभि।
उपमेयस्य यत्साम्य गुणलेशेन सोपमा ॥ (काव्यालंकार २ ३०)

2 काल दिक् जाति गुण क्रिया सम्बन्ध। एवमन्यदप्युत्प्रेक्ष्यम्। (इन्दुराज)

3 अतश्चेतोहारीत्यनुवाद प्राप्तार्थत्वात्। (इन्दुराज)

वाक्यावसेया के आधार यथा,[१] इव[२] आदि अव्यय शब्द हैं, इसको अन्ययोपदर्शिता कहना चाहिए। भामह ने भी 'यथा तथा 'इव' वाचकों का उल्लेख किया था।

वाक्यावसेया पूर्णोपमा का दूसरा भेद 'आर्थी' है, इसमें 'सदृश' आदि पदों का सयोग[३] रहता है।

समासावगम्या केवल आर्थी होती है, परन्तु तद्धितावसेया के श्रौती तथा आर्थी दोनों भेद हैं। इस प्रकार पूर्णोपमा के पाच भेद हुए—वाक्यावसेया के दो (श्रौती तथा आर्थी), समासावसेया का एक (आर्थी) तद्धितावसेया के दो (श्रौती तथा आर्थी)।

लुप्तोपमा सक्षेप में[४] साधर्म्य का वर्णन करती है, इन्दुराज ने इसी हेतु इसको 'सक्षेपोपमा' कह दिया है। वाक्य, समास सुब्धातु कृत तथा तद्धित के आधार पर इसके पाच भेद है। प्रथम भेद (वाक्यावसेया) तथा अन्तिम भेद (तद्धितावसेया) का एक एक रूप है, क्योंकि इन भेदों म केवल एक का ही लोप हो सकता है।

द्वितीय भेद (समासावगम्या लुप्ता) के तीन उपभेद एकलोपा (धर्मलुप्ता तथा वाचकलुप्ता) द्वितयलोपा तथा त्रितयलोपा हैं। चतुर्थ भेद (कृदवसेया) के दो उपभेद कर्मोपमानिका तथा कर्तुपमानिका माने गये है।

तृतीय भेद के आधार तीन[५] प्रत्यय क्यच (कर्मोपमानिका तथा अधिकरणोपमानिका उपभेदों का आधार) क्यङ तथा क्विप है। इस प्रकार उद्भट ने लुप्तोपमा के बारह भेदों का विवेचन किया है। इन्दुराज के अनुसार 'काव्यालकार सारसग्रह म पूर्णोपमा के पाच तथा लुप्तोपमा के बारह (योग=सत्रह) भेदों का विवेचन पाया जाता है।

उपमा का यह भेदोपभेद प्रसार एक निश्चित वैयाकरणिक व्याकरणिक आधार पर है आगे चलकर मम्मट आदि आचार्यों ने भी भामह म सकेतित तथा उद्भट म प्रसारित भेदोपभेद सरणि को ही स्वीकार कर लिया।

उद्भट के उपमा भेदों की व्याख्या में इन्दुराज तथा विवृतिकार मे मतभेद उत्पन्न कर दिया है। उद्भट क श्लोकों से इन्दुराज ने सत्रह भेद निकाले हैं और विवृतिकार ने इक्कीस। इस मतभेद पर हम आधुनिक व्याख्याकार श्री बनहट्टी से सहमत हैं कि उद्भट के समय तक भेदोपभेदों की सख्या न तो निश्चित हुई थी और न उद्भट का उद्देश्य ही उपमा भेदों की सख्या निश्चित[६] करना था। व्याख्याकारों ने प्रसार के फलस्वरूप जितने भेदों का दर्शन किया है, उन

---

१ यथवशब्दयोगन सा श्रत्या कथ्यन्ते ।।१।१६।।

२ यथेवशब्दौ वाचोपलक्षणम्। अव्ययान्तरादपि वा शब्दान्तरेण रूपेणोपमानोपमेयभावस्यावगत। (इन्दुराज पृ १६)

३ सदृशादिपदाश्लेषात् अर्थैत्यभिना द्विधा ।।१।१६।।

४ सक्षेपाभिहिताप्येषा ।१।१७।।

५ तथोपमानाच्चारे क्यच्प्रत्ययवर्जिते ।
क्वचित्सा कर्तुराचारे क्यङा सा च क्विपा क्वचित् ।।१।१६।।

६ ही डिड नौट ईविन स्टेंड टु स्टेट और इम्प्लाई एनी डेफिनिट नम्बर आफ डिविजन्स आफ उपमा। (पृ० ४८)

सबम आलकारिक चमत्कार हो, यह भी आवश्यक नही, अत इन भेदो म अलकार रूप म वे ही ग्राह्य होगे जिनम सौन्दर्यातिशयता की क्षमता[1] होगी।

वामन

'काव्यालकार सूत्र-वृत्ति' के चतुर्थ अधिकरण के द्वितीय अध्याय म वामन ने उपमा तथा उसके भेदो पर विचार किया है। अर्थालकारो म सवप्रधान[2] उपमा का लक्षण है—

उपमानेनोपमेयस्य गुणलेशत साम्यमुपमा।४।२।१॥

यह भामह कृत लक्षण की छाया मात्र है, 'साम्य गुणलेशेन' के स्थान पर 'गुणलेशत साम्यम' पदो का प्रयोग है। वृत्ति म 'उपमान' तथा 'उपमेय' पदो की व्याख्या म उत्कृष्टगुणेन'[3] तथा 'न्यूनगुणमपद यास्क के प्रभाव का सकेत देते हैं।

वामन ने उपमा का तीन प्रकार स वर्गीकरण किया है। एक प्रकार से उपमा के दो भेद हैं— लौकिकी तथा कल्पिता। अन्य प्रकार से उपमा के दो भेद 'पदार्थवृत्ति' तथा 'वाक्यार्थवृत्ति' हैं। तीसरे प्रकार से उपमा पूर्णा तथा लुप्ता' होती है। उपमा का प्रयोग स्तुति', 'निंदा तथा 'तत्त्वाख्यान'[4] म होता है।

उपमा को दृष्टि म रखकर भरत ने उपमा के जिन पाच भेदो का वर्णन किया था उनम से तीन 'प्रशसा' (स्तुति) 'निन्दा', तथा 'कल्पिता' वामन म यथावत आ गये हैं। इस तथ्य पर भी ध्यान जाना चाहिए कि वामन के सूत्रो म उपमा का 'कल्पिता'[5] भेद तो है लौकिकी नहीं—'लौकिकी'[6] भेद वृत्ति मे ही पाया गया है।

उपमा के अनेक भेदो म से दण्डी म 'तत्त्वाख्यान, निन्दा तथा 'प्रशसा' हैं वामन ने दण्डी का भी अनुकरण किया है। 'पदार्थवृत्ति' तथा 'वाक्यार्थवृत्ति' भेद भी 'काव्यादर्श' के अनुकरण पर हैं, 'वाक्यार्थोपमा' का दण्डी ने उल्लेख[7] किया है और अन्तर स्पष्ट करने के लिए 'पदार्थोपमा' का 'काव्यादर्श' के व्याख्याताओ ने।[8] 'पूर्णोपमा' तथा 'लुप्तोपमा' भेदो का वामन ने केवल उल्लेख किया है और लुप्ता' के अनेक उपभेदो के लिए वृत्ति मे 'उपमाप्रपञ्च'[9] की ओर सकेत कर दिया है। यह 'उपमाप्रपञ्च' भी दण्डी का प्रभाव है।

---

१ एषा चोपमा विचित्रभेदत्वे सत्यपि यत्रैव चेतोहारित्वमस्ति तत्रैवालकारता प्रतिपद्यते न सर्वत्रेत्युक्तम। (इन्दुराज पृ २६)

२ तन्मूल चोपमेति सव विचार्यते। (वृत्ति)

३ उपमीयते सादृश्यमानीयते येनोत्कृष्टगुणेनान्यत् तदुपमानम्। यदुपमीयते न्यूनगुण तदुपमेयम्। (वृत्ति पृ १८६)

४ स्तुति निन्दा तत्त्वाख्यानेषु।४।२।७॥

५ गुणबाहुल्यतश्च कल्पिता।४।२।२॥ ६ पूर्वा तु लौकिकी। (वृत्ति पृ० १८७)

७ वाक्यार्थेनैव वाक्यार्थ कोपि यद्युपमीयते।२।४३॥

८ दे वाक्यार्थोपमा पर प्रभाख्या व्याख्या पृ १६।

९ उपमानोपमेयलोपस्तु उपमाप्रपञ्चे द्रष्टव्य। (वृत्ति पृ १६३)।

रुद्रट

रुद्रट न अर्थालकारा के चार भेद (=वग) किये हैं, और समस्त अलकारा को उन्ही का 'विशेष'[1] माना है। ये चार—वास्तव औपम्य, अतिशय तथा श्लेष हैं। उपमा औपम्य वग का प्रथम अलकार है। उपमा का लक्षण है—

उभयो समानमेक गुणादिसिद्ध भवेद्यथैकत्र ।
अर्थेऽयत्र तथा तत्साध्यत इति सोपमा त्रेधा ।।८।४।।

उपमानोपमेय के प्रसग म साधारण धम यथा एकत्र (उपमान मे) सिद्ध हो तथैव अयत्र (उपमेय म) साध्य बनने पर उपमा है।

इस लक्षण म न कोई विकास है और न कोई सूक्ष्मता। भाषा भिन्न है, परन्तु बल पूव आचार्यों के सिद्धातो पर ही है। 'सिद्धि' तथा 'साध्य' एक नवीन अभिव्यक्ति मात्र है।

उपमा के तीन भेद (=रूप) हैं—वाक्योपमा, समासोपमा तथा प्रत्ययोपमा। वाक्योपमा के ६ उपभेद हैं। प्रथम उपभेद का लक्षण है—"यत्र उपमानम इवादीनामेकम, सामा यम (धर्माभिधायक पदम), उपमेयम् प्रयुज्यते।' उदाहरण स भी यह स्पष्ट है कि यह पूर्णोपमा है। द्वितीय उपभेद लुप्तोपमा (=धमलुप्ता) है 'यत्र इवादिप्रयोगसामर्थ्यात सुप्रसिद्ध सामान्य तद्वाचिपदाप्रयोगेऽपि गम्येत।"

शेष चार उपभेदों के नाम भी रुद्रट ने दिये हैं। उभयोपमा' अन्य आचार्यों का उपमेयोपमा है इसका चमत्कार है 'अनयोवस्तुनोवस्त्व तर सम नास्तीति।'अन वयोपमा अन्य आचार्यों का अन वय अलकार है इसका प्राण है 'एक वस्त्वनन्यसदृशमिति'।

कल्पितोपमा पचम तथा उत्पाद्योपमा' षष्ठ उपभेद है। रुद्रट का कल्पिता वामन की 'कल्पिता से भिन्न है। रुद्रट के अनुसार उपमेय के जितने जसे[2] विशेषण हो, उपमान क उतने वसे ही विशेषणो की योजना से कल्पिता वाक्योपमा है। 'उत्पाद्योपमा' एक प्रकार की अतिशयोक्ति है, उपमेय की उपमानहीनता क कारण यदि सभाव्य[3] विशेषणयुक्त उपमान की योजना हो तो उसे उत्पाद्या कहगे। उदाहरण अतिशयोक्ति का है—

कुमुद दल दीधितीना त्वक्सभूय च्यवेत यदि ताम्य ।
इदमुपमीयत तया सुतनोरस्या स्तनावरणम ।।८।१६।।

समासोपमा क रुद्रट न तीन रूप बतलाय हैं जो उपमा के अवयवो म समास योजना क तीन प्रकार मात्र हैं। उदाहरण अत्यन्त सरल तथा स्पष्ट है—

---

१ अथस्यालकारा वास्तवमौपम्यमतिशय श्लेष ।
एषामेव विशेषा अन्ये त भवन्ति नि शेषा ।।७।९।।

२ यथादृग्भूतस्य च विशेषणयुक्तमपमेयम तादृग्भिरेव तत्सख्यैश्चोपमानमपि युक्त यस्या सा कल्पितोपमाख्या। (नमिसाधु)

३ अनुपममेतद् वस्त्विव्यपमान तद्विशेषण चासत् ।
सभाव्य स यदप या क्रियते सोपमोत्पाद्या ।।८।१५।।

(क) सामान्य धम का उपमान पद के साथ समास — मुगमिन्दुसुन्दरम'।
(ख) सवसमासा — कुवलयदलदीघलाचना।
(ग) उपमान उपमेय का समास — कुवलयन्लसोचने'।

प्रत्ययोपमा म उपमान के साथ प्रत्यय जोड कर सौन्दय चित्रित किया जाता है—'पद्मायते मुख ते'।

उपमा के तीन भेदा का विवेचन करके रुद्रट ने अन्य प्रकार स उपमा के चार सामान्य भेदा का वणन किया है। मालोपमा तथा रसनोपमा एव समस्त विषया तथा एकदेशविषया। अनेक धमयुक्त उपमेय की अलग अलग गुणो के आधार पर अलग-अलग उपमानो से तुलना, मालोपमा है—

श्यामालतेव तन्वी चन्द्रकलेवातिनिमला सा मे।
हसीव कलालापा चैतन्य हरति निद्रेव ॥

रसनोपमा म पूव पूव पद उत्तर-उत्तर पद का उपमान होता जाता है —

'नभ इव विमल सलिल, सलिलमिवानन्दकारि शशिबिम्बम।'

अवयवी तथा अवयव समस्ता का जहाँ उपमानोपमेयभाव वर्णित हो, वहा समस्तविषया उपमा है, पर तु जहा केवल अवयवो का सादृश्य वर्णित हो अवयवी का नही, वहा एकदेश विषया उपमा है। ये चारा भेद उपयुक्त उपमारूपा म से किसी भी (वाक्य समास अथवा प्रत्यय) रूप म प्राप्त हो सकते हैं।

मम्मट

मम्मट का योगदान अलकारो की कल्पना म नही, प्रत्युत उनकी व्यवस्था मे है। उनके लक्षण वज्ञानिक उनके भेद बनानिक एव उनके उदाहरण समथ हैं। उपमा के विषय म भी यही सत्य है। उपमा काव्यप्रकाश' के दशम उल्लास म अर्थालकारो म प्रथम है। इसका लक्षण है—साधर्म्यमुपमा भेदे (१०।८७)।

उपमानोपमेय रूप दो भिन्न वस्तुओ म (भेद रहने पर) *साधर्म्य का वणन उपमा है। साधर्म्य' तथा 'भेदे पदा की व्याख्या की जा सकती है। वत्ति मे यह स्पष्ट कर दिया गया है कि साधर्म्य उपमानोपमेय का ही होता है काय कारण आदि का नही,* इसलिए साधर्म्य के कथन म उपमानोपमेय भाव स्वतएव आ गया। साधर्म्य, साम्य', 'सादश्य प्राय पर्यायवाची हैं और आचार्यों ने इनका समानान्तर प्रयोग किया है। फिर भी 'साधर्म्य मे समान धम का भी सकेत माना जा सकता है। भदे' की वत्ति म कहा गया है 'भेदग्रहणमनन्वयव्यवच्छेदाय', जो ठीक है क्योकि 'कमलमिव कमलम उपमा का उदाहरण नही बन सकता। भामह ने उपमा का लक्षण *अतत्तत्सदशम्* बतलाया था, मम्मट का भेदे *भामह का 'अतत्तत' है और भामह का सदशम' मम्मट मे साधर्म्य बन गया है।*

उपमा के दो भेद है— पूर्णा' तथा लुप्ता। पूर्णा के दो उपभेद 'श्रौती' तथा 'आर्थी' हैं। ये दोनो उपभेद भी वाक्यगत, 'समासगत तथा तद्धितगत हैं इस प्रकार पूर्णोपमा के छह भेद

मम्मट न माने हैं। वह विवेचन पूर्वाचार्यों क आधार पर ही है।

लुप्तोपमा के उन्नीस भेद भी पूर्वाचार्यों के अनुसार एव व्याकरण के आधार पर मम्मट न लिखे हैं। एकलुप्ता के तेरह प्रकार है—धमलुप्ता क पाच (तद्धितगा श्रौती धमलुप्ता नही होती), वाचकलुप्ता के छह तथा उपमानलुप्ता के दो (वाक्यगा एव समासगा)। द्विलुप्ता क पाच प्रकार हैं—धम वाचक लुप्ता (दो प्रकार क्विपगता एव समासगा, धर्मोपमानलुप्ता (दो प्रकार वाक्यगा एव समासगा), वाचकोपमेयलुप्ता (एक प्रकार—क्यच् प्रत्यय म)। त्रिलुप्ता केवल समास मे उपमान वाचक धम के लोप म मानी जाती है।

इन सब भेदो का वणन उदभट न कर दिया था, रुद्रट ने इनकी व्याख्या की एक अलग सरणि अपनायी, मम्मट की सहमति उदभट के साथ है और वे उपमा के भेदो का वैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत करते हैं। इन्दुराज के अनुसार उदभट ने उपमा के सत्रह भेदा का वणन किया है—पूर्णोपमा के पाँच तथा लुप्तोपमा के बारह। पूर्णोपमा का 'समासावसेया श्रौती' भेद उदभट म नही था। लुप्तोपमा के भेदा का वणन उदभट तथा मम्मट ने अलग अलग ढग से किया है। मम्मट के वणन म अधिक वज्ञानिकता दिखलाई पडती है।

मम्मट ने उपमा विवेचन क अन तर उपमा के अयथाप्राप्त दो भेदो का खण्डन किया है। ये भेद हैं—मालोपमा तथा रसनोपमा। मालोपमा' का वणन दण्डी क 'काव्यादश' म था, रुद्रट ने भी इसका वणन किया है, मम्मट के अनुसार मालोपमा अलग अलकार अथवा उपमा भेद नहीं है अनेक उपमानोपमयों म साधारण धम भिन्न हो अथवा अभिन्न हो इसम विशप चमत्कार क्या है इस प्रकार तो सहस्रा चमत्कार सभव हैं—'एवविधवचित्र्यसहस्रसभवात्'। इसी प्रकार वे दण्डी के 'रसनोपमा का खण्डन करते हैं क्योकि उसका भी उपमा के उक्त भेदा म अन्तर्भाव हो जाता है— उक्तभेदानतिक्रमाच्च'।

उद्भट तक आते आते अलकार विवचन व्याकरण एव न्याय की वज्ञानिकता से परिपुष्ट हो चुका था, मम्मट न उसी माग पर चल दिया और असगत भदोपभदा को समाप्त करन का प्रयत्न किया।

रुय्यक

अलकारसवस्व' म उपमा का विवेचन अत्यन्त सक्षिप्त एव सामान्य है। अथानकारा म यह प्रथम अलकार के रूप म अनेकालकार-बीजभूता[1] स्वीकार की गई है। उपमा का लक्षण है—

'उपमानोपमेययो साधर्म्ये भेदाभेदतुल्यत्वे उपमा।'

इस लक्षण म चार पद हैं— उपमानोपमययो, साधर्म्ये, भेदाभेदतुल्यत्व तथा उपमा। यदि अलकार का नाम छोड दिया जाय तो शेष तीनो पद व्याख्यापेक्षी है। मम्मट के द्वयो' क स्थान पर रुय्यक का उपमानोपमेययो आया है, व्याख्या म इसका आग्रह किया गया है उपमानोपमेययोरिति अप्रतीतोपमानोपमेयनिषेधायम्। उपमा अलकार म उपमेय एव उपमान

1 उपमैवानेकप्रकारवैचित्र्येणानेकालकारबीजभूतेति प्रथम निर्दिष्टा। (पृ० २२)

दोनों का रहना आवश्यक है, साथ ही वे 'प्रतीत' (=प्रसिद्ध) भी हों। यदि मुख की उपमा कुमुद से दी जाय तो वह उपमा सदोष है, क्योंकि मुख के उपमान के रूप में कमल प्रतीत है कुमुद नहीं। इसी प्रकार उपमेय भी प्रतीत होना चाहिए, सहृदय जन जिस वस्तु को वर्णनयोग्य मानते आये हैं—जो उपमेय रूप में प्रतीत (= स्वीकृत, प्रसिद्ध) है वही उपमेय हो सकती है इतर नहीं। सूत्र में 'उपमानोपमेययोः' पद की सार्थकता वृत्ति में इसी 'प्रतीत'-तत्त्व पर बल देती है। उपमेय का प्रतीतत्व रुय्यक की मौलिकता है। वे अलंकार प्रयोग को भी सहृदय-संवेद्य मानते हैं। जो हृदय की अनुभूति का विषय नहीं बन सकता, वह उपमेय नहीं माना जा सकता—क्या उपमेयत्व के योग्य है और क्या नहीं, यह भी तो शास्त्रीय विषय है और उसके प्रमाण सहृदय हैं। जिन वर्णनों में अश्लीलत्व[1] अथवा ग्राम्यत्व आ जाते हैं, उनको सहृदय प्रतीत नहीं मानेगा।

साधर्म्य पद काव्यप्रकाश में भी है। 'सादृश्य', 'साम्य' पद अलंकारशास्त्र में पर्यायवाची बन गये हैं। साधर्म्य पद काव्यालंकार से काव्यप्रकाश तक पाया जाता है। साधर्म्य के तीन रूप हो सकते हैं—भेदप्रधान, अभेदप्रधान, तुल्य। व्यतिरेक-सहोक्ति आदि अलंकारों में भेद प्रधान साधर्म्य है, रूपक परिणाम आदि अलंकारों में अभेदप्रधान साधर्म्य है, उपमा में तुल्य[2] साधर्म्य होता है। सूत्र में 'साधर्म्ये भेदाभेदतुल्यत्वे' पदों से इसी विशेषता को स्पष्ट किया गया है। काव्यप्रकाशकार का बल 'भेद' पर था, वह भेद साधर्म्य का नहीं था वर्ण्यावर्ण्य का था। रुय्यक वृत्ति[3] में भी भेदाभेदतुल्यत्व का आग्रह करते हैं।

रुय्यक ने उपमा भेदों का वर्णन अनावश्यक माना है। पूर्णा लुप्ता के श्रौती आर्थी उपभेद अनेकरूप बनकर २७ तक पहुँच गये थे और रसगंगाधर में बत्तीस तक पहुँचे हैं। रुय्यक सरल भाव से कहते हैं—'अस्याश्च पूर्णालुप्तात्वभेदात् चिरन्तनैर्बहुविधत्वमुक्तम्। अस्तु अतश्च इमिमस्माकं तदाविष्करणेनेति भावः। एवं च तथा गणनं तथा न वैचित्र्यं किंचिदिति सूचितम्' (टीका पृ० ३२)। किसी अन्य आचार्य ने भेदोपभेदों के प्रति इतनी उदासीनता नहीं दिखलाई, यह भी रुय्यक की एक विशेषता है।

उपमा के प्रसंग में रुय्यक ने साधारण धर्म पर विशेष एवं मौलिक रूप से विचार किया है। साधारण धर्म का निर्देश दो रूपों में किया जा सकता है—एक रूप से (एक बार) अनेक रूपों से। अनेक रूपों में साधारण धर्म का निर्देश दो प्रकार हो सकता है—वस्तुप्रतिवस्तु भाव से बिम्बप्रतिबिम्ब भाव से। इस प्रकार साधारण धर्म का निर्देश[4] तीन रूपों का हो गया।

(क) जब साधारण धर्म उपमेय तथा उपमान में एक रूप से रहता है तो इसको अनुगामी कहते हैं। कुमारसंभव में—

---

१ उदाहरण के लिए देखिए *अलंकार सर्वस्व जयरथकृत टीका पृ० ३१।*

२ भेदप्राधान्ये व्यतिरेकादिवत्। अभेदप्राधान्ये रूपकादिवत्। द्वयोस्तुल्यत्वे यथास्याम्। (वृत्ति पृ० ३१)

३ यत्र किंचित्सामान्यं कश्चिच्च विशेषः स विषयः सदृशतायाः। (वही पृ० ३१)

४ साधारणधर्मस्य क्वचिदनुगामितयैकरूप्येण निर्देशः। क्वचिद् वस्तुप्रतिवस्तुभावेन पृथक् निर्देशः। पृथङ् निर्देशे च सम्बन्धिभेदमात्रं प्रतिवस्तूपमावत्। बिम्बप्रतिबिम्बभावो वा दृष्टान्तवत्। (वही पृ० ३३)

प्रभामहत्या शिखयेव दीप, त्रिमार्गयेव त्रिदिवस्य मार्ग ।
संस्कारवत्येव गिरा मनीषी, तया स पूतश्च विभूषितश्च स ॥

'पूतश्च' तथा 'विभूषितश्च' साधारण धर्मों का उपमेय और उपमान के साथ 'समान रूप' से सम्बन्ध है।

(ख) जब साधारण धर्म एक होने पर भी भिन्न भिन्न शब्दों में निर्दिष्ट हो, तो उसे वस्तु प्रतिवस्तु भाव से निर्देश करते हैं।[1] 'मालतीमाधव' में—

यान्त्या मुहुर्वलितकन्धरमाननं तद्
आवृत्तवृन्तशतपत्रनिभं वहन्त्या ।

वलित एवं 'आवृत्त' शब्द एक ही अर्थ के (साधारण धर्म के) वाचक हैं, परन्तु ये दो अलग शब्द हैं।

(ग) उपमेय-वाक्य एवं उपमान-वाक्य में धर्म अलग-अलग हों तो उनमें बिम्बप्रतिबिम्ब भाव[1] माना जाता है। जैसा कि दृष्टान्त अलंकार में पाया जाता है।

साधारण धर्म का यह त्रिविध निर्देश आगे चलकर प्रायः सभी सादृश्यमूलक[2] अलंकारों में आधार मान लिया गया और सभी आचार्यों ने इसको लक्षित किया है।

जयदेव

'चन्द्रालोक' के पंचम मयूख में अर्थालंकारों में सर्वप्रथम उपमा का एक श्लोक में लक्षणोदाहरणपूर्वक विवेचन किया गया है। जयदेव के अनुसार—

उपमा यत्र सादृश्यलक्ष्मीरुल्लसति द्वयोः ।
हृदये खेलतारुच्चैः तन्वङ्गि स्तनयोरिव ॥५।११॥

उत्तरार्द्ध तो उदाहरण है और पूर्वार्द्ध लक्षण। जहाँ सादृश्यलक्ष्मी उपमेय और उपमान दोनों को समान रूप से उल्लसित करे वहाँ उपमा अलंकार का सौन्दर्य है। इस लक्षण में सादृश्य एवं द्वयोः पद ध्यान देने योग्य है। प्राचीनतम आचार्य गार्ग्य से ही उपमा का प्राण सादृश्य[3] माना गया है, यद्यपि 'साम्य' तथा 'साधर्म्य' पद[4] भी इसी अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। 'द्वयोः' पद अधिक सार्थक है। 'द्वयोः' का प्रयोग विश्वनाथ ने भी किया है। इस लक्षण से चार संकेत प्राप्त होते हैं—

(क) उपमेय तथा उपमान अलग-अलग[5] हों।

---

१ एकस्यैव धर्मस्य वाक्यद्वयेन शब्दाभ्यां वस्तुप्रतिवस्तुभावः ।
भिन्नयोरेकधर्मयोः निर्देशेन बिम्बप्रतिबिम्बभावः । (एकावली प० २ ५)

२ एतच्च भेदत्रयं प्रायः सर्वेषामेव सादृश्याश्रयाणामलंकाराणां जीवितभूतत्वेन सम्भवतीति । (टीका प० ४)

३ यदतत् तत्सदृशमिति गार्ग्यः ।

४ साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः । (सा० द० १०।१४)

५. तत् साधर्म्यमुपमाभेदे । (काव्यप्रकाश)

(ख) उपमेयापमान मे किंचित समानता भी हो तथा विभिन्नता भी।[1]
(ग) सादश्य भेदाभेदतुल्यता के आधार पर हो।
(घ) उपमेय तथा उपमान दोनो 'प्रतीत' हो—सादृश्यलक्ष्मी दोनो का उल्लसित करे।

यह लक्षण रुय्यक का अनुकरण सा ज्ञात होता है और समकालीन साम्य क वाच्यत्व[2] एव एकवाक्यत्व' का यहा कोई सकेत नही है। रुय्यक का अनुकरण भेदोपभेद वणन स विरक्ति म है तथा सादश्यलक्ष्मी की उभय-पक्ष प्रतीति सपादन म भी, रुय्यक के प्रतीति सिद्धान्त का जयदव ने तन्वगीस्तनयोरिव के उदाहरण द्वारा और भी अधिक स्पष्ट कर दिया है।

विश्वनाथ

साहित्यदपण के दशम परिच्छेद म विश्वनाथ न उपमा के लक्षण एव भेदो म वनानिकता की और भी अधिक कसावट अपनायी है। प्रत्येक शब्द साथक एव व्यवच्छेदक है। लक्षण है—

साम्य वाच्यम अवधम्य वाक्यक्य उपमा द्वयो ।१०।१४।।

व्याख्या करते हुए व स्वयमव लिखत हैं— रूपकादिषु साम्यस्य व्यङ ग्यत्वम व्यतिरके च वधम्यस्याप्युक्ति उपमेयोपमाया वाक्यद्वयम् अनन्वये त्वेकस्यव साम्योक्तिरित्यस्या भेद।

यह व्याख्या भी सकत मात्र है। वस्तुत यह लक्षण 'उपमा' को समस्त सादश्यमूलक अलकारो स अलग स्वतन्त्र सिद्ध कर देता है। रूपक क साथ साथ दीपक को भी जोड लेना होगा, क्योंकि वहा भी साम्य वाच्य नही होता। वाक्यद्वय वाले तो अनेक अलकार है—उदाहरणत दष्टान्त प्रतिवस्तूपमा आदि। वस्तुत वाक्यद्वय का वाच्य समावश विश्वनाथ का महत्त्वपूण योग है इनसे पूव आचार्यो न इस विशेषता पर ध्यान नही दिया था।

उपमा के दो भेद है—पूणा तथा लुप्ता। पूणा क छह उपभेद है श्रौती तथा आर्थी प्रत्यक के तद्धितगता समासगता तथा वाक्यगता। यह भेदोपभेद निरूपण पूव आचार्यो के अनुसार है एव व्याकरण तथा न्याय के नियमो पर आश्रित है। विश्वनाथ न पूणा क लक्षण म लिखा है कि पूर्णोपमा म चारो अग वाच्य होते हैं कोई भी व्यग्य अथवा आक्षिप्त नही होता। श्रौती—आर्थी उपभेद का भी अन्तर दे दिया है—

श्रौती यथेववाशब्दा इवार्थो वा वतियदि।
आर्थी तुल्यसमानाद्यास्तुल्यार्था यत्र वा वति ।।१०।१६।।

व्याख्या म और भी स्पष्ट किया गया है—'यथववाद्य शब्दा उपमानानन्तर प्रयुक्त तुल्यादिपदसाधारणा अपि श्रुतिमात्रेणोपमानोपमेयगत सादश्यसम्बन्ध बोधयन्ति तत्सदभाव श्रौत्युपमा। तुल्यादयस्तु उभयत्रापि विश्रामयन्तीत्यथानुसन्धानादव साम्य प्रतिपादयन्तीति तत्सदभावे आर्थी।

पूर्णोपमा के छह भेदा के अनन्तर लुप्तोपमा के इक्कीस भेदा का वणन किया गया है। धम

---

१ यत्र किंचित्सामान्य कश्चिच्च विशष स विषय सदशतायो। (अलकारसवस्व वत्ति पृ० ३१)
२ अप्पय्यदीक्षित के अनुसार 'उल्लसति' की व्याख्या है व्यङ्ग्यमर्यादा विना स्पष्ट प्रकाशन। (कुवलयानन्द पृ० ३)।

लुप्ता के पाच प्रकार ह पूर्णोपमा क समान छह नही, क्योकि धमलुप्ता म तद्धितगत श्रौती' भेद सभव नहा है—"साधारण धमवाचक पद न होन के कारण 'तत्र तस्यव इम सूत्र स यहा वति प्रत्यय नही हा सकता, क्योकि वह पष्ठयन्त आर सप्तम्यन्त स ही होना ह और पष्ठी-सप्तमी विभक्ति धमवाचक पद क बिना सम्बध सूचित न होने क कारण हा नही सकती।[1]

धमलुप्ता क पाच भेद और ह। दो क्यच प्रत्यय करन पर एक क्यड प्रत्यय करने पर तथा दा णमुल प्रत्यय करन पर। उपमानलुप्ता (वाक्य-समास दो भेद), वाचकलुप्ता (समास क्विप् प्रत्ययगत दो भेद) धर्मोपमानलुप्ता (समास-वाक्य दा भेद), धमवाचक लुप्ता (क्विप्समास गत समासगत दो भद), उपमयलुप्ता (क्यचप्रत्ययगत एक भेद), धर्मोपमयलुप्ता (क्यचप्रत्यय गत एक भेद), त्रिलुप्ता (समासगत एक भेद)। इस प्रकार लुप्तापमा के इक्कीस भेद बन गय। विश्वनाथ की सफलता विवचन की स्पष्टता म है अलकार अथवा उनक भेदो की खाज म नही, कितन ही अलकारा का व रस का परिपथी[2] मानकर अलकार-पद से वचित कर देत है।

साहित्यदपण' म 'उपमा के उपयुक्त सत्ताइस भेदा का विवचन किया गया ह। य भेद उपमा विशेष क है। इस उपमा के अतिरिक्त उपमा नामान्तपाच अर्थालकार और है—एक-देशविवर्तिनी उपमा, रसनापमा, मालापमा उपमेयापमा, प्रतिवस्तूपमा। विश्वनाथ न इनका स्वतन्त्र अलकार क रूप म विवचन किया ह, क्योकि इनका चमत्कार उपमा क सामान्य चमत्कार स विशष ह उपमा क भेदोपभेद एक निश्चित व्याकरणीय प्रयोग की रूपरेखा म विवचित हुए है उन सबका सौन्दय उपमा का चमत्कार-मात्र है। उपमा-नामान्त पाच स्वतन्त्र अर्थालकार अपना-अपना विशषताआ क कारण उपमा के सामान्य चमत्कार का एक स्वतन्त्र स्वकीय सौन्दय प्रदान करन हैं इसलिए व पाचा स्वतन्त्र अथालकार (उपमाए) है भेदापभेद मात्र नही।

अप्पय्य दीक्षित

अप्पय्य दीक्षित की अलकार सम्बन्धी दो रचनाए हैं—कुवलयानन्द' तथा चित्रमीमासा। 'चित्रमीमासा पूव रचना है क्योकि कुवलयानन्द म एतद विवचन तु चित्रमीमासायां द्रष्टव्यम' जस सकेत उपलब्ध है, परन्तु चित्रमीमासा' अधिक प्रौढ रचना है, जगन्नाथ न कदाचित इसी लिए चित्रमीमासा का बार-बार खण्डन किया है।

कुवलयानन्द, 'चन्द्रालाक' की टीका है उपमा का लक्षण दोना पुस्तका मे एक ही है, उदाहरण अवश्य अलग-अलग ह। दीक्षित न लुप्तापमा क भेदा का वणन किया है और वाचकोपमानलुप्तोपमा भेद भा स्वीकार किया ह जा अन्य आचार्यों म नहा था। उदाहरण है—'काकतालीयम्'। काकागमनमिव तालपतनमिवेति काकतालमिति। काकतालसमागमसदृश तन्वी

१ विमलाख्या हिन्दी व्याख्या पृ० २६५।

२ यथा 'रसस्य परिपन्थित्वान्नालकार। (प्रहेलिका १०।१३)

समागम इति समासार्थोपमा, काकतालमिव काकतालीयमिति तु प्रत्ययार्थोपमा (पौणमासी)। यथा—

यत्तया मेलन तत्र लाभो मे यश्च तद्रत ।
तदेतत काकतालीयम अवितर्कितसभवम् ॥ (कुव० प०७)

चित्रमीमासा' म उपमा का लक्षण है—

उपमानोपमेय वयोग्यया रथयो द्वयो ।
हृद्य साधर्म्यमुपमत्युच्यते का यवेदिभि ॥

शब्द भेद होते हुए भी इस लक्षण को पुरान आचार्यो का आधार प्राप्त है केवल रुय्यक के 'प्रतीतत्व की दीक्षित ने याख्या भर कर दी है उपमानोपमेयत्वयोग्ययो' और प्रतीता पमानोपमययो समानाथक है। विद्याधर चक्रवर्ती के अनुसार— प्रसिद्धयोरवापमानापमेययो अलकारविपयत्वमिति नियमाय। अतो मेरुसपपादौविवक्षया परिकल्पयितु शक्याऽप्युपमानोपमप भावो नालकार विपय (सजीवनी पृ० ३८)। चन्द्रालोक एव कुवलयानन्द का 'सादश्य लक्ष्मीरुल्लसतिद्वयो ही चित्रमीमासा' म द्वयो हृद्य साधर्म्यम बन गया है। साराशत अप्पय्य दीक्षित पूर्वाचार्यो के ऋणी हैं और मम्मट रुय्यक एव जयदेव से विशप प्रभावित हैं रुय्यक क प्रतीतत्व की दीक्षित ने व्याख्या कर दी है और लक्षण म इसे प्रथम महत्त्व का स्थान दिया है।

लक्षण के अन तर उपमा के पूर्णा लुप्ताभेदा का वणन है। पूर्णोपमा के प्रसग म दीक्षित ने रुय्यक द्वारा निर्दिष्ट साधारण धम के त्रिविध निर्देश को स्वीकार किया है और साधारण धम निर्देश की अन्य विधाए भी बतलायी हैं—

पूर्णाया क्वचित साधारणधमस्यानुगामितया निर्देश । क्वचिद् वस्तुप्रतिवस्तुभावेन। क्वचिद बिम्बप्रतिबिम्बभावन। (पृ० ८०)

नवीन विधाएँ चार है—

(क) क्वचिच्छलेपेण (ख) क्वचिदुपचारेण
(ग) क्वचित समासान्तराश्रयण (घ) क्वचिदेपा यथासभव मिश्रणन।

ये भद लुप्तापमा[1] म नहा हात उनम साधारणधम का केवल अनुगामि भाव से ही निर्देश रहता है। कुवलयानन्द क समान चित्रमीमासा म भी लुप्तापमा क आठ भदा का वणन है। इस भेदापभेद क विपय म दीक्षित न व्यावहारिक दष्टिकोण प्रस्तुत किया है— एवमय पूर्णा लुप्ताविभागा वाक्यसमासप्रत्ययविशेषगाचरतया शब्दशास्त्र व्युत्पत्तिकौशलप्रदशनमात्र प्रयोजनो नातीवालङ्कारशास्त्रे व्युत्पाद्यतामहति। (पृ० १०८)

चित्रमीमासा म उपमा क दूसरे प्रकार से भी भद किय गय हैं, ये दीक्षित की मौलिकता को सूचित करते हैं। य भद तीन[2] है—

---

१ लुप्तायां तु नव भदा । तस्या साधारणधमस्यानुगामित्वनियमात । (पृ० ८०)
२ पुनस्त्रयमुपमा सधपतस्त्रिधा। (पृ० ११४)

(क) स्ववचिन्यमात्रविश्रान्ता, यथा 'स छिनमूल क्षतजेन रेणु[1] इत्यादि।

(ख) उक्तार्थोपपादनपरा, यथा 'अनन्तरत्नप्रभवस्य'[2] इत्यादि।

(ग) व्यग्यप्रधाना, जिसके वस्तु अलकार रस के आधार पर तीन उपभेद हो सकते हैं।

'चित्रमीमासा' का यह उपमा भेद विवेचन मौलिक है, उत्तर आचार्यों ने भी इसका नहीं अपनाया। अप्पय्यदीक्षित के समक्ष चमत्कार मूल की समस्या थी, उस आधार पर उन्होंने काव्य के तीन भेदों का वर्णन करते हुए अलकारों को उनसे जोड़ा है उसी आधार पर उपमा में चमत्कार-मूल का अन्वेषण करते हुए वे उपमा के तीन भेदों का सुझाव देते हैं और व्यग्यप्रधाना उपमा के तीन उपभेद ही नहीं देते उपमाध्वनि[3] का भी वर्णन करते है।

जगन्नाथ

संस्कृत के उत्तर काव्यशास्त्रियों का पाण्डित्य पूर्वाचार्यों का खण्डन करके स्व मत प्रतिपादन करने में है। यह प्रवृत्ति अप्पय्यदीक्षित तथा पडितराज जगन्नाथ तक आते-आते अत्यन्त स्पष्ट हो जाती है। चित्रमीमासा में अनेक मतों का खण्डन है और रसगगाधर में 'चित्रमीमासा' तक का खण्डन है। जगन्नाथ के अनुसार उपमा का लक्षण है—सादृश्य सुन्दर वाक्यार्थोपस्कारकमुपमालकृति।

उपमा अलकार का चमत्कार उस सुन्दर सादृश्य में है जो वाक्यार्थ का उपस्कारक हो। इस लक्षण में सुन्दरता का अर्थ है चमत्कार उत्पन्न करने वाला होना और चमत्कार का अर्थ है वह विशेष प्रकार का आनन्द जिसे सहृदयों का हृदय प्रमाणित करता है। सो इस लक्षण का तात्पर्य यह हुआ कि जिस सादृश्य से सहृदय का हृदय आनन्दित हो उठे, ऐसा सादृश्य यदि किसी वाक्यार्थ को सुशोभित करने वाला हो तो उसे उपमालकार कहा जाता है।

उपमा के पच्चीस भेदों का वर्णन है—६ पूर्णा के तथा १९ लुप्ता के। उपमा के निरवयवा सावयवा तथा परम्परिता भेद भी है। अन्त में रसनोपमा का विवेचन है।

वस्तुत जगन्नाथ का मुख्य बल पूर्वाचार्यों की परीक्षा एव आलोचना पर है। वे भेदोपभेदों एव खण्डन-मण्डन की गहराइयों में उतर जाते है जिसमे शास्त्र की शुद्धि तो है, विकास नहीं।

केशवदास

हिन्दी भाषा के माध्यम से केशवदास ने सर्वप्रथम अलकार विवेचन किया है। 'कविप्रिया'

---

१ स छिन्नमूल क्षतजेन रेणुस्तस्योपरिष्टात् पवनावधूत ।
अगारशेषस्य हुताशनस्य पूर्वोत्थितो धूम इवाबभासे ॥ (रघुवश ७।४३)

२ अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिम न सौभाग्यविलोपि जातम्।
एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दो किरणेष्विवाङ्कः ॥ (कुमारसभव १।३)

३ अथोपमाव्यङ्ग्यप्रसगादुपमाध्वनय प्रदश्यन्ते। (पृ० ११८)

४ हिन्दी रस-गगाधर द्वितीय भाग, पृ० १।

की सामान्य व्यवस्था पर दण्डी के 'काव्यादर्श' का प्रभाव है। सोलह प्रभावों की पुस्तक के चौदहवें प्रभाव में उपमा का वर्णन है—

रूप शील गुण होय सम जो क्यो हू अनुसार।
तासो उपमा कहत कवि केशव बहुत प्रकार॥१४।१॥

एक वस्तु का दूसरी वस्तु के साथ रूप शील-गुण का वर्णन उपमा है। यह लक्षण वैज्ञानिक नहीं है वस्तुत ब्रजभाषा के माध्यम से जो लक्षण लिखे गये हैं वे प्राय लक्षण-कोटि के नहीं, वर्णन-कोटि के हैं। रूप शील-गुण की अनेक व्याख्याओं में से सबसे उचित है रूप तथा शील आदि गुण, इस प्रकार रूप रंग-आकार एव शील-स्वभाव-गुण दोनों धर्म उपमा के क्षेत्र बन जाते हैं। दण्डी ने लिखा था— यथाकथञ्चित् सादृश्य यत्रोद्भूत प्रतीयते।

केशव ने इसका छायानुवाद कर लिया है। *यथाकथञ्चित् क्यो हू अनुसार बन गया है,* और सादृश्यम रूप शील-गुण सम है।

उपमा भेद-वर्णन भी दण्डी के आधार पर है। केशव ने उपमा के इक्कीस भेद बतलाये हैं और बाईस भेदों का वर्णन किया है धर्मोपमा, नियमोपमा, अतिशयोपमा उत्प्रेक्षितोपमा, अद भुतोपमा मोहोपमा, सशयोपमा, निर्णयोपमा श्लेषोपमा विरोधोपमा अभूतोपमा असभावि तोपमा विक्रियोपमा मालोपमा हेतूपमा ये १५ भेद दण्डी से ज्यो-के-त्यो ले लिये हैं। शेष ७ भेदो में से दूषणोपमा, भूषणोपमा परस्परोपमा और 'लाक्षणिकोपमा' दण्डी की क्रमश निन्दोपमा, प्रशसोपमा अन्योन्योपमा तथा समानोपमा' है। केशव की गुणाधिकोपमा और सकीर्णोपमा क्रमश दण्डी की 'बहूपमा तथा ललितोपमा से मिलती-जुलती हैं। विपरी तोपमा में उपमा का कोई लक्षण नहीं है।[1]

देवदत्त

अपनी प्रौढतम रचना शब्दरसायन अथवा काव्यरसायन' के नवम प्रकाश में देव कवि ने उपमा का विवेचन दण्डी एव केशव की परम्परा में किया है। उपमा का लक्षण है—

गुन औगुन सम तौलि के जहा एक सम और।
सो उपमा कहि वाच्य पद सकल अथ लघु ठौर॥

इस लक्षण में विश्वनाथ के साम्य वाच्यम को तथा रुय्यक के उपमानोपमेययो को समा विष्ट कर लिया गया है साथ ही गुणसाम्य एव वाक्यैक्य (सकल अथ लघु ठौर) का भी सकेत है। अन्य हिन्दी आचार्यों की अपेक्षा देवदत्त का उपमा लक्षण कुछ प्रौढ है। परम्परा के अनुसार देवदत्त भी इस ओर दो बार बल दे रहे हैं कि उपमा अनेक अर्थालकारो का आधार है—

(क) सकल अलकारनि विष उपमा अग उपग।
(ख) सकल अलकारनि विष उपमा अग लखाइ।

उपमा के भेदो का विवेचन दण्डी केशव की परम्परा मे हैं भामह-उदभट मम्मट रुय्यक की

---

१ हिन्दी अलकार-साहित्य पृ० ७४।

परम्परा मे नही। 'काव्य रसायन' मे उपमा के बीस भेद हैं, जिनम मे कुछ भेद नये से भी जान पडते हैं, अधिकतर तो ऐसे भेद हैं जिनका अ तर्भाव अयत्न हो सकता है। एक ओर तो स्मृति, भ्राति, सदेह, निश्चय, असभव, उल्लेख तथा स्वभावोक्ति स्वतत्र अलकार है दूसरी ओर स्मरणोपमा, भ्रमोपमा, सदेहोपमा निश्चयोपमा, असभवोपमा, उल्लेखोपमा तथा स्वभावोपमा उपमा के भेद भी है। उपमा के अनेक भेदो म प्रभाव केशव और अ ततोगत्वा दण्डी का है।'[1] यदि भेदोपभेदा के लक्षण दे दिये जाते तो उनका स्वरूप सुगम हो जाता परन्तु देवदत्त न केवल उदाहरण दिये हैं, लक्षण नही।

उपमा भेद निरूपण मे पूर्णा-लुप्ता, शाब्दी-आर्थी भेदा का प्रसग ही नही आया। पाच दोहो मे 'उपमायोग्य स्थल' शीर्षक से उन विषया की सूची गिना दी है जा उदाहरणो म उपमा के भेद बन गए है। दण्डी विषय भेद मे उपमा के अनेक भेदा म विश्वास रखते थे, उनके अनुयायियो ने भी उपमा के विषयगत भेद कर दिये, अधिक वज्ञानिक व्याकरण सम्मत भेदा की ओर उनका ध्यान नही गया।

भिखारीदास

'काव्यनिणय के तृतीय अध्याय मे अलकारमूल वणन है जिसका विस्तार उस ग्रन्थ के ग्यारह (८वें से १८वें तक) उल्लासो म है। प्रथम अर्थालकार उपमा का लक्षण है—

कहु काहू सम बरनिये, उपमा सोई जानि।३।२॥
जहँ उपमा उपमेय है, सो उपमा विस्तार।८।९॥

दोना लक्षणवणन मात्र है और सादश्यमूलक अथालकारो का सामान्य सकेत देते ह। उपमा के दो भेद हैं—*आर्थी तथा श्रौती। पूर्णोपमा, लुप्तापमा भेदा का भी विस्तार से वणन है।* पूर्णोपमा के प्रसग म षडभेदमूलक विस्तार नही है, प्रत्युत मालोपमा का पूर्णोपमा का रूप मानकर वणन किया गया है। पूर्णोपमा के उपभेदा का अवणन ब्रजभाषा की रुचि क अनुरूप है जो सस्कृत भाषा म अनिवाय था वह ब्रजभाषा मे अनावश्यक है—प्रत्यय समास तथा वाक्य के आधार पर ब्रजभाषा म उपमा के सौंदय की याजना नही होती। लुप्तोपमा के ८ भेद अप्पय्य दीक्षित के ही अनुसार हैं और त्रिलुप्ता को रूपकातिशयोक्ति कह कर उसको अधिक स्पष्ट कर दिया गया है—

तिहू लुप्त सो जो रह केवल ही उपमान।
ताही को रूपकातिसय उक्ति कहै मतिमान॥८।२९॥

ब्रजभाषा के काव्यशास्त्रियो म भिखारीदास की प्रतिष्ठा परम्परा म हेर फर कर उसे समयोचित बना लेने म हैं। उपमा के भेद निरूपण मे भी उन्होने इसी गुण का परिचय दिया है और सस्कृत के काव्यशास्त्रिया द्वारा प्रतिपादित परम्परा को स्वीकार करके भी उसम ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुरूप परिवतन कर लिये है।

---

१ 'हिन्दी अलकार साहित्य पृ० १३६।

कन्हैयालाल पोद्दार

गद्ययुगीन आचार्यों न प्राचीन पुस्तका का पढकर उनक आधार पर अलकारा का सप्रमाण विवेचन किया है। कन्हैयालाल पोद्दार ने सस्कृत-साहित्य के सुप्रसिद्ध ग्रथा के आधार पर 'अलकार मजरी' की रचना की। 'पाण्डित्य की दृष्टि से अलकार मजरी हिन्दी म अपने विषय की सबसे प्रौढ तथा प्रामाणिक रचना है।'[1] अलकारो के लक्षण गद्य म लिखे गये हैं विवेचन तो गद्य म है ही, उदाहरण ब्रजभाषा तथा क्वचित खडीबोली पद्या म है।

उपमा का लक्षण है 'दो पदार्थों के साधम्य को उपमान उपमय भाव से कथन करने को 'उपमा' कहते है।' (पृ० १०२)। व्याख्या म पोद्दार लिखते हैं '*लक्षण म दो पदार्थों का साधम्य* इसलिए कहा गया है कि अनन्वय' अलकार म भी उपमेय उपमान का साधम्य होता है किन्तु अनन्वय मे उपमेय और उपमान दो पदाथ नही होते एक ही वस्तु होती है।[2] वस्तुत यह लक्षण *साधर्म्यमुपमाभेदे* (काव्यप्रकाश) तथा साम्य वाच्य उपमा द्वयो' (साहित्यदपण) का सम्मिलित छायानुवाद है कथन करने को' का अथ होगा वाच्य।

भेदा के विषय म भी मम्मट का प्रभाव है 'उपमा के प्रधान दो भेद हैं। पूर्णोपमा तथा लुप्तोपमा। इनके श्रौती या शाब्दी और आर्थी आदि अनक भेद होते हैं।'[3] पूर्णोपमा दो भेदा (श्रौती आर्थी) के अनन्तर लुप्तोपमा के आठ भेदा का वणन है। अन्त मे लेखक ने 'उक्त भेदा के सिवा उपमा के और भी भेद'[4] लिखे हैं वे हैं—

(क) बिम्बप्रतिबिम्बोपमा, (ख) वस्तु प्रतिवस्तु निर्दिष्ट उपमा
(ग) श्लेषोपमा (अथश्लेषोपमा तथा शब्दश्लेषोपमा)[5]
(घ) वधर्म्योपमा (ङ) नियमोपमा
(च) अभूतोपमा अथवा कल्पितापमा
(छ) समुच्चयोपमा (ज) रसनापमा
(झ) उपमा लक्ष्योपमा तथा व्यग्योपमा भी होती है (पृ० ११८)।
(ञ) उपमा के निरवयवा, सावयवा (समस्तवस्तुविषया एकदेशवर्तिनी) और परम्परित आदि भेद भी होते हैं (पृ० ११९)। इन उपभेदो म 'शुद्धा एव माला भी है।

यह समस्त विवेचन प्राचीन आचार्यों के आधार पर है विशेषत दण्डी मम्मट एव रुय्यक के अनुसार।

रामदहिन मिश्र

काव्यदपण के द्वादश प्रकाश की दूसरी छाया म सादश्यगभ भेदाभेद प्रधान चार अल

---

१ हिन्दी अलकार साहित्य प २४२।
२ अलकार मजरी पृ ११२पृ० १०३। ३ वही पृ० १०४ ४ वही पृ० ११२
५ दण्डी ने इस भेद को समानोपमा नाम से लिया है। (अलकार-मजरी पृ० ११५)

कारों का विवेचन है। इनमें मुख्य अलंकार उपमा है। उपमा का लक्षण पुराने आचार्यों के अनुसार है—'दो पदार्थों के उपमान-उपमेय भाव से समान धर्म के कथन करने को उपमा अलंकार कहते हैं।' अर्थात् जहाँ वस्तुओं में विभिन्नता रहते हुए भी उनके धर्म (रूप, गुण, रंग, स्वभाव, आकार आदि) की समता का वर्णन किया जाय वहाँ पर उपमालंकार होता है' (पृ० ३५२)।

"उपमा के दो भेद होते हैं—(१) पूर्णोपमा और (२) लुप्तोपमा। इनके भी अनेक भेद होते हैं। पूर्णोपमा के उपभेद के रूप में 'माला पूर्णोपमा' का भी विवेचन है। लुप्तोपमा के अन्तर्गत चार उपभेद एकलुप्ता के, चार द्विलुप्ता के, और दो त्रिलुप्ता (धर्मोपमान-वाचक लुप्ता तथा वाचक धर्म-उपमेय लुप्ता) के हैं। त्रिलुप्ता में मिश्रजी ने मौलिक चिन्तन का परिचय दिया है और सूरदास के प्रसिद्ध पद 'अद्भुत एक अनूपम बाग' को भी वाचक धर्म उपमेय लुप्तोपमा माना है रूपकातिशयोक्ति नहीं—

'अद्भुत एक अनूपम बाग' जब नायिका के शरीर को लेकर कोई रूपक नहीं बांधा गया है जिससे यहाँ रूपकातिशयोक्ति नहीं कही जा सकती।' (पृ० ३५५)

'इनके अतिरिक्त उपमा अलंकार के और भी भेद होते हैं।' वे हैं—

(क) रसनोपमा (ख) समुच्चयोपमा (ग) रसनोपमा

(घ) मालोपमा (समानधर्मा भिन्नधर्मा तथा लुप्तधर्मा)

(ङ) लघ्वोपमा।

लघ्वोपमा पर वृत्ति भी ध्यान देने योग्य है 'लक्षणा से काम लेने के कारण इसे 'लघ्वोपमा', सुन्दर होने के कारण ललितोपमा, और उपमा की नवीनता के कारण 'नवीनोपमा' भी कहते हैं। (पृ० ३५८)

काव्यदर्पण वस्तुतः 'काव्यप्रकाश तथा साहित्यदर्पण का समन्वय-सार' प्रतीत होता है यथास्थान समयुगीन पूर्ववर्ती ग्रंथों से भी लेखक ने लाभ उठाया है। इसमें प्राचीन विषय का नवीन व्याख्या में नवीन दृष्टिकोण से समाधान का प्रयत्न है। (आत्म निवेदन पृष्ठ क)

उपसंहार

राजशेखर के अनुसार[1] औपम्य का प्रथम कथन औपकायन ने किया था। वेदों का शब्द-चयन और शिक्षा-व्याकरण ग्रन्थों में ही उपमा का विवेचन भी उपलब्ध होता है। पश्चात् अलंकार शास्त्र एक स्वतन्त्र अंग बन गया। फिर भी इस शास्त्र के आचार्यों में वैयाकरणों के प्रति श्रद्धा बनी रही और मुख्य मुख्य अलंकारों (विशेष उपमा) का विवेचन व्याकरण की सहायता से किया जाता रहा।

प्रथम चरण में उपमा का विवेचन व्याकरण निरुक्त ग्रन्थों के अन्तर्गत हुआ है। द्वितीय चरण में अलंकारशास्त्र के अन्तर्गत उपमा के भेदोपभेदों का विस्तार हुआ। इसके दो वर्ग

---

१ हिन्दी अलंकार साहित्य पृ० [illegible]।

एक पक्ष 'अर्थानुरोधेन विभाग करने वाला इसका पक्ष है भरत, अग्निपुराणकार दण्डी, भामह आदि हैं। द्वितीय पक्ष व्याकरण प्रयोगानुरोधेन विभाग या विभाग करने वाला इसके पक्षपाती भामह उद्भट, मम्मट आदि हैं। तृतीय चरण में उपमा का यथासिद्ध तात्पूर्ण लक्षण खोजने का प्रयत्न है इसकी चरम सीमा जगन्नाथ में प्राप्त होती है। चतुर्थ चरण कवि एवं सहृदय के लिए उपमा का सामान्य लक्षण एवं उसके उदाहरण प्रस्तुत करने में लगा रहा इसके अन्तर्गत मुख्यतः भाषा (व्रजभाषा एवं खड़ीबोली) के आचार्य आते हैं। इस विकास क्रम में सभी आचार्यों ने उपमा को मुख्य एवं सबसे महत्त्वपूर्ण अलंकार माना है और इसके विवेचन को अलंकार विवेचन में प्रधानता दी है।

लक्षण

भामह ने उपमा का जो लक्षण 'अतत तत सादृश्यम्' दिया था, वही मम्मट के 'साधर्म्यमुपमा भेदे' तक निरन्तर आधार बनकर चलता रहा। बीच के एवं उत्तर आचार्यों ने इस सामान्य लक्षण को वैज्ञानिक एवं तात्पूर्ण बनाने का अपने अपने ढंग से प्रयत्न किया। आचार्यों का आग्रह निम्नलिखित बिन्दुओं पर द्रष्टव्य है—

(क) साधर्म्य सादृश्य, साम्य शब्दों का प्रायः पर्यायवाची के रूप में प्रयोग हुआ है और सहसा इन शब्दों का परस्पर अन्तर कठिन है यद्यपि कुछ विद्वानों ने यह सिद्ध किया है कि सादृश्य तथा साधर्म्य में भेद है। सादृश्य में अवयवसामान्य के अतिरिक्त अवयवविशेष का भी ध्यान रहता है परन्तु साधर्म्य में केवल अवयवसामान्य का ध्यान रहता है। अतः उपमा की परिभाषा में 'सुन्दर साधर्म्यम्' न कहकर 'सुन्दर सादृश्यम्' कहना उपयुक्त है।[५]

(ख) उपमा में प्रस्तुत अप्रस्तुत भाव विद्यमान रहता है। इसकी दो विशेषताएं अनिवार्य हैं—

---

१ काव्यमीमांसा पृ० १

२ उपकारकत्वादलंकार सप्तममङ्गम् इति यायावरीयः। (काव्यमीमांसा पृ० ६)

३ प्रथमं हि विद्वांसो वैयाकरणाः। व्याकरणमूलत्वात् सर्वविद्यानाम्। (ध्वन्यालोक १।१३)

४ सर्वस्वलंकारेषूपमा जीवितायते। (महिमभट्ट)
उपमैवानेकप्रकारवैचित्र्येणानेकालंकारबीजभूता। (रुय्यक)
अलंकारशिरोरत्नं सर्वस्वं काव्यसम्पदाम्।
उपमा कविवंशस्य मातैवेति मतिर्मम॥ (राजशेखर)
उपमैका शैलूषी सम्प्राप्ता चित्रभूमिकाभेदान्।
रञ्जयति काव्यरंगे नृत्यन्ती तद्विदां चेतः॥ (अप्पय्य दीक्षित)

५ संस्कृत-साहित्य में सादृश्यमूलक अलंकारों का विकास पृ० १४८।

१ प्रस्तुत एव अप्रस्तुत मे अतर हो। गाग्य के अनुसार 'अतत' एव 'तत' अलग-अलग हैं, मम्मट के अनुसार यह 'भेद' उपमा का आधार है, भामह क अनुसार उपमेय का साम्य 'विरुद्ध उपमान के साथ हो और समानता हो केवल 'गुणलेश' के आधार पर, रुय्यक ने स्वीकार किया है कि 'यत्र किंचित्सामाय कश्चिच्च विशेष स विषय सदशताया'[1]—तात्पय यह है कि उपमेय तथा उपमान अलग-अलग एव भिन रूप हो तो उनम 'यथाकथचित'[2] सादश्य का वणन उपमा का चमत्कार है। भेद होते हुए भी साम्य उपमा का आधार है।

२ उपमेयोपमान दानो का साक्षात कथन होना चाहिए। विश्वनाथ ने इसको 'साम्य वाच्यम्' द्वारा प्रकट किया है। विश्वेश्वर पण्डित ने इसी कारण लिखा है 'तत्रकवाक्यवाच्य सादृश्यम भिनयोरुपमा'[3]।

(ग) रुय्यक न इस विशेषता पर बल दिया था कि उपमेय और उपमान दोना प्रतीत (प्रसिद्ध) अर्थात उपमायोग्य हा, किसी असुदर उपमेय का किसी भी उपमान के साथ सादश्य उपमा नहीं है। उदभट न इस विशेषता का कथन 'चेतोहारि साधम्यम्' द्वारा किया था और जयदेव न सादश्यलक्ष्मीरुल्लसतिद्वयो द्वारा। अप्पय्य दीक्षित ने बहुत स्पष्ट कह दिया है —

उपमानोपमेयत्वयोग्ययोरथयोद्वयो ।
हृद्य साधम्यमुपमेत्युच्यते काव्यवेदिभि ॥ (चित्रमीमासा)

और उनके कट्टर आलोचक जगनाथ ने भी कहा है कि "सादश्य सुदर वाक्यार्थोपस्कारक मुपमालङ्कृति ।

(घ) साहित्यदपण म उपमा का लक्षण दो अय विशेषताआ पर बल देता है। प्रथम 'वाक्यक्य' तथा द्वितीय 'अवधम्यम'। वत्ति म स्पष्ट किया गया है कि "व्यतिरेके च वधम्य स्याप्युक्ति उपमेयोपमाया वाक्यद्वयम। य दोना गुण उपमा का अनेक सादश्यमूलक अलकारा से अलग सिद्ध कर देते है।

(ङ) उपमा क लक्षण म ध्यान देने याग्य दा विशेषताएँ और है। प्रथम का सकेत यास्क न किया था कि गुण के आधार पर अनुत्कृष्ट का उत्कृष्ट के साथ अथवा अप्रख्यात का प्रख्यात के साथ सादश्य।[4] वामन न भी यही भाव व्यक्त किया है उपमीयत सादश्यमानीयत यनात्कृष्ट गुणेनायत तदुपमानम, यदुपमीयत यूनगुण तदुपमेयम्' [5]। दूसरी विशेषता एक शका का समाधान है कि साधम्य शद क ग्रहन से कायकारण सम्बध नही आता केवल उपमानापमेय

---

१ अलकारसवस्वम् वत्ति पृ० ३१।
२ यथाकथचित् सादश्य यत्रोद्भूत प्रतीयते। (काव्यादर्श)
३ अलंकारकौस्तुभ प० २३।
४ ज्यायसा वा गुणेन प्रख्याततमेन वा कनीयांसं वाऽप्रख्यातं वोपमिमीते।
५ काव्यालकारसूत्रवृत्ति पृ० ५४।

अथानुरोधेन एव व्याकरण प्रयोगानुरोधेन उपमा विभाग-परम्परा म कुछ विशेष भेदा पर ान देना आवश्यक है।

(क) वामन ने उपमा का तीन प्रकार से वर्गीकरण किया है। एक प्रकार से वह 'लौकिकी' या 'कल्पिता' है, दूसरे प्रकार से वह 'पदार्थवत्ति' तथा 'वाक्यार्थवत्ति' है तीसरे प्रकार से र्णा' तथा 'लुप्ता' है।

(ख) रुद्रट ने उपमा के तीन रूप माने है—वाक्यापमा, समासोपमा तथा प्रत्ययोपमा।

(ग) उपमा के अनेक भेद तो स्वतन्त्र अलकार बन गये परतु 'मालोपमा' एव 'रसनोपमा =रशनोपमा) उपमा के ही भेद बन रहे, मम्मट ने इनका खण्डन किया था परतु विश्वनाथ व जगन्नाथ इस खण्डन का स्वीकार न कर सके।

(घ) भाषा के आचाय व्याकरणानुमोदित उपभेदो को भाषा म आवश्यक नही मानते।

उपमावाचक

सवप्रथम 'निघण्टु' म बारह उपमा-वाचक शब्दा का सग्रह है। लोक म उन सबका व्यवहार ही पाया जाता, इसलिए भामह ने केवल यथा' तथा इव को वाचक बतलाया है। उदभट भी इसी कथन को स्वीकार किया परतु दण्डी न बडे विस्तार से उपमा-वाचका का णन किया है (जिसम समस्त सादृश्यमूलक अलकारा के वाचक सम्मिलित हैं)—

इववद्वा यथा शब्दा समान निभसनिभा ।
तुल्य-सकाश-नीकाश प्रकाश प्रतिरूपका ॥५७॥
प्रतिपक्ष प्रतिद्वद्वि प्रत्यनीक विरोधिन ।
सदृक्-सदृश-सवादि सजातीयानुवादिन ॥५८॥
प्रतिबिम्ब प्रतिच्छद-सरूप सम-समिता ।
सलक्षण-सदृशाभ सपक्षोपमितापमा ॥५९॥
कल्पदेशीय-देश्यादि प्रख्यप्रतिनिधी अपि ।
सवर्ण-तुलितौ शब्दौ य चान्यूनार्थवादिन ॥६०॥
समासश्च बहुव्रीहि शशाङ्कवदनादिषु ।
स्पर्धते जयति द्वेष्टि द्रुह्यति प्रतिगर्जति ॥६१॥
आक्रोशत्यवजानाति कदर्थयति निन्दति ।
विडम्बयति सधत्त हसतीर्ष्यत्यसूयति ॥६२॥
तस्य मुष्णाति सौभाग्य तस्य कान्ति विलुम्पति ।
तेन सार्ध विगृह्णाति तुला तनाधिरोहति ॥६३॥
तत्पदव्या पद धत्त तस्य कक्षा विगाहत ।
तमन्वेत्यनुबध्नाति तच्छील तन्निषेधति ॥६४॥

द्वितीय अध्याय

भरत द्वारा विवेचित शेष तीन अलकार

२ रूपक

भरत

नाटयशास्त्र म वर्णित दूसरा[1] अलकार 'रूपक' ह। उपमा और रूपक सगोत्र है, इनका परस्पर अन्तर निरूपण आचार्यों के ध्यान म रहा है। भरत ने उपमा और रूपक क अन्तर म मुख्यत तीन विशेषताओ पर बल दिया है—

१ उपमा का आधार 'सादश्य है, रूपक का औपम्य'। 'औपम्य' 'किंचित्सादश्य' द्वारा सम्पन्न होता है। अर्थात रूपक म नानाद्रव्यानुपङ्गात 'स्वविकल्पविरचित तुल्यता आधार है प्रस्तुत और अप्रस्तुत म अगो के सादश्य (किंचित) के कारण तुल्यता कल्पित की जाती ह।

२ उपमा का आधार है गुणाकृति का सादश्य, रूपक का आधार केवल गुण ह, और यह गुण[2] नाना द्रव्यो क आनुषगिक आधार द्वारा सम्पन्न होता ह, वापी[3] की स्त्री स तुलना केवल अगभूत अवयवो के गुण के आधार पर ही है आकृति के आधार पर नही।

३ उपमा म आकृति का सादश्य है, रूपक म रूप निवर्णना, अर्थात् रूपक आकृति-सादृश्य न होते हुए भी प्रस्तुत-अप्रस्तुत म रूपाभेद कल्पित करता ह।

रूपक क विवेचन तथा एकमात्र उदाहरण से यह स्पष्ट है कि भरत की दृष्टि म सामान्यत रूपक का वह रूप था जिसको आगे चलकर 'सागरूपक नाम दिया गया है। परन्तु विवेचन इतना अविशेषीकृत है कि उसम रूपक मात्र समा सकता है।

भरत न दो श्लोको म रूपक का लक्षण दिया है। एक का अन्तिम चरण है 'तद्रूपकमिति स्मृतम्'[3] और दूसरे का 'यद्रूप रूपक तु तत'[4]। पूर्ण लक्षण दोनो श्लोको को मिलाकर ही बनता

---

१ काव्यमाला में प्रकाशित नाट्यशास्त्र के पाठ म उपमा के अनन्तर दीपक का नाम है (उपमा दीपक चैव रूपक यमक तथा परन्तु दूसरा पाठ उपमा रूपक चैव दीपक यमक तथा अधिक संगत प्रतीत होता है क्योंकि विवेचन क्रम में उपमा के अनन्तर रूपक है और रूपक के अनन्तर दीपक—रूपक श्लोक सख्या ५७ ५८ दीपक श्लोक-सख्या ५९ ६)।

२ पद्माननास्ता कुमुदप्रकाशा विकासनीलोत्पलचारुनेत्रा ।
वापीस्त्रियो हंसकुलस्वनन्त्यि विरेजुरन्यायमिवाह्वयन्त्य ॥१६॥५६॥

३ नानाद्रव्यानुषगाद्यदौपम्य गुणाश्रयम् ।
रूपनिवर्णनायुक्त तद्रूपकमिति स्मृतम् ।१६।५७॥

४ स्वविकल्पविरचित तुल्यावयवलक्षणम ।
किंचित् सादृश्यसपन्न यद्रूप रूपक त तत् ॥१६।५८॥

है, इनको अलग-अलग लक्षण अथवा रूपक के दो भेदा के बीज नही माना जा सकता। प्रथम श्लोक मे 'रूपक' का विवेचन है और दूसरे म रूपक के आधार 'रूप' का। दोना श्लोका का मिलाकर इस प्रकार पढा जायगा—"नानाद्रव्यानुपगाध्य यत गुणाश्रयम् औपम्यम् तद रूप निवर्णनायुक्त रूपकम इति स्मृतम, (अत्र) स्वविकल्पविरचित तुल्यावयवलक्षण रूप किंचित सादृश्यसपन्न (भवति)'। इस लक्षण मे बल 'रूप' पर है जो औपम्य पर आधृत है उपमा के समान सादृश्य पर नही।

भामह

काव्यालकार' के प्रथम परिच्छेद (श्लोक-सख्या १३ तथा १४) म अलग अलग रूपका दिरलकार [1] तथा रूपकादिमलकार [2] पदो का प्रयोग है। इससे यह सकेत प्राप्त हो सकता है कि कोई प्राचीन परम्परा, जिसको भरत ने नही अपनाया, अलकारा म (अथवा अर्थालकारा म) रूपक को प्रमुखता प्रदान करती थी।

द्वितीय परिच्छेद म भामह ने सवप्रथम सवस्वीकृत पाच अलकारो का विवेचन किया है। य अलकार है—अनुप्रास, यमक, रूपक, दीपक तथा उपमा। भरत और भामह के बीच म [3] अनुप्रास का जन्म हो गया था, शब्दालकार का महत्त्व (प्रथम गणना करके) स्वीकार होने लगा था तथा भरत के क्रम को ही सब आचाय स्वीकार न करते थे—भरत ने पहले अर्थालकार रखे है भामह न प्रथम शब्दालकार फिर अर्थालकार। भरत का क्रम है उपमा दीपक रूपक, यमक भामह का सवस्वीकृत क्रम है इसके ठीक विपरीत यमक रूपक दीपक उपमा। [4]

गुणाना समता दृष्टवा [5] उपमानन उपमेयस्य तत्त्व यत रूप्यत तद रूपकम —इस लक्षण म बल दो बाता पर है गुणो की समता और उपमेय की उपमान के साथ अभेद रूपना। मूलत भरत और भामह के लक्षणा म कोई अन्तर नही है। दोनो 'गुण' तथा 'रूप' पर बल देत है भरत का विवेचन अधिक विस्तृत एव वणनात्मक है भामह का सक्षिप्त एव व्याख्यापरक। आगे आचार्यों ने अभेदरूपता को अधिक वज्ञानिक शब्द आरोप द्वारा व्यक्त किया और अध्यवसान से अन्तर करते हुए 'आरोप' की व्याख्या इस प्रकार की— विषयिणा अनिगीणस्य विषयस्य तनव सह तादात्म्यप्रतीति आरोप (उपमय को ग्रस बिना उपमान के साथ उपमय की एक रूपता को आरोप कहते है)।

---

१ रूपकादिरलकारस्तस्यान्यबहुधोदित ॥१।१३॥

२ रूपकादिमलकार बाह्यमाचक्षते परे ॥१।१४॥

३ हिन्दी अलकार साहित्य प १ तथा ११।

४ नाटयशास्त्र के पाठान्तरों में भी क्रमिक द्वितीय स्थान रूपक तथा दीपक म से किसी एक को मिलता है।

५ अनुप्रास सयमको रूपक दीपकोपमे।
इति वाचामलकारा पचवान्यरुदाहृता ॥२।४॥

६ उपमानेन यत्तत्वमुपमेयस्य रूप्यते।
गुणाना समता दृष्टवा रूपक नाम तद्विदु ॥२।२१॥

रूपक के दो भेद है— समस्तवस्तुविषय तथा 'एकदेशविवर्ती'। 'समस्तवस्तुविषय रूपक' म समस्त उपमान का (अवयवो के साथ) समस्त उपमेय पर (अवयवो के साथ) आरोप हो जाता है। 'शीकराम्भ'—रूपी मद का छिडकते हुए, इन्द्रधनुष रूपी कामुक से युक्त तुग जलद दन्ती निकलते हुए मुझे उन्मत बना रहे है"—इस उदाहरण मे जलदो पर हस्तियो का आरोप समस्त अवयवो पर आरोप के साथ किया गया है।

'एकदेशविवर्ती' रूपक म केवल कतिपय अवयवो पर ही आरोप होता है, समस्त वस्तु पर नही। "मेरी प्रिया को जलधरो की धीर ध्वनि कचोटती है जो जलधर तडिद्वलयरूपी रज्जु से बँधे हुए है और जो वलाका रूपी मालाएँ धारण किये हुए हैं"—इस उदाहरण म जलधरो पर हस्तियो का आरोप अभिव्यक्त नही है, केवल अभिव्यजित है दो अवयवो का दो अवयवो पर आरोप है समस्त का समस्त पर नही।

भामह की शब्दावली म भरत के सम्मुख केवल 'समस्तवस्तुविषय' रूपक के दो उदाहरण थे। सामान्यत समस्तवस्तु उपमान का समस्तवस्तु उपमेय पर आरोप साहित्य म प्राप्त होता है परन्तु ऐसा भी सभव है कि कवि समस्त वस्तु की उपेक्षा कर दे और केवल एकदेशविवर्ति कतिपय अवयवो के आरोप तक ही सीमित रहे।

दण्डी

उपमाचक्र के समान रूपक चक्र का भी दण्डी ने बडे विस्तार से 'काव्यादर्श' के द्वितीय परिच्छेद म इक्तीस श्लोको म वर्णन किया है। उपमान और उपमेय का भेद यदि, अतिसादृश्य के कारण तिरोहित हो जाय तो उस साधर्म्य (उपमा)[3] को रूपक कहते है। यह लक्षण अत्यन्त सामान्य है इसमे भरत अथवा भामह के लक्षणो जसी सूक्ष्मता एव वज्ञानिकता नही है, परन्तु जिस अभेद प्रतिपादन पर बल दिया गया है वह उपमा स रूपक का अन्तर है, इसमे भी कोई सन्देह नही। 'कान्त चन्द्रमिव मुखम' उपमा है तो 'चन्द्रमुखम' रूपक, गुणाधिक्य के कारण 'चन्द्र' और 'मुख' का अभेद ही तो रूपक है इसी अभेद को 'रूपता' अथवा 'आरोप' सज्ञा दी गई है।

दण्डी के अनुसार रूपक के अनेक भेद है जिनम से उन्नीस भेदो का वर्णन काव्यादर्श मे किया गया है शेष भेद विद्वानो के अनुमान[4] पर छोड दिये गये हैं। रूपक के एकान्नविंशति भेद

---

१ शीकराम्भो मदसृजस्तुङ्गा जलदन्तिन ।
निर्यान्तो मदयन्ती मे शक्रकार्मुकधारिणः ॥२।२३॥ (बालमनोरमा पाठ)

२ तडिद्वलयकक्ष्याणा बलाकामालभारिणाम् ।
पयोमुचा ध्वनिर्धीरो दुनोति मम ता प्रियाम् ॥२।२४॥

३ उपमैव तिरोभूतभेदा रूपकमुच्यते ॥२।६६॥

४ न पर्यन्तो विकल्पाना रूपकोपमयोरत ।
दिङ्मात्र दर्शित धीरैरनुक्तमनुमीयताम ॥२।९६॥

ही उदाहरण कई विभिन्न वर्गों के भेदा का बन सकता है, समस्त-असमस्त-समस्तव्यस्त तथा सकल-अवयव-अवयवी भेद परस्पर म स्वतन्त्र नही है, एक वग के भेद दूसरे वग के भेदा के क्षेत्र, म प्रसारित हो जाते हैं।

(छ) युक्तरूपक म अवयवा का अभेद वणन करते हुए सबन्धसगति विद्यमान रहती है यथा 'स्मितपुष्पोज्ज्वल लोलनेत्रभृङ्गमिद मुखम इस उदाहरण म स्मित तथा नेत्र अवयवा का वणन पुष्प तथा भृग अप्रस्तुता के आराप द्वारा किया गया है जिनमे स्वय आधार-आधेय[1] सबध है। इसके विपरीत (ज) अयुक्तरूपक मे सगति विद्यमान नही रहती, 'इदमाद्रस्मितज्योत्स्न स्निग्धनत्रोत्पल मुखम इस उदाहरण म मुख के अवयव स्मित का ज्योत्स्ना से अभेद है और नेत्र का उत्पल से परन्तु ज्योत्स्ना और उत्पल परस्पर विरोधी हैं। युक्त और अयुक्त भेदा का आधार उपमाना की प्रसग विशेष म पारस्परिक सगति है।

(झ) विषमरूपक म अगी का अभेद होता है अगो म से किसी का अभेद निरूपण होता है किसी अन्य का नही रूपण अरूपण[2] के वैषम्य के कारण इस भेद का नाम विषमरूपक है।

(ञ) सविशेषरूपक म विशेषणविशिष्ट पदाथ का आरोप होता है। (ट) विरुद्धरूपक मे उपमेय उपमान के प्रसिद्ध काय नहा करता प्रत्युत विरोधी काय करता है यही अनौचित्य, विरोध है 'तुम्हारा मुखचन्द्र कमला का सकुचित नही करता और न आकाश मे प्रवेश करता है, वह केवल मेरे प्राणो का हरण करता है —यहाँ मुख (उपमेय) चन्द्र (उपमान) के काय नही करता, उसके प्रसिद्ध काय के विपरीत काय करता है।

(ठ) सामान्य धम का हेतु रूप म उल्लेख रहने पर अभेद हेतुरूपक है— गाम्भीर्येण समुद्रोऽसि इसका उदाहरण है। साधारण धम श्लिष्ट हो तो (ड) श्लिष्टरूपक बनता है।

(ढ) उपमारूपक म गौण (चन्द्रादि) मुख्य (मुखादि) के साधम्य की तथा (ण) व्यतिरेकरूपक म गौण मुख्य के वधम्य की प्राप्ति होती है। उपमारूपक का उदाहरण है— मद से आरक्तकान्ति मुखचन्द्र उदयरक्त चन्द्र की स्पर्धा करता है।' यहा मुख्यता चन्द्र और मुख के अभेद की है, तथा औपम्यसूचक शब्दयोग स उनका साधम्य भी स्थापित किया गया है। व्यतिरेक रूपक का उदाहरण है—

चन्द्रमा पीयते देवमया त्वन्मुखचन्द्रमा।
असमग्राप्यसौ शश्वदयमापूणमण्डल ॥२।९०॥

उपमान स उपमेय का उत्कष होने के कारण यह व्यतिरेक है, अभेदप्रतीति[3] के कारण रूपक मुख्य है, अत यहा व्यतिरेक रूपक अलकार का चमत्कार है।

(त) आक्षेपरूपक का उदाहरण है— हे सुन्दरि तुम्हारे मुखचन्द्र का चन्द्रत्व गुणानुरूप नही

---

१ अत्र अवयवत्वम् नाम आधेयत्वम। (प्रभा पृ० १६४)

२ विषम रूपणारूपणवषम्यात् विषमसज्ञकम्। (प्रभा १६५)

३ अय च व्यतिरेक उपमानादुपमेयस्योत्कष द्योतयति। नाय वक्ष्यमाणो व्यतिरेकालकार। तस्य सादृश्य प्रतीतिपूवक भन्पयवसानविषयत्वात्। अत्र रूपकत्वेनाभेदप्रतीति। (प्रभा १६८)

है, क्योकि चन्द्र सबका आह्लादक है, परन्तु तुम्हारा मुख अन्यापतापी (प्रतिनायिका आदि का सतापक) है । मुख्याथ मुखचन्द्र का रूपक है परन्तु आक्षेप[1] (प्रतिषेध अथवा निन्दा) गर्भित होने से इस आक्षेप रूपक कहा जायगा।

(थ) समाधानरूपक का उदाहरण है—'हे चण्डि तुम्हारा मुखचन्द्र भी मुझको दहन करता है, यह मेरे भाग्य का ही दोष है। यहाँ रूपक म जो अयोग्यता (चन्द्र म दहनक्षमता) थी, उसका समाधान वक्ता न स्वय दे दिया है— भाग्यदोषात । यह समाधानपूवक रूपक है।

(द) रूपकरूपक दोहरा रूपक है— तुम्हारे मुखपक्ज रूपी रगस्थल म भ्रूलता रूपी नतकी लीलानत्य कर रही है।' यहाँ मुखपक्ज रूपक की रगस्थल के साथ अभेदस्थापना तथा भ्रूलता रूपक की नतकी के साथ अभेद स्थापना है। यह चमत्कार समास म ही सभव है, समास के अभाव म मुख रूपी पक्ज रूपी रगस्थल जसी अभिव्यक्ति शिथिल होगी।

(ध) तत्त्वापह्नवरूपक म उपमेय का निषध करक उपमान क साथ अभेद-स्थापना हाती है। नतन्मुखमिद पद्म, न नेत्रे भ्रमराविमौ उदाहरण म मुख का प्रतिषेध करक उसका पद्म के साथ अभेद स्थापित किया गया है।

भरत न रूपक अलकार के भेदो का वणन नही किया और भामह ने केवल दो भेद माने थे— समस्तवस्तुविषय तथा एकदेशविवर्ती । दण्डी ने रूपक के भेदो का विस्तार किया और विभिन्न दष्टियो ने इनका चयन किया —वाक्य की बनावट, अगो का उपभोग, परस्पर सम्बन्ध की सगति तथा उपमेयोपमान के गुण आदि।[2]

---

१ आक्षप प्रतिषेधोक्ति तदुपादाननियतत्वात् आक्षेपरूपकम् । अथवा आक्षप निन्दा तन्निवेशनादिन्माक्षप रूपकम् । नाय व्यतिरेक सादश्य प्रतीतेरभावात । न वापह्नुतिः प्रस्तुतस्य निषधायोगात् । (प्रभा पृ० १६६)

२ अग्निपुराण म रूपक को सादृश्य का एक रूप (उपमा के अनन्तर दूसरा) माना गया है। रूपक के दो वकल्पिक लक्षण दिये गये हैं एक भामह से ग्रहण कर लिया है और दूसरे मे दण्डी का यथावत् शब्दान करण है—

उपमानेन यत्तत्त्वमुपमेयस्य रूप्यते ।
गुणानां समता दृष्ट्वा रूपकं नाम तद्विदु ॥८।२२॥

यह लक्षण भामह के काव्यालकार मे आया है।

उपमव तिरोभूतभेदा रूपकमेव वा ॥८।२३॥

वा से यह सकेत मिलता है कि लेखक भामह तथा दण्डी दोनो के लक्षणो को एक मानकर उनम विकल्प देत हैं। वा को जोडने के लिए ही मानो दण्डीकृत लक्षण म दो शब्द बदल देने पडे। दण्डी का लक्षण था

उपमव तिरोभूतभेदा रूपकमुच्यते ॥२।६६॥

अग्निपुराण में रूपक के भेदों का वणन नहीं है और रूपक का एक भी उदाहरण नहीं दिया गया। अग्नि पुराण का रूपक प्रसग सबस उपेक्षित है।

उद्भट

श्रुत्या सम्बन्ध (अभिधा) की असम्भावना में जब एक पद का अन्य पद के साथ गुणवृत्ति प्रधान (लाक्षणिक) सम्बन्ध से जोड़ा जाय तो उस सौंदर्य को रूपक कहते हैं—

श्रुत्या सम्बन्ध विरहाद् यत्पदेन पदान्तरम ।
गुणवृत्तिप्रधानेन युज्यते रूपकं तु तत ॥ का० सा० । १।११॥

यह लक्षण सभी पूर्व लक्षणों से विकसित एवं वैज्ञानिक है। आगे चलकर मम्मट ने भी इसकी सक्ता से लाभ उठाया है। यद्यपि भरत में 'गुणाश्रय' पद का और भामह में 'गुणानां समता' पदों का रूपक के लक्षण में प्रयोग है परन्तु उद्भट का 'गुणवृत्तिप्रधान' योग एक विशेष सूक्ष्मता का द्योतक है। 'चन्द्रवदनम्' को अभिधा से स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि मुख का चन्द्र होना सम्भव नहीं है, इसलिए इसको लक्षणा से स्वीकार किया जाता है। यह रूपक का आधार भूत उदाहरण है।

उद्भट ने रूपक के चार भेदों का वर्णन किया है। प्रथम दो भेद तो भामह से यथावत ग्रहण कर लिये हैं—समस्त-वस्तु विषय तथा एकदेशविवर्ती। भामह ने समस्तवस्तुविषय का लक्षण नहीं दिया। उद्भट के अनुसार समस्तवस्तुविषय रूपक में रूपता के लिए समस्त अभिमत वस्तुओं का स्वकण्ठ[1] से कथन होता है— वन्धस्तस्य यतः श्रुत्या । उदाहरण सरल तथा स्पष्ट है—

ज्योत्स्नाम्बुनेन्दुकुम्भेन ताराकुसुमशारितम् ।
क्रमशो रात्रिकन्याभिर्व्योमोद्यानमसिच्यत ॥

एकदेशविवर्ती में कुछ उपमान कथित होते हैं साथ ही कुछ अर्थाक्षिप्त अथवा गम्य भी होते हैं— यतश्च श्रुत्यर्थाभ्यां तस्य वन्धस्तत । राजहंसैरवीज्यन्त शरदैव सरोनृपा उदाहरण में राजहंसों का चामरत्व और शरद का नायिकात्व अर्थाक्षिप्त है।

रूपक के अन्य भेदों के विषय में उद्भट का मत है कि मालारूपक भी समस्तवस्तुविषय रूपक है— समस्तवस्तुविषयं मालारूपकमुच्यते । यदि किसी वर्णन में रूपकों की शृंखला हो तो उसे भी समस्तवस्तुविषय माना जायगा। यह कथन 'मालारूपक' को अलग उपभेद मानने का खंडन करता है। उदाहरण है—

वनान्तदेवतावेण्यः पान्थस्त्रीकालशृंखलाः ।
मारप्रवीरासिलता भङ्गमालाश्चकाशिरे ॥

यहाँ भङ्गमालाओं को तीन अलग-अलग रूप दिये गये हैं। यह समस्तवस्तुविषय रूपक है— 'तेनात्र समस्तवस्तुविषयता एकस्मिन् रूप्ये समुच्चयेन बहूनां रूपणानां क्षिप्तत्वात् ।' (इन्दुराज पृ० १४)

---

१ तेन शब्दवाच्या रूपणा । समग्राणि ह्यत्र रूप्यरूपकत्वेनाभिमतानि वस्तूनि स्वकण्ठेनोपात्तस्य रूपकस्य विषयः । अयमसावेकः प्रकारः । (इन्दुराज पृ० १३)

रूपक का एक भेद 'एकदेशवर्त्ति' माना गया है। उद्भट के अनुसार— यद्वकदेशवत्ति स्यात्परस्पण रूपणात' (का० सा० स० १ १३)। एकदेशवृत्ति पररूप के साथ रूपण स होता है, जहाँ प्रकृत को अप्रकृत का रूप प्रदान किया जाय। उदाहरण है—

आसारधारा विशिख नभाभागप्रभासिभि ।
प्रसाध्यते स्म धवलराशाराज्य वलाहक ॥

प्रसाधन के दो अथ है— अलकरण तथा उपाजन। समस्त उदाहरण म आशाराज्य' म आशा की अपेक्षा 'राज्य अधिक प्रमुख है और आरोपविषय आशा उपमान राज्य म श्लेष की शक्ति से विलीन हो जाता है। *एकदेशवत्ति रूपक की व्याख्या इस प्रकार हुई कि जो रूपक* किसी शब्द के उस अथ पर निभर रहे जो किसी विशेष[1] प्रसग म प्रमुख है और उस अथ के कारण उपमेय पर उपमान का तदवत विलय हो। यहा आरोप का रूप विलय बन जाता है। इस वणन से यह भेद उत्तर आचार्यों के परपरित रूपक के निकट है।[2]

वामन

चतुथ अधिकरण क प्रथम अध्याय म शब्दालकारो तथा द्वितीय अध्याय म उपमा का विवचन करने के अनन्तर तृतीय अध्याय म वामन ने शेष अर्थालकारो का विवेचन किया है। ये समस्त अलकार उपमा प्रपच माने गये हैं, इनकी सख्या तीस है। दण्डी का उपमाप्रपच एक *सीमित अथ का द्योतक था और रूपक के भी किसी चक्र[3] की कल्पना दण्डी करते थे* परतु वामन ने आक्षेप-जैसे अलकारो को भी 'उपमाप्रपच माना है अर्थात उपमा प्रपच स वामन का अभिप्राय कदाचित् सादश्यमूलक अलकार मात्र नही है।

उपमाप्रपच म रूपक का वणन प्रतिवस्तु समासोक्ति अप्रस्तुतप्रशसा तथा अपह्नुति के अनन्तर है। रूपक का लक्षण एक सूत्र म देकर वत्ति म उसकी व्याख्या है और केवल एक उदाहरण है। रूपक का लक्षण है—

उपमानोपमेयस्य गणसाम्यात तत्त्वारोपो रूपकम् (४ ३ ६)। गुणसाम्य के कारण उपमानोपमेय का तत्त्वारोप अर्थात अभेद का आरोपण रूपक अलकार कहलाता है।

इस लक्षण पर भामह का प्रभाव स्पष्ट है। भामह ने गुणाना समता को आधार माना था और तत्त्व की रूपता[5] का रूपक नाम दिया था। वामन ने ये दोनो विशेषताए ग्रहण कर ली।

---

१ एकदेशवत्तीत्यत्र हि एकत्र अन्यत्र ईश प्रभविष्णर्योसौ वाक्यार्थस्तत्रवतित्व रूपकस्याभिमतम। (इन्दुराज प १४)

२ दस उद्भट मे की सड ट रिकग्नाइज ि परपरितरूपक इन टिस के ऐंड इन फक्ट ही मड की काल्ड दि ओरिजनेटर आफ दिस इम्पार्टेंट वराइटी। (बनर्जी पृ० २६)

३ न पर्यन्तो विकल्पाना रूपकोपमयोरत ।
दिङ्मात्र दर्शित धीररनक्तमनुमीयताम् ॥ (काव्यादर्श २ ६६)

४ तत्त्वस्याभदस्यारोपणमारोपो रूपकम्। (वत्ति)

५ उपमानेन यत्तत्त्वमुपमयस्य रूप्यत ।
गुणानां समता दष्ट्वा रूपक नाम तद्विदु ॥ (काव्यालंकार २ २१)

आरोप शब्द का प्रयोग लक्षण के विकास का द्योतक है, आगे चलकर आचार्यों ने इस शब्द को अधिक वैज्ञानिक समझकर स्वीकार कर लिया और इसकी व्याख्या इस प्रकार की—'विषयिणा अनिगीर्णस्य विषयस्य तेनैव सह तादात्म्यप्रतीति आरोप ।'

इस लक्षण के संबंध में दो अन्य विशेषताओं पर ध्यान जाता है। सूत्रवृत्ति में बतलाया गया है कि इस सूत्र मे उपमान और उपमेय दोनों का ग्रहण लौकिकी तथा कल्पिता दोनों प्रकार की उपमाओं को कारण सूचित करता है 'उपमानोपमेययोरुभयोरपि ग्रहणं लौकिक्या कल्पितायाश्चो पमाया प्रकृतित्वमत्र विज्ञायेतेति।' सूत्र[1]-संख्या ४,२,२ तथा उस पर वृत्ति के प्रकाश में इसकी व्याख्या इस प्रकार होगी कि उपमा के दो भेद है—लौकिकी तथा कल्पिता। दोनों ही रूपक के आधार बनते हैं, यदि गुणलेशत साम्य है तो उपमा अलकार है, अन्यथा गुणसाम्यात तत्त्वारोप होने पर रूपक का सौंदर्य होगा। लौकिकी के आधार मे उपमान लोकप्रसिद्ध होता है उसके निर्णय में मतभेद का अवकाश नही है। कल्पिता में उपमान का निर्णय गुणबाहुल्य से होता है, दो पदार्थों में से जिसमें गुणबाहुल्य हो वह उपमान है, जिसमे गुण-न्यूनता हो वह उपमेय है। रूपक के लक्षण मे यदि केवल यह कहा जाता कि उपमेय पर उपमान का आरोप रूपक है तो लौकिक साम्य का रूपक तो स्पष्ट हो जाता, किंतु कल्पित साम्य का नही क्योंकि रूपक में उपमान और उपमेय के गुण अलग-अलग चित्रित नही किये जाते अत गुणबाहुल्य का रूपक में निर्णय कठिन है।

लक्षण की दूसरी विशेषता रूपक से पूर्व अपह्नुति के लक्षण के सूत्र की व्याख्या मे स्पष्ट की गई है—'समेन तुल्येन वस्तुना वाक्यार्थेनाऽन्यस्य वाक्यार्थस्यापलापो । और आगे—"वाक्यार्थयोस्तात्पर्यात तादरूप्यमिति न रूपकम। *अर्थात रूपक में पदार्थों का शाब्द तादरूप्य* होता है, अपह्नुति मे वाक्यार्थों का तादरूप्य। रूपक पदार्थों के तादरूप्य का शाब्दिक कथन करता है परंतु अपह्नुति में वाक्यार्थों के तात्पर्य की व्यंजना होती है।

रूपक का प्रतिपादन समाप्त करते-करते वामन ने यह निर्णय दिया है कि समास में रूपक मानना उचित नही है उपमा समास[2] होने के कारण उपमा अलकार मानना चाहिए। उत्तर आचार्य इस कथन से सर्वांशत सहमत नही हो सके। समास में कही उपमा होती है कही रूपक और कही उपमा रूपक मूलक संदेह-संकर।

मुखचन्द्र चुम्बति इस वाक्य मे चुम्बन क्रिया मुख के साथ ही संभव है, चन्द्र के साथ नही, इसलिए उक्त वाक्य का प्रसार होगा मुख, चन्द्र इव, चुम्बति। यह उपमा है। इसके विपरीत यदि वाक्य 'मुखचन्द्र प्रकाशते' है तो प्रकाश का गुण चन्द्र में ही है मुख में नही अत इस वाक्य का प्रसार होगा मुख चन्द्र एव प्रकाशते और सौंदर्य रूपक अलकार का होगा। तीसरी स्थिति यह है जहाँ क्रिया मुख तथा 'चन्द्र दोनों के साथ सम्भव हो—यथा मुखचन्द्र पश्यामि। यह उपमा रूपक मूलक संदेह-संकर का उदाहरण है।

---

१ गुणबाहुल्यतश्च कल्पिता। ४ २ २॥

२ मुखचन्द्रादीनानु उपमासमासान्न चन्द्रादीना रूपकत्व युक्तमिति।

वामन का कथन सविशेष है। वे उपमा समास म उपमा अलकार का प्रतिपादन करत है जिससे आज भी किसी का मतभेद नही ह। पाणिनि के उपमित याघ्रादिभि सामा याप्रयोग (अष्टाध्यायी २,१५६) सूत्र से उपमा-समास सिद्ध होता है। परन्तु मयूरव्यसकान्यश्च (अष्टाध्यायी २ १ ७२) सूत्र से भी ता समास होता है यद्यपि वह उपमा समास नही है। जहा उपमा समास नही है वहाँ तो रूपक माना जा सकता है।

रुद्रट

रुद्रट ने रूपक का निरूपण उपमा के आधार पर किया है। रूपक के दो भेद हैं वाक्यरूपक तथा सामसरूपक। दोना भेदा के उपभेद दो अलग अलग रूप से हो सक्ते हैं। एक प्रकार से दोनो भेदो के उपभेद दो दो है—समस्तविषय तथा एकदेशी।

रूपक का (वाक्य रूपक का भी) सामा य लक्षण है सामा य धम के कथन के बिना ही जहा गुण के साम्य क आधार पर उपमानोपमेय का अभेद कल्पित किया जाय

यत्र गुणाना साम्ये सत्युपमानापमेययोरभिन्न।
अविवक्षितसामा या कल्प्यत इति रूपक प्रथमम ॥८।३८॥

यह लक्षण भामह की परम्परा म है। भामहकृत उत्प्रेक्षा लक्षण से अविवक्षितसामा या चरण तो यथावत ग्रहण कर लिया गया है। नमिसाधु[1] के अनुसार अविवक्षितसामा या पद का प्रयोग रूपक का उत्प्रेक्षा से अ तर स्पष्ट करने के लिए है।

समासरूपक समासापमा के समान है। अ तर यह है कि समासोपमा म उपमान की अप्रधानता होती है और समासरूपक म उपमेय की अप्रधानता।[2]

सावयव निरवयव तथा सकीण तीना उपभेदा म स सावयव के तीन उपभेद सहज आहाय तथा उभय है और निरवयव के चार उपभद शुद्ध माला रशना तथा परम्परित हैं। तदनतर समस्तविषय तथा एकदेशी के लक्षणादाहरण रुद्रट न दिये है।

समस्तविषय तथा एकदेशी भामह के प्रभाव का सकेत दते हैं। 'समास रूपक तथा वाक्य रूपक' (असमस्तरूपक) पर दण्डी का प्रभाव है। रुद्रट ने उपमा तथा रूपक दोना के 'शुद्ध माला तथा रशना उपभेद किये है। शुद्ध' तथा माला उपमा एव रूपक एक जसे हैं। 'रशना रूपक रशनोपमा से विपरीत'[3] है अथात रशनापमा म पूव-पूव पद उत्तरोत्तर पद का उपमान होता जाता है परन्तु रशनारूपक म पूव पूव पद उपमेय होना है।

---

१ उत्प्रेक्षायामप्यभदो विद्यते ततस्तन्निरासायमाह—अविवक्षितसामा यति। रूप्यत्र सामा य न विवक्ष्यते। सिहो देवदत्त इति। उत्प्रेक्षाया तु छपलम्भध्याजन्यादेशादिभि श दसमानोपमेययोरभदो भदश्च विव क्षित इति। परमाथवस्तूभयत्राभद एवेति। (पृ० १०६ ७)

२ समासोपमाया रूपकत्वनिवृत्ययमाह—उपसजनमप्रधानमपमेय यत्र। यथा दुजन एव पन्नगो दुजनपन्नग। समासोपमाया तूपमानमपसजनम्। यथा शशीव मख यस्या सा शशिमखी। (पृ १०७)

३ रशनाया वपरीत्यम ।८।४७॥

परम्परित मे दो उपमाना के साथ दो उपमेया का रहना आवश्यक होता है, एव उपमेय अन्य उपमय की अपक्षा रखता है

यस्मिन्नुपमानाभ्या समस्यमुपमेयमन्यार्थे ॥८।४७॥

उदाहरण है—

स्मर शवर चापयष्टिजयति जनान दजलधि शशिलेखा ।

लावण्य-सलिल सिन्धु सकल-कला-कमल-सरसीयम ॥८।५१॥

यहा स्मर को शवर बनाया गया है क्योकि नायिका का चापयष्टि सिद्ध करना था, नायिका पर चापयष्टि का आरोप करन के लिए स्मर पर शवर का आराप किया गया है ।

मम्मट

तदरूपकमभेदाऽथ उपमानोपमेययाः ॥१०।९३॥

भेद के विद्यमान रहत पर भी अतिसादृश्य के कारण उपमानोपमेय का अभेद-वणन रूपक का चमत्कार है। यह लक्षण उपमा लक्षण की परम्परा मे लिखा गया है। 'साधर्म्यमुपमा भेदे' के अनुसार भेद रहत हुए साधम्य उपमा है, और 'रूपकमभेदो' का अथ होगा भेद रहत हुए भी अभेद रूपक है। वत्ति म मम्मट न स्वय स्पष्ट किया है कि प्रसिद्ध भेद वाले उपमानोपमय का अतिसाम्य के कारण अभेद वणन रूपक है— अतिसाम्यात अपह्नुतभेदयो अभद ।

रूपक के दो भेद हैं—'समस्तवस्तुविपय' तथा एकदशविवर्ती'। जब आराप्यमाण अथ शब्दत उपात्त अर्थात 'श्रौत हो ता रूपक 'समस्तवस्तुविपय है, जब कुछ अश म श्रौत हो और कुछ अश म आथ हो तो रूपक एकदशविवर्ती' है। यह विभाजन 'श्रौती तथा आर्थी उपमा के समानान्तर होत हुए भी किंचित भिन्न है और रूपक भेद परम्परा से मयुक्त है।

रूपक के पुन दो भेद हैं— साग तथा निरग इनका 'सावयव तथा निरवयव भी कह सकत है। मालापमा[1] के समान आरापविपय पर अनेको का आराप हाने स 'मालारूपक' बनता है।

परम्परित रूपक म एक आराप दूसर आराप का कारण[2] होता है—आरोप परम्परा के कारण यह 'परम्परित है। इसके दो भेद हैं—श्लेपमूलक तथा अश्लेपमूलक ।

परम्परित रूपक के सम्बन्ध म मम्मट के दो सकत ध्यान देने योग्य है (क) श्लिष्ट परम्परित रूपक उभयालकार[3] है, केवल प्रसिद्धि के अनुरोध स इसका विवचन यहाँ कर दिया गया है। (ख) भामह आदि कुछ आचाय श्लिष्ट परम्परित रूपक के कुछ उदाहरणो को 'एकदेश विवर्ती ही[4] मानत हैं।

---

१ मालोपमायामिवकस्मिन् बहव आरोपिता । (वृत्ति)

२ नियतारोपणोपाय स्यादारोप परस्य य ॥१ ।९५॥

३ यद्यपि शब्दार्थालकाराऽयमित्यक्त वक्ष्यते च तथापि प्रसिद्धयनुरोधादत्रोक्त ।

४ एकदेशविवर्ति हीदमन्यरभिधायते । (वृत्ति)

भामह म रूपक के दो ही भेद है— समस्तवस्तुविषय' तथा 'एकदेशविवर्ती । अत जा मम स्तवस्तुविषय नही ह वह 'एकदशविवर्ती ही माना जायगा।

मम्मट मालारूपक' को तो स्वीकार करते हैं परतु 'रशनारूपक' का उन्होंने खण्डन किया है। रशनारूपक का उदाहरण देकर वे लिखते है कि इसम कोई चमत्कार नही है इसलिए इसका लक्षण करना व्यथ है— इत्यादि रशनारूपक न वचित्र्यवदिति न लक्षितम।

रुय्यक

अभेदप्राधान्ये आरोपे आरोपविषयानपह्नव रूपकम।

यह लक्षण मम्मट के लक्षण का ही विकास है। मम्मट ने लक्षण म अभेदोऽथ उपमानोप मेययो ' तथा वत्ति मे अतिसाम्यात अनपह्नुतभेदया अभद स्पष्टीकरण दिया था। रुय्यक ने दोनो को मिला दिया— अनपह्नवे आरोपविषय अभेदप्राधान्य आरोपे रूपकम भवति।

रूपक के तीन भेद हैं—निरवयव, सावयव तथा परम्परित। निरवयव के दो उपभेद केवल तथा माला है। सावयव के दो उपभेद समस्तवस्तुविषय तथा एकदेशविवर्ती हैं। परम्परित के दो उपभेद 'श्लिष्टशब्दनिबन्धन तथा अश्लिष्टशब्दनिबन्धन है य दानो भी 'केवल तथा माला' हो सकते हैं। इस प्रकार रूपक क आठ भेद हो गये। ये भेद भामह की परम्परा म हैं और मम्मट मे भी यथावत स्पष्ट हो चुके थे, रुय्यक ने इन भेदो को एक व्यवस्था प्रदान कर दी है। आगे चल कर अप्पय्यदीक्षित ने इन आठ भेदो का 'प्राचीनो' द्वारा वर्णित भेद बतलाया है।

रुय्यक ने दण्डी और रुद्रट[1] के मत का भी सकेत दिया है कि वे रूपक के समस्त आदि भेद मानते है परतु वे भेद ग्राह्य नही हैं उनका वणन उन्ही आचार्यो मे देखना चाहिए— अन्ये तु प्रत्यक्ष वाक्योक्तसमासोक्तभेदा सभवन्ति तऽन्यतो द्रष्टव्या।

जयदेव

चन्द्रालोक (पचम मयूख) मे रूपक का लक्षण एव विभाजन किंचित भिन्न है। रूपक का लक्षण है—

यत्रोपमानचित्रेण सवथाप्युपरज्यते।
उपमेयमयी भित्तिस्तत्र रूपकमिष्यते ॥५।१८॥

जहाँ उपमेयमयी भित्ति उपमान रूपी चित्र से सवथा रँग दी जाती है वहाँ रूपक अलकार का चमत्कार है। यह लक्षण रूपक का उदाहरण भी ह। इस लक्षण म शास्त्रीय शब्दों का प्रयोग नही किया गया विम्ब के द्वारा रूपक का परिचय प्रस्तुत किया गया है।

रूपक क चार भेद हैं—सोपाधिरूपक साम्यरूपक आभासरूपक तथा रूपितरूपक।

---

1 दण्डी मे रूपक के भेदो म समस्त असमस्त, समस्त-व्यस्त भेद पाये जाते हैं और रुद्रट ने रूपक के सवप्रथम दो भेद बतलाये हैं—वाक्यरूपक तथा समासरूपक। रुय्यक की शब्दावली 'वाक्योक्त-समासोक्तभेदा' इसी ओर सकेत करती है।

'सोपाधिरूपक' वस्तुत परम्परित का ही एक नाम है। लक्षण है 'समान धर्म के उपादान से जहाँ प्रधान आरोप की सिद्धि हो।'[1] 'आशय यह हुआ कि जहाँ एक आरोप प्रधान आरोप के प्रति कारण हो।'[2]

सादृश्यरूपक' मे सादृश्य पृथक-पृथक पदो द्वारा कहा जाता है। यह अन्य आचार्यों का समस्तवस्तुविषय' सावयव (साग) रूपक है। भेदो का यह अन्तर्भाव उदाहरणो के आधार पर किया जा सकता है।

आभासरूपक' वस्तुत निरग अथवा निरवयव रूपक है। 'अगयष्टि' पद मे अग मे यष्टि का आरोप किया गया है। यदि अग प्रत्यग आरोप होता तो रूपक सुन्दर बन जाता, परन्तु कवि को केवल अगो का ही आरोप अभीष्ट है। विद्वानो की इस व्याख्या से सहमत होना कठिन है कि अग मे यष्टि के आरोप मे कोई सुन्दरता' की प्रतीति नही होती इसलिए यह रूपक का आभास मात्र है। क्योकि यदि सुन्दरता नही है तो यह रूपक का दोष है, उसका अलग भेद नही बन सकता।

अतिम भेद 'रूपितरूपक है। 'रूपितेनारोपेणरूपक रूपितरूपकम्।' 'अङ्गयष्टि धनुवल्ली पद मे सवप्रथम 'अग' मे 'यष्टि' का और 'धनु मे वल्ली' का आरोप हुआ, फिर 'अङ्गयष्टि पद मे धनुवल्ली पद का आरोप हुआ अत आरोपित पदो का आरोप करने से यह 'रूपितरूपक' है।

विश्वनाथ

रूपक रूपितारोपो विषय निरपह्नवे ॥१०।२८॥

निरपह्नव विषय मे रूपित (उपमान) के आरोप का नाम रूपक है। इस लक्षण की वृत्ति मे कहा गया है कि रूपित पद का प्रयोग परिणाम अलकार मे अन्तर करता है और 'निरपह्नव' पद अपह्नुति अलकार से अन्तर करता है। मम्मट ने रूपक की व्याख्या करते हुए 'अपह्नुतभेदयो अभेद पर बल दिया था और मम्मट से पूर्व वामन ने इस बात को स्पष्ट किया था कि रूपक पदार्थों के तादरूप्य का शाब्दिक कथन करता है परन्तु अपह्नुति मे वाक्यार्थों के तात्पर्य से तादरूप्य की व्यजना होती है।

रूपक के तीन भेद हैं—परम्परित, साग तथा निरग। परम्परित के दो उपभेद 'श्लिष्ट शब्दनिबन्धन तथा 'अश्लिष्टनिबन्धन मम्मट के अनुसार ही है। इन उपभेदो के पुन उपभेद केवल तथा 'माला है। इस प्रकार परम्परित रूपक के चार उपभेद हो गये। सागरूपक के दो उपभेद समस्तवस्तुविषय तथा एकदेशविवर्ती है। केवल अगी के रूपकत्व मे निरग रूपक है, यह 'माला' तथा केवल दो प्रकार का हो सकता है। इस प्रकार सब मिलाकर रूपक के आठ भेद हो गये।

---

१ समानधर्मयुक्ताध्यारोपात सोपाधिरूपकम् ।५।११६॥

२ कथाभट्टीया पृ० ११०।

३ इदमेव च समस्तवस्तुविषय सावयव (साङ्गम्) रूपकमुच्यते दर्पणान्ते। (पौर्णमासी पृ० १११)

४ अत्राग यष्टित्वारोपो न सुन्दर इत्यत्र रूपकस्याभासमात्रत्वम्। (वही पृ० ११२)

५ रूपित इति परिणामाद् व्यवच्छेद। निरपह्नवे इत्यपह्नुतिव्यवच्छेदार्थम् ॥ (पृ० ३०४)

रूपक के सम्बन्ध म दो शकाआ को उठाकर विश्वनाथ ने उनका समाधान कर दिया है। (क) क्वचिद साग रूपक म भी आरोप्य विषय (=उपमान) श्लिष्ट शब्दो द्वारा कह जाते है। वहा साग रूपक ही होगा, श्लिष्ट परम्परित नही। क्योकि 'परम्परित रूपक' वहा होता है जहाँ कारणभूत आरोप के बिना कार्यभूत आरोप असगत सा मालूम पडता हो अर्थात प्रत्यक्ष सादृश्य न होने के कारण आरोप का तत्त्व ठीक ठीक समझ म न आता हो (विमला पृ० ३०७)। (ख) रूपक के इस प्रकार के कतिपय भेद शब्दश्लेषमूलक हैं। फिर भी इनका विवेचन अर्थालकार प्रकरण म ही होता है। क्योकि इनम रूपकत्व ही विशेषता[1] है और इनका चमत्कार रूपक का ही चमत्कार है। ये दोना शकाएँ मम्मट म भी आ गई है परन्तु विश्वनाथ न इनका समाधान अपने ढग से एव अधिक सतोषप्रद तर्क द्वारा किया है।

चलते चलते विश्वनाथ न अधिकारूढवशिष्ट्य रूपक की चर्चा कर दी है जो लक्षण-नाम प्रकाश[2] है। इस रूपक भेद मे आरोप्यमाण (उपमान) की अपेक्षा आरोप विषय (उपमेय) म कुछ विशेषता अधिक होती है। 'इद वक्त्र साक्षाद विरहितकलक शशधर' म शशधर की अपेक्षा वक्त्र म विरहितकलकत्व की विशेषता है। यह दण्डी का व्यतिरेक रूपक है।

अप्पय्यदीक्षित

आरोपविषयस्य स्यादतिरोहितरूपिण ।
उपरजकमारोप्यमाण तद्रूपक मतम ॥ (चित्रमीमासा)

इसकी व्याख्या भी ध्यान देने योग्य है अत्रारोपविषयस्य इत्यनेन उत्प्रेक्षातिशयोक्त्यो र्व्यावृत्ति । तत्र मुखादेरारोपविषयत्वाभावात। अतिरोहितरूपिण इत्यनेन ससन्देहभ्रान्ति मदपह्नुतीना व्यावृत्ति । तेषु सन्देहभ्रान्त्यपह्नुतविषयस्य तिरोधानात। उपरजकमित्यनेन समा सोक्तिपरिणामव्यावृत्ति । तयोर्हि नोपरजकत्व विषयस्यतात्द्रूप्यापादकत्वलक्षणम। समासोक्तौ व्यवहारमात्रसमारोपण तादरूप्यप्रतीतेरेवाभावात । परिणामे आरोप्यमाणस्यव विषयतादरूप्यापत्त्या विषयस्यारोप्यमाणतादरूप्यापत्त्यभावादित्याहु । (पृ०१६१ ६२)

आरोपविषय 'अतिरोहितरूपी तथा उपरजक पदो से दीक्षित ने वैज्ञानिक लक्षण देने का प्रयास किया है और अन्य आचार्यो के अतिरिक्त दण्डी[3] एव मम्मट के लक्षणो का खण्डन किया है।

चित्रमीमासा म रूपक के उन आठ भेदो का वर्णन है जो अलकारसर्वस्व म स्वीकार किये गये है और प्राचीन परम्परा से चले आ रहे थे। रूपक भेदो के सम्बन्ध म दीक्षित ने एव

---

१ अत्र केषाचित्र रूपकाणा शब्दश्लेषमूलत्वे पि रूपकविशेषत्वाद् अर्थालकारमध्ये गणनम्। (वत्ति प ३०९)

२ अधिकारूढवशिष्ट्य रूपक यत् तदेव तत् ।१ ।३४॥

३ एवम—उपमैव तिरोभूतभेदा रूपकम् यते तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययो इत्यादिलक्षणष अतिव्याप्त्यादिदोषा यथासमवमूनेया। (प १७१)

४ एवमष्टौ भेदा रूपकालकारस्य प्राचीन प्रदर्शिता। (प १८१)

महत्त्वपूर्ण समस्या उठायी है कि जिस प्रकार रूपक के आठ भेद किये गये हैं उसी आधार पर उपमा के भी भेद हो सकते हैं[1]—

(क) केवल निरवयवोपमा (ख) माला निरवयवोपमा (ग) समस्तवस्तुविषय सावयवोपमा (घ) एकदेशविवर्तिनी उपमा (ङ) अश्लिष्टशब्दनिबंधन केवल परम्परितोपमा (च) अश्लिष्टशब्दनिबंधन माला परम्परितोपमा (छ) श्लिष्टशब्दनिबंधन केवल परम्परितोपमा (ज) श्लिष्टशब्दनिबंधन माला परम्परितोपमा।

इस प्रकार उपमा के असंख्य[2] भेद हो सकते हैं। इसी प्रकार रूपक के भी रसना रूपक[3] आदि असंख्य भेद हो सकते हैं। संकेत यह है कि उनके विवेचन की आवश्यकता नहीं है, उनका 'दिङ्मात्र दर्शन भी पर्याप्त है', अप्पयदीक्षित ने दण्डी के श्लोक से अपने पक्ष का समर्थन किया है।

कुवलयानंद में रूपक का लक्षण है—

विषय्यभेदताद्रूप्यरंजनं विषयस्य यत् ॥१७॥

अर्थात् "विषयिणः उपमानस्य अभेद-ताद्रूपाभ्यां विषयस्य उपमेयस्य यद् रंजनम् तद् रूपकम्" (अलंकार चंद्रिका पृ० १५)। विषयिणो रूपेण विषयस्य रंजन रूपकम्' (वृत्ति पृ० १६)। लक्षण के अनुसार रूपक के दो भेद हो गये—'अभेदरूपक' तथा 'ताद्रूप्यरूपक'। प्रत्येक भेद के तीन तीन उपभेद हैं—अधिक, न्यून तथा अनुभय। इस प्रकार कुवलयानंद में रूपक के छह भेदों[4] का वर्णन है। वृत्ति में कहा गया है कि रूपक के 'सावयव' आदि भेदों का निरूपण 'चित्रमीमांसा' में देखना चाहिए— रूपकस्य सावयवत्व निरवयवत्वादिभेदप्रपंचस्तु चित्रमीमांसायां द्रष्टव्यम् (वृत्ति पृ० १९)।

'कुवलयानंद' में चन्द्रालोक की छाया केवल रंजन में देखी जा सकती है अन्यत्र नहीं। विभाजन तो नितान्त स्वतन्त्र है ही लक्षण में भी दीक्षित ने जयदेव के पदों का प्रयोग नहीं किया।

जगन्नाथ

उपमेयतावच्छेदकपुरस्कारेणोपमेये शब्दान्निश्चीयमानम् उपमानतादात्म्यं रूपकम्। तच्चोपस्कारकत्वविशिष्टमलंकारः। (रसगंगाधर पृ० २९७)

उपमेयतावच्छेदक (मुखत्व) को आगे रखकर शब्द द्वारा निश्चित की जानेवाली, उपमेय

---

१ नव भेदा उपमाया अपि वक्तुं शक्याः। (पृ० १८१)

२ एवमसंख्या उपमाभिदा। (पृ० १८५)

३ इत्येवमाद्या रसनारूपकाद्या रूपकविशेषा अप्यसंख्याः। (पृ० १८६)

४ रूपकं तत् त्रिधाधिक्यन्यूनत्वानुभयोक्तिभिः ॥१७॥

५ रूपकं तावद् द्विविधम् अभेदरूपकं ताद्रूप्यरूपकं चेति। द्विविधमपि प्रत्येकं त्रिविधम्। प्रसिद्धविषय्याधिक्यवर्णनेन तन्न्यूनत्ववर्णनेन अनुभयोक्त्या चैवं रूपकं षड्विधम्। (वृत्ति पृ० १६)

(मुख) मे उपमान (चन्द्र) की एकरूपता (अभेद) को रूपक कहते हैं। शोभाजनक होने से इसका अलकारत्व है।

इस लक्षण मे नवीनता केवल शब्दावली की है। विवेचन से ज्ञात होता है कि 'उपमेयता वच्छेदकपुरस्कारेण' विशेषण अपह्नुति, भ्रान्तिमान, अतिशयोक्ति, और निदर्शना से रूपक को भिन्न सिद्ध करता है। 'शब्दात' विशेषण का अभिप्राय 'आहाय अभेद से है, भ्रान्तिमान मे आने वाले वास्तव अभेद से नही। 'निश्चीयमानम' से उत्प्रेक्षा का निवारण होता है। 'उपमान' 'उपमेय' पदो से सादृश्य प्राप्त होता है।

'रसगगाधर' मे रूपक के वे आठ भेद है जो प्राचीन आचार्यों म चले आ रहे थे। 'वाक्यार्थोपमा' के समान पण्डितराज ने 'वाक्यार्थरूपक' की भी कल्पना की है। "एक वाक्य का अर्थ उपमेय हो और उसमे अन्य वाक्य का उपमानरूप अर्थ आरोपित किया जाय तो 'वाक्यार्थरूपक' होता है।"[1] यदि आप 'त्वयि कोपो महीपाल सुधाशाविव पावक" में उपमा मानते हैं तो 'इव' निकाल देने पर—

"त्वयि कोपो महीपाल ! सुधाशौ हव्यवाहन ।"

मे रूपक मानना पडेगा। ऐसे स्थल पर गम्योत्प्रेक्षा नही मानी जा सकती, क्योंकि यहाँ निश्चय है, सम्भावना नही।

केशवदास

कविप्रिया' के तेरहवें 'प्रभाव मे रूपक का वर्णन दण्डी के आधार पर परन्तु अत्यन्त सक्षिप्त है। रूपक' का लक्षण अपूर्ण एव सदोष है—कदाचित दण्डी के अनुवाद म असावधानी के कारण—

उपमा ही के रूप सो मिल्यौ वरनिये रूप। १३।१२ ।

इसका अर्थ इस प्रकार करना होगा—'मिल्यौ अर्थात साम्याधिक्य के कारण उपमेय का रूप उपमान का रूप बनाकर वर्णित किया जाय। अथवा—उपमान का रूप और उपमेय का रूप मिल्यौ (=एक) वर्णित किया जाय। अथवा—रूपक उपमा का ही रूप है, इसम उपमेयोपमान मे 'रूपारोप' वर्णित किया जाता है।

रूपक के अनेक[2] भेद हैं परन्तु इस पुस्तक म अत्यन्त 'सरल (सुभाव) तीन भेदो का वर्णन किया जा रहा है। ये भेद हैं— अदभुत रूपक विरुद्ध रूपक तथा रूपक रूपक। विरुद्ध रूपक तथा रूपक रूपक दण्डी मे इन्ही नामो से विद्यमान थे। केशव का 'अदभुत रूपक' दण्डी का 'व्यतिरेक रूपक है। 'विरुद्ध रूपक का जो उदाहरण केशव ने दिया है वह वस्तुत रूपकातिशयोक्ति का बनता है।

---

१ हिन्दी रसगगाधर द्वितीय भाग पृ० २२८।

२ ताके भेद अनेक मैं तीनै कहौं सुभाव ।१३।१४।

देवदत्त

देव का रूपक का लक्षण दण्डी से अनूदित है—

उपमा और उपमेय मे, रूपक, भेद न जाहि।' (शब्दरसायन नवम प्रकाश)

'उपमव तिरोभूतभेदा रूपकमुच्यते।' (काव्यादश, २,६६)

दण्डी के ही अनुसार रूपक के तीन भेद है—समस्त, असमस्त (व्यस्त) तथा व्यस्त-समस्त। अत म दण्डी के ही अनुकरण पर 'सकल जाति रूपक' (सकल, अवयव तथा अवयवी) के भी उदाहरण दे दिये गये है।

भिखारीदास

दास कवि ने रूपक का विवेचन बडे विस्तार[1] से किया है—

उपमा अरु उपमेय तें, वाचक धम मिटाइ।

एक क आरोपिय सो रूपक कविराइ॥१०।१३॥

वाचक श द तथा सामा य धम को हटाकर उपमेय पर उपमान का आरोप करके, उनके अभेद (=एक) का वणन रूपक का चमत्कार है। यह लक्षण व्यावहारिक भी है तथा शास्त्रीय भी। व्यावहारिकता यह है कि 'वाचक धम का मिटना रूपक का चिह्न है। शास्त्रीयता आरोप' तथा अभेद मे है। शास्त्रीयता दासकवि न सस्कृत के आचार्यो से ली है और व्यावहारिकता भाषा की प्रवत्ति को देखकर स्वय आयाजित की है।

अप्पय्यदीक्षित के अनुकरण पर प्रथम रूपक के दो भेद[2] किय गये है—तादूप तथा अभद। तदनन्तर प्रत्यक के तीन-तीन भेद— अधिक हीन तथा सम है।

दासकवि ने रूपक के अ य प्रचलित भेदो म से निरग, परम्परित, परिणाम तथा समस्तविषयक का वणन किया है। निरग तथा समस्तवस्तुविषयक निरग (=निरवयव) तथा साग' (=सावयव) नही है। निरग' वस्तुत असमस्त अथवा अवयवी रूपक है जो समस्त (दास के श दो म समस्तविषयक') के विपरीत है। वामन का मत था कि समास म रूपक नही मानना चाहिए परन्तु उत्तर आचाय समास म कही उपमा, कही रूपक तथा कही उपमा रूपक-मूलक स देहसकर मानते ह। दासकवि ने इसी आधार पर समस्त रूपक के पाँच उपभेद लिखे हैं—उपमावाचक उत्प्रेक्षावाचक, अपह्नुतिवाचक, रूपक वाचक (रूपक रूपक[3]) तथा परिणामवाचक।

यदि समस्तरूपक के इन भेदो का मान लिया जाय तो परिणाम भी रूपक का एक भेद बन जाता है। इसका लक्षण है—

---

१ 'काव्यनिणय के तृतीय उल्लास मे रूपक का लक्षणोदाहरण केवल एक दोहे म हो है—दोहा सख्या १६।

२ कहूँ कहिये यह दूसरो कहू राखिये न भद ॥१ ।१४॥

३ दास न रूपकरूपक नाम दिया है परन्तु यह दण्डी के रूपकरूपक स भिन्न है

४ रूपक के उपमारूपक, रूपकरूपक तथा 'तत्वापह्नवरूपक दण्डी में भी पाये जाते हैं।

वस्तु जु है उपमान ह्व, उपमेयहि को काम।
नहि दूषण आभानिय है भूषन परिनाम ॥१०।३१॥

मम्मट आदि ने परिणाम को स्वतन्त्र अलंकार माना है।

कन्हैयालाल पोद्दार

पोद्दार ने मम्मट के अनुसार रूपक का लक्षण किया है और मम्मट के ही अनुसार उस लक्षण की वृत्ति भी लिख दी है जिसमें रूपक की आकृति में भेद स्पष्ट हो जाता है। इनके लक्षण[1] पर मम्मट के साथ-साथ विश्वनाथ का भी प्रभाव है।

रूपक के दो भेद हैं—अभेद रूपक तथा तादरूप्य रूपक। दोनों के तीन-तीन भेद हैं—सम, अधिक, न्यून। ये छह भेद कुवलयानन्द के अनुसार हैं। जिन आठ भेदों का वर्णन रुय्यक ने किया है उनको पोद्दार ने भी सम अभेद रूपक के भेदों के रूप में लिया है। लेखक का स्पष्टीकरण मौलिक एवं उचित है—

ऊपर दिये गये सभी उदाहरणों में उपमेय में उपमान का आरोप समानता से (कुछ न्यूनता या अधिकता के बिना) किया गया है अतः ये सभी सम-अभेद रूपक के उदाहरण हैं। भामह उद्भट और मम्मट आदि ने केवल सम-अभेद रूपक ही लिया है। साहित्यदर्पण और *कुवलयानन्द में अधिक और न्यून रूपक भी लिखे हैं।*   (*अलंकार मंजरी पृ० १४८*)

रूपक विवेचन में पोद्दार के कतिपय निष्कर्षों पर ध्यान देना चाहिए—

(क) दण्डी ने अधिक रूपक को व्यतिरेक रूपक के नाम से लिखा है। (पृ० १४९)

(ख) वास्तव में अधिक रूपक व्यतिरेक अलंकार से भिन्न नहीं है। (वही)

(ग) तादरूप्य रूपक केवल कुवलयानन्द में लिखा है अन्य प्राचीन ग्रन्थों में इसका उल्लेख नहीं है। (पृ०१५०)

अन्त में पोद्दार ने दण्डी के अनुसार रूपकरूपक युक्तरूपक तथा हेतुरूपक का वर्णन भर कर दिया है। रूपक ध्वनि (पृ० १८३) की भी चर्चा है। बीच-बीच में हिन्दी के कतिपय आचार्यों की कटु आलोचना भी है।

रामदहिन मिश्र

रूपक का लक्षण विश्वनाथ की शब्दावली में दिया है उपमेय में उपमान के निषेध रहित आरोप को रूपक अलंकार कहते हैं। रूपक के भेदों का उसी प्रकार वर्णन है जैसे कन्हैयालाल पोद्दार ने किया है। रूपक के प्रतिपादन प्रसंग में मिश्र के कतिपय विवेचन निष्कर्ष उपयोगी हैं

(क) वाचक धर्म लुप्तोपमा में उपमान पहले रक्खा जाता है जैसे चन्द्रमुख। अर्थ होता है—चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख। परन्तु रूपक में उपमेय पहले रक्खा जाता है जैसे मुखचन्द्र।
(काव्यदर्पण पृ० ३६१)

---

१ उपमेय में उपमान का अभेदरूप से आरोप किये जाने को रूपक अलंकार कहते हैं।
(अलंकार-मंजरी पृ० १३६)

(ख) पून अभेद रूपक। यह एक प्रकार का व्यतिरेकालकार है।

(ग) उपमेय का उपमान का जहा दूसरा रूप कहा जाता है वहा तदरूप होने से यह 'ताद्रूप रूपक' अलकार होता है।

रामचन्द्रिन मिश्र का रूपक विवेचन सक्षिप्त एव स्वच्छ है। इस पर 'नव्याचार्यो' का प्रभाव है, विशेषत विश्वनाथ तथा अप्पय्यदीक्षित का।

उपसहार

रूपक भरत द्वारा उदभावित चार अलकारो म से दूसरा है इसको महत्त्व की दृष्टि से उपमा के तत्काल पश्चात स्थान दिया गया है। उपमा के समान रूपक भी सादृश्यमूलक अलकार है, और सादृश्य म यह उपमा से भी अधिक आकृष्ट करता है। उपमा और रूपक का पारस्परिक अन्तर आचार्यो के ध्यान मे प्राय रहा है। रूपक की मुख्य विशेषता 'अभेद तथा 'तादरूप' मे से एक को माना गया है।

लक्षण

भरत ने रूपक लक्षण म तीन गुणो पर बल दिया है—उपमा का आधार सादृश्य' है, परन्तु रूपक का आधार औपम्य (=किंचित सादृश्य के आधार पर कल्पित तुल्यता) उपमा का आधार 'गुणाकृति' है परन्तु रूपक का आधार केवल गुण उपमा म आकृति का सादृश्य है रूपक म रूप निरूपणा। भामह ने गुणाना समता के साथ साथ अभेदरूपता (उपमानेन यत्तत्वमुपमेयस्य रूप्यते) को रूपक-लक्षण म महत्त्व दिया यह अभेद वाला तत्त्व परवर्ती म रूपक का मुख्य आधार माना गया। दण्डी का लक्षण इसी अभेद मात्र पर बल देता है—उपमैव तिरोभूत भेदा रूपकमुच्यते। उद्भट ने सर्वप्रथम यह स्थापना की थी कि रूपक म प्रस्तुताप्रस्तुत का सम्बन्ध लक्षणा पर निर्भर है यह गुणवृत्तिप्रधान सम्बन्ध रूपक के निर्माण की धुरी है। वामन ने भामह के लक्षण का विशदीकरण करते हुए रूपक के दो अग 'गुणसाम्य तथा तत्त्वारोप बतलाये रूपक म पदार्थो का तादरूप्य होता है (अपह्नुति के समान वाक्यार्थो का नहीं)। मम्मट तथा रुय्यक ने अभेद पर बल दिया तो विश्वनाथ ने आरोप पर। मम्मट तथा रुय्यक ने सर्वप्रथम यह कहा कि रूपक का अभेद 'निरपह्नव' होता है—निषेधरहित रहता है।

इस प्रकार रूपक के लक्षण म यह सर्वस्वीकार्य है कि इसम गुणाना समता होती है। दूसरी स्वीकृति अभेद अथवा तादरूप की है—कुछ आचार्य अभेद को मानते है कुछ तादरूप्य' को।[1] अभेद अथवा आरोप का कारण लक्षणा शब्द शक्ति है। यह अभेद अथवा आरोप पदार्थो म होता है और निषेध रहित होता है। रूपक म एक वस्तु का अन्य पर आरोप होना है इस बात से तो सभी सहमत है परन्तु यह आरोप उन वस्तुओ के तादरूप के रूप म होना

१ अभेदारोप एव रूपकमिति काव्यप्रदीप। अन्ये तु साम्यमेव रूपकमित्याहु।—
(अलकारकौस्तुभ पृ० २ ६)

अथवा अभेद के रूप म—इस विषय का लेकर उनम मतभेद है । कतिपय आलकारिक आराप का अथ जहा तादरूप्य लते है वहाँ अय उसका अथ अभेद लेते है।"[1] रूपक का आधार लक्षणा गौणी लक्षणा होती है क्याकि वहा सादश्य सम्बध है, केवल शोभाकर मित्र न इस विशेषता की उपेक्षा करके शुद्ध लक्षणा को स्वीकार किया है फलत उनके रूपक म सादश्यतर सम्बध[2] भी समाविष्ट हो जाते है—विशेषत कायकारणादिभाव।

भेदोपभेद

भामह ने सवप्रथम रूपक के भदो का उल्लेख किया। रूपक दो प्रकार का है— समस्तवस्तु विषय तथा 'एकदेशविवर्ती । य भेद उत्तर आचार्यों ने भी स्वीकार किय है। उद्भट ने इन दोना भेदा की व्याख्या की है और एक तीसरा भेद एकदेशवृत्ति भी माना है। एकदेशवत्ति भेद आग चलकर 'परम्परित नाम से प्रसिद्ध हुआ।

दण्डी ने अय अलकारा के समान रूपक के भी अनेक भेदा का वणन किया है। वर्णित उनीस भेदा म से कुछ स्वतत्र अलकार भी बन सक है। दण्डी के सामने विभाजन के कतिपय आधार थे। एक आधार समास था जिसका मानकर रूपक समस्त असमस्त तथा समस्त व्यस्त है। दूसरा आधार अवयव हैं जिसस रूपक सकल अवयव तथा अवयवी बनता है। तीसरा आधार सम्बध-सगति युक्त तथा अयुक्त रूपक का कारण है। इसी प्रकार अय आधारा पर अय भेद हैं। रुद्रट ने भी रूपक के अनेक भेद बतलाय है जिनम स सावयव, निरवयव माला रशना तथा परम्परित आगे भी चले।

मम्मट तथा रुय्यक ने रूपक क आठ भेदो पर मुहर लगा दी, जिनको चित्रमीमासा म एवमष्टौ भेदा रूपकालकारस्य प्राचीन प्रदर्शिता कहा गया है। ये भेद रूपक के मुख्य तीन भेद निरवयव सावयव तथा परम्परित निरवयव के उपभेद 'केवल तथा माला सावयव के समस्तवस्तुविषय तथा एकदेशविवर्ती' एव परम्परित के 'श्लिष्टशब्दनिबधन तथा भिन्न शब्दनिबधन है—ये अतिम दोना भी केवल तथा माला हो सकत हैं।

कुछ आचार्यों न किसी नवीन आधार पर रूपक का नवीन विभाजन प्रस्तुत किया है। जयदेव के अनुसार रूपक क चार भेद है— सोपाधिक जा परम्परित का पर्याय लगता है सादश्यरूपक जा समस्तवस्तुविषय सावयव (साग) रूपक है आभासरूपक जा निरग अथवा निरवयव ठहरता है तथा रूपितरूपक जा नया चमत्कार है। विश्वनाथ न अधिकारूढ वशिष्टय रूपक की चर्चा की है जा दण्डी का व्यतिरक रूपक है। कुवलयानद म रूपक के दो

---

१ सस्कृत साहित्य मे सादश्यमूलक अलकारो का विकास पृ० २२६ ।

२ सादश्यसम्बधनिबधनाया मलकृतित्व यत् लक्षणाया ।
साम्येऽपि सवस्य परस्य हतो सम्बधभदेऽपि तथव यक्तम् ।। (अलकार रत्नाकर पृ० ३३)

भेद हैं—अभेद तथा तादरूप, और प्रत्यक के अधिक, यून तथा अनुभय उपभेद है। शोभाकर मित्र तथा जगन्नाथ न वाक्यार्थोपमा के समान वाक्यार्थरूपक की कल्पना की है।

इतने भेदाभेद होने पर भी उपमा के समान रूपक को विभाजन का वैज्ञानिक आधार नही मिला। मम्मट और रुय्यक न किंचित् वैज्ञानिकता का प्रयत्न किया है परन्तु वह प्राचीन आचार्यों तक ही सीमित रही। शेष जो विभिन्न प्रयत्न हुए वे वर्णन मात्र थे।

विशेष निष्कर्ष

रूपक का विवेचन करत हुए कतिपय आचार्यो ने कुछ विशेष निष्कर्ष निकाले हैं जिनकी ओर ध्यान देना चाहिए—

(क) वामन के अनुसार समास म रूपक अलकार नहा होता, वहा उपमा अलकार मानना उचित है। परन्तु अन्य आचार्य इस निष्कर्ष स सहमत नही है।

(ख) मम्मट के अनुसार श्लिष्ट परम्परित रूपक उभयालकार ह। विश्वनाथ का मत ठीक विपरीत है कि यह चमत्कार रूपक का ह श्लेष का नही इसलिए इसका विवचन अर्था लकार प्रकरण म ही होगा।

अन्य अलकारो के साथ

रूपक की सबस अधिक निकटता उपमा से ह। भरत से ही रूपक विवेचन का आधार उपमा से इसकी पृथक्ता दिखाना रहा है। उपमा भेदाभेदप्रधान अलकार है और रूपक अभेदप्रधान, उपमा म गुणाकृति साम्य ह रूपक म गुणसाम्य उपमा म गुणलेशेन साम्य होना है और रूपक म गुणाना समता। माणिक्यचन्द्र के अनुसार साम्यमात्रे उपमा परन्तु अतिसाम्य तु रूपकम्। समास के कारण रूपक का वाचिद्यमलुप्तोपमा से अन्तर कठिन हो जाता है, परन्तु प्रकरण ज्ञान उस कठिनता का समाधान है। मुखचन्द्र म प्रकरण ज्ञान से उत्तर पदार्थ प्रधान हुआ तो रूपक अलकार ह, इसका विग्रह होगा मुखमेव चन्द्र। प्रकरण ज्ञान से यदि पूर्वपदार्थ की प्रधानता सिद्ध हुई तो उपमा अलकार है विग्रह होगा—मुख चन्द्र इव।

रूपक उत्प्रेक्षा स भिन्न है। रूपक म आरोप की प्रधानता है और उत्प्रेक्षा म सभावना की। रूपक म प्रस्तुताप्रस्तुत के अभेद का निश्चय होता है, उत्प्रेक्षा म अनिश्चय। रूपक भ्रान्तिमान् से भिन्न है। भ्रान्तिमान् म प्रस्तुत पर अप्रस्तुत का आरोप वास्तविक ह परन्तु रूपक म यह आरोप आहार्य होता है। रूपक और अपह्नुति म अन्तर है। अपह्नुति म प्रस्तुत के ऊपर अप्रस्तुत का आरोप निषेधपूर्वक किया जाता है परन्तु रूपक म यह आरोप निरपह्नव होता है। रूपक म प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत दोनो ही विद्यमान रहते हैं परन्तु अतिशयोक्ति म केवल अप्रस्तुत रहता है प्रस्तुत नहीं। रूपक म तद्रूपता होती है अतिशयोक्ति म अध्यवसान।

३ दीपक

भरत

एक वाक्य के द्वारा नानाधिकरणार्थों[1] के प्रकाशक शब्दों का संयोग[2] दीपक कहलाता है। इस लक्षण में दीपक की मुख्य विशेषता एकवाक्यता संयोग स्वीकार की गई है। प्रस्तुत अप्रस्तुत भाव नहीं है। स्पष्ट एक क्रिया द्वारा नाना अधिकरणों के अर्थों का प्रकाश करने वाले शब्दों का एकत्र संयोग यहाँ अपेक्षित है। यह स्थिति कारकदीपक की है। नाट्यशास्त्र में दीपक के भेद नहीं हैं। एकमात्र उदाहरण बड़ा स्पष्ट है—

सरांसि हंसैः कुसुमैश्च वृक्षा मत्तद्विरेफैश्च सरोरुहाणि।
गोष्ठीभिरुद्यानवनानि चैव तस्मिन्नशून्यानि सदा क्रियन्ते ॥१६।६१॥

भामह

काव्यालंकार में दीपक का विस्तार हुआ है। परन्तु भामह ने दीपक का स्पष्ट लक्षण नहीं दिया। श्लोकार्द्ध में वे दीपक के तीन भेदों की चर्चा करते हुए कहते हैं कि आदि, मध्य तथा अन्त में रहने की स्थितियाँ दीपक के नाम को साधक करती हैं[3] (एक स्थान पर स्थित होकर) (अनेक) अर्थों का दीपन करने के कारण यह सौन्दर्य दीपक कहलाता है।

दीपक के तीन भेद हैं[4] आदि में स्थित हो तो आदि दीपक, मध्य में स्थित हो तो मध्य दीपक और अन्त में स्थित हो तो अन्तदीपक। यह स्थिति वस्तुतः क्रियापद की है। एक क्रियापद आदि मध्य अथवा अन्त में स्थित होकर वाक्य में विभिन्न अर्थों का दीपन करता है तो वह सौन्दर्य दीपक कहा जाता है। भरत और भामह के लक्षणों में कोई अन्तर नहीं है।

आदिदीपक के उदाहरण में 'जनयति' क्रियापद आदि में अर्थात् श्लोक के प्रथम चरण में स्थित है। 'मद प्रीति को जन्म देता है[5] प्रीति मानभंग करने वाले काम को, काम प्रिया के संगम की उत्कण्ठा को और उत्कण्ठा असह्य मानसिक वेदना को।' इस उदाहरण में अर्थों की पारस्परिक शृंखला संयोगवश आ गयी है दीपक के लिए वह अनिवार्य अथवा अभीष्ट नहीं है।

मध्यदीपक के उदाहरण में 'अलंकुरुते' क्रियापद मध्य में अर्थात् श्लोक के द्वितीय चरण में,

---

१ नानाधिकरणार्थानां शब्दानां सम्प्रकीर्तितम्।
एकवाक्येन संयोगो यस्तद् दीपकमिहोच्यते ॥१६।६०॥

२ पाठान्तर में तृतीय चरण इस प्रकार है— एकवाक्येन संयोगात्। परन्तु एकवाक्येन संयोगो यस्तद् अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

३ अमूनि कुर्वतेऽन्वर्थामस्याख्यामर्थदीपनात् ॥२।२६॥

४ आदिमध्यान्तविषयं त्रिधा दीपकमिष्यते।
एकस्यैव व्यवस्थत्वादिति तद् भिद्यते त्रिधा ॥२।२५॥

५ मदो जनयति प्रीतिं साऽनङ्गं मानभङ्गुरम्।
स प्रियासंगमोत्कण्ठां, साऽसह्यां मनसः शुचम् ॥२।२७॥

स्थित है। 'मधु सुन्दर वनाती हुं माला एव अशुक से दीप्तिमती स्त्रियो का, मनो और शुक की वाणी को, तथा पवतो की उपत्यकाओ को।'[1] यद्यपि अलकुरते मधु तीनो अर्थों को दीप्त कर रहा है परन्तु दीपक के लिए केवल त्रियापद पर्याप्त है, सज्ञापद नही।

अन्त-दीपक के उदाहरण म क्रियापद अन्त निनीपति' अन्त म, अर्थात श्लोक के चतुथ चरण म, स्थित है। मध्यदीपक के उदाहरण के समान यहा भी शुचिरन्त निनीपति' सज्ञापद-समन्वित त्रियापद का प्रत्येक अथ के साथ अन्वय करना होगा। तात्पय यह है कि भामह के अनुसार दीपक कम से-कम क्रियापद का होता है परन्तु वह सज्ञापद-समन्वित वाक्य तक फल सकता है— त्रियापद तक सीमित रहना आवश्यक नही।

इन तीन उदाहरणो म आदिदीपक छन्द के आदि चरण म स्थित है और अन्तदीपक छन्द के अन्तिम चरण म मध्यदीपक सयोग स छन्द क द्वितीय चरण म है। हमारा विचार ह कि मध्यदीपक की स्थिति तृतीय चरण म भी हो सकती ह परन्तु आदिदीपक तथा अन्तदीपक की स्थिति म परिवतन नही हो सकता।

दण्डी

दीपकचक्र का वणन काव्यादश के द्वितीय परिच्छेद म (श्लाक सख्या ९७ से श्लोक-सख्या ११५ तक) किया गया है। एकत्र (प्रबन्ध क अन्तगत किसी एक वाक्य मे आदि मध्यावसान किसी एक स्थान पर) विद्यमान जाति त्रिया गुण द्रव्यवाची[3] पद द्वारा जब सववाक्योपकार हो तो वह सौन्दय दीपक है। दण्डी ने भरत भामह-कृत लक्षण को ही विकसित किया है।

जातिदीपक, त्रियादीपक गुणदीपक द्रव्यदीपक भेद तो उस पद के वग पर निभर है जो दीपक का आधार है। यदि दीपक का आधार जातिवाचक पद ह तो वह जातिदीपक बन गया, इसी प्रकार अन्य भी है। 'काव्यादश म प्रत्यक भेद का एक एक उदाहरण (श्लोक सख्या ९८ से १०१ तक) दिया गया है।

इन सबके उपभेद आदिदीपक, मध्यदीपक, अन्तदीपक हो सकते हैं। दोनो वर्गों क मिलाकर 'जातिगत आदिदीपक' अथवा 'अन्तवाक्यगत जातिदीपक आदि लिखे जायगे। पाच श्लोको म कुछ उदाहरण प्रदशन मात्र क लिए दिय गये ह। य बारह भेद दीपक के आधार पद के 'वग और उसकी 'स्थिति पर निभर है।

दीपक के चार भेद और है—मालादीपक, विरुद्धार्थदीपक, एकार्थदीपक तथा श्लिष्टार्थ

---

१ मालिनीरशकभृत स्त्रियोऽलकुरुते मधु ।
हारीतशुकवाचश्च भूधराणामुपत्यका ॥२।२८॥

२ चीरीमतीररण्यानी सरित शुष्यदम्भस ।
प्रवासिनां च चेतांसि शुचिरन्त निनीपति ॥२।२९॥

३ जाति क्रिया-गुण द्रव्य-वाचिनकत्र वर्तिना ।
सववाक्योपकारश्चेन तमाहुर्दीपक यथा ॥२।९७॥

दीपक। मालादीपक म पूव-पूव वाक्यापेक्षमाणा वाक्यमाला का प्रयोग होता है। 'शुक्लपक्ष चद्र का पोषण करता है चद्र मदन का मदन राग का और राग युवक-युवतियो म विलासश्री का पोषण करता है —यह माला है जिसम एक क्रिया द्वारा सब वाक्यो का उपकार होता है।

विरुद्धार्थदीपक का उदाहरण है—

अनलेपमनङ्गस्य वर्धयन्ति बलाहका ।
कर्शयन्ति तु घर्मस्य मारुतोद्धूतशीकरा ॥२।१०६॥

यहाँ वर्धयन्ति और कर्शयन्ति विरुद्ध क्रियाओ[1] का एकत्र वर्णन है।

एकार्थदीपक का उदाहरण है—

हरत्याभोगमाशानां गृह्णाति ज्योतिषां गणम्।
आदत्ते चाद्य मे प्राणानसौ जलधरावली ॥२।१११॥

यहाँ जलधरावली एकार्था अदर्शनरूपा क्रिया को हरण ग्रहण-आदान क्रियावाचको द्वारा स्वीकार[2] कर रही है। अनेक पदो द्वारा एक ही अर्थ का प्रतिपादन[3] करने के कारण यह अनेकार्थ दीपक कहलाता है। कारक दीपक म विभिन्न क्रियाओ का एक कारक द्वारा सम्बन्ध होता है यहाँ अनेक क्रियाओ का एकार्थभाव है।

श्लिष्टार्थ दीपक म श्लिष्ट शब्द प्रतिपाद्य साधारण धमवान् वस्तुओ का एक क्रिया द्वारा सयोग होता है। यथा—

हृद्यगन्धवहास्तुङ्गास्तमालश्यामलत्विष ।
दिवि भ्रमन्ति जीमूता भुवि चैते मतङ्गजा ॥२।११३॥

यहाँ जीमूता तथा मतङ्गजो का श्लिष्टशब्द प्रतिपाद्य साधारणधम पूर्वार्द्ध म वर्णित है उत्तरार्द्ध म भ्रमन्ति क्रिया द्वारा उनका सम्बन्ध प्रतिपादित किया गया है।

उद्भट

आदिमध्यान्तविषया प्राधान्येतरयोगिन ।
अन्तर्गतोपमा धर्मा यत्र तद्दीपक विदु ॥१।१४॥

दीपक अलकार म उपमेयोपमान भाव स धर्मो का एक बार कथन होता है। एकदेशवर्ती[4] धर्मो का उपमानोपमेय भाव से अवस्थित वाक्यार्थों म कथन दीपक है। इस अलकार म धर्मो का एक बार उपनिबन्ध होना[5] अनेक बार होने स चमत्कार प्रतिवस्तूपमा का होगा। दीपक के तीन भेद—आदि मध्य तथा अन्त—है।

---

१ क्रिये विरुद्धे सयुक्ते तद्विरुद्धार्थदीपकम् ॥२।११०॥
२ अनेकशब्दोपादानात क्रियैकवात्र दीप्यते ॥२।११२॥
३ अनेकशब्दप्रतिपाद्यस्य एकार्थस्य दीपनादेकार्थदीपकमिदम्। (प्रभा १८)
४ अत एव च एकदेशवर्तिनामपि तेषा धर्माणा यौ द्वौ उपमानोपमेयभावेन अवस्थितौ वाक्यार्थौ बहवो वा तथाविधास्तद्दीपनहेतुत्वाद दीपकता। (प १५)
५ अत्र च धर्माणामेकवारमुपनिबन्धो द्रष्टव्य । असकृदुपादाने हि तेषा प्रतिवस्तूपमा वक्ष्यति। (वही)

उदभट ने दीपक अलकार का प्रथम बार वैज्ञानिक विवेचन किया है। उनके लक्षण-वृत्ति म निम्नलिखित विषयो पर ध्यान देना चाहिए—

(क) दीपक मे उपमानोपमेय भाव रहता है। 'अतगतोपमा धर्मा की व्याख्या की गई है "अन्तगताथसामथ्यवसेयत्वाद उपमानोपमेयभावो यषा तथाविधाना धर्माणामुपनिबन्ध।" सभी उत्तर आचार्यों ने 'उपमानोपमेयभाव को दीपक के लक्षण म स्थान दिया है।

(ख) धर्मो के एक बार कथन म दीपक अलकार है, अनेक बार कथन म प्रतिवस्तूपमा अलकार का सौन्दय बन जायगा।

(ग) दीपक म प्रस्तुत एव अप्रस्तुत दोना के समान धर्मों का कथन होता है केवल प्रस्तुत अथवा केवल अप्रस्तुत के समान धर्मो का नही। प्राधान्येतरयोगिन' की व्याख्या इन्दु राज ने इन शब्दा म की है "उपमेयस्य प्राकरणिकतया प्राधान्याद उपमानस्य च तादर्थ्येन गुणभावात। एव च प्राधान्येतरयोगिन इत्ययमत्रानुवाद प्राप्तार्थत्वात। प्राधान्य च इतरच्चा प्राधान्य ताभ्या योग सम्बन्धो विद्यते येषा ते तथोक्ता।' (पृ० १५)

वामन

दीपक 'उपमा प्रपच का एक अलकार है। एक सूत्र म इसका लक्षण एक म तीन भेद देकर अन्त म तीना भेदा का एक एक उदाहरण दे दिया गया है। लक्षण पर उद्भट का प्रभाव है। लक्षण है—

उपमानोपमेयवाक्यष्वेका क्रिया दीपकम ॥४ ३ १८॥

भरत न 'एकवाक्यन सयोग पर बल दिया था और दण्डी का मत था कि क्रियकत्वात दीप्यत परन्तु उद्भट ने अन्तगतोपमा विशेषता का जोड दिया। वामन न स्पष्ट कर दिया कि उपमान और उपमय वाक्या म एक क्रिया का सयोग दीपक अलकार है। भामह के अनुसार ही वामन न दीपक के तीन भेद बतलाये है—आदिदीपक मध्यदीपक तथा अन्तदीपक।

रुद्रट

यत्रकमनकपा वाक्यार्थाना क्रियापद भवति।
तदवत्कारकपदमपि तदतदिति दीपक द्वेधा ॥७।६४॥

दीपक वास्तव-वग का अलकार है। अनक वाक्यार्थों का एक क्रियापद अथवा कारकपद दीपक है। इसके दो भद है—क्रियादीपक तथा कारकदीपक। प्रत्यक भेद के तीन-तीन उपभेद हैं—आदिगत मध्यगत तथा अन्तगत। आदि क्रियादीपक का उदाहरण[1] भामह के उदाहरण स प्रभावित है।

टीकाकार नमिसाधु का मत है कि दीपक का अन्य अलकारो म अन्तर्भाव हो सकता है—आदिक्रियादीपक तथा मध्यक्रियादीपक के उदाहरण कारणमाला के मान जा सकत है, अत

---

१ कान्ता ददाति मदन मदन सन्तापमसममनुपशमम्।
सन्तापो मरणमहो तथापि शरण नणा सव॥ (रुद्रट ७ ६६)

क्रियादीपक तथा आदिवृत् दीपक तथा अन्तवृत् दीपक के उदाहरण काव्यालंकारसारसंग्रह में माने जा सकते हैं। अन्तवृत् दीपक का उदाहरण आदि अलंकार का उदाहरण बन सकता है—"अन्ये च दीपकस्य प्राधान्येतरयोगित्वात् समासान्तर्गतत्वात्। तथा प्राधान्येनेतरस्य वाक्यमालायाम् सद्भावात्। तदिदमुपर्यपकं वाक्यसमुच्चयम्। तद् जात।" (काव्यालंकार पृ० ८०)

रुद्रट ने प्रथम बार दीपक के दूसरे भेद कारकदीपक की व्याख्या की है। प्रायः सभी उत्तर आचार्य इस नवीन भेद को स्वीकार करते हैं। आगे चलकर उसको स्वतन्त्र अलंकार भी मान लिया गया।

मम्मट

उद्भट की परम्परा में काव्यप्रकाशकार ने दीपक का विवेचन किया है—

सकृद् वृत्तिस्तु धर्मस्य प्रकृताप्रकृतात्मनाम्।
सैव क्रियासु बह्वीषु कारकस्येति दीपकम् ॥१०।१०३॥

प्रकृत (उपमेय) तथा अप्रकृत (उपमान) के (क्रियादि) धर्म की सकृद्वृत्ति (=एक बार ग्रहण) दीपक (क्रियादीपक) है। इसी प्रकार बहुत-सी क्रियाओं में एक ही कारक की सकृद्वृत्ति (=एक बार ग्रहण) कारक दीपक है। वृत्ति में भी स्पष्ट किया गया है— एकस्थस्यैव समस्तवाक्यदीपनाद् दीपकम्।

यदि पूर्व-पूर्व की वस्तु उत्तर-उत्तर की गुणावह (=उपकारक) हो तो उस दीपक को 'मालादीपक' कहते हैं

मालादीपकमाद्यं चेद् यथोत्तरगुणावहम् ॥१०।१०४॥

क्रियादीपक तथा मालादीपक भेद रुद्रट में हैं। आरम्भ में उद्भट ने अन्तर्गतोपमा धर्म्म निरूपण उपमानोपमेय भाव का सन्निधान कर दिया था। रुद्रट ने कारकदीपक भेद का विवेचन किया। मम्मट ने प्राचीन आचार्यों के विचार का समाहार कर दिया है।

रुय्यक

तुल्ययोगिता का विवेचन करने के अनन्तर रुय्यक ने अन्तर दिखाते हुए दीपक का लक्षण जिस शब्दावली में किया है उत्तर आचार्यों ने प्रायः उसी को स्वीकार कर लिया। रुय्यक का लक्षण है—

प्रस्तुताप्रस्तुतानां तु दीपकम्।

इसमें औपम्यस्य गम्यत्वे पदार्थगतत्वेन वा समानधर्माभिसम्बन्धे का अध्याहार तुल्ययोगिता के लक्षण से करना होगा। वृत्ति में स्पष्ट किया गया है— प्राकरणिकाप्राकरणिकयोर्मध्यादेकत्र निर्दिष्टः समानो धर्मः प्रसङ्गेनान्यत्रोपकारात्। अत्र प्राकरणिकत्वाप्राकरणिकत्व विवक्षितत्वात् उपमानोपमेयभावस्यानवस्य एकक्रियाभिसम्बन्धाद औचित्यात्पदार्थत्वोक्ति। (पृ० ९२)। वाक्यार्थ में धर्म के आदि मध्य-अन्त में रहने से दीपक के पूर्वाचार्यों के समान ही तीन भेद हैं।

क्रियादीपक के साथ-साथ रुय्यक ने कारक दीपक का भी विवेचन किया है 'अत्र च यथानेककारकगतत्वेनैकक्रियादीपकं तथा अनेकक्रियागतत्वेनैककारकमपि दीपकम्।' यह लक्षण अत्यन्त स्पष्ट है—अनेक कारकों का एक क्रिया से सम्बन्ध जिस प्रकार 'क्रियादीपक' है उसी प्रकार अनेक क्रियाओं का एक कारक से सम्बन्ध 'कारकदीपक' कहलावेगा।

मालादीपक रुय्यक को मान्य है, परन्तु उसकी व्याख्या अन्यत्र[1] की गई है क्योंकि उसमें शृंखला[2] का चमत्कार अधिक है, दीपकत्व का नहीं।

दीपक के 'मालादीपक' भेद का विवेचन रुय्यक ने कारणमाला तथा एकावली के अनन्तर शृंखलामूलक अलंकारों के प्रसंग में किया है। लक्षण की वृत्ति में भी यह स्पष्ट किया गया है कि पूर्व-पूर्व के प्रति उत्तरोत्तर उत्कर्ष निबन्धन में 'मालादीपक' का सौन्दर्य है—

"उत्तरोत्तरस्य पूर्वं पूर्वं प्रत्युत्कर्षहेतुत्वे एकावली। पूर्वस्य पूर्वस्यात्तरोत्तरोत्कर्षनिबन्धत्वे तु मालादीपकम्। मालात्वेन चारुत्वविशेषमाश्रित्य दीपकप्रस्तावोल्लङ्घनेनेह लक्षणं कृतम्। गुणावहत्वमुत्कर्षहेतुत्वम।' (पृ० १७८ ७९)

रुय्यक ने 'कारकमाला' और 'मालादीपक' का लक्षण एक ही शब्दावली में दिया है उनका अन्तर 'हेतुत्व' तथा 'गुणावहत्व' के आधार पर स्पष्ट करते हुए—

पूर्वस्य पूर्वस्योत्तरोत्तरहेतुत्वे कारणमाला।
पूर्वस्य पूर्वस्योत्तरोत्तरगुणावहत्वे मालादीपकम्।

जयदेव

प्रस्तुताप्रस्तुतानां च तुल्यत्वे दीपकं मतम्।
मदो बुधः सुधाभिन्दुर्विभाति वसुधां भवान् ॥५।७३॥

यह लक्षण रुय्यक का अनुसरण मात्र है उसमें तुल्यत्व तथा मतम् पद जोड़कर बना लिया गया है। टीका से स्पष्ट है—

प्रकृताप्रकृतानां पदार्थानां गुणेन क्रियया च तुल्यत्वे साम्ये दीपकं मतमिष्टम्। प्रकृतधर्मं प्रसंगादप्रकृतमपि दीपयति प्रकाशयतीति दीपकम्। प्रस्तुताप्रस्तुतनिष्ठसाधारणधर्मकथनत्वं दीपकम्। तुल्ययोगितायां प्रस्तुतप्रस्तुतयोः अप्रस्तुताप्रस्तुतयोर्वा धर्मैक्यं भवति अत्र तु प्रस्तुताप्रस्तुतयोरिति भेदः। (पौर्णमासी, पृ० १३२ ३)

जयदेव ने दीपक के एक नवीन भेद 'आवृत्तिदीपक' का भी वर्णन किया है। इसमें आवृत्ति होती है। प्रस्तुत-अप्रस्तुतों के तुल्यधर्माभिसम्बन्ध में जो पद दीपकत्व का आधार है उसकी आवृत्ति होती है—

आवृत्ते दीपकपदे भवेदावृत्तिदीपकम्।
दीप्यग्निर्भाति भातीन्दुः कान्त्या भाति रविस्त्विषा ॥५।७४॥

---

1 छायान्तरेण तु मालादीपकं प्रस्तावान्तरे लक्षयिष्यते। (वृत्ति पृ० ६४)
2 छायान्तरेणेति शृङ्खलारूपेण। प्रस्तावान्तर इति शृङ्खलान्यायोपचितरूपत्वात्। (अलंकारविमर्शिनी पृ० ६४)

वस्तुत जहाँ पदावत्ति है वहाँ दीपकत्व नही रहता, यदि 'भाति' क्रिया एक स्थान पर रहकर तीनो वाक्यो को दीप्त करे तब तो दीपक का चमत्कार होगा, इसके विपरीत प्रत्येक वाक्य मे उस क्रिया की आवत्ति से दीपकत्व कहाँ रहता है ?

जयदेव ने 'कारक दीपक' का वणन नही किया परन्तु रुय्यक की सम्मति मानकर 'माला दीपक' का वणन 'एकावली' अलकार के प्रसग म उसके अनन्तर किया है। आचाय का मत है कि दीपक' तथा 'एकावली' के योग स जो सौन्दय उत्पन्न होता है वह 'मालादीपक' है

दीपककावलीयोगान मालादीपकमुच्यते ।
स्मरेण हृदये तस्यास्तेन त्वयि कृता स्थिति ॥५।८९॥

पौणमामी' मे स्पष्ट किया गया है 'अत्र स्थिति पद हृदये नायके चोभयत्र सम्बद्ध मिति दीपकम। पूव हृदयस्य मदनाधारतया ग्रहणम ततश्च नायकस्य आधारत्ववणनेन हृन्या धारत्वत्याग इत्येकावली (पृ० १६५)।

विश्वनाथ

'साहित्यदपण मे दीपक का विवेचन अलङ्कारसवस्व की परम्परा मे ही किया गया है तुल्ययोगिता के अनन्तर रुय्यक की शब्दावली म कारक दीपक को साथ लेकर। दीपक तथा' कारकदीपक के लक्षण हैं—

अप्रस्तुतप्रस्तुतयोर्दीपक तु निगद्यते ।
अथ कारकमेक स्यादनेकासु क्रियासु चेत ॥१०।४९॥

विश्वनाथ न आदि मध्य अवसान भेदो को स्वीकार नहा किया क्योकि इस प्रकार के तो सहस्रो भेद हो जायँगे। अन्ये च गुणक्रियायो आदिमध्यावसानसद्भावेन त्रविध्य न लक्षितम। तथाविधवचित्र्यस्य सवत्रापि सहस्रधा सभवात।

विश्वनाथ न आवत्तिदीपक का वणन नही किया। मालादीपक का वणन 'कारणमाला के अनन्तर और 'एकावली' से पूव रुय्यक के अनुसार किया है—

धर्मिणामेकधर्मेण सम्बन्धो यद्यथोत्तरम ॥१०।७७॥

अप्पय्यदीक्षित

दीक्षित न दीपक अलकार का विवेचन केवल कुवलयानन्द म किया है असमाप्त 'चित्र मीमासा' म नही। कुवलयानन्द म जयदेव का अनुकरण एव विकास करते हुए दीपक के चार भेदो का अलग-अलग वणन है— दीपक (क्रियादीपक) तथा आवत्तिदीपक का एक साथ प्रारभ मे मालादीपक तथा कारकदीपक का एक साथ आगे चलकर।

दीपक का लक्षणोदाहरण है •

वदन्ति वर्ण्यावर्ण्याना धर्मैक्य दीपक बुधा ।
मदेन भाति कलभ प्रतापेन महीपति ॥ ४८ ॥

आवत्तिदीपक के तीन उपभेद हैं शब्दावृत्ति, अथावत्ति तथा श दार्थावृत्ति । 'पदस्याथ स्योभयार्वाऽऽवत्तौ त्रिविधमावत्तिदीपकम् ।'[1] आवत्तिदीपक तथा उसके भेदा पर दण्डी का प्रभाव है । दण्डी ने दीपक का वण न करने के अनन्तर दीपक-प्रसग[2] म आवत्तिचक्र के अ तगत तीन प्रकार की आवत्ति का वणन किया था, दीक्षित ने उसको यथावत् ग्रहण कर लिया , दण्डी के उदाहरणो की छाया[3] भी कुवलयान द म देखी जा सकती है ।

'मालादीपक कुवलयान द म च द्रालोक से यथावत उसी शब्दावली मे आ गया है—लक्षण भी तथा उदाहरण भी । मालादीपक से दस श्लोक आगे सार यथासख्य, पर्याय, परिवत्ति, परिसख्या विकल्प तथा समुच्चय के अन तर कारकदीपक का वणन है । वत्ति के अनुसार 'एकस्यानेकवाक्याथान्वयन दीपकच्छायापत्त्या कारकदीपक, प्रथमसमुच्चयप्रतिद्व द्वीदम (पृ० १३४)। समुच्चय मे एक साथ हाने वाले अनेको का एकत्र वणन होता है, कारक दीपक मे भी एकत्र वणन होता है, अत समुच्चय तथा 'कारकदीपक प्रतिद्व द्वी हैं इसी हेतु इनका वणन एक माथ किया गया है । नक्षणादाहरण है—

> क्रमिकगताना तु गुम्फ कारकदीपकम् ।
> गच्छत्यागच्छति पुन पा थ पश्यति पृच्छति ॥ ११७ ॥

जग नाथ ने दीपक का अ तर्भाव तुल्ययोगिता म कर दिया है, पर तु अप्पय्यदीक्षित दीपक तथा 'तुल्ययोगिता' के पृथक सौ दय की याख्या करत हैं । दीपक म अप्रस्तुत सदा उपमान होता है और प्रस्तुत सदा उपमय , परन्तु तुल्ययोगिता म यह निश्चित नही हाता कि कौन उपमान होगा और कौन उपमेय—

तुल्ययोगिताया त्वेक प्रस्तुतम अ यदप्रस्तनमिति विशेषाग्रहणात सर्वोद्देशेनव धमा वय इति विशेष । अय चानयोरपरो विशेष । उभयारनयारपमालकारस्य गम्यत्वाविशेषेऽप्यत्राप्रस्तुतमुपमान प्रस्तुतमुपमेयमिति यवस्थित उपमानापमेयभाव , तत्र तु विशेषाग्रहणादैच्छिक स इति । (पृ० ५३)

जग नाथ

'रसगगाधर म दीपक का अ तर्भाव'[4] तुल्ययोगिता मे किया गया है । जिस प्रकार तुल्ययागिता म उपमा व्यग्य हाती है उसी प्रकार दीपक म भी दोना अलकारा मे धम को एक बार ग्रहण किया जाता है । इसलिए तुल्ययोगिता के तीन भेद हुए—प्रकृता के धम का एक बार ग्रहण अप्रकृता के धम का एक बार ग्रहण, प्रकृत एव अप्रकृता दोना के धम का एक बार ग्रहण—इन तीन आधारा पर । अ तिम भेद को दीपक कहा गया है । परन्तु—

---

१ अलकार चन्द्रिका प ५४

२ अर्थावत्ति पदावत्तिरुभयावृत्तिरेव च ।
दीपकस्थान एवेष्टमलकारत्रय यथा ॥ (काव्यादश २ ११६)

३ विकसन्ति कदम्बानि स्फटन्ति कुटजाद्गमा । (दण्डी)
उन्मीलन्ति कदम्बानि स्फटन्ति कुटजोद्गमा । (दीक्षित)

'एवं च प्राचीनानां तुल्ययोगितातो दीपकस्य पृथगलंकारताम्
आचक्षाणानां दुराग्रहमात्रमिति' नव्या ।' (रसगंगाधर, पृ० ४३६)

'अलंकार-कौस्तुभ' में 'रसगंगाधर' से ठीक विपरीत स्थिति को माना गया है कि तुल्ययोगिता का अन्तर्भाव भी दीपक में ही कर लेना चाहिए—

'इति भगवता भरतमुनिना दीपकस्याङ्गीकारात् तत्रैव तुल्ययोगितान्तर्भावस्यौचित्यादिति दिक् ।' (पृ० २९७)

केशवदास

दण्डी ने 'दीपक' का जो लक्षण दिया था—

जाति क्रिया-गुण द्रव्यवाचिनैकत्र वर्तिना ।
सर्ववाक्योपकारश्चेत् तमाहुर्दीपकं यथा ॥ (काव्यादर्श २ ९७)

उसका अनुवाद कविप्रिया के तेरहवें प्रभाव में केशवदास ने इस प्रकार किया है—

वाच्य क्रिया गुण द्रव्य को बरनहु करि इकठौर ।
दीपक दीपति कहत हैं केशव कवि सिरमौर ॥१३।२१॥

श्लोक के पूर्वार्द्ध का दोहे के पूर्वार्द्ध में अनुवाद अक्षरशः तथा प्रायः ठीक है । परन्तु उत्तरार्द्ध का अनुवाद सदोष है 'सर्ववाक्योपकारश्चेत्' का भाव 'दीपति कहत हैं' में तो क्या शुद्ध पाठ 'दीपति करतु हैं' में भी नहीं आ पाता । भगवानदीन की व्याख्या तो और भी भ्रामक है ।

केशव के अनुसार दीपक के अनेक भेदों में से दो भेद 'मणिदीपक' तथा 'मालादीपक' प्रसिद्ध हैं । 'मणिदीपक' दण्डी का 'एकार्थदीपक' है । दण्डी के अनुसार एकार्थदीपक का लक्षण है—

अनेकशब्दोपादानात् क्रियैकवात्र दीप्यते ॥२।११२॥

केशव ने छायानुवाद किया है—

इनमें एकहु बरनिये कौनहु बुद्धि विलास ॥ १३ । २४ ॥

उदाहरण में 'कहि न परतु है, शोभा को धरतु है' तथा 'दीपत करतु है' अनेक शब्दों द्वारा एक ही क्रिया का वर्णन किया गया है ।

केशव में 'मालादीपक' का वर्णन परम्परा के अनुसार ही है । केशव का बल 'माला' पर अधिक है 'दीपक' पर कम । एक उदाहरण तो 'पदार्थावृत्ति' दीपक का बन गया है । *केशव के दीपक-वर्णन पर प्रधानतः दण्डी का ही प्रभाव है ।*

देवदत्त

शब्दरसायन में 'दीपक' तथा 'कारक दीपक' के लक्षण हैं—

अथ कहै एक क्रिया जहाँ आदि मधि अंत ।
अथवा जहँ प्रतिपद क्रिया दीपक कहत सुमन्त ॥

---

१ तुल्ययोगितातो दीपकं न पृथग् भावम् इति धर्मसंहृद्-वृति-मलाया विच्छिन्न अविभागात् । (पृ० ०३६)

दोहे का प्रथम चरण 'अथ कहै एकै क्रिया' रुद्रट के 'यत्रैकमनेकेषा वाक्याथाना क्रियापद भवति' का अनुवाद-सा है। तृतीय चरण म 'अथवा जहँ प्रतिपद क्रिया' रुय्यक के अनेकक्रिया गतत्वनैककारकमपि दीपकम का असावधान अनुवाद है।

देवदत्त ने दीपक के चार भेदा का वणन किया है—मालादीपक, एकावली दीपक, आवृत्ति दीपक, परिवत्त दीपक। 'माला तथा आवत्ति' तो इन्ही नामा से प्रसिद्ध चले आ रहे थे। शेष दो म स एकावली' दण्डी का 'एकाथदीपक' है, और 'परिवत्त दण्डी का विरुद्धाथदीपक'। 'परिवृत्त दीपक का लक्षण है—

पद अथन को लौटिबो, सो कहिये परिवत्त।

यहा लौटिबा' का अथ 'पलटिबो है उदाहरण है—'पूयौ को द्यौस उदौ उकसाइ क, आसहु पास बसाइ अमावस आदि, इस पर दण्डी के 'विरुद्धाथदीपक के उदाहरण का प्रभाव है।

लक्षण भेद प्रसग के अत मे दव ने लिखा है—

माला अरु एकावली आवति अरु परिवत्ति।
कारनमाल समुच्चया दीपक भेद सुवत्ति॥

इस दोहे का पूर्वार्द्ध दीपक के भेदा का वणन करता है और उत्तराध म दीपक का कुछ अलकारा से भेद बतलाया गया है जिस पर रुद्रट के निम्नलिखित शब्दा का प्रभाव है—

'आद्ययोरुदाहरणयो कारणमालाया सद्भाव। तृतीय चतुथ पचमेषु वास्तवमसुच्चयस्य।
(काव्यालकार, पृ० ८९)

भिखारीदास

'काव्यनिणय म दासकवि ने दीपक का वाक्य' का अलकार बतलाया है और इसके पाँच भेदो[2] का वणन किया है। दीपक का लक्षण बडा शिथिल है—

एक शब्द बहु मे लग, दीपक जानै साइ॥१८।२८॥

इसक पाँच भेद—दीपक, आवत्ति दीपक, दहली दीपक, कारक दीपक तथा मालादीपक हैं। 'देहली दीपक एक नया भेद है यद्यपि देहली दीपक-न्याय तो प्रसिद्ध ही है। दासकवि ने इसका लक्षण ठीक ही दिया है—

पर एक पद बीच म, दुहु दिसि लाग साइ।
सा है दीपक देहली जानत है सब कोइ॥१८।२७॥

उदाहरण[3] म मध्यवर्ती क्रिया दोना वाक्या का दीप्त कर रही है। यह देहलीदीपक

१ अति सुभनायक वाक्य के जहँपि अथ सा प्याह॥१८।१॥
२ आदि आवृत्तो देहली कारक माला बाँच॥१८।३॥
३ ह्व नरसिंह महा मनजाद हयो प्रह्लाद को सकट भारी।
दास विभीषन लक दियो जिन रक सुदामा को सपति सारी।
द्रोपदी चीर बढ़ायो जहान में पाडव के जस की उजियारी।
गविन को घनि गव बहावत दीनन को दुख श्रीगिरधारी॥३॥

मध्यक्रियादीपक का ही दूसरा नाम है, इसको चमत्काराधिक्य के कारण अलग भद माना गया है।

आवत्ति, कारक तथा मालादीपक भेदा के लक्षण सामान्यत परम्परा के अनुकूल हैं —

उहै सब्द फिरि फिरि परै आवतिदीपक होइ ।२८।
एक भाँति के वचन को काज बहुत जहँ होइ ।३९।
दीपक एकावलि मिले, मालादीपक जानि ।४२।

कन्हैयालाल पोद्दार

'अलकारमजरी' म सस्कृत के आचार्यों क अनुसार दीपक तथा उसके भेदा का वणन किया गया है। दीपक का लक्षण रुय्यक की शब्दावली म है—

'प्रस्तुताप्रस्तुताना तु दीपकम्।

प्रस्तुत और अस्तुत क एक धम कहने को दीपक अलकार कहते हैं (पृ० २१२)। पोद्दार ने दीपक के चार भेदा को चार अलग अलकार माना है। क्रम ह—दीपक कारक दीपक माला दीपक *आवृत्तिदीपक। इनको अलग मानन की कोई आवश्यकता नही थी।*

दीपक विवेचन म कतिपय निष्कष नवीन न हाते हुए भी ध्यान देन योग्य हैं—

(क) यदि दीपक और तुल्ययोगिता म विशेष भिन्नता न हान के कारण य दोना एक ही अलकार के दो भेद माने जाए तो तुल्ययोगिता का ही दीपक क अतगत माना जाना उचित है न कि आचाचाय भरतमुनि द्वारा प्रतिपादित दीपक का तुल्ययोगिता के अन्तगत माना जाना (पृ० २१५)। रस-गगाधर क मत का यह खण्डन अलकारकौस्तुभ म भी इसी शब्दावली म *किया गया है।*

(ख) रसगगाधर म इसको (कारकदीपक को) दीपक अलकार का ही भेद माना गया है। (पृ० २१५)

(ग) आवृत्तिदीपक अलकार का पदावत्ति भद यमक स और पदार्थावृत्ति अनुप्रास स भिन्न नही। कुछ लोग पदावृत्ति की यमक स और पदार्थावृत्ति दीपक की अनुप्रास स यह भिन्नता बतलाते हैं कि दीपक म क्रिया-वाचक पद और पद क अथ दोना की आवृत्ति होती है। यमक और *अनुप्रास म क्रियावाचक पद और पदार्थों का नियम नहा हाता है। (पृ० २१८)*

रामदहिन मिश्र

'काव्यदपण' के द्वादश प्रकाश की पचम छाया म दीपक का सक्षिप्त वणन है। इसके भेद कारकदीपक देहली दीपक मालादीपक तथा आवृत्तिदीपक भेद हैं।

इस विवेचन म निम्नलिखित निष्कर्षों पर ध्यान दिया जाता है—

(क) टिप्पणी—तुल्ययोगिता म केवल उपमेयों का उपमानों का धम कहा जाता है और दीपक म दोनो का एक धम उक्त होता ह। किन्तु चमत्कार न होन क कारण इसको तुल्ययोगिता का ही एक भेद मानना उचित प्रतीत होता है। (पृ० ३००)

(ख) दो वाक्यों के बीच में जहाँ एक ही क्रिया आती है, वहां देहली-दीपक अलकार होता है। (पृ० ३७७)

(ग) ऐसे स्थानों (अर्थावृत्ति) में अनुप्रास भी होता है। (पृ० ३७८)

(घ) ऐसे स्थानों (पदार्थावृत्ति) में पुनरुक्ति, अनवीकृत दोष आ जाते हैं। (पृ० ३७९)

सामान्यत रामदहिन मिश्र के इस विवेचन में दासकवि का अनुकरण तथा कन्हैयालाल पोद्दार का खण्डन है।

उपसंहार

दीपक आदि-अलकारों में से है और भिन्न भिन्न अधिकरणों के अर्थों के चमत्कार का एक मात्र प्रतिनिधि है। भरत से इस अलकार का प्रारंभ होता है और जगन्नाथ ने इसका अन्यत्र अन्तर्भाव करने का प्रयत्न किया था। 'दीपक अलकार की कल्पना दीपक-न्याय' के आधार पर हुई है। जिस प्रकार प्रासाद में रक्खा हुआ दीपक प्रासाद के साथ-साथ गली[1] को भी प्रकाशित करता है उसी प्रकार एक स्थान पर स्थित धर्म अन्य स्थानों को भी दीप्त करता है।

लक्षण

भरत भामह तथा दण्डी के अनुसार एकत्रवर्ती धर्म (एकवाक्यस्थ संयोगात) नानाधिकरणों में स्थित अर्थों का उपकार करे तो वह दीपक का चमत्कार है। दीपक के सौन्दर्य के लिए केवल इतना ही अपेक्षित था कि अलग-अलग अर्थों को एक वाक्य अथवा एक धर्म द्वारा जोड़ दिया जाय। उद्भट ने दीपक को नवीन अर्थ प्रदान किया कि संयोग में सादृश्य एवं उपमानोपमेय भाव विद्यमान रहता है। यह विशेषता आज तक दीपक के लक्षण का मुख्य आधार मानी जाती है। वामन ने इस लक्षण में एका क्रिया को जोड़ दिया, जिसका समर्थन मम्मट ने भी किया है।

दीपक-लक्षण में विचारयोग्य चार बिन्दु है—

(क) प्रस्तुत अप्रस्तुत भाव (ख) एकधर्माभिसम्बन्ध, (ग) सादृश्य (घ) सकृद्वृत्ति।

प्रस्तुत-अप्रस्तुत दीपक का आधार है केवल प्रस्तुत भाव अथवा केवल अप्रस्तुत भाव में दीपक नहीं माना जाता। एकधर्माभिसम्बन्ध के विषय में भी मतभेद नहीं है मतभेद केवल यह है कि यह एकधर्म क्रियारूप ही हो अथवा कारकरूप भी हो सकता है? जो आचार्य इस एकधर्म को कारकरूप मानते हैं उनकी दृष्टि में दीपक का एक भेद कारकदीपक भी है। सादृश्य के विषय में केवल यह विचारणीय है कि इसका स्वरूप क्या हो। उद्भट ने अन्तर्गतोपमा कहा था जिसका अभिप्राय है कि औपम्य व्यंग्य[2] हो। सकृद्वृत्ति का समावेश मम्मट ने प्रतिवस्तूपमा से

---

१ प्रस्तुतकनिष्ठ समानो धर्म प्रसंगादन्यत्रोपकरोति प्रासादार्थमारोपितो दीप इव रथ्यामिति दीपसाम्याद् दीपकम्। (कुवलयानन्द, पृ० ५२)

२ सा चोपमा व्यंग्यैव वाचक (इवादिशब्द) विरहात। (उद्योत)

दीपक का अतर करने के लिए किया था क्योकि प्रतिवस्तूपमा म भी सामान्य धम का पृथक् पृथक् निर्देश होता ह, यदि धम के असकृत निर्देश की अवस्था म दीपक सभव ह तो प्रतिवस्तूपमा तथा दीपक म कोई अतर नही रहा। परन्तु कुछ आचाय सकृद्वृत्ति विशेषण की आवश्यकता नही समझते। उनके अनुसार प्रतिवस्तूपमा और दीपक को इस विशेषण के बिना भी पहचाना जा सकता ह 'प्रतिवस्तूपमा म सामान्यधम एक अवश्य होता है परन्तु आश्रय के भेद से उसम भेद होता ह। दीपक मे विद्यमान सामान्यधम म इस प्रकार का भेद नही होता।"[1]

भेदोपभेद

नाटयशास्त्र' म दीपक के भेदा का उल्लेख नही ह। भामह ने सयोगकारिणी क्रिया की स्थिति के आधार पर दीपक के आदि मध्य तथा अत भेद किये हैं। दण्डी ने तीन प्रकार से दीपक क भेद खोज ह—लक्षण के क्षेत्र म विस्तार भामह के अनुसार तथा स्वतत्र भेद। भरत के एकवाक्यन सयोजन को दण्डी न विकसित करके जाति क्रिया गुण द्रव्य तक पहुँचा दिया तो दीपक के चार भेद स्वत हो गय चारो का भामह के अनुसार फिर विकास किया तो बारह भेद प्राप्त हो गय।

दण्डी कृत दीपक के चार इतर भेद मालादीपक विरुद्धार्थदीपक एकार्थदीपक तथा श्लिष्टार्थदीपक है। उदभट तथा वामन की दण्डी के भेदा मे कोई रुचि नही थी।

रुद्रट ने दीपक के एक महत्त्वपूण भद कारकदीपक की उदभावना की इसका विवेचन रुय्यक न भी किया ह। बहुत से उत्तरकालीन आचाय कारकदीपक का स्वतत्र अलकार मानने क पक्ष म ह क्योकि इसम औपम्य नही ह।

मालादीपक की उदभावना दण्डी ने की थी रुय्यक ने इस भेद मे शृखला का चमत्कार अधिक मानकर इसका विवेचन कारणमाला तथा एकावली के साथ किया ह, कारणमाला' मे हेतुत्व का गुण ह और मालादीपक म गुणावहत्व का। विश्वनाथ का भी यही मत ह।

जयदेव ने आवत्तिदीपक भेद का आविष्कार किया जिसका मूल दण्डी क आवत्ति म खोजा जा सकता ह। अनुकरण पर अप्पय्यदीक्षित ने दीपक के चार भेदा का वणन किया है—क्रियादीपक आवत्तिदीपक मालादीपक तथा कारकदीपक।

इस प्रकार दीपक (क्रियादीपक) प्राय इसी रूप म मान्य रहा मालादीपक तथा कारक दीपक कभी इसक भेद बन कभी अलग रह आवत्ति दीपक का चमत्कार अधिक आकृष्ट न कर सका।

स्वतन्त्र अस्तित्व

दीपक ही एसा अलकार ह जो प्रथमजन्माओ म होकर भी अपने अस्तित्व को सकट म डाल बठा। काव्यशास्त्र क अतिम आचार्यों म से जयरथ तथा जगन्नाथ ने यह प्रश्न उठाया कि

---

१ सस्कृत साहित्य म सादृश्यमूलक अलकारा का विकास पृ ३ ५ ६

दीपक का अलग अलकार मानने की क्या आवश्यकता ह इसका तुल्ययोगिता' म अतभाव हो सकता ह। तुल्ययोगिता के दो भेद हैं—प्रकृता के धम का एक बार ग्रहण, तथा अप्रकृता के धम का एक बार ग्रहण। और दीपक है प्रकृता तथा अप्रकृता के धम का एक बार ग्रहण। यह भी तो एक प्रकार की तुल्ययोगिता ह। विश्वेश्वर पण्डित ने इस बात का खण्डन किया ह और इस बात पर बल दिया है कि यदि तुल्ययोगिता तथा दीपक एक ही है तो भी उस सौदय का नाम दीपक' होना चाहिए तुल्ययोगिता नही क्योकि दीपक पुराना नाम ह और भरत द्वारा उदभावित होकर चला आ रहा ह। अप्पय्यदीक्षित तो यह भी स्वीकार नही करते कि इन दोनो अलकारो म एक ही चमत्कार ह। दीपक और तुल्ययोगिता म एक सूक्ष्म भेद ह दीपक म अप्रस्तुत सदा उपमान होता ह और प्रस्तुत सदा उपमय, परतु तुल्ययोगिता म यह निश्चित नही होता कि कौन उपमान होगा और कौन उपमेय।

४ यमक

भरत

उपमा, रूपक और दीपक का विवेचन करने के उपरात भरत ने अतिम अलकार यमक का विशद वणन किया ह। यमक का लक्षण अत्यत उदार है—'शब्दाभ्यासस्तु यमकम'[1]। प्रत्यक शब्दालकार इसम समा सकता ह विशेषत अनुप्रास का प्रत्यक भेद।

यमक क दस भद हैं—पादात काचीय, समुदग, विक्रात, चक्रवाल सदष्ट, पादादि, आम्रेडित चतुर्व्यवसित तथा माला।

छद के चारो पदो के अत म सम अक्षरो की स्थिति[2] पादातयमक है इस भेद की विशेषता इसके नाम से स्पष्ट है। उदाहरण म मण्डलम' अक्षरो की चारो पदो के अत म आवत्ति है।

काचीय यमक म (प्रयत्न) सम पाद के आदि तथा अत म[3] अक्षरावत्ति होनी ह अथात आदि के अक्षर भी आवत्त होते ह और अत क भी 'सम पदे' का इस लक्षण म विशेष महत्त्व है। उदाहरण का एक चरण देखा जा सकता ह—

माया मायाच द्रवतीना द्रवतीनाम् ॥१६।६९॥

यहाँ माया' की आदि म तथा द्रवतीनाम' की अन्त म आवत्ति ह।

समुदग यमक म छद का पूर्वार्द्ध ही उत्तरार्द्ध बनकर पूरा[4] वत्त बना देता ह अथात इसम *अद्ध वत्त की अविरल आवत्ति होती है।* चतुथ भेद विक्रात यमक म वत्त क दो पाद एक पाद को बीच म छोडकर[5] समान होते हैं। उदाहरण म द्वितीय तथा चतुथ पाद समान हैं बीच का

---

१ शब्दाभ्यासस्तु यमक पादादिषु विकल्पितम् ॥१६।६२॥
२ चतुर्णां यत्र पादानामन्ते स्यात्सममक्षरम ॥१६।६६॥
३ पादस्यादौ तथा चान्ते स्याता यत्र समे पदे ॥१६।६७॥
४ अर्धेनैवेन यद्वृत्त सर्वमेव समाप्यते ॥१६।७०॥
५. एकैक पादमुत्क्षिप्य द्वौ पादौ सदृशौ यदा ॥१६।७२॥

तृतीय पाद असमान है। परन्तु लक्षण से स्पष्ट है कि प्रथम तथा तृतीय पाद भी समान हो सकते हैं, बीच म द्वितीय को असमान छोडकर।

पूव पाद का अन्तिम अश जब उत्तर पाद का प्रारम्भिक अश बनकर चक्र[1]-सा बना देता है तो उस यमक को चक्रवाल कहते हैं। उदाहरण म—

शला यथा शत्रुभिराहता हता हताश्च भूयोऽप्यनुपुङ्ग खग ।
खगश्च सर्वेयुधि सञ्चिताश्चिता श्चिताधिरूढा निहता पत पल ॥१६।७५॥

पूवपाद म भी उन अक्षरा की आवत्ति हुई है जा उत्तर पाद के आदि बन जाते हैं यह विशेषता प्रत्यक पाद म है। लक्षण म इस विशेषता का सकेत नही है।

सदष्ट[2] यमक म पादारम्भ के दो अक्षर सम अर्थात आवृत्त होते हैं। जसे— पश्य-पश्य रमणस्य मे गुणान । इस पद म पश्य की आवृत्ति है।

पादादि[3] यमक म प्रत्येक पाद समान अक्षरा स प्रारम्भ होता है। उदाहरण के चारा पाद विष्णु स प्रारम्भ हाते हैं। एसा प्रतीत हाता है कि यह सौन्दय तभी माना जायगा जब समाक्षर चारा चरणा म विद्यमान हा।

पादान्ताम्रेडित यमक म पादान्त म अक्षरा की आवत्ति[4] होती है। इसे सदष्ट यमक का दूसरा रूप माना जा सकता है। मुहुर्मुहु, पदे पदे पुन पुन तथा विना विना। अलग-अलग पादा म उदाहरण को स्पष्ट करते हैं।

चतुर्व्यवसित यमक म सब पद सम नियताक्षर अर्थात एक ही होत है—प्रत्यक पाद आवत्ति मात्र है। माला यमक म एक व्यजन[5] नानारूप स्वरा स युक्त होकर प्रयुक्त होता है। उदाहरण तीन हैं। एक म ल की आवत्ति है (१६।८५), अय म र की (१६।८६), और तृतीय म (१६।८७) क्ष की।

भरत क अनुसार यमक के भेद तालिका द्वारा इस प्रकार स्पष्ट किये जा सकते हैं—

(क) अक्षर समता

पादा के अन्त म—पादान्त यमक।
पादा के आदि मे—पादादि यमक।
प्रत्येक पाद के आदि मे अलग अलग—सदष्ट यमक।
प्रत्येक पाद के अन्त म अलग-अलग—पादान्ताम्रेडित यमक।

---

१ पूर्वस्यान्तेन पादस्य परस्यादिर्यदा सम ॥१६।७४॥
२ आद्यौ द्वौ यत्र पादे तु भवेतामक्षर समौ ॥१६।७६॥
३ आदौ पादस्य यत्र स्यात्समावेश समाक्षर ॥१६।७८॥
४ पादस्यान्त्य पद यत्र द्विरेकमिहोच्यते ॥१६।८०॥
५ सर्वे पादा समा यत्र भवन्ति नियताक्षरा ॥१६।८२॥
६ नानारूप स्वरर्युक्त यत्रक व्यजन भवेत ॥१६।८४॥

प्रत्येक पाद के आदि म तथा अन्त म अलग-अलग—वाचीय यमक।
पूव पाद का अन्त ही उत्तर पाद का प्रारम्भ—चक्रवाल यमक।

(ख) चरण-समता
चारो चरण समान हो—चतुर्व्यवसित यमक।
वत्त का पूर्वार्द्ध उत्तरार्द्ध बन जाय—समुद्ग यमक।
एक चरण बीच म छोडकर चरण की आवत्ति हो—विक्रान्त यमक।

(ग) व्यजन समता
व्यजन की आवत्ति—माला यमक।

भामह

'काव्यालकार' म यमक क सम्बन्ध म तीन तथ्यो पर ध्यान जाता है—यमक का वज्ञानिक लक्षण यमक के भेदो की व्यवस्था, तथा काव्य म यमक का उपयोग। यमक का लक्षण भामह ने भेद निरुपण क उपरान्त दिया है, स्वाभाविक ग स प्रारम्भ म नही। यमक का लक्षण है—

तुल्यश्रुतीना भिन्नानामभिधेय परस्परम ।
वर्णाना य पुनर्वादो यमक तन्निगद्यत ॥२।१७॥

सुनने म समान (तुल्यश्रुतीना) परन्तु अथ म परस्पर भिन्न (अभिधेयै परस्पर भिन्नाना) वर्णो की आवत्ति (पुनर्वाद) यमक कहलाती है।

यह लक्षण पर्याप्त विकसित है। भरत ने जिसको शब्दाभ्यास' मात्र कहा था—उसम अनुप्रास तो समाविष्ट था ही, वज्ञानिक सरूपता भी नही थी। भामह के लक्षण म विकास उस समय हुआ, जब सत्यर्थ की आवश्यकता का अनुभव हुआ। इन तुल्यश्रुति वर्णो का कोई अथ हो, यह आवश्यक नही वे निरथक भी हो सकते हैं।

भरत के दस भेदो की मानो आलोचना करते हुए भामह कहते हैं कि यमक के पाच ही भेद हैं—आदि यमक, मध्यान्त यमक, पादाभ्यास आवली तथा समस्तपाद (२।९)। अगले छन्द म फिर 'पचव' पर बल दिया गया है और सदष्टक' तथा समुद्ग आदि[1] भरत प्रतिपादित भेदो को उक्त पाँच भेदो म अन्तभूत करने का आग्रह है। तक यह है कि ये भेद या तो आदि यमक हैं या मध्यान्त यमक[2] इसलिए इनको स्वतन्त्र भेद नही मानना चाहिए।

इन पाच भेदो म 'मध्यान्त यमक' भ्रामक है मानो सख्या कम करने के लिए दो भेदो 'मध्य यमक' तथा 'अन्त यमक' को जोडकर एक कर दिया हो। भरत द्वारा प्रदर्शित समस्त चमत्कार इन पाच भेदो म समा भी नही पाता। आग चलकर दण्डी ने भामह स असहमति प्रकट की है और यमक के भेदो का विस्तार दिखाया है।

'आदि यमक' भरत का पादादि यमक' नही ह प्रत्युत सदष्ट यमक ह। इसका लक्षण नही

---

१ सन्दष्टक-समुद्गादेरत्रवान्तर्गतिमता ॥२।१ ॥
२ आदौ मध्यान्तयोर्वा स्यादिति पचव तद्यथा ॥२।१०॥

दिया गया परन्तु उदाहरण से स्पष्ट है कि प्रत्येक पाद के आदि में अलग-अलग तुल्यश्रुति अभिधेयभिन्न वर्णों का पुनर्वाद है।

मध्यान्त यमक में पाद के मध्य में स्थित वर्णों का उसी पाद के अन्त में पुनर्वाद होता है। यह सौन्दर्य भरत की दृष्टि में नही था। उदाहरण[1] से इस भेद का नाम भी सार्थक प्रतीत होता है। आदिमध्य अथवा 'आद्यन्त' भेदों की कल्पना भामह ने नही की।

पादाभ्यास यमक में सम्पूर्ण पाद का पुनर्वाद होता है। उदाहरण से प्रतीत होता है कि भामह की दृष्टि में भरत का 'विक्रान्त यमक' था इसमें द्वितीय पाद का पुनर्वाद चतुर्थ पाद में है। परन्तु इसके अन्य उदाहरण भी बन सकते हैं क्योंकि किसी भी पाद का पुनर्वाद किसी भी अन्य पाद में होकर पादाभ्यास यमक कहलावेगा। समुद्ग यमक का भामह ने नामपूर्वक खण्डन किया है (२।१०) समुद्ग तो एक प्रकार का पादाभ्यास' ही है और 'चतुर्व्यवसित' 'समुद्ग' का एक कठिन एवं विशिष्ट प्रकार।

आवली यमक में विभिन्न प्रकार से विभिन्न स्थानों पर पुनर्वाद होता है। वस्तुत यह भेद आदि यमक तथा मध्यान्त यमक के अनन्तर आना चाहिए था पादाभ्यास को क्रम में अन्तिम स्थान मिलना चाहिए। आवली का सौन्दर्य अलग है और व्यवस्थित पुनर्वाद के अभाव को सूचित करता है। कोई पुनर्वाद कही हो, और कोई अन्य कही अन्यत्र हो तो आवली यमक है। (२।१४)

समस्तपाद यमक में वर्णों का पुनर्वाद सभी पादो में एक विशेष स्थान (आदि मध्य अथवा अन्त) पर होता है। जो उदाहरण (२।१५) दिया गया है वह भरत के पादान्त यमक का बनता है परन्तु भरत के पादादि यमक का उदाहरण भी भामह के समस्तपाद यमक' का उदाहरण बन सकता है और चतुर्व्यवसित का उदाहरण भी इसी भेद का अधिकारी है। समस्तपाद यमक' का एक ही नियम है कि जो पुनर्वाद हो वह चारो पादो में एक विशेष स्थान पर हो।

यमक के पाँच भेदो के उदाहरण देने के उपरान्त और यमक के लक्षण देने से पूर्व द्वितीय परिच्छेद के सोलहवे श्लोक में भामह ने यमक के विषय में विशेष चर्चा की है—

अनन्तरकान्तरयोरेव　पादान्तयोरपि ।
कृत्स्न च सर्वपादेषु दुष्कर साधु तादृशम ॥२।१६॥

पादान्त में होने वाला पुनर्वाद अनन्तर (एक के पश्चात दूसरे) पादो में हो सकता है *अथवा एकान्तर* (एक पाद बीच में छोडकर) पादो में हो सकता है अथवा सभी पादो मे हो सकता है। सभी पादो (के अन्त) में होने से वह समस्तपाद यमक कहलावेगा। अनन्तर अथवा एकान्तर में विद्यमान पुनर्वाद को कोई अलग भेद नही माना गया, परन्तु किसी विशेष भेद में उसका अन्तर्भाव भी नही किया गया। वस्तुत वह सौन्दर्य अलग ही है उसका नामकरण आवश्यक है।

१ साध ससारात् विम्यन्स्मादसारात् ॥२।१२॥ (इस पाद मे सारा का पुनर्वाद मध्य तथा अन्त में है।)

श्लोक-संख्या १८, १९ तथा २० में भामह ने यमक के शब्दाभ्यास पर अंकुश रखने की सम्मति दी है। वही यमक आचार्यों द्वारा ग्राह्य है जिसमें ऐसे शब्दों का प्रयोग हो जिनके अर्थ प्रसिद्ध है (प्रतीतशब्दम) जिसमें आज हो अर्थात् अर्थ की खींचतान पाठक को निरुत्साह न करे (ओजस्वि) जिसमें पद-सन्धियाँ यथानियम सुव्यवस्थित हों (सुश्लिष्ट पदसंधि) जो प्रसादपूर्ण (प्रसादि) तथा अभिव्यक्ति में समर्थ हो (स्वभिधानम)।[1] यमक का नाम लेकर[2] नाना धात्वर्थों का प्रदर्शन करने वाली कविता यथार्थ में 'प्रहेलिका' है। काव्य सहज होना चाहिए, शास्त्र के समान व्याख्यागम्य[3] नहीं।

दण्डी

काव्यादर्श के प्रथम परिच्छेद में दस गुणों का वर्णन करने के उपरान्त दण्डी ने अनुप्रास तथा यमक का परिचय दिया है। स्वर रहित केवल[4] व्यंजनावृत्ति अनुप्रास है (वर्णावृत्तिरनुप्रास) और स्वर-सहित व्यंजनों की आवृत्ति[5] यमक है। तृतीय परिच्छेद में यमक का विवेचन प्रारंभ करने से पूर्व भी यमक का यही लक्षण दुहराया गया है—वर्णसंहति (स्वर व्यंजन-संघात) की आवृत्ति (पुनः-पुनः उच्चारण), व्यवधान रहित हो अथवा व्यवधानसहित[6] यमक कहलाती है।

यमक के भी दण्डी ने अनेक भेद बतलाये हैं। सर्वप्रथम पादयमक है। इसके तीन सौ पन्द्रह भेद हो सकते हैं। चार एकपाद यमक के, छः द्विपादयमक के, चार त्रिपाद यमक के और एक चतुष्पाद यमक का। पन्द्रह भेदों का आदि, मध्य, अन्त प्रभृति सात रूपों से गुणा करने पर एक सौ पाँच भेद हुए जो पुनः अव्यपेत व्यपेत व्यपेताव्यपेत उपभेदों के कारण तीन सौ पन्द्रह[7] हो जाते हैं। तृतीय परिच्छेद में श्लोक-संख्या पचास तक इनके रोचक उदाहरण दिए गए हैं।

अन्त के सताइस श्लोकों में यमक के उन भेदों का वर्णन है जो दण्डी से पूर्व आचार्यों ने स्वीकार किये थे, परंतु पूर्वाचार्यों के सभी भेदों का दण्डी ने वर्णन नहीं किया, उनमें से कतिपय

---

१ प्रतीतशब्दमोजस्वि सुश्लिष्टपदसंधि च।
प्रसादि स्वभिधानं च यमकं कृतिनां मतम् ॥२।१८॥

२ नानाधात्वर्थगम्भीरा यमकव्यपदेशिनी।
प्रहेलिका सा ह्युदिता ॥२।१९॥

३ काव्यान्यपि यदीमानि व्याख्यागम्यानि शास्त्रवत्।
उत्सवः सुधियामेव हन्त दुर्मेधसो हताः ॥२।२०॥

४ अत्र आवृत्तिः यथानपूर्विकाणां स्वरसहितव्यंजनानाम्। स्वररहितकेवलव्यंजनावृत्तरनुप्रासविषयत्वात्।
(प्रभा पृ० ६६)

५ आवृत्तिं वर्णसंघातगोचरां यमकं विदुः ।१।६१॥

६ अव्यपेत-व्यपेतात्मा व्यावृत्तिर्वर्णसंहतेः ॥३।१॥

७ अत्र सर्वेषां मेलने पञ्चाधिकशतं भवति। तच्च पुनः अव्यपेत-व्यपेत-व्यपेताव्यपेतेति भेदत्रयेण पञ्चदशाधिक त्रिशतीपरिमितं भवति।
(प्रभा पृ० ३१५)

का ही वर्णन[1] किया है क्योंकि दण्डी के भेदों में भी कतिपय का अन्तर्भाव हो जाता है। भरत द्वारा वर्णित यमक के दस भेदों में से दण्डी ने इस प्रसंग में सदष्ट समुद्ग चतुर्व्यवसित (महा यमक) के अतिरिक्त 'श्लोकाभ्यास' का भी वर्णन किया है। सदष्ट के अनेक रूप हैं समुद्ग भी पादाभ्यास बन गया है और महायमक एक नया नाम है। यदि दो श्लोक यमक के द्वारा एक से बन जाय तो उसे श्लोकाभ्यास कहा जाता है[2]।

वामन

काव्यालंकार-सूत्र-वृत्ति' के चतुर्थ अधिकरण का प्रथम अध्याय शब्दालंकार विचार है। इसके अन्तर्गत यमक तथा अनुप्रास दो[4] शब्दालंकारों का विवेचन किया गया है। यमक का उदाहरण है—

पदमनेकार्थमक्षरं वाऽऽवृत्तं स्थाननियमे यमकम् ॥४।१।१॥

अनेकार्थ पद (एक अथवा अनेक) अथवा अक्षर (एक अथवा अनेक) की स्थाननियम से आवृत्ति यमक है। स्थान नियम वामन का विशेष सिद्धान्त है। अपनी उपस्थिति[5] से अथवा (दो भिन्न पदों के अंशों से मिलकर एक पद जैसा प्रतीत होने वाले) सजातीय से, सम्पूर्ण रूप से अथवा एकदेश से अनेक पदों में व्याप्ति स्थान नियम है। इस लक्षण का बल इस विशेषता पर है कि आवृत्त पदों की स्थिति एक पाद में न होकर मुख्यतः अनेक पादों में होनी चाहिए और यदि कहीं-कहीं एक पाद में स्थिति हो तो उसे गौण वृत्ति[6] से ही स्थान नियम अर्थात् यमक का आधार समझा जा सकता है। स्थान नियम के बल से यमक का जो लक्षण किया गया है उसका महत्त्व स्थान नियम की व्याख्या में शिथिलता से खण्डित हो जाता है। वामन के अनुसार स्थान

---

१ उक्तान्तर्गतमप्येतत्, स्वातन्त्र्येणात्र कीर्त्यते ॥३।४१॥

२ श्लोकद्वय तु युक्तार्थे श्लोकाभ्यासः स्मृतो यथा ॥३।६७॥

३ अनुप्रास के प्रसंग से अग्निपुराण में यमक का वर्णन है। इसका विस्तार भरत और दण्डी की परम्परा में है। यमक का लक्षण है—

अनेकवर्णा वृत्तिर्या भिन्नार्थप्रतिपादिका।

वर्णों की आवृत्ति को अनुप्रास कहते हैं। यह दो प्रकार की हो सकती है—एकवर्णगतावृत्ति तथा अनेक वर्णगतावृत्ति। एकवर्णगतावृत्ति से वह अनुप्रास बना जिसको आचार्यों ने वृत्त्यनुप्रास कहा। अनेकवर्णावृत्ति यमक है इसमें आवृत्त वर्णों के अर्थ भिन्न भिन्न होते हैं— भिन्नार्थप्रतिपादिका।

यमक के दो भेद हैं—अव्यपेत तथा व्यपेत। लक्षण इस प्रकार हैं—

आनन्तर्यादव्यपेतं व्यपेतं व्यवधानतः ॥

इन दो भेदों के पुनः स्थान और पाद के क्रम से दो-दो भेद हो जाते हैं। इस प्रकार अग्निपुराण में यमक के सोलह भेदों का वर्णन है। दण्डी के अनुसार काचीय आदि भेदों का भी वर्णन है।

४ तत्र शब्दालंकारौ द्वौ यमकानुप्रासौ। (वृत्ति)

५ स्वात्मना सजातीयेन वा कार्त्स्न्येनैकदेशाभ्याम् एकपदव्याप्ति स्थाननियम इति। (वृत्ति)

६ यानि त्वेकपादभागवृत्तीनि यमकानि दृश्यन्ते तेषु श्लोकान्तरयमकस्थानयमकापेक्षया स्थाननियम इति। (वृत्ति)

नियम से आवत्ति यमक ह आवत्ति एक अथवा अनेक 'अनेकाथ पद' अथवा 'अक्षर' की होनी चाहिए, अनेकपाद स्थिति स्थान नियम ह, परन्तु एक-पाद स्थिति को भी स्थान नियम कहा जा सकता ह ।

यमक के दो भेद हैं—पदयमक तथा अक्षरयमक। पदयमक के उपभेद आवत्ति के स्थान के अनुसार हैं—एक सम्पूण पाद म, एक पाद के आदि मध्य-अन्त भाग मे अथवा अनेक पादो के आदि मध्य-अन्त भाग मे। ये समस्त भेद पूर्वाचार्यो म विस्तार से आ चुके थे।

अक्षर-यमक के दो उपभेद हैं—एकाक्षर तथा अनेकाक्षर। एकाक्षर यमक वस्तुत अनुप्रास लगता ह, परन्तु स्थान नियम के कारण यह अनुप्रास म विशेष यमक का चमत्कार बन जाता ह।

वामन न यमक के सौन्दर्यातिरेक के कुछ सिद्धान्तो की व्याख्या की ह। एकाक्षर यमक के विषय म उनका मत ह कि सजातीय अथवा सवण वर्णो की निरन्तरता से इसका प्रकष[1] होता ह।

भङ्ग[2] से यमक मात्र का उत्कष होता ह। भग के तीन प्रकार ह—शृखला, परिवत्तक तथा चूण। शृखला का अथ ह वर्णो के विच्छेद का क्रमश आग चलना। 'कलिकामधुक्' शब्द म 'कलि + कामधुक्' पदच्छेद करन पर लि' पर भग होता ह, फिर 'कलिका + मधु' पदच्छेद म का पर भग होता ह लि' से का' की ओर भग का चलन ही भग की शृखला ह।

एक वण का ससग छट जाने पर अन्य वण के ससग से अपने स्वरूप की प्राप्ति परिवतक[3] ह। 'कलिकामधुर्गहितम पद म अहितम पद गहितम' रूप को प्राप्त हो गया। सयुक्ताक्षर का विश्लेषण होने पर पद का स्वरूप-लोप 'चूण' ह।

यमक के सम्बन्ध म वामन का मत ह कि जो पद बहुत दूर तक यमकरूपता को प्राप्त हो कर भी दूषित हो जाय और यमक न बन सके, उसको फिर अनुप्रास का उदाहरण मानना भी उचित नही ह—

आरूढ भूयसा यत्तु पद यमकभूमिकाम्।
दुष्यच्चेन पुनस्तस्य युक्तानुप्रासकल्पना॥

वत्ति के अन्त म अदभुत यमक का भी लक्षण दे दिया गया ह। सुबन्त अथवा तिन्त पदो की अलग-अलग अथवा मिलकर एसी आवत्ति जिसम विभक्तियो सख्या और कारको का भेद हो यमकादभुत' ह। वामन न यमक का परपरानुरूप विस्तृत वणन किया ह और यह विस्तार सूत्रो की अपेक्षा वत्ति म और भी अधिक ह।

रुद्रट

तुल्यश्रुतिक्रमाणाम् अन्यार्थाना मिथस्तु वर्णानाम्।
पुनरावत्तियमक प्रायश्छन्दासि विषयोऽस्य॥३।१॥

---

१ सजातीयनरन्तर्यस्य प्रकर्षो भवति। (वत्ति)

२ भङ्गादुत्कर्षे ॥४ १ ३॥

३ सगविनिवृत्तौ स्वरूपापत्ति परिवतक ॥४,१,६॥

तुल्यश्रुति (सुनने में समान प्रतीत होने वाले) समान क्रम वाले, परस्पर में भिन्न अर्थ वाले वर्णों की पुनरावृत्ति यमक अलंकार है। यह भामह के लक्षण का ही विकास है, भामह ने 'तुल्य श्रुतीनां भिन्नानामभिधेयैः परस्परम्' द्वारा *यमक का वर्णानिव* लक्षण प्रस्तुत किया था।

यमक के मुख्य भेद दो हैं—समस्तपादज तथा एकदेशज। समस्तपादज के तीन उपभेद पादावृत्ति अर्द्धावृत्ति और श्लोकावृत्ति है। पादावृत्ति के तीन उपभेद मुख, सदंश तथा आवृत्ति है दो अन्य भेद गर्भयमक तथा सदष्टक भी है। इसी प्रकार दण्डी का अनुकरण करते हुए रुद्रट ने यमक के उपभेदों तथा उदाहरणों में पूरे उनसठ छन्द लगा दिये है।

अध्याय के अन्त में आचार्य ने कवियों को सम्मति दी है कि यमक में प्रसिद्ध शब्दों का चयन करें तथा पदों का भंग ठीक बनावें और यमक का प्रयोग मुख्यतः सगबद्ध काव्य में करें—

> सुविहितपदभङ्गं सुप्रसिद्धाभिधानं
> तदनु *विरचनीयं सर्गबन्धेषु भूम्ना* ॥३।५९॥

रुद्रट कृत यमक-लक्षण में तीन विशेषताएँ लक्षित होती हैं—

(क) भामह से तुल्यश्रुति विशेषण का ग्रहण

(ख) अभिधेय परस्पर भिन्नानाम् के स्थान पर अन्यार्थानाम् पद

(ग) *क्रम की समानता जो स्वतन्त्र चिंतन का परिणाम है।*

मम्मट

काव्यप्रकाश में यमक का अधिक सघन एवं व्यवस्थित बनाने का प्रयत्न है—

> *अर्थे सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुतिः* ॥९।८३॥

अर्थ होने पर भिन्नार्थक वर्णों की उसी क्रम में पुनःश्रुति (=पुनरावृत्ति) यमक है। यह आवश्यक नहीं कि दोनों स्थितियों में उन वर्णों का कोई अर्थ हो— अर्थ हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता, इसीलिए लक्षण में *'अर्थे सति अर्थभिन्नानाम्' कहा गया है 'भिन्नार्थानाम्'* नहीं। 'सा पुनः श्रुतिः' पद भी ध्यान देने योग्य है 'सरोरसः' में यमक नहीं है क्योंकि सा (=उसी क्रम में) आवृत्ति नहीं है।

मम्मट के अनुसार यमक के अनेक भेद हो सकते हैं जिनका आधार है 'पादवृत्ति अथवा पादभागवृत्ति'—पाद अर्थात् छन्द के एक चरण की आवृत्ति तथा पादांश की आवृत्ति। इन भेदों की गिनती में कोई वैज्ञानिकता नहीं हो सकती।

मम्मट ने यमक के भेदों का विस्तार दिखाया है महत्वपूर्ण मानकर उनका वर्णन नहीं किया—

---

1 एकैकाक्षरवर्णेऽन्येषामनर्थकत्वे भिन्नार्थानामिति न वक्तव्यं स्यात्, इति 'अर्थे सति' इत्युक्तम्। (वृत्ति)

2 सति सरो रस इत्यादौ न यमकत्वम्। तेनैव क्रमेण स्थिता। (वही)

3 पादतद्भागवृत्ति तद्यात्यनेकताम् ॥९।८३॥

(क) प्रथम पाद—द्वितीय, ततीय, चतुथ पादा के स्थान पर
द्वितीय पाद—ततीय चतुथ पादो के स्थान पर
ततीय पाद—चतुथ पाद के स्थान पर
प्रथम पाद—शप तीनो पादा म आवृत्त

योग—सात भेद[1]

(ख) प्रथम पाद—द्वितीय पाद के स्थान पर

अथवा

ततीय पाद—चतुथ पाद के स्थान पर
प्रथम पाद—चतुथ पाद के स्थान पर

अथवा

द्वितीय पाद—तृतीय के पाद स्थान पर

योग—दो भेद[2]

इन पादज नौ भेदा के अतिरिक्त अर्धावत्ति तथा श्लोकावत्ति दो अ य भेद भी हैं।

इन ग्यारह भेदा मे श्लोकावत्ति पादज नही ह। उसे निकालकर यमक क पादज भेद दस हाते हैं। यदि पाद को दा भागा म विभक्त कर लें तो यमक के बीस भेद हो गए तीन भागा मे विभक्त कर लें तो तीस चार भागो म विभक्त कर लें तो पादभागावत्ति रूप यमक के चालीस भेद बन सकते है।

मम्मट ने लिखा ह कि यमक क अनन्त भेद हो सकते है परन्तु वे काव्यास्वाद म बाधक है इस लिए उनके लक्षण देना व्यथ है तथा तस्मिन्नेव पाद आद्यादिभागाना मध्यादिभागेषु अनियते च स्थाने आवत्तिरिति प्रभूततमभेदम। तदेतत्काव्यान्तगडुभूतम् इति नास्य भेदलक्षण कृतम्।

भामह तथा मम्मट के यमक विवेचन म दष्टिसाम्य ह। दानो यमक का एक व्यवस्थित लक्षण देते हैं यमक भेदा की अनन्तता स्वीकार करते हुए भी उनम किसी सौन्दय को सिद्ध नही करते उनका मत ह कि यमक क कारण काव्य प्रहेलिका न बन जाय—उसकी सहजता का कवि को सदा ध्यान रखना चाहिए।

रुय्यक

'अलकारसवस्व म शब्दपौनरुक्त्य क तीन अलकारो का वणन है—छेकानुप्रास वत्त्यनुप्रास तथा यमक। यमक मे स्वर व्यजन समुदाय की पुनरुक्ति होती ह—

'स्वर व्यजन-समुदाय-पौनरुक्त्य यमकम।

यह पौनरुक्त्य 'वर्णाना पुनरावत्ति (भामह) तथा वर्णाना पुन श्रुति' (मम्मट) का पर्याय

---

१ इनके नाम क्रमश मख सन्दश आवत्ति गभ सन्दष्ट पुच्छ तथा पक्ति हैं।
२ इनके नाम क्रमश युग्मक तथा परिवृत्ति हैं।
३ तदेव पादज नवभेदम्। अर्धावत्ति श्लोकावृत्तिश्चेति द्वे। (वत्ति पृ० ४१)

देवदत्त

'शब्दरसायन' यमक का वणन चित्र-काव्य के प्रसग मे करता ह। अष्टम प्रकाश म लक्षण तो नही यमक का अवनानिक वणन ह—

वेई पद वठत उठत, फिर फिर अथ अनत।
आदि, अत, मध्यहु सकल यमक बखानत सत॥

इसमे भरत के 'शब्दाभ्यासस्तु यमकम' की गध आ रही ह। इस प्रसग म लक्षण के बिना ही यमक के एक नवीन भेद सिंहावलोकन' का उदाहरण देवकवि ने दिया ह जिसम पदा की आवत्ति अनेक नियमा से आ गई ह

भूल ह न भाग की प्रवाह सो दुकूल ह
दुकूल ह उज्यारा देव प्यारो अनुकूल ह। (पृ० १८०)

भिखारीदास

'काव्यनिणय के एकोनविंशतितम उल्लास म यमक का सक्षिप्त वणन ह—

वह मन्द फिरि फिरि पर, अथ औरई और।
सो जमकानुप्रास ह भद अनकनि ठौर॥१९।५८॥

यह लक्षण भी अनुपयुक्त ह यमक की मुख्य विशेपता क आ जान पर भी इसम व्यापकता नही आ पाई। यमक भेद के रूप म सिंहावलोकन' का लक्षण दासकवि ने इस प्रकार दिया है

चरन अत अरु आदि के, जमक कुडलित होइ।
सिंह बिलोकन ह उह मुक्तक पद ग्रस मोइ॥१९।६१॥

कन्हैयालाल पोद्दार

'अलकार मजरी म यमक का वणन मम्मट क अनुसार ह साथ ही विश्वनाथ स भी सहायता ली गई ह। लक्षण दखिए—

'निरथक वर्णों की अथवा भिन्न अथ वाले साथक वर्णों की क्रमश आवृत्ति या उनका पुन श्रवण को यमक कहते हैं। (पृ० ७२)

यमक के भेदा का वणन भी काव्यप्रकाश क आधार पर ह। पोद्दार का एक सामान्य निष्कप ध्यान दने योग्य ह 'यमक म भी वर्णों का एक विशेष प्रकार स न्यास ही होता ह। अत यमक एक विशेष प्रकार का अनुप्रास ही ह। (पृ० ७२)

दासकवि न तो 'यमक का नाम जमकानुप्रास ही लिखा था।

रामदहिन मिश्र

'काव्यदपण क बारहवें प्रकाश की प्रथम छाया म यमक का सक्षिप्त वणन ह। प्रकाश

देखिए "जहाँ निरथक वर्णों वा भिन्नाथक साथक वर्णों की पुनरावत्ति हो वा उनकी पुन श्रुति हो, वहा यमत्र अलकार हाता ह। (पृ० ३४७)

पदावत्ति और भागावृत्ति इसके दो मुख्य भेद है। ' हिन्दी म सिंहावलोकन यमक होता ह जिसे मुक्त-पाद ग्राह्य भी कहते हैं। प्रत्येक चरण के अतिम शब्द आवत्त होकर आये हैं। इसमे सिंहावलोकन के तुल्य मुक्त-पद-ग्राह्य हुए है।" (पृ० ३४८)

उपसहार

यमक चार प्राचीनतम अलकारा म से है और शब्द का एकमात्र प्राचीनतम अलकार है। भरत न इसका सवप्रथम विवेचन किया था। तदनन्तर भामह दण्डी, अग्निपुराणकार वामन, रुद्रट आदि ने उस अध्ययन को आगे बढाया। अर्वाचीन आचार्यों म से प्रत्येक ने यमक का एक विशेष शब्दालकार के रूप म विवेचन किया है। जो आचाय यमक के अनेक भेदोपभेदा का विवेचन करते हैं व उस चित्र के निकट तक ले जाते हैं, यथा अग्निपुराणकार तथा केशवदास। अय आचाय विशेषत नव्य आचाय, उसका लाटानुप्रास के समकक्ष रखकर उसका अध्ययन करते हैं। ध्वनिकार ने तो यहाँ तक कह दिया कि शृगार रस म यमक का सवथा वजन होना चाहिए क्योकि यह अलकार ध्वनि का बाधक है—

> ध्वन्यात्मभूते शृगारे यमकादिनिबन्धनम।
> शक्तावपि प्रमादित्व विप्रलम्भे विशेषत ॥ (ध्वन्यालोक, २ १५)

लक्षण

भरत 'शब्दाभ्यास मात्र को यमक कहते हैं। भामह ने इसको एक वनानिक लक्षण दिया कि 'सुनने म समान (तुल्यश्रुतीना) परन्तु अथ म परस्पर भिन्न (अभिधेय परस्पर भिन्नाना) वर्णों की आवत्ति (पुनर्वाद) यमक कहलाती है। रुद्रट ने इस लक्षण म क्रम की समानता' को जोड दिया। मम्मट, रुय्यक तथा विश्वनाथ के लक्षण प्राय अधिक विकसित हैं। मम्मट ने अथवत्ता का फिर जोड दिया कि वर्णो की जो आवत्ति है वह निरथक अथवा साथक अथवा एक स्थान पर साथक एव अय पर निरथक हा सकती है। रुय्यक मे 'अथवपम्य का सकेत नही है परन्तु विश्वनाथ का लक्षण पर्याप्त पूण है—

> सत्यर्थे पृथगर्थाया स्वर-व्यजन सहत।
> क्रमेण नेनवावत्तियमक विनिगद्यत॥ (सा० द०, १०,१८)

यमक के लक्षण म सबसे अधिक मतभेद 'अथवपम्य पर है और सबसे अधिक विचारणीय तत्त्व भी वही है। भामह न अभिधेय परस्पर भिन्नाना द्वारा अथवपम्य का सकेत दिया था जो भोज द्वारा विकसित किया गया (लक्षण) है— विभिन्नार्थकरूपाया या वृत्तिवण-सहते)। मम्मट ने कहा कि जिन दा पदा म यमक है उनम से यदि दोना साथक है तो उनम अथवपम्य होना चाहिए यदि एक साथक है दूसरा नही और यदि दोना निरथक हैं तो अथवपम्य का प्रश्न ही नही आता। रुय्यक ने इस महत्त्वपूण समस्या को छोड ही दिया।

प्रश्न यह है कि यदि वणसाम्य ही यमक है तो यमक का अनुप्रास से अतर क्या रहा ? यमक वही मानना उचित है जहाँ आवत्त पद का दोना स्थानो पर अलग-अलग अथ हो। इस दष्टि स "निरथक वर्णावत्तिवाले यमक को अनुप्रास का ही एक भेद कहना उचित होगा।" जहाँ शब्दो की आवत्ति चमत्कार का कारण हो और भिनाथक हो वही यमक अलकार होता है।[१]

यमक शब्दालकारा का मूल है और अनुप्रास आदि उसी के विकार हैं। परन्तु कुछ आचाय अनुप्रास को शब्दालकारो का मूल मानते है और यमक का उसका एक भेद सिद्ध करते है। अग्नि पुराण के अनुसार वर्णों की आवत्ति अनुप्रास है, इसके दो भेद हैं—एकवणगत तथा अनेकवण गत, अनेकवणगत आवत्ति वाले अनुप्रास को यमकानुप्रास कहते हैं। विचार-सरणि यह है कि शब्द चमत्कार को एक वग यमक कहता है दूसरा वग अनुप्रास। शास्त्रीय लक्षण का विकास कालातर म ही हुआ।

भेदोपभेद

भरत ने यमक के दस भेदा का वणन छद म अक्षरा की स्थिति क आधार पर किया था। भामह ने काट छाट करके केवल पाँच भेद रहन दिये। अग्निपुराण, रुद्रट काव्यालकार काव्य प्रकाश आदि म इस आधार पर यमक भदो का प्रसग उठाया गया है। इस प्रकार के भेदा के अलग अलग नाम भी है। दण्डी म यमक भेदा की सख्या ३१५ तक पहुच गई थी।

यमक के भेदा का दूसरा आधार व्यवधान है। काव्यादश एव अग्निपुराण म यमक के दा भेदा अव्यपेत तथा व्यपत (एव व्यपेताव्यपेत) का वणन है। इसकी स्वीकृति उत्तर आचार्यों म भी ह।

भामह ने कुछ यमक चमत्कारो को दुष्कर बतलाया था अग्निपुराण म भी कुछ यमका को दुष्कर माना गया है। इस आधार पर केशवदास ने यमक क दा भेद सुखकर तथा दुखकर मान लिय।

वामन न यमक के दो भद— पादयमक तथा अगारयमक —करके एक अय ढग स विचार किया था, परन्तु उनके प्रयत्न को अपनाया नही गया।

हिन्दी के आचार्यों ने यमक का एक भेद सिहावलोकन माना और उसका वणन भी किया। सिहावलोकन का दूसरा नाम मुक्त-पद ग्राह्य है।

इस प्रकार यमक के प्रसग म स्वरूप की वज्ञानिकता क साथ-साथ भदोपभदो क लिए भी वज्ञानिक आधार खोजने का प्रयत्न किया गया ह। सामान्य आधार आवृत पदा की स्थिति हा ह परन्तु इस आधार पर भेदा की अनन्तता तक हम पहुँच जाते हैं और यमक अलकार चित्र क समीप पहुँचने लगता ह।

---

१ 'संस्कृत-साहित्य में सादृश्यमूलक अलकारा का विकास' पृ० ७९

२ वामन ने यमक-भगन के लिए 'स्थान नियम' का सिद्धान्त निकाला परन्तु वह अन्यों द्वारा स्वीकृति प्राप्त न कर सका।

'यमक' पर सयम

भामह शब्दाभ्यास की खिलवाड से स तुष्ट नही थ। उनके अनुसार का य सहज हाना चाहिए याख्यागम्य नही। यदि यमक का लोभ बढता गया ता कविता 'प्रहेलिका' बन जायगी। यमक के लिए ऐसे पदा का प्रयोग हो जिनक अथ प्रसिद्ध हो (प्रतीतशब्दम), जा निरुत्साहित न करें (आजस्वि) जिसम पदसधियाँ सु यवस्थित हा (सुश्लिष्ट-पदसधि), जा प्रमादपूण (प्रसादि) तथा अभि यक्ति म समथ हा (स्वभिधानम)—

प्रतीतश दम आजस्वि, सुश्लिष्टपदसधि च।
प्रसादि, स्वभिधान च यमक कृतिना मतम ॥२।१८॥

रुद्रट न इसम इतना और जोड दिया ह कि यमक का अधिक प्रयोग सगबद्ध काव्य म ही करना चाहिए। मम्मट ने इसी बात को दूसरे प्रकार स कहा ह—तदेतत काव्यान्तर्गडुभूतम इति नास्य भेदलक्षण कृतम।

तृतीय अध्याय

'काव्यालकार' के द्वितीय परिच्छेद मे अतिरिक्त विवेचित अलकार

५ अनुप्रास

भामह

भरत और भामह के बीच म अनुप्रास का जन्म हो गया था। भामह ने पाँच सवस्वीकृत[1] अलकारा म चार भरत-द्वारा वर्णित अलकारा के साथ अनुप्रास का भी विवेचन किया है। भामह प्रथम शब्दालकारा का वणन करना चाहते थ कदाचित इसीलिए काव्यालकार म अनुप्रास और यमक प्रथम तथा द्वितीय स्थाना पर हैं, प्रसिद्ध अर्थालकार तृतीय चतुथ तथा पचम स्थाना पर।

सरूप वर्णों का विन्यास[2] अनुप्रास कहलाता ह। अनुप्रास म अथ और शब्द दोनो का महत्त्व ह यह मध्यम[3] माग ह अथ अलग-अलग होते हैं परन्तु अक्षर अलग-अलग नही हाते।

एक तो ग्राम्यानुप्रास ह। उदाहरण म 'ल अक्षर की पुन पुन आवत्ति है। ग्राम्य' नाम के दो सभव आधार हैं—अक्षर की अकुशल आवत्ति, ल जस ग्राम्य अक्षर की आवत्ति (२।६)।

लाटानुप्रास चारु माना गया ह पूवश्लोक (२।७) म मानो इसी की स्थापना की गई थी, अर्थात अथ अलग अलग, परन्तु अक्षर समान। उदाहरण है—

दष्टि दष्टिसुखा धेहि चन्द्रश्चन्द्रमुखोदित ॥२।८॥

इसम दष्टि तथा चन्द्र की अन्य अथ म आवत्ति है। भरत के मत म यह उदाहरण सदष्ट यमक का है।

दण्डी

काव्यादश के प्रथम परिच्छेद म वदभ माग क दस गुणो का वणन करते हुए (श्लोक-सख्या

---

१ अनुप्रास सयमको रूपक दीपकोपमे।
इति वाचामलकारा पचवान्यरुदाहृता ॥२।४॥

२ सरूपवर्णविन्यासमनुप्रास प्रचक्षते ॥२।५॥

३ नानार्थवन्तोऽनुप्रासा न चाप्यसदृशाक्षरा।
युक्त्यानया मध्यमया जायन्ते चारवो गिर ॥२।७॥

चालीस से एक सौ दो तक) दण्डी ने माधुय गुण के प्रसग म अनुप्रास-यमक की चर्चा चलाई ह और अनुप्रास का पूण विवचन कर दिया है—यमक 'एकान्तमधुर'[1] नही है इसलिए उसका वणन पीछे चलकर किया है।

अनुप्रास-वणन का मुख्य उद्देश्य वदभ-गौडा की काव्य-दृष्टि म अ तर दिखाना तथा आवत्ति का माधुय से सम्बन्ध स्थापित करना है। इसलिए अनुप्रास के दो भेद वर्णित हैं—*वैदभप्रिय श्रुत्यनुप्रास तथा गौडप्रिय वर्णानुप्रास*।

श्रुत्यनुप्रास वदर्भों का प्रिय है, वे वर्णानुप्रास से अधिक श्रुत्यनुप्रास को रसोपकारक मानते हैं, परन्तु गौडो म श्रुत्यनुप्रास का आदर नही है।[2] वैदर्भों के मत म जो श्रुति पूर्वोच्चरित श्रुति के समान हो वह रसावह है।[3] श्रुत्यनुप्रास म समान स्थान से उच्चरित होने वाले व्यजना का सादश्य होता है स्थान-साम्य के कारण इसको श्रुत्यनुप्रास कहते है।[4]

वर्णानुप्रास म वर्णों (व्यजना) की आवत्ति होती है पूर्वोच्चरित वर्णों के अनुभव[5] म जो सस्कार उत्पन्न होते हैं उनका बोध कराने वाली अदूरता ही वर्णानुप्रास का प्राण है। वर्णानुप्रास के दो भेद हैं—पादगत तथा पदगत।

वदभ (दाक्षिणात्य) श्रुत्यनुप्रास के प्रेमी तथा वृत्त्यनुप्रास के अविरोधी हैं फिर भी केवल अनुप्रास-लोभ स सदोष आवत्ति वाले शिथिल काव्यबन्ध को वे स्वीकार नही करते इसके विपरीत गौड अनुप्रास-लोभ से सदोष का भी ग्रहण करते है।[6] गौड शिथिल काव्य को अनुप्रास (वर्णानुप्रास) के कारण स्वीकार करते हैं, परन्तु वदभ भ्रमर के समान शिथिल काव्य को शिथिल मालतीमाला के समान[7] त्याग कर देते है।

---

१ आवत्ति वणसघातगोचरा यमक विदु।
 तत्त नकान्तमधरमत पश्चाद्विधास्यते ॥१।६१॥
२ इतीद नास्त गौडेष्वनुप्रासस्तु तत्प्रिय।
 अनुप्रासादपि प्राया वदर्भैरिदमीप्सितम् ॥१।५४॥
३ यया कयाचि छ्रुत्या यत् समानमनुभूयत।
 तद्रूपा हि पदासत्ति सानुप्रासा रसावहा ॥१।५२॥
४ कण्ठताल्व्याद्यनेकस्याना चायत्वेन व्यजनानां सादश्य श्रुत्यनुप्रास। (प ५८)
 स्थानसाम्याच्छ्रुत्यनुप्रास। (पृ० ६ प्रभाख्या व्याख्या)
५ वर्णावृत्तिरनुप्रास पादेषु च पदेषु च।
 पूर्वानुभवसस्कारबोधिनी यद्यदूरता ॥१।५५॥
६ वैदर्भा श्रुत्यनुप्रासे आदरयुक्ता वृत्त्यनुप्रास च अमत्सरिण। तथापि केवलमनुप्रासलोभेन न सन्दर्भ-स्तयो स्वीकार ते कुर्वन्ति। गौडास्तु सदोषमपि तमनुप्रासलोभेनाङ्गीकुर्वन्ति। (प्रभा पृ० ६५)
७ शिथिल मालतीमाला लोलालिकलिला यथा ॥४३॥
 अनुप्रासधिया गौडैस्तदिष्ट बन्धगौरवात्।
 वैदर्भैर्मालतीदाम लघित भ्रमरैरिव ॥१।४४॥

उदभट

'काव्यालकार-सार-सग्रह म चार शब्दालकार हैं—एक पुनरुक्तवदाभास तथा तीन अनुप्रास। छेकानुप्रास अनुप्रास (वृत्यनुप्रास) तथा लाटानुप्रास को उदभट न अलग अलग माना है और इन्दुराज ने पुनरुक्तवदाभास-पूवक इन तीन अनुप्रासा को चार शब्दालकार गिना है—अलालकारा अष्टावुद्दिष्टा । तत्र चाद्यो चत्वार शब्दालकारा निरूपिता '। (पृ० १)

उद्भट न अनुप्रास का लक्षण वर्णन क अन्त म दिया है। भामह के अनुसार 'सरूपवण विन्यास का अनुप्रास कहते हैं, उद्भट न वण के स्थान पर व्यजन ' पद का प्रयोग किया है जो अधिक वज्ञानिक है क्योंकि अनुप्रास म स्वर' का महत्त्व नही है केवल व्यजन पर अनुप्रास का सौन्दय निभर रहता ह । उद्भट न अनुप्रास क प्रसग म वृत्तिया का भी परिचय दिया है और तीना वत्तिया के आधार पर अनुप्रास (वृत्यनुप्रास) क तीन उपभेद किय हैं—

प्रथम वत्ति परुषा है जिससे परुषानुप्रास बनता है। परुषा क आधार हैं—शकार-षकारादि युक्त वण, रेफ-सयुक्त व्यजन टवग तथा ह्ल ह्व ह्य आदि।

द्वितीय वत्ति उपनागरिका है जिसस उपनागरिकानुप्रास बनता है। इस वृत्ति के आधार है—सरूप वर्णों के सयोग क्क, च्च, प्प आदि, तथा वर्गान्त व्यजना के स्पर्शी (क स म तक) के साथ याग।

तृतीय वत्ति ग्राम्या है जिसस ग्राम्यानुप्रास बनता है। ग्राम्या म परुषा तथा उपनागरिका स अतिरिक्त सौन्दय का समावेश होता है। इस वत्ति को कोमला भी कहते हैं। यह लकार आदि स युक्त हानी है। ग्राम्यानुप्रास की चर्चा भामह न भी की थी और उसकी पहचान 'ल' जस ग्राम्य अक्षर की आवत्ति को माना था। (काव्यालकार, २ ६)

दण्डी का वर्णानुप्रास उदभट का अनुप्रास (वत्यनुप्रास) है। उदभट द्वारा कल्पित छेकानुप्रास का वणन यथास्थान किया गया है।

लाटानुप्रास

भामह ने लाटानुप्रास का वर्णन किया था, लक्षण नहीं दिया था पर तु एक उदाहरण द्वारा उसे स्पष्ट किया था—

लाटीयमप्यनुप्रास इहेच्छन्त्यपरे यथा।
दष्टि दष्टिसुखा धहि, च द्रश्च द्रमुखोदित ॥काव्यालकार, ।२,८॥

भरत क मत म यह उदाहरण सदष्ट यमक का है।

उदभट न लाटानुप्रास की लक्षण भेदोदाहरण-पूवक स्थापना की है। लक्षण है—
स्वरूपाथविशेषेपि पुनरुक्ति फला तरात।

---

१ सरूपव्यजनन्यास तिसृष्वेतासु वत्तिषु।
पथक पृथगनुप्रासमशति कवय सदा ॥ (का०सा०सं०, १।७)

श-दाना वा पदाना वा लाटानुप्रास इप्यत ।। का०सा०स०, ।१।८।।

श-दा अथवा पदा (अथवा एक रूप शब्द दूसरा रूप पद) की, स्वरूपाथ विशेप हाने पर भी फनान्तर के निमित्त पुनरुक्ति, लाटानुप्रास है। अर्थात, दोना शब्दा अथवा पदा का स्वरूप तथा मूलाथ एक होन पर भी फन अलग-अलग हागा।

लाटानुप्रास के पाच भेद हैं—

(१) 'पदद्वितयस्थितया द्वया।' जहा दोना श-द दा अलग पदा म स्थित हा। य दाना शब्द परतन्त्र हाते है—किसी के अग हाते है। क्वचिद उत्फुल्लकमला कमलभ्रा-तपटपदा म कमल' श-द दा अलग पदा म परतन्त्र रूप से आया है।

(२) 'एकस्य पूववत (परतन्त्रतया स्थित्या), तद-यस्य स्वत-त्रत्वात्।' जहा एक पद अलग पद म परतन्त्र हो और दूसरा स्वतन्त्र पद हो। पद्मिनी पद्मिनीगाढस्पृहयागतय मानसात् म प्रथम 'पद्मिनी स्वतन्त्र है और दूसरा परतन्त्र।

(३) 'द्वयोर्वा एकपदाश्रयात।' दोना शब्द एक पद म स्थित हा। 'जिता-यपुष्पकिंजल्कर्किजल्क श्रेणिशाभितम् म दोना किंजल्क एक ही पद म स्थित हैं।

(४) 'स्वतन्त्रपदरूपेण द्वयोर्वापि प्रयोगत।' दानो शब्द अलग तथा स्वतन्त्र पद हो। काशा काशा इवाद्भासि सरासीव सरासि च' मे 'काशा का ऐसा प्रयाग है।

(५) 'पादाभ्यासक्रमेण च।' पाद की यथासभव रूपा म आवृत्ति हा। इसके अनेक रूप हो सकते है। यहा पदसमुदायात्मक पाद की स्वरूपाथ विशेप मे तात्पयभेद से पुनरुक्ति होती है—

स्त्रियो महति भतृ भ्य आगस्यपि न चुक्रुधु।
भतारोपि सति स्त्रीभ्य आगस्यपि न चुक्रुधु ॥

यहा द्वितीय तथा चतुथ पाद समान है, एक स्थान पर प्रेमियो के क्रोधाभाव का वर्णन है, दूसरे पर प्रेयसियो के क्रोधाभाव का—यही तात्पय भेद है।

वामन

शेप सरूपोऽनुप्रास ।।१,१,८।।

एकाथ अथवा अनेकाथ स्थानानियत पद की अ-य प्रयुक्त पद के साथ तुल्यरूपता अनुप्रास है। इस लक्षण म भामह का 'सरूप-वण वि-यास ही नही, उदभट का सरूप व्यजन-न्यास भी आ जाता है तथा यमक से (जहाँ स्थान नियत है तथा पदो म भि-नाथकता अनिवार्य है) पाथक्य भी स्थापित हा गया।

अनुप्रास क दो रूप हैं (यमक के रूपा क ही समान)—वर्णानुप्रास तथा पादानुप्रास। वर्णानुप्रास यदि अनुल्वण (अनुग्र मधुर) है ता अच्छा है, उल्वण अनुप्रासशोभा की वृद्धि नही करता। पादयमक के जो भेद किय गय है व पादानुप्रास के भी हो सकते है। पादानुप्रास के चार उदाहरणा म स एक लाटानुप्रास (समस्त पादा के वर्णों की आवृत्ति) का है द्वितीय वृत्त्यनुप्रास का, तृतीय समस्तपादा-त अनुप्राम का और चतुथ समस्तपादादि' अनुप्रास का।

रुद्रट

एक व्यजन की बहुश[1] आवत्ति अनुप्रास है आवत्ति के बीच म एक अथवा दो अथवा तीन व्यजनो का व्यवधान रहता है और स्वर की चिता[2] नही रहती। रुद्रट पर उदभट का प्रभाव अनुप्रास के लक्षण मे भी है तथा वत्तिया के आधार पर अनुप्रास के निरूपण म भी । उदभट म वत्तिया तीन थी, रुद्रट म पाच[3] हो गइ उदभट की परुपा, उपनागरिका तथा ग्राम्या यहा परुपा मधुरा तथा ललिता बन गइ, प्रौढा तथा भद्रा विशेष हैं। आगे के आचार्यों ने प्राय उदभट की वत्तियो को ही स्वीकार किया है।

मम्मट

स्वरा की असदश्यता मे व्यजना का साम्य अनुप्रास कहलाता है यह लक्षण भामह की परम्परा मे है। अनुप्रास के दो भेद हैं—छेकानुप्रास तथा वृत्त्यनुप्रास।

अनेक वर्णा का एक बार[4] साम्य छेकानुप्रास है, एक अथवा अनेक वर्णों का अनेक बार[5] साम्य वत्त्यनुप्रास हे। इस विभाजन का आधार एक बार अथवा अनेक बार आवत्ति है। उदभट द्वारा कल्पित एव मम्मट द्वारा प्रचारित छेकानुप्रास' उत्तर आचार्यों ने प्राय स्वीकार कर लिया है।

वत्त्यनुप्रास के सम्बन्ध म मम्मट ने तीन वत्तिया का प्रतिपादन किया है। उदभट ने वत्तिया का प्रसग चलाया था व तीना वत्तिया और उनके कारण वत्त्यनुप्रास के उपभेद मम्मट ने अपना लिये है। उदभट और वामन क अतर का मम्मट ने इस प्रसग म उल्लेख किया है—

केषाचिदेता वदर्भीप्रमुखा रीतयो मता ॥

एतास्तिस्रो वत्तय वामनादीना मत वदर्भी गौडी पाचाल्याख्या रीतयो मता । रुद्रट ने पाँच वत्तिया का वणन किया था परन्तु मम्मट आदि अन्य आचाय उदभट के साथ सहमत रहे।

अनुप्रास का एक अन्य भेद लाटानुप्रास है। वणसाम्य के अनुप्रास के उपयुक्त दो भेद हैं। लाटानुप्रास वणसाम्य का नही शब्दसाम्य का अनुप्रास है। मम्मट का यह सूक्ष्म विभाजन उत्तर आचार्यों न स्वीकार कर लिया और लाटानुप्रास का अलग वण न किया।

शब्द और अथ दोना का अभद होने पर भी अन्वय मात्र क भेद स शब्दसाम्य लाटानुप्रास है। यह एक अथवा अनेक पदा का हो सकता है। लक्षण है—

शब्दस्तु लाटानुप्रासो भदे तात्पयमात्रत ॥ ८१ ॥

उदभट ने लाटानुप्रास के पाँच उपभेदो का वणन किया था मम्मट म भी ये पाँच भद हैं। मम्मट का लाटानुप्रास-वणन उदभट स प्रभावित है।

---

१ एकद्वित्र्यन्तरित व्यजनमविवक्षितस्वर बहुश ।
आवत्यन निरन्तरमथवा यदसावनुप्रास ॥ २।१८॥

२ अविवक्षितस्वरम्। अविवक्षिता स्वरा यत्र तथा। स्वरचिन्ता न क्रियत इत्यर्थ । (वृत्ति)

३ मधुरा प्रौढा परुषा ललिता भद्रेति वत्तिय पञ्च॥२।१९॥

४ वणसाम्यमनुप्रास । ५ सोऽनेकस्य सकृत्पूर्व । ६ एकस्याप्यसकृत्पर ।

रुय्यक

अलकार-सवस्व' म पौनरुक्त्य के आधार पर पाच शब्दालकारो का वणन किया गया है। छेकानुप्रास-वत्त्यनुप्रास का युगल एक साथ है यमक-लाटानुप्रास का युगल एक साथ।

'सख्यानियमे पूव छेकानुप्रास ।'

सख्यानियम मे छेकानुप्रास अलकार ह, दा व्यजनसमुदाया के परस्पर म एकधा सादश्य का 'सख्यानियम' कहत हैं। यह लक्षण मम्मट का अनुकरण मात्र है। वत्त्यनुप्रास का अन्तर भी मम्मट के आधार पर है—

'अयथा तु वत्त्यनुप्रास ।'

लाटानुप्रास का लक्षण भी मम्मट की शब्दावली म है—

तात्पयभेदवत्तु लाटानुप्रास ।'

जयदेव

चद्रालोक' म अलकार विवचन अनुप्रास से प्रारम्भ होता ह। अनुप्रास का लक्षण नही दिया गया। पाच भेदा का वणन है—

१ छेकानुप्रास २ वृत्त्यनुप्रास, ३ लाटानुप्रास, ४ स्फुटानुप्रास ५ अथानुप्रास।

प्रथम तीन का वणन ता दूसरे आचार्यों ने भी किया है, अतिम दो नय भेद ह। स्फुटानुप्रास का लक्षण-उदाहरण है—

श्लोकस्यार्धे तदर्धे वा वणावृत्तियदि ध्रुवा।
तदा मता मतिमता स्फुटानुप्रासता सताम् ॥५।५॥

- यह भद यमक म आ जाता है, इसका अनुप्रास का रूप स्वीकार करना अनुप्रास-यमक क स्वरूप के विकास की उपक्षा मात्र है।

अर्थानुप्रास अलकार का लक्षण-उदाहरण है—

उपमेयोपमानादौ अर्थानुप्रास इष्यते।
चदन खलु गोविन्द-चरण-द्वन्द्व-वदनम ॥५।६॥

अथानुप्रास का स्थल है उपमान और उपमेय म वणसाम्य। यह अनुप्रास का चमत्कार नही है और इस प्रकार क चमत्कार ता प्रत्यक अथालकार के सहयाग से प्राप्त हो सकत हैं तब क्या उपमानुप्रास रूपकानुप्रास तथा उपमा-यमक रूपक-यमक आदि भेदा की कोई इति हो सकेगी? अस्तु जयदेव क दोनो अनुप्रास भेद सदाप एव भ्रष्ट है, इनका स्वतन्त्र अलकारत्व प्राप्त नही हा सकता।

विश्वनाथ

विश्वनाथ न अनुप्रास के विवचन का मम्मट से अधिक पूण एव सहज बनाने का प्रयत्न किया है आधार मम्मट ही हैं। लक्षण मम्मट की शब्दावली म ही है—

१ द्वयाव्यञ्जनसमुदाययो परस्परमनकधा सादश्य सख्यानियम। (पृ० २४)

अनुप्रास शब्दसाम्य वषम्यऽपि स्वरस्य यत ।

मम्मट का वर्णसाम्य यहाँ आकर 'शब्दसाम्य' बन गया है। जो बात मम्मट ने वृत्ति में कह दी थी, वह विश्वनाथ ने श्लोक में लिख दी है। अनुप्रास के पाँच भेद हैं—

१ छेकानुप्रास, २ वृत्त्यनुप्रास, ३ श्रुत्यनुप्रास ४ अन्त्यानुप्रास, ५ लाटानुप्रास।

छेकानुप्रास तथा वृत्त्यनुप्रास का परस्पर अन्तर (सकृत साम्यमनकधा) एव वर्णन मम्मट के अनुसार है। विशेष व्याख्या में विश्वनाथ लिखते हैं "आवर्धेति स्वरूपत क्रमतश्च, रस सर इत्यादे क्रमभेदेन सादृश्य नास्यालकारस्य विषय ।" (पृ० २७५)

इसी प्रकार लाटानुप्रास का वर्णन मम्मट की शब्दावली में है—

शब्दार्थयो पौनरुक्त्य भदे तात्पर्यमात्रत ।

इस लक्षण पर मम्मट के साथ-साथ रुय्यक का भी प्रभाव है।

अनुप्रास के दो नये भेद श्रुत्यनुप्रास तथा अन्त्यानुप्रास हैं। तालु आदि एक स्थान से उच्चरित होने वाले व्यंजनों की (स्वरों की नहीं) समता को श्रुत्यनुप्रास कहते हैं स्थान साम्य के कारण इनमें श्रुति-साम्य है—

उच्चार्यत्वाद यदेकत्र स्थाने तालुरदादिके ।
सादृश्य व्यजनस्यैव श्रुत्यनुप्रास उच्यते ॥१०।६॥

पहले स्वर के साथ ही यथावस्थ व्यंजन की आवृत्ति अन्त्यानुप्रास है इसका प्रयोग पद अथवा पाद के अन्त में ही होता है—

व्यजन चेद् यथावस्थ सहाद्येन स्वरेण तु ।
आवर्त्यतेऽन्त्ययोज्यत्वाद् अन्त्यानुप्रास एव तत ॥१०।३॥

कुवलयानन्द' में केवल अर्थालंकारों का वर्णन है शब्दालंकारों का नहीं इसलिए अनुप्रास आदि की चर्चा का वहाँ प्रश्न उपस्थित नहीं होता। जगन्नाथ ने भी अनुप्रास का वर्णन नहीं किया।

देवदत्त

केशवदास ने अनुप्रास का वर्णन नहीं किया और देवकवि में यह अत्यन्त संक्षिप्त है—

पर पूरब पद एकते आव अथ अदूर।
अक्षर लपटे सग लौं अनुप्रास रस-पूर ॥ (पृ० १३९)

भिखारीदास

दासकवि ने अनुप्रास का वर्णन मम्मट के आधार पर किया है। अनुप्रास का लक्षण है—

वचन आदि के अंत जहँ अक्षर की आवृत्ति ।
अनुप्रास सो जानि द्व भेद छेक औ वृत्ति ॥ १९।३५॥

छेकानुप्रास है वर्ण अनेक कि एक की आवृति एकहि बार।

वत्त्यनुप्रास म उपनागरिका, परुषा और कोमला वत्तिया हैं। लाटानुप्रास का लक्षण ह—

एक सब्द वहु बारगी, सो लाटानुप्रास।
तातपज तें होतु ह, और अथ प्रकास॥ १९।४८॥

कन्हैयालाल पोद्दार

अनुप्रास का वणन मम्मट विश्वनाथ के आधार पर है। छेक, वत्ति तथा लाट भेदो का वणन है। लेखक के कुछ परपरागत निष्कष ध्यान देने योग्य है—

(क) एक वण के एक बार सादश्य मे छेकानुप्रास नही हाता ह। काव्यप्रकाश की प्रदीप' और 'उद्योत व्याख्या म एव साहित्यदपण' मे एक वण के एक बार सादश्य म वृत्त्य नुप्रास माना गया ह। (पृ० ६५)

(ख) इस (लाटानुप्रास) म शब्द या पदो की आवृत्ति होने के कारण इसकी शब्दानु प्रास या पदानुप्रास सज्ञा है। (पृ० ६९)

(ग) अत य दोनो भेद (श्रुत्यनुप्रास तथा अन्त्यानुप्रास) भी वत्त्यनुप्राम के अन्तगत ही हैं, न कि पृथक। (पृ० ७१)

रामदहिन मिश्र

'काव्यदपण म अनुप्रास का सक्षिप्त वणन 'साहित्यदपण के आधार पर किया गया ह। उसी प्रकार अनुप्रास के पाँच भेद दिये गये है। अन्त्यानुप्रास का लक्षण अवश्य मौलिक ह छन्द के अन्त मे जब अनुप्रास होता ह तब अन्त्यानुप्राम कहलाता है।' (पृ० ३४६)

उपसहार

राजशेखर के अनसार अनुप्रास' के आदि-आचाय 'प्रचेतायन हैं। इतिहास म अनुप्रास का प्रथम विवेचन भामह न किया था और अलकार नामगणना म प्रथम पचालकार वग म इस अलकार को प्रथम स्थान दिया था।

लक्षण

अनुप्रास के लक्षण म समय-समय पर परिवतन भी हुआ ह—

(१) भामह ने 'वण का प्रयोग किया, उद्भट ने 'व्यजना' का। आचार्यों ने इन दोनो पदो का समानाथक प्रयोग किया है।

(२) भामह ने सरूप' पद का प्रयोग किया, दण्डी ने 'आवत्ति का। उदभट वामन मे भामह का पद लिया गया रुद्रट म दण्डी का, मम्मट विश्वनाथ मे 'साम्य' का प्रयोग ह।

(३) भामह ने अनुप्रास को मध्यम माग बताया ह—अथ अलग होते हैं परन्तु अक्षर अलग-अलग नहीं होते।

भेद

भामह ने अनुप्रास के दो भेद बतलाये हैं—ग्राम्यानुप्रास तथा लाटानुप्रास। लाटानुप्रास भेद उसी रूप मे आज तक मान्य ह। दण्डी ने वर्णानुप्रास तथा श्रुत्यनुप्रास भेदो का वणन किया वर्णानुप्रास मुख्य भेद के रूप म चलता रहा और छेक एव वृत्ति इसके मुख्य रूप स्वीकार कर लिये गये श्रुत्यप्रास को आगे चलकर केवल विश्वनाथ ने फिर प्रतिपादित किया।

उद्भट ने वत्यनुप्रास एव तीन वत्तियो की उदभावना की जो नव्याचार्यों को भी स्वीकार्य है। रुद्रट ने पाँच वृत्तियो का वणन किया जिनको किसी न स्वीकार नही किया। उदभट ने लाटानुप्रास का भी विस्तार दिया, जिसको मम्मट ने भी स्वीकार किया ह।

मम्मट का अनुप्रास-वणन प्राय सबने स्वीकार कर लिया ह लक्षण के लिए भी और भेदो के लिए भी। स्वर की विषमता म वणसाम्य का नाम अनुप्रास ह इसके दो भेद वर्णानुप्रास तथा शब्दानुप्रास है वर्णानुप्रास क छेक तथा वत्ति दो उपभेद है शब्दानुप्रास लाटानुप्रास ह। लाटानुप्रास का यमक से साम्य तथा वषम्य है।

विश्वनाथ ने श्रुत्यनुप्रास का वणन दण्डी के अनुकरण पर किया ह। विश्वनाथ के अन्त्यानुप्रास एव जयन्त के स्फुटानुप्रास तथा अर्थानुप्रास को स्वीकृति न मिल सकी—केवल हिन्दी के आचार्यों ने अन्त्यानुप्रास को अपना लिया ह वह भी कविता की प्रवत्ति को ध्यान म रखकर अनुप्रास की गोव्रता के कारण नही।

६ आक्षेप

भामह

प्रथम वग (सवस्वीकृत) म पाच अलकारो का विवेचन करन क पश्चात भामह ने द्वितीय वग के छह अन्य[1] अलकारो का विवचन किया ह। इस वग का प्रथम अलकार आक्षेप है। दण्डी तथा उदभट न भी इनका यही क्रम अपनाया है।

विशेषता पर बल देने के लिए इष्ट (कथ्यमान) का प्रतिषेध जसा वणन आक्षेप है। आक्षेप के सौदय म कथ्यमान का प्रतिषेध इसलिए किया जाता है कि प्रतिषेध द्वारा उस कथ्यमान की विशेषता प्रतिपादित होती है।

आक्षेप के दो भद ह—वक्ष्यमाण तथा उक्तविषय[3]। वक्ष्यमाण आक्षेप म जो कहा जाने वाला था उसको बीच म रोककर उसकी महत्ता प्रतिपादित की जाती है। प्रवत्स्यत्पतिका ने विदेशगमनोत्सुक पति स कहा यदि एक क्षण भी मैं तुमको न देखूगी तो इतना ही पर्याप्त है। यहाँ मैं मर जाऊँगी इस वक्ष्यमाण का प्रतिषेध मृत्यु की गभीरता का प्रतिपादन करता है।

---

१ आक्षेपोऽर्थान्तरन्यासो व्यतिरेको विभावना।
समासातिशयोक्ती च षडलङ्कृतयो परा ॥२।६६॥

२ प्रतिषध इवेष्टस्य यो विशषाभिधित्सया ॥२।६८॥

३ वक्ष्यमाणोक्तविषयस्तत्राक्षेपो द्विधा मत ॥२।६७॥

उक्त विषय आक्षेप में जो कुछ कहा जा चुका है उसी का प्रतिषेध होता है 'हे राजन्, यह आश्चर्य है कि सारे विश्व को जीतने वाले तुम तनिक उद्धत नहीं हो, सिंधु में विकार उत्पन्न करने में सेतु कहा समर्थ है?' पूर्वार्द्ध में जो कहा गया है उत्तरार्द्ध में उसका अप्रत्यक्ष प्रतिषेध है इस प्रतिषेध द्वारा उक्त कथन का महत्त्व प्रतिपादित होता है।

दण्डी

काव्यादर्श में 'आक्षेप' का वर्णन उनचास श्लोकों में है। लक्षण सरल है—प्रतिषेधोक्ति[1] को आक्षेप कहते हैं। टीकाकार ने स्पष्ट किया है कि आक्षेप प्रतिषेध की उक्ति मात्र है कथन मात्र है, वास्तविक नहीं अर्थात् प्रतिषेधाभास[2] को आक्षेप कहते हैं। यहा भामह के विशेषाभिधित्सया की उपेक्षा हो गई है।

भामह ने आक्षेप के दो भेद किये थे मम्मट ने भी दो ही भेद माने हैं। दण्डी 'त्रकालापेक्षया' इसके तीन भेद करते हैं, इनके अनुसार वर्तमानाक्षेप भी होता है। इतना ही नहीं आक्षेप्य (निषेधनीय) के भेदों की अनन्तता के आधार पर धर्मधर्मी, कार्यकारण[3] आदि गुणों के अनुसार आक्षेप के अनन्त भेद हो सकते हैं। भामह ने इन आधारों पर उपभेद-योजना को महत्त्व नहीं दिया। सत्य तो यह है कि अंगों के गुणों के आधार पर उपभेद-योजना बहुत वैज्ञानिक नहीं है इसे आग्रह मात्र माना जायगा। उपमेय और उपमान के गुणों के अनुसार उपभेद माने जाय तो वे भी अनन्त होंगे, यह अनन्तता कहीं भी प्रचलित हो सकती है। भामह की द्विधा का उत्तर यह 'अनन्तता'[4] नहीं है।

वृत्ताक्षेप, वर्तमानाक्षेप तथा भविष्यदाक्षेप—इन कालापेक्षी तीन भेदों के अनन्तर धर्माक्षेप, धर्म्याक्षेप, कारणाक्षेप, कार्याक्षेप, अनुज्ञाक्षेप, प्रभुत्वाक्षेप, अनादराक्षेप, आशीर्वचनाक्षेप परुषाक्षेप, साचिव्याक्षेप, यत्नाक्षेप परवशाक्षेप, उपायाक्षेप रोषाक्षेप, मूर्च्छाक्षेप, अनुक्रोशाक्षेप, श्लिष्टाक्षेप अनुशयाक्षेप, संशयाक्षेप, अर्थान्तराक्षेप तथा हेत्वाक्षेप—इन इक्कीस उपभेदों का वर्णन है।

वर्तमानाक्षेप अतिरिक्त भेद का दण्डी ने कोई कारण नहीं दिया उदाहरण सरल है—'हे कलभाषिणि, कानों में कुवलय क्या धारण करती हो, क्या इस कार्य में अपांग पर्याप्त नहीं है?' यहा वर्तमान कार्य की निषेधोक्ति है। प्रतिषेध में उपर्युक्त इक्कीस विशेषताओं में से किस पर

---

1 प्रतिषेधोक्तिराक्षेप। (2।120)

2 प्रतिषेधस्य निषेधस्य उक्ति कथनमात्रम्। न तु वास्तवं प्रतिषेध। तथा च प्रतिषेधाभास आक्षेप इत्यर्थ। (प्रभा 184)

3 अस्य च त्रिविधस्याक्षेपस्य। आक्षेप्यभेदानन्त्यात् आक्षेप्या निषेधनीया तेषां भेदा धर्मधर्मिकार्यकारणादय तेषां आनन्त्यात्। (प्रभा 184)

4 अथास्य पुनराक्षेप्यभेदानन्त्यादनन्तता ॥2।120॥

वल ह, उसी के अनुसार उपभेद समया चाहिए।[1]

उद्भट

आक्षेप का लक्षण[2] वही ह जो भामह ने दिया था और भामह के अनुसार ही इसके दो भेद हैं। भामह तथा उदभट ने 'प्रतिपेध इव' पर बल दिया ह। इम सौन्य म प्रतिषेध नहा होता प्रतिषेध-जसा लगता ह और प्रतिषधाभास का उद्देश्य विधेयता ह। इसक विपरीत दण्डी, भोज आदि वदर्भो के अनुसार प्रतिषध वास्तविक भी हो मकता ह। उदभट के उदाहरण स्वनिर्मित है। विवतिकार का मत ह कि उदभट क दोनो उदाहरण अनुपयुक्त हैं।

वामन

उपमानाक्षेपश्चाक्षेप ॥ ४ ३ २७॥

उपमान का आक्षेप अथात प्रतिषेध आक्षप अलकार ह। इसक दो रूप हैं तुल्यकार्यार्थ की निरथकता का कथन[3] तथा उपमान का आक्षप के द्वारा ज्ञान[4]। अर्वाचीन आचाय प्रथम को प्रतीप और द्वितीय को समासोक्ति अलकार मानत है। प्रथम रूप का वामन न जो उदाहरण दिया है उसका एक पद ह तस्याश्चेन्मुखमस्ति सौम्यसुभग किं पावणेन्दुना। दूसरे रूप के उदाहरण पर वामन ने स्वयमेव लिखा ह— अत्र शब्द वश्यव इन्दु नायकमिव रवे प्रति नायकस्येव इत्युपमानानि गम्यन्त इति।

प्राचीन आचार्यो के समक्ष आक्षेप का स्वरूप स्पष्ट था। वामन न उपमाप्रपच के आग्रह से इसका स्वरूप विकृत कर दिया। दण्डी का 'प्रतिषेधोक्तिराक्षप लक्षण स्पष्ट ह वामन ने इसम उपमान श द और जोड दिया। भामह का लक्षण अत्यन्त वनानिक था विशषता के बल के लिए इष्ट का प्रतिषेध-जसा वणन आक्षेप ह। यहाँ उपमान अथवा उपमेय का कोई प्रश्न नहीं ह।

---

१ अग्निपुराण म आ ाप अलकार का वणन शब्दार्थालकार प्रसग मे है—

श्रुतेरनभ्यमानोऽर्थो यस्माद भाति सचेतन ।
स आक्षेपो ध्वनि स्याच्च ध्वनिना व्यज्यते यत ॥
शब्देनार्थेन यत्राथ कृत्वा स्वयमुपाजनम ।
प्रतिषध इवेष्टस्य यो विशषोऽभिधित्सया ॥

प्रतिषध इवेष्टस्य यो विशषोऽभिधित्सया भामह की शब्दावली को ज्यो का त्यों अपना लिया गया है। यह प्रसग दण्डी की अपेक्षा भामह से अधिक प्रभावित है ॥

२ प्रतिषध इवेष्टस्य यो विशषाभिधित्सया ॥ (काव्यालकार सार सग्रह २।२)
निषधनेव तदर्थो विधयस्य प्रकीर्तित । (का०सा स० २।३)

३ तुल्यकार्यार्थस्य नरथक्यविवक्षायाम् । (वृत्ति)

४ उपमानस्याक्षपत प्रतिपत्ति । (वृत्ति)

रुद्रट

आक्षेप औपम्य वर्ग का अलकार है। लक्षण है—

वस्तु प्रसिद्धमिति यदविरुद्धमिति वास्य वचनमाक्षिप्य।
अन्यत तथात्वसिद्ध्यै यत्र ब्रूयात स आक्षेप ॥८।८९॥

आक्षेप मे वक्ता किसी प्रसिद्ध अथवा विरुद्ध वस्तु उपमेय को कहकर इस वचन का आक्षेप करते हुए उसके समर्थन के लिए अन्य वस्तु का कथन करता है। उदाहरण सरल है—

जनयति सतापमसौ चन्द्रकला कोमलापि मे चित्रम।
अथवा किमत्र चित्र दहति हिमानी हि भूमिरुह ॥८।९०॥

मम्मट

आक्षेप[1] का लक्षण एव उसके दोनो भेद भामह के अनुसार हैं। दोनो आचार्यों की शब्दावली भी एक ही है—

प्रतिषेध इवेष्टस्य यो विशेषाभिधित्सया।
वक्ष्यमाणोक्तविषयस्तत्राक्षेपो द्विधा मत ॥ —भामह
निषेधो वक्तुमिष्टस्य यो विशेषाभिधित्सया।
वक्ष्यमाणोक्तविषय स आक्षेपो द्विधा मत ॥ —मम्मट

दोनो आचार्यों ने 'विशेषाभिधित्सा' को आक्षेप का आधार माना है और इसके भूतकालिक एव भविष्यकालिक रूप ही स्वीकार किये हैं—वर्तमानकालिक नही।

रुय्यक

प्राकरणिक अर्थ की विशेष प्रतिपत्ति[2] (=सिद्धि) के लिए निषेधाभास आक्षेप है। इसके दो भेद हैं—उक्तविषय (=अतीत सम्बन्धी) तथा वक्ष्यमाणविषय (भविष्यत सम्बन्धी)। उक्तविषयक आक्षेप वारणात्मक है और वक्ष्यमाण विषयक आक्षेप आगूरण[3] रूप है। अन्य प्रकार से आक्षेप के चार भेद है—

(क) उक्तविषय मे वस्तु का निषेध,
(ख) उक्तविषय मे वस्तु का कथन[4]

---

१ भोज के अनुसार विधि के द्वारा प्रतिषेध हो अथवा निषेध के द्वारा प्रतिषेध हो तो आक्षेप का चमत्कार है। इसके दो भेद हैं—शुद्ध एव मिश्र—

विधिना यथ निषेधेन प्रतिषेधोक्तिरत्र या।
शुद्धा मिश्रा च साक्षेपो न च भाग्यत पथक ॥४।२६॥

२ उक्त-वक्ष्यमाणयो प्राकरणिकयो विशेषप्रतिपत्त्यर्थ निषेधाभास आक्षेप।

३ तत्रोक्तविषयत्वे न कमयक्यपरमालोचनमाक्षेप। वक्ष्यमाणविषयत्वेनानयनरूपम् आगूरणमाक्षेप। (वृत्ति प १४५)

४ तत्रोक्तविषय आक्षेप क्वचिन वस्तु निषिध्यते, क्वचिन वस्तुकथनमिति द्वौ भेदौ। (वृत्ति पृ० १४६)

(ग) वक्ष्यमाण विषय में सामान्य प्रतिज्ञा में विशेषांश का निषेध
(घ) वक्ष्यमाण विषय में अशांगी भाव से निषेध[1]।

आक्षेप में न तो निषेध का विधान होता है और न विहित का निषेध होता है प्रत्युत निषेध के द्वारा विधान को आक्षेप कहते हैं —

तेन न निषेधविधि, न विहितनिषेध किन्तु निषेधेन विधानम्। निषेधस्य अन्यथा विधिपर्यवसानात्। (पृ० १४९)

जिस प्रकार इष्ट का निषेध आक्षेप है, उसी प्रकार अनिष्ट का विधान भी आक्षेप है— 'अनिष्टविध्याभासश्च।

जयदेव

प्रयुक्त वस्तु का विशेष विचार से प्रतिषेध आक्षेप है —

आक्षेपस्तु प्रयुक्तस्य प्रतिषेधो विचारणात् ॥५।७२॥

इसका एक भेद गूढाक्षेप है जहाँ विधि स्फुट हो और निषेध अस्फुट हो—

गूढाक्षेपो विधौ व्यक्ते निषेधे चास्फुटे सति ॥५।७३॥

आक्षेप का यह लक्षण यथार्थ नहीं है और गूढाक्षेप एक प्रकार की ध्वनिमात्र है।

विश्वनाथ

आक्षेप वर्णन पर रुय्यक का प्रभाव है। लक्षण एवं चारों भेद उसी प्रभाव में वर्णित हैं—

वस्तुनो वक्तुमिष्टस्य विशेषप्रतिपत्तये।
निषेधाभास आक्षेपो वक्ष्यमाणोक्तगो द्विधा ॥१०।६५॥

तत्र वक्ष्यमाणविषये क्वचित् सर्वस्यापि सामान्यतः सूचितस्य निषेधः क्वचिद् अंशोक्तौ अंशान्तरे निषेध इति द्वौ भेदौ। उक्तविषये च क्वचिद् वस्तुस्वरूपस्य निषेधः क्वचिद् वस्तुकथनस्येति द्वौ। इत्याक्षेपस्य चत्वारो भेदाः। (पृ० ३४९)

रुय्यक के ही अनुसार विध्याभास भेद का विवेचन है—

अनिष्टस्य तथार्थस्य विध्याभासः परो मतः ॥१०।६६॥

अप्पय्यदीक्षित

कुवलयानन्द में आक्षेप का लक्षण चन्द्रालोक से आया है। साथ ही दूसरे भेद का लक्षण है—

आक्षेपोऽन्यो विधौ व्यक्ते निषेधे च तिरोहिते ॥७५॥

---

[1] वक्ष्यमाण विषये तु वस्तुकथनमेव निषिध्यते। तच्च सामान्यप्रतिज्ञायां क्वचिद् विशेषनिष्ठत्वेन निषिध्यते क्वचित्पुनः अंशोक्तावंशान्तरगतत्वेन इत्यत्रापि द्वौ भेदौ। (पृ० १४९)

जगन्नाथ

'रसगंगाधर' में आक्षेप-लक्षण में फिर उपमेयोपमान भाव को ले लिया गया है—
"उपमेयस्य उपमानसम्बंधि सकलप्रयोजननिष्पादनसमर्त्वाद्
उपमानकमव्यम उपमानाधिक्षेपरूपम् आक्षेप ।' (पृ० ५६२)

हिन्दी के आचार्य

केशवदास ने आक्षेप अलंकार का दण्डी के अनुसार बड़े विस्तार से वर्णन किया है और इसके तीनों कालों के भेद स्वीकार किये हैं। दण्डी के ही अनुसार इसके अनेक भेदों के उदाहरण दिये गये हैं। 'कविप्रिया' का पूरा एक 'दशम प्रभाव' अर्थात पतीस छंद इस अलंकार में लगे हैं। देव कवि ने आक्षेप का चलता हुआ वर्णन कर दिया है जो लक्षण नहीं बन पाता परन्तु पाँच उदाहरणों द्वारा उसे स्पष्ट किया गया है। संयोगवश 'आक्षेप' का नाम 'अर्थान्तराक्षेप' भी लिखा हुआ है। भेद आदि के विवेचन का प्रश्न ही नहीं आता।

दास कवि के अनुसार आक्षेप अलंकार के तीन रूप हैं—

(क) जहाँ वरजिबो कहि इहै अवसि करौ यह काजु ॥१२।३४॥
(ख) मुकुरि परत जेहि बात कौं, मुख्य वही जहँ राजु ॥१२।३४॥ (निषेधाभास)
(ग) दूषि आपन कथन कौ फेरि कहै कछु और ॥१२।३६॥

कन्हैयालाल पोद्दार के अनुसार आक्षेप के तीन रूप है—

(क) विवक्षित अर्थ के निषेध का आभास। विश्वनाथ के आधार पर इसके उपभेदों का वर्णन है।
(ख) पक्षान्तर ग्रहण करके कथित अर्थ का निषेध। यह कुवलयानन्द का मत है परन्तु भामह, उद्भट मम्मट, रुय्यक, विश्वनाथ निषेध को आक्षेप नहीं मानते—केवल निषेधाभास को मानते हैं।
(ग) विध्याभास। यह रुय्यक के अनुसार है। दण्डी इसका 'अनुज्ञाक्षेप' कहते है।

रामदहिन मिश्र ने भी उक्त तीनों रूपों का इसी प्रकार वर्णन किया है। साथ ही हिन्दी में इसके निम्नलिखित चार भेद (पृ० ३९४५) भी बतलाये हैं—

(क) निषेधात्मक आक्षेप—जहाँ विचार करने से अपने कथन में दोष पाया जाय।
(ख) निषेधाभासात्मक आक्षेप—जहाँ निषेध का आभास मात्र दीख पड़े।
(ग) विधिनिषेधात्मक आक्षेप—जहाँ प्रत्यक्ष विधान में गुप्त रूप से निषेध पाया जाय।
(घ) निषेधविध्यात्मक आक्षेप—प्रथम निषेध तदनन्तर उसके विधान का वर्णन।

उपसंहार

आक्षेप अलंकार का प्रथम विवेचन भामह ने किया था और उसका प्राण विशेषाभिधित्सा को माना था। दण्डी ने वास्तविक निषेध को आक्षेप कह दिया। वामन दण्डी के अनुयायी हैं और

मम्मट भामह के। उत्तर आचार्यों ने चामत्कारिक निषेध को आक्षेप अलंकार माना है।

भामह ने आक्षेप के दो भेद बतलाये थे—भूत तथा भविष्य। दण्डी ने वर्तमान का आक्षेप भी माना। उत्तर आचार्यों ने 'उक्तविषय' (अतीत) तथा 'वक्ष्यमाणविषय' (भविष्य) इन दो भेदों का प्रतिपादन किया, वर्तमान का नहीं।

दण्डी ने आक्षेप के इक्कीस भेद बतलाये हैं परन्तु वे वर्णन मात्र हैं जिनको केवल केशवदास ने स्वीकार किया है, अन्य आचार्यों ने नहीं।

रुय्यक ने भामह के चिन्तन को बढ़ाते हुए आक्षेप के चार भेद कर दिये हैं। जयदेव ने गूढाक्षेप का भी वर्णन किया है। 'विध्याभास' भेद भी उत्तर आचार्यों ने प्रायः स्वीकार कर लिया है।

७ अर्थान्तरन्यास

भामह

उदित[1] अर्थ के अनुगमन में किसी अन्य अर्थ का उपन्यसन अर्थान्तरन्यास है'। 'हि' शब्द के प्रयोग से भी हेत्वर्थ सिद्ध[2] हो जाता है और अर्थान्तरन्यास स्पष्ट हो जाता है। अर्थान्तरन्यास की सिद्धि अन्यथा भी हो सकती है।

भामह-कृत लक्षण में सामान्य विशेष भाव का कोई उल्लेख नहीं है। निष्पादक हेतु (काव्यलिंग) समर्थक हेतु (अर्थान्तरन्यास) तथा ज्ञापक हेतु (अनुमान) में भी अन्तर नहीं किया गया।

अर्थान्तरन्यास के दो उदाहरण दिये गये है, जिनमें प्रथम काव्यलिंग का उदाहरण है क्योंकि उसमें हेतु समर्थक नहीं है। द्वितीय उदाहरण में 'हि' का प्रयोग है और वह अर्थान्तरन्यास को स्पष्ट करता है।

भामह 'हेतु' के दो रूपों से अपरिचित नहीं थे। उन्होंने दो अलग-अलग प्रकार के उदाहरण दिये हैं। एक आगे चलकर 'काव्यलिंग' को स्पष्ट करने लगा और दूसरा अर्थान्तरन्यास का ही बना रहा। प्रथम उदाहरण और दूसरे उदाहरण के बीच एक श्लोक द्वारा 'हि' शब्द के प्रयोग का महत्त्व समझाना भी हमारे इसी निष्कर्ष का समर्थन करता है—'हिशब्देनापि' में 'अपि' पर ध्यान देना चाहिए।

दण्डी

किसी वस्तु को प्रस्तुत करके उसके साधन में समर्थ किसी अन्य वस्तु का 'न्यास'[3] अर्थान्तरन्यास है। यह लक्षण भामह के लक्षण के अनुसार ही है। इसमें भी काव्यलिंग आदि से विशेषता सूचित नहीं की गई। भामह की अपेक्षा दण्डी के लक्षण में एक दोष यह है कि शब्दावली के प्रयोग

---

१ उपन्यसनमन्यस्य यदर्थस्योदितादृते ।
ज्ञेयः सोऽर्थान्तरन्यासः पूर्वार्थानुगतो यथा ॥२।७१॥

२ हिशब्देनापि हेत्वर्थप्रथनादुक्तसिद्धये ॥२।७३॥

३ ज्ञेयः सोऽर्थान्तरन्यासो वस्तु प्रस्तुत्य किंचन ।
तत्साधनसमर्थस्य न्यासो योऽन्यस्य वस्तुनः ॥२।१६९॥

से ऐसा सूचित होता है कि प्रथम प्रस्तुत का उपन्यास होगा पश्चात्[1] समर्थक का परन्तु इसके विपरीत भी उदाहरण पाये जाते हैं।

भामह ने अर्थान्तरन्यास के आधार शब्द यथा 'हि' की सूचना दी थी दण्डी ने उस विषय का स्पर्श नहीं किया। भामह ने दो उदाहरण दिये थे, एक में 'हि' का प्रयोग था। ये उदाहरण अर्थान्तरन्यास—काव्यलिंग के अन्तर के आधार बने। दण्डी ने अर्थान्तरन्यास के आठ भेदों का वर्णन किया है शेष का प्रयोग में देखने की सम्मति दी है। ये आठ भेद हैं—विश्वव्यापी, विशेषस्थ श्लेषाविद्ध, विरोधवान अयुक्तकारी, युक्तात्मा, युक्तायुक्त अयुक्तयुक्त। ये भेद वस्तुतः समर्थक के भेद हैं।

विश्वव्यापी का समर्थक वाक्य है—'नियति केन लङ्घ्यते', तो विशेषस्थ का समर्थक वाक्य है—'नन्वात्मलाभो महतां परदुःखोपशान्तये', क्योंकि यहाँ सबके विषय का कथन नहीं है केवल 'महतां' का है। श्लेषाविद्ध का समर्थक वाक्य है—ननु दाक्षिण्यसम्पन्नः सर्वस्य भवति प्रियः यहाँ दाक्षिण्यसम्पन्न श्लिष्ट है। विरोधवान में श्लिष्ट शब्दावली के रहते हुए भी विरोध की मुख्यता होती है। अयुक्तकारी में समर्थन अयुक्त द्वारा होता है और युक्तात्मा में युक्त द्वारा युक्तायुक्त में समर्थक युक्त होता हुआ भी अयुक्त आचरण करता है, अयुक्तयुक्त में अयुक्त का समर्थन युक्त करता है। उदाहरण में—

कुमुदान्यपि दाहाय, किमयं कमलाकरः ।
न हीन्दुगृह्येषूग्रेषु सूर्यगृह्यो मृदुर्भवेत् ॥२।१७९॥

जब इन्दुपक्षीय कुमुद दाहक है (अयुक्त) तो सूर्यपक्षीय कमल तो दाहक होगा ही (युक्त)।[2]

उद्भट

उद्भट ने अर्थान्तरन्यास का कोई लक्षण नहीं दिया, परन्तु इसके चार भेदों का वे उल्लेख[3] करते हैं। ये भेद हैं—

(१) प्रथम समर्थक तथा पश्चात् समर्थ्य, 'हि' शब्द का प्रयोग।
(२) " " , , " 'हि' " अभाव।
(३) प्रथम समर्थ्य तथा पश्चात् समर्थक, 'हि' शब्द का प्रयोग।
(४) " " " " " 'हि' " " अभाव।

---

१ अत्र प्रस्तुतेति वचनात् प्रथमं प्रस्तुतस्योपन्यासः पश्चात् समर्थकस्याप्रस्तुतस्येति प्राप्तम्। परं प्रायिकमेतत्। वैपरीत्यनापि दर्शनात्। (प्रभा १९६)

२ अग्निपुराण में अर्थान्तरन्यास अलंकार का वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त एवं सन्मेघ है—

भवेद् अर्थान्तरन्यासः सादृश्येनोत्तरेण सः ।

(जहाँ प्रथम वाक्य का उत्तर वाक्य से सादृश्य वर्णित हो वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है)।

३ समर्थकस्य पूर्वं यद्वचोऽन्यस्य च पृष्ठतः ।
विपर्ययेण वा यत् स्याद्धिशब्दोक्त्यान्यथापि वा ॥का०सा०स० २।४॥

अप्रस्तुतप्रशसा तथा दृष्टान्त से अर्थान्तरन्यास का अन्तर स्पष्ट करने का उदभट ने प्रयत्न किया है और अर्थान्तर यास का मुख्य गुण 'प्रकृतार्थसमर्थन'[1] माना है।

समर्थ्य समर्थक भाव तो अप्रस्तुत प्रशसा तथा दृष्टान्त मे भी होता है। परन्तु अप्रस्तुत प्रशसा म प्रकृत आक्षिप्त होता है उपात्त नही, जबकि अर्थान्तरन्यास मे अप्रकृत प्रकृत दोनो स्वकण्ठेनोपात्त[2] होते हैं। दृष्टान्त म समर्थ्य तथा समर्थक दोनो उपात्त होते हैं किन्तु दृष्टान्त समर्थ्य-समर्थक भाव पर आश्रित नही है दृष्टान्त म समर्थ्य भाव आक्षिप्त होता है अर्थान्तर यास मे उपात्त[3]—दृष्टान्त समर्थ्य समर्थक भाव को मुख्य आधार नही बनाता।

वामन

उक्त अर्थ की सिद्धि (समर्थन) के लिए दूसरे वाक्यार्थ का न्यसन अर्थान्तरन्यास है—

उक्तसिद्धय वस्तुनोऽर्थान्तरस्यव न्यसनमर्थान्तरन्यास ॥४,३,२१॥

यह लक्षण भामह तथा दण्डी के अनुसार ही है। वामन न अर्थान्तरन्यास के अनेक रूपो का वर्णन नही किया। उनकी विशेषता न्यायशास्त्र के क्षेत्र से अलकार का क्षेत्र पृथक दिखलाने म है। उपर्युक्त लक्षण मे वस्तु[4] शब्द का प्रयोग इसीलिए किया गया है कि अर्थान्तरन्यास न्याय शास्त्र क हतु स अलग स्पष्ट हो सके। कमल की सुगन्ध से यह निश्चय है कि सरोवर यहाँ से दूर नही है—उक्तार्थ की सिद्धि के निमित्त वाक्यार्थ का उपन्यसन करत हुए भी यह अर्थान्तरन्यास का उदाहरण नही ह। व्याप्ति[5] के गूढ होन से जहा हेतुत्व की प्रतीति कठिनाई से होती है वहा अर्थान्तरन्यास है, परन्तु जहा अनुमान के हेतु के समान व्याप्ति स्पष्ट हो वहा अलकार नही होगा।

रुद्रट

धर्मी (उपमेय) के विशेष अथवा सामान्य धर्म का कथन करके उसके समर्थन के लिए सधर्मी (उपमान) का कथन अर्थान्तरन्यास है—

धर्मिणमर्थविशेष सामान्य वाभिधाय तत्सिद्धय।
यत्र सधर्मिकमितर न्यस्यत सोऽर्थान्तरन्यास ॥८।७९॥

---

१ अय सोर्थान्तरन्यास प्रकृतार्थसमर्थनात्।
अप्रस्तुतप्रशसाया दृष्टान्ताच्च पृथक स्थित ॥२।५॥

२ अप्रस्तुतप्रशसाया त्वप्रकृतसामर्थ्येन प्रकृतमाक्षिप्यते न तु स्वकण्ठेनोपादीयते। अतश्च तत्र सत्यपि समर्थ्य समर्थकभाव शब्दोपात्तप्रकृतार्थनिष्ठत्वाभावान्नार्थान्तरन्यासत्वम। (इन्दुराज पृ० ३७)

३ अर्थाद्धि तत्र समर्थ्यसमर्थकभावावसाय। अर्थान्तरन्यासे त समर्थ्यसमर्थकभावनवोपक्रम। (वही)

४ वस्तुग्रहणादयस्य हेतोर्यसनान्नार्थान्तरन्यास। (वृत्ति)

५ अर्थान्तरस्यवृति वचन तत्र हेतुर्व्याप्तिगूढत्वात कथचित् प्रतीयते तत्र यथा स्यात्।
न्यायत् इलक ततन्नियम् इत्येवप्रायेषु मामूदिति। (वृत्ति)

उदाहरण सरल है—

> तुङ्गानामपि मेघा शैलानामुपरि विदधत छायाम ।
> उपकर्तु हि समर्था भवन्ति महता महीयस ॥८।८०॥

साधर्म्य के दो भेदो के अनन्तर रुद्रट ने वैधर्म्य के दोनो भेदो का भी वर्णन किया है।

मम्मट

सामान्य अथवा विशेष का उससे भिन्न के द्वारा समर्थन अर्थान्तरन्यास है।

सामान्य का समर्थन विशेष करता है, और विशेष का समर्थन सामान्य करता है। यह समर्थन साधर्म्य से भी हो सकता है और वैधर्म्य द्वारा भी। लक्षण एव भेदो का वर्णन एक ही श्लोक में है—

> सामान्य वा विशेषो वा तदन्यन समर्थ्यते ।
> यत्तु सोऽर्थान्तरन्यास साधर्म्येणेतरेण वा ॥१०।१०९॥

इस प्रकार अर्थान्तरन्यास के चार भेद हैं—

(क) सामान्य का विशेष द्वारा साधर्म्य से समर्थन।
(ख) " , , , वैधर्म्य , ।
(ग) विशेष , सामान्य साधर्म्य , ।
(घ) , , " वैधर्म्य ।

रुय्यक

'सामान्य विशेष कार्य-कारणभावाभ्या निर्दिष्टप्रकृतसमर्थनमर्थान्तरन्यास ।'

सामान्य विशेष कार्य-कारण, साधर्म्य वैधर्म्य के आधार पर रुय्यक ने अर्थान्तरन्यास के आठ भेद कर दिये कार्य-कारणभाव एक नवीन आयाम है। अन्य भेदो मे कोई चमत्कार नहीं है।

'हि शब्दाभिधानानभिधानाभ्या समर्थकपूर्वोपन्यासोत्तरोप न्यासाभ्या च भेदान्तरसभवेऽपि न तद्गणना सहृदयहृदयहारिणी, वैचित्र्यस्याभावात ।' (पृ० १३९)

जयदेव

अर्थान्तरन्यास का लक्षण सदोष है, उसका स्वरूप और कार्यलिंग मे अन्तर जयदेव के एक श्लोक से स्पष्ट नही हो पाता—

> भवेद अर्थान्तरन्यासोऽनुषक्तार्थान्तराभिधा ॥५।६८॥
> (अनुषक्त सम्बद्ध च तदर्थान्तर चेति अनुषक्तार्थान्तर तस्याभिधा ।)

विश्वनाथ

मम्मट एव रुय्यक के अनुसार अर्थान्तरयास के आठ भेदो का वणन इस प्रकार किया गया है—

सामा य वा विशेषेण, विशेपस्तेन वा यदि।
काय च कारणेनद कार्येण च समथ्यते।
साधर्म्येणेतरेणार्थान्तरयासोऽष्टधा तत ॥१०।६२॥

अप्पय्यदीक्षित

कुवलयान द' म अर्थान्तरयास के दो भेदा का अत्यन्त सामान्य वणन है—

उक्तिरर्थान्तरयास स्यात सामा यविशेषया ॥१२२॥

जग नाथ

'रस-गगाधर' म अर्थान्तरयास के रुय्यक-पूव अलग रूप की ही याख्या है—

' सामा येन विशेपस्य विशषेणे सामान्यस्य वा यत्समथन तदर्थान्तरयास । (पृ० ६३३)

हि दी के आचाय

केशवदास का अर्थान्तरयास-लक्षण सदाप एव असमथ है— और आनिये अथ जहँ और वस्तु बखानि । यह लक्षण भामह[1] का असावधान अनुवाद है। दण्डी-कृत आठ भेदो म स केशव न युक्त अयुक्त अयुक्त युक्त तथा युक्तायुक्त चार भेदा का ही वणन किया है।

देवकवि के अनुसार—

करया अथ दढ करन को, और अथ प्रस्ताव ।
करिए वाही धुनि लिए, अर्थान्तर सुचिताव ॥

दामकवि (पृ० ७८ स ८० तक) न मम्मट क अनुकरण पर अर्थान्तरयास क चार भेदा का वणन किया ह जा सक्षिप्त एव निर्भ्रान्त है। माला का भी वणन है।

क हैयालाल पोद्दार ने भी मम्मट के अनुसार अर्थान्तरयास का वणन किया ह उसी प्रकार इसके चार भद हैं। आचार्यो के मत स अर्थान्तरयास के काव्यलिंग दृष्टान्त एव उदाहरण स, स्वतन्त्र अस्तित्व का भी तकपूण प्रतिपादन है। (पृ० ३६३ ३६५)

रामदहिन मिश्र न भी इसी परम्परा म अर्थान्तरयास और उसक चार भेदा का वणन किया है। अन्त म सामान्य से सामान्य का समथन एव विशेष स विशष का समथन (पृ० ३९०) भी सोदाहरण वर्णित है।

---

१ उपन्यसनमन्यस्य यदर्थस्योदितादृते ।
ज्ञेय सोऽर्थान्तरयास पूर्वार्थानुगतो यथा ॥ (काव्यालकार २ ७१)

उपसहार

अर्थान्तरन्यास एक महत्त्वपूर्ण अलकार है। इसका प्रथम विवेचन भामह ने किया था। पूर्व अर्थ का उत्तर अर्थ द्वारा समर्थन अर्थान्तरन्यास है इसका स्वरूप 'हि' के प्रयोग से स्पष्ट हो जाता है। उद्भट ने इस लक्षण का विकास किया वामन भी भामह से सहमत है। रुद्रट ने सामान्य विशेष भाव का समावेश किया तथा साधर्म्य एव वैधर्म्य से इसके भेद किये। मम्मट से लक्षण वैज्ञानिक बन गया जो उत्तर आचार्यों ने सामान्यत स्वीकार कर लिया।

अर्थान्तरन्यास के दण्डी मे आठ भेद हैं जिनकी आगे चलकर केशवदास मे किंचित स्वीकृति है। उद्भट ने जो चार भेद दिये उनका ही विस्तार आठ भेदो के रूप मे हो गया। रुय्यक ने कार्यकारण भाव भी उसके भेदो मे जोड दिया था। विश्वनाथ ने इन आठ भेदो का समाहार कर दिया है।

८ व्यतिरेक

भामह

तुलना करते हुए जब उपमेय की (अवश्य) (उपमान से) विशेषता[1] वर्णित की जाय तो वह सौन्दर्य व्यतिरेक अलकार है। 'पुण्डरीक एकान्तशुभ्र है और नीलकमल एकान्तश्याम, परन्तु तुम्हारे नेत्र शुभ्र तथा श्याम दोनो हैं"—यह उदाहरण अत्यन्त स्पष्ट है।

दण्डी

उपमानोपमेय का शब्दोपात्त अथवा प्रतीत सादृश्य होने पर भेदकथन[2] व्यतिरेक अलकार है। इस लक्षण मे भामह का विशेषनिदर्शन नही समा पाया, और वही व्यतिरेक का आधार भी है।

एकव्यतिरेक, उभयव्यतिरेक भेद धर्म की एकत्र (उपमेय मे) स्थिति अथवा उभयत्र स्थिति पर निर्भर है (श्लोक-सख्या १८१—१८४)। श्लेष पर आधृत व्यतिरेक 'सश्लेष' है, आक्षेप पर आधृत 'साक्षेप', और हेतु पर आधृत 'सहेतु'। ये भेद शब्दोपात्त व्यतिरेक के है।

प्रतीयमान सादृश्य व्यतिरेक के दो उदाहरण दिये गये हैं—एक मे भेदमात्र का कथन है, दूसरे मे आधिक्य-दर्शन भी है। मानो दो उपभेद हो।

सदृश्यव्यतिरेक मे सदृश उपमानोपमेय का भेद वर्णित किया जाता है "तुम्हारा मुख और कमल दोनो विकसित है तथा सुरभियुक्त है। कमल पर भ्रमर नाच रहे हैं और तुम्हारे मुख पर

---

१ उपमानवतोऽर्थस्य यद्विशेषनिदर्शनम् ॥२।७५॥

२ शब्दोपात्ते प्रतीते वा सादृश्ये वस्तुनोर्द्वयो ।
तत्र यद् भेदकथन व्यतिरेक स कथ्यते ॥२।१८०॥

चचल नेत्र'[1] इस व्यतिरेक म विशेप निदशन का अभाव है इसलिए म गनेत्रादितुल्य, तत सदृशव्यतिरेकता (काव्यादश २,१९६) कहने म अधिक वल नही रहता।

अरत्नालोकसहायमहाय सूयरश्मिभि ।
दष्टिराधकर यूना यौवनप्रभव तम ॥२।१९७॥

सजातिव्यतिरेक के इस उदाहरण म श्लेष के कारण तम शब्द उपमेय और उपमान दोनो क साथ प्रयुक्त होकर उपमेय का उत्कर्षाधायक बन जाता है। सश्लेष म श्लेप पर वल था, यहाँ सादश्य पर।

उदभट

उपमानोपमय का विशेषापादन[2] व्यतिरेक है। इसके तीन भेद हैं—उपात्तनिमित्त विशेषापादन अनुपात्तनिमित्त विशेषापादन तथा वधर्म्येण दष्टान्त। प्रथम दो सामान्य व्यतिरेक के ही दो उपभद हैं। उद्भट का लक्षण भामह क लक्षण का ही विकसित रूप है। यहा विशेषता-वणन परस्पर है अर्थात उपमान की उपमय स हो सकती है अथवा उपमय की उपमान स हो सकती है। वधर्म्येण दष्टान्त'[3] एक नया उपभद है। आचाय का मत कदाचित यह है कि जहाँ वधम्य दष्टान्त, हो वहाँ आधारभूत अलकार व्यतिरेक होता है, उपमा[4] नही क्योकि एसे स्थल पर विशेषापादन होता है। उदाहरण—

क्षीणपर्णाम्बुवाताश कष्टेपि तपसि स्थितम्।
समुद्वहन्ती नापूव गवमन्यतपस्विवत ॥२।९॥

यहाँ उत्तराद्ध म यह बताया गया है कि अन्यतपस्वी क विपरीत उमा के मन म अहकार नही आया—' यथा अन्यतपस्विन गव समुद्वहन्ति तथा इय गव न समुदवहति —वैधम्य के द्वारा उमा की अन्यतपस्वी से विशेषता का प्रतिपादन है।

उदभट न एक नय रूप की कल्पना की है—श्लिष्टोक्तियोग्य शब्द[5] की यदि पृथक्-पृथक आवत्ति हो, और विशेषापादन हो तो वह भी व्यतिरेक होता है। उदाहरण म तपस शब्द दो बार आया है और एक स्थान पर वह माघमास का पर्याय है दूसरे पर तप का। नवीन दष्टि स यह श्लेप नही बनता। इसलिए यह भेद मान्य नही हो सकता।

वामन

उपमान की अपक्षा उपमय म गुणाधिक्य का वणन व्यतिरेक अलकार है—

---

१ त्वमव पुण्डरीक च कमल सुरभिगन्धिनी।
भ्रमरन्ध्र भ्रमरम्भोज लोचनत्र मम तु त ॥२।१९३॥

२ विशषापादन यस्यादुपमानोपमेययो ॥२।६॥

३ यो वधर्म्येण दष्टान्तो यथवाऽसमर्थितः ।
व्यतिरेकोत्र सोऽपीष्टो विशषापादनान्वयात ॥२।७॥

४ काव्यालकार-सार-सग्रह नोटस प० ७०-७१

५ श्लिष्टोक्तियोग्यशब्दस्य पृथक्पृथगुदाहृतौ ।
विशषापादन यस्याद्व्यतिरेक स च स्मृत ॥२।८॥

उपमेयगुणातिरेकित्व यतिरक ॥४,३,२२॥

व्यतिरेक का चमत्कार शब्दोपात्त तथा गम्य' दोनो प्रकार का हो मक्ता है। यह लक्षण भामह स आया है और प्रकार-कथन दण्डी का प्रभाव सूचित करता है। दण्डी न गम्य (प्रतीयमान) व्यतिरक क जा उदाहरण दिय हैं वे अत्य त स्पष्ट है, पर तु वामन का उदाहरण प्रतीप का स्पश करने लगता है—

कुवलयवन प्रत्याख्यात नव मधु निदितम
चतुरललितैर्लीलात त्रैस्तवाधविलोकित ॥

रुद्रट

यो गुण उपमेय स्यात तत्प्रतिप थी च दोप उपमाने ।
व्यस्त-समस्त यस्तौ तौ व्यतिरेक त्रिधा कुरुत ॥७।८६॥

जो गुण उपमेय म हो उसका विरोधी दोष उपमान म वर्णित करना व्यतिरक है। इसके तीन भेद हैं—उपमेय म गुण पर तु उपमान म दोष नही, उपमान म दोष पर तु उपमय म गुण नही, उपमेय म गुण पर तु उपमान मे दोष।

व्यतिरक का एक अ य प्रकार भी है—

यो गुण उपमान वा तत्प्रतिप थी च दोप उपमाने ॥७।८९॥

इसका उदाहरण काव्यशास्त्र म प्रसिद्ध हो गया है—

क्षीण क्षीणोऽपि शशी भूयो भूयो विवधत सत्यम ।
विरम प्रसीद सु दरि यौवनमनिर्वति यात तु ॥७।९०॥

मम्मट

उपमान स उपमय का आधिक्य व्यतिरक कहलाता है—

उपमानाद यद यस्य व्यतिरक स एव स ॥१०।१०५।

मम्मट इस मत स सहमत नही हैं कि उपमेय से उपमान के आधिक्य म भी यतिरेक हो सकता है।

क्षीण क्षीणाऽपि शशी भूयोऽभिवधत सत्यम् ।
विरम प्रसीद सु दरि यौवनमनिर्वति यात तु ॥

उदाहरण दकर मम्मट कहत हैं— इत्यादौ उपमानस्य उपमेयाद आधिक्यमिति केनचिदु क्तम् तद अयुक्तम अत्र यौवनगतास्थर्याधिक्यम' हि विवक्षितम। (पृ० ४९१) यह रुद्रट के मत का खण्डन है।

यतिरक क मवस अधिक भद मम्मट न ही किय हैं। व्यतिरेक के प्रथम तो चार भेद है

१ क्वचित् गम्यमानगुणा व्यतिरेक । (वत्ति)

जिनवा आधार है उपमय या उत्कप अथवा उपमान का अपकप। इनके अनुसार—

(क) दोना हेतुआ (उपमय का उत्कप तथा उपमान का अपकप) का उक्त होना।

(ख) दोना हेतुओ का अनुक्त होना।

(ग) उपमेय क उत्कप-हेतु का उक्त तथा उपमान क अपकप-हेतु का अनुक्त होना।

(घ) उपमय के उत्कप हेतु का अनुक्त तथा उपमान के अपकप हेतु का उक्त होना।

इनम से प्रत्येक भद म उपमेयोपमान भाव या तो शब्दोपात्त होगा या अथ द्वारा निवन्ति होगा, अथवा केवल आक्षिप्त होगा—इस प्रकार तीन-तीन उपभेद हो सकते हैं। य द्वादश भद अश्लिष्ट होते हैं। इस प्रकार व्यतिरेक क चौबीस भद हो गय।

रुय्यक

भेद प्राधान्ये उपमानादुपमेयस्याधिक्ये विपयये वा व्यतिरेक ॥

इस लक्षण म विपयये पद चिन्ता का विषय है। वृत्ति के अनुसार विपयय का अथ न्यून गुणत्व है— विपययो न्यूनगुणत्वम्'। आधिक्य म व्यतिरेक का चमत्कार तो सभी आचाय स्वीकार करते हैं, परन्तु विपयय अर्थात् न्यूनगुणत्व म नही।

जयदेव

व्यतिरेको विशेषश्चेद उपमानोपमययो ॥५।५९॥

इस लक्षण म विशेष' की व्याख्या नही की गई, वह आधिक्य और न्यूनत्व दोनो हो सकता है। अप्पय्यदीक्षित का भी यही लक्षण है।

विश्वनाथ

मम्मट के अनुसार व्यतिरेक का लक्षण और उसके चौबीस भेदो का वणन है। शब्दावली भिन्न है—

आधिक्यमुपमेयस्योपमानान्न्यूनतायवा ॥१०।५२॥

जगन्नाथ

रसगगाधर के लक्षण मे उत्कप पर बल है। उपमेय की अपेक्षा उपमान के उत्कर्ष म, मम्मट के समान जगन्नाथ भी, व्यतिरेक अलकार नही मानते (पृ० ४७३)। व्यतिरेक का लक्षण है—

उपमानाद उपमेयस्य गुणविशेषवत्त्वेनोत्कर्षो व्यतिरेक।' (पृ० ४६६)

हिन्दी के आचाय

केशव के अनुसार समान वस्तुओ मे भद प्रतिपादन व्यतिरेक है— तामे आन भेद कछु होय जु वस्तु समान। परन्तु यह लक्षण सदोष है। व्यतिरेक के दो भेद हैं—युक्तिव्यतिरेक तथा सहजव्यतिरेक। देवकवि का भी ऐसा ही लक्षण है— वरनि वस्तु विवि सम कहै यक विशेष व्यतिरेक', और भेदो की चर्चा तक नही है।

दासकवि के अनुसार व्यतिरेक के चार भेद हैं—

(क) पोषन-दोषन दुहुँन को कथन, (ख) पोषन ही को कथन,

(ग) दोषन ही को कथन (घ) कहूँ-कहूँ नहिं गोउ (व्यग्यार्थव्यतिरेक)।

कन्हैयालाल पोद्दार ने 'काव्यप्रकाश' के अनुसार व्यतिरेक का लक्षण एव चौबीस भेदो का वर्णन किया है। उपमेय की अपेक्षा उपमान के उत्कर्ष म व्यतिरेक है या नही—यह प्रश्न रुद्रट म ही उठ गया था, मम्मट तथा जगन्नाथ (पृ० ४७३) इसका खण्डन करते हैं। रामदहिन मिश्र भी व्यतिरेक का इसी परम्परा म वर्णन कर देते हैं। (काव्यदर्पण पृ० ३८३ ४)

उपसहार

व्यतिरेक महत्त्वपूर्ण अर्थालकार है। इसका प्रथम विवेचन भामह ने किया था। भामह उपमेयोत्कर्ष म व्यतिरेक मानते थे, उद्भट ने उपमानोत्कर्ष म भी व्यतिरेक माना जिसका खण्डन वामन ने कर दिया। रुद्रट ने पुन दोनो स्थितियो म व्यतिरेक माना। रुय्यक तथा विश्वनाथ ने रुद्रट का समर्थन किया। मम्मट एव जगन्नाथ केवल उपमेयोत्कर्ष को व्यतिरेक कहते हैं।

व्यतिरेक के सबसे अधिक (चौबीस) भेदो का उल्लेख मम्मट ने किया है, रुद्रट से पूर्व व्यतिरेक के चार भेद दण्डी ने बतलाये थे दीक्षित मे तीन रह गये। उत्तर आचार्यो ने व्यतिरेक के चार भेद माने हैं। दण्डीकृत व्यतिरेक भेद केवल वर्णन-मात्र है।

६ विभावना

भामह

क्रिया के प्रतिषेध मे भी फल का वर्णन विभावना है, परन्तु इस विचित्र कार्य का समाधान[1] सुलभ होना चाहिए। यह समाधान ही सौन्दर्य का चमत्कार है।

भामह ने विभावना के भेदो का वर्णन नही किया परन्तु उदाहरण से ज्ञात होता है कि इस सौन्दर्य मे 'समाधान' गम्य भी हो सकता है। लक्षण के तीन अग हैं—क्रिया प्रतिषेध फलाप्ति समाधि (समाधान)।

दण्डी

प्रसिद्ध हेतु की व्यावृत्ति (अभाव प्रदर्शन) म कारणान्तर की कल्पना अथवा स्वाभाविकत्व[2] की कारण-कल्पना विभावना[3] है। कारणान्तर विभावना तो भामह के अनुसार ही चित्रित की

---

१ क्रियाया प्रतिषेधे या तत्फलस्य विभावना।
ज्ञया विभावनैवासौ समाधौ सुलभ सति ॥२।७७॥

२ प्रसिद्धहेतुव्यावृत्त्या यत्किचित् कारणान्तरम्।
यत्र स्वाभाविकत्व वा विभाव्य सा विभावना ॥२।१९९॥

३ विभावना का यही लक्षण अग्निपुराण म दण्डी की शब्दावली से अपना लिया गया है।

गई है, परन्तु स्वाभाविक विभावना एक नया रूप लगता है। वस्तुत स्वाभाविकत्व भी तो कारणान्तर ही है, इसको अलग रूप मानने की आवश्यकता नहीं थी।

वक्त्रं निसर्ग-सुरभि, वपुरव्याजसुन्दरम्।
अकारणरिपुश्चन्द्रो निर्निमित्तासुहृत्स्मरः ॥२।२०३॥

यह उदाहरण कारणान्तर विभावना का भी हो सकता है।

उद्भट

उद्भट का लक्षण ठीक वही है जो भामह ने दिया था। एकमात्र उदाहरण सरल तथा स्पष्ट है। भामह, उद्भट, वामन तथा मम्मट ने विभावना के लक्षण में हेतु के लिए 'क्रिया' शब्द का प्रयोग किया है यह व्याकरण' का प्रभाव माना जा सकता है जहाँ क्रिया मात्र फल का कारण है।

वामन

क्रिया प्रतिषेधे प्रसिद्ध तत्फलव्यक्तिर्विभावना ॥ ४।३।१३ ॥

क्रिया का निषेध होने पर उसी क्रिया के प्रसिद्ध फल का वर्णन विभावना का सौन्दर्य है। वामन ने केवल एक उदाहरण दिया है, भेदों का वर्णन भी नहीं किया।

रुद्रट

विभावना के तीन भेदों का वर्णन है—

(१) अभिधीयते यत स्यात तत्कारणम अन्तरेणव ।।९।१६।। (जिस कारण से पदार्थ होता है उससे भिन्न कारण से उसका कथन)।

(२) किसी वस्तु का विकार कारण के बिना प्रकट हो—
यस्या तथा विकारस्तत्कारणमन्तरेण सु यक्त ।।९।१८।।

(३) जिस अर्थ का जैसा धर्म लोक में प्रसिद्ध है वैसा ही धर्म किसी अन्य अर्थ का वर्णित करना—'यस्य यथात्व लोके प्रसिद्धम अन्यस्यापि तथात्वम।'

प्रथम भेद दण्डी से आया है और द्वितीय भामह तथा वामन से। तीसरा भेद कुछ नवीन है उदाहरण है—'मदहेतुरनासवो लक्ष्मी ।

मम्मट

क्रियायाः प्रतिषेधेऽपि फलव्यक्तिर्विभावना ॥१०।१०७॥

हेतुरूप क्रिया' अर्थात कारण के निषेध अथवा अभाव में फल की प्राप्ति विभावना का

१ का० सा० स०, नोटस पृ० ७७।
२ हेतु रूप क्रियाया निषेधेऽपि तत्फलप्रकाशन विभावना। (वृत्ति पृ० ४६८)

चमत्कार है। विभावना का यह वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त है।

रुय्यक

'कारणाभावे कार्यस्योत्पत्तिर्विभावना।'

वृत्ति में स्पष्ट किया गया है कि विभावना में अप्रस्तुत कारण विद्यमान रहता है जो चमत्कार का आधार है। अप्रस्तुत कारण वस्तुतोऽस्तीति विरोधपरिहार। कारणाभावेन चोपक्रान्तत्वाद् बलवता कार्यमेव बाध्यमानत्वेन प्रतीयते, न तु तेन कारणाभाव इत्यन्योन्यबाधकत्वानुप्राणिताद् विरोधालङ्काराद् भेद। (पृ० १५८)

रुय्यक ने क्रिया और 'कारण' में से 'कारण' का लक्षण में स्थान देना उचित समझा है—

"इह च लक्षणे यद्यप्यन्य कारणपदस्थाने क्रियाग्रहणं कृतं तथापीह कारणपदमेव विहितम्। नहि सर्वं क्रियाफलमेव कार्यमभ्युपगम्यते। वैयाकरणैरेव तथाभ्युपगमात्। अतो विशेषमनपेक्ष्य सामान्येन कारणपदमेवेह निर्दिष्टम्।' (पृ० १५८)

रुय्यक ने विशेषोक्ति के समान विभावना के भी दो भेद किये हैं—उक्त निमित्ता तथा अनुक्त निमित्ता[1]।

जयदेव

जयदेव ने विभावना का चलता हुआ लक्षण और एक उदाहरण दिया है—

विभावना विनापि स्यात् कारणं कार्यजन्म चेत् ॥५।७७॥

विश्वनाथ

रुय्यक के अनुसार विभावना का लक्षण और उसके दो भेदों का वर्णन संक्षेप में किया गया है—

विभावना विना हेतुं कार्योत्पत्तिर्यदुच्यते।
उक्तानुक्तनिमित्तत्वाद् द्विधा सा परिकीर्तिता ॥१०।६६॥

अप्पय्यदीक्षित

कुवलयानन्द में विभावना के छह भेद माने गये हैं जिनकी आगे के आलंकारिकों में स्वीकृति है—

(क) विभावना विनापि स्यात् कारणं कार्यजन्म चेत्।
(ख) हेतूनामसमग्रत्वे कार्योत्पत्तिश्च सा मता।
(ग) कार्योत्पत्तिस्तृतीया स्यात् सत्यपि प्रतिबन्धके।

---

१ इयं च विशेषोक्तिवदुक्तानुक्तनिमित्तभेदाद् द्विधैव। (पृ० १५९)

(घ) अकारणात् कायजन्म। (ङ) विरुद्धात कार्यसम्पत्ति ।
(च) कार्यात कारणजन्मापि।

जगन्नाथ

'रसगगाधर' मे कुवलयानन्द' का खण्डन करते हुए विभावना का निम्नलिखित लक्षण दिया गया है—

"कारणव्यतिरेकसामानाधिकरण्यन प्रतिपाद्यमाना कार्योत्पत्तिर्विभावना' । और विभावना के केवल उक्तनिमित्ता एव अनुक्तनिमित्ता भेद ही स्वीकार किये गये हैं। (पृ० ५८२)

हिन्दी के आचाय

केशवदास मे विभावना के दो रूप है—

(क) कारज को बिनु कारनहि, उदो होत जेहि ठौर ॥९।११॥
(ख) कारन कौनहु आनत, कारज होय जु सिद्ध ।
जानो अन्य विभावना कारण छोडि प्रसिद्ध ॥९।१३॥

देव कवि का भी ऐसा ही मत है—

उक्ति विशेष विभावना, बिन फल बीज विवेक ।
बिन कारन कारज फलै सो विभावना होइ ॥

दासकवि ने विभावना के छह भेदो का वर्णन किया है—

(क) बिन कारन कारज (प्रसिद्ध कारण के अभाव म कार्योत्पत्ति)
(ख) थोडे कारन कारज (कारण की अपूर्णता म भी काय)
(ग) *रोकन हू कारज सिद्धि (प्रतिबन्धक होन पर भी कार्योत्पत्ति)*
(घ) अकारनी वस्तु तें कारज (अकारण स कार्योत्पत्ति)
(ङ) कारन तें कारज कछू (विरुद्ध कारण स कार्योत्पत्ति)
(च) कारज तें कारन (काय से कारणोत्पत्ति) ।

कन्हैयालाल पोद्दार तथा रामदहिन मिश्र ने भी इसी परम्परा म कुवलयानन्द के अनुकरण पर विभावना के छह भेदो का वणन किया है।

उपसहार

विभावना प्राचीन तथा महत्त्वपूर्ण अलकार है। प्रसिद्ध कारण के अभाव म भी कार्योत्पत्ति का वणन विभावना अलकार है। भामह ने इसका प्रथम विवचन किया था। भामह ने इसका लक्षण दो अगो म किया—(१) क्रियाया प्रतिषधे या तन फलस्य विभावना और (२) समाधौ सुलभ सति। दण्डी ने इस लक्षण का विकास किया और विभावना के तीन अगो का उल्लेख किया—(१) प्रसिद्ध कारण का अभाव (२) कारणान्तर की कल्पना (३) अन्य

कारण की स्वभावत सिद्धि। यही से दो शब्दो को लेकर मतभेद प्रारभ हो गया। कुछ आचाय क्रिया' के निषेध का वणन करते थे तो दूसरे कारण' अथवा हेतु का। रुय्यक का मत है कि विभावना के लक्षण म 'क्रिया और 'फल' पदा का प्रयाग होना चाहिए 'कारण' और 'काय' का नही—"इह च लक्षणे यद्यप्यर्यं कारणपदस्थाने क्रियाग्रहण कृत तथापीह कारणपदमव विहितम्। न सर्वं क्रियाफलमेव कायमभ्युपगम्यते। वैयाकरणरव तथाभ्युपगमात।"

रुय्यक म विभावना के दो भेद उक्त निमित्ता तथा अनुक्तनिमित्ता हैं। अप्पय्यदीक्षित ने विभावना के छह भेदा का वणन किया जिनका खडन जगन्नाथ ने कर दिया। परन्तु य छह भेद सामा यत स्वीकृत हो चुके हैं।

१० समासोक्ति

भामह

एक अथ के कथन पर उसके समान विशेषताआ[1] से युक्त काई अ य अथ गम्य हो तो वह सक्षिप्ताथता समासोक्ति कही जाती है। उदाहरण म कतिपय विशेषण श्लिष्ट हैं यह महान वृक्ष आधी न गिरा दिया यह वक्ष जो स्कन्धवान है ऋजु है अव्याल है, स्थिर है और बहुफल वान् है। इस वणन म एक ऐसे महापुरुष का सकेत है जिसको दुर्भाग्य ने मिटा दिया हो।

दण्डी

कोई वस्तु अभिप्रेत[2] हो और उसके समान किसी अ य वस्तु का कथन किया जाय ता वह सक्षेप रूप उक्ति समासोक्ति है। एक उदाहरण कायसाम्यघटिता समासोक्ति का है। विशेषण साम्यघटिता के उपभेद भी दिखाय गय ह। परन्तु निगमाम्यघटिता का काई उदाहरण नही हे।

अपूवसमासोक्ति एक नया नाम है। इसम अपूव (पूवधमनिवतक कल्पित) धम को आधार बनाया जाता है—

निवत्त यालससर्गो निसगमधुराशय ।
अयमम्भानिधि कष्ट कालेन परिशुष्यति ॥२।२१२॥

समुद्र का धम व्याल ससग तथा लवणाशयत्व प्रसिद्ध है परन्तु यहाँ उस धम की निवत्ति कर दी गई यह 'अपूवता समासोक्ति के चमत्कार के लिए है। अभिप्रेत पुरुष है समुद्र ता उसके तुल्य वस्तु है।

उदभट

प्रकृताथ का वणन करनेवाले वाक्य म तत्समान विशेषणो[3] द्वारा यदि अप्रस्तुताथ ता

---

१ यत्रोक्ते गम्यतेऽन्योऽर्थस्तत्समान विशषण ॥२।७६॥

२ वस्त किचिदभिप्रत्य तत्तुल्यस्यान्यवस्तन ।
उक्ति सक्षेपरूपत्वात सा समासोक्तिरिष्यते ॥२।२०५॥

३ प्रकृतार्थेन वाक्येन तत्समानर्विशषण ।
अप्रस्तुतार्थकथन समासोक्तिरुदाहृता ॥२।१ ॥

कथन[1] हो तो समासोक्ति है। यह लक्षण अत्यन्त वज्ञानिक है। इसमे इस पर बल है कि प्रकृताथ वर्णित हो तथा अप्रकृताथ गम्य हो, इस प्रकार अप्रस्तुत प्रशसा स समासोक्ति का भेद भी स्पष्ट हो जाता है। उत्तर आचार्यों ने उदभट के लक्षण को आधार बनाया है।

वामन

अनुक्तौ समासोक्ति ॥४ ३,३॥

उपमेय की अनुक्ति पर समानवस्तु (उपमान) का न्यास समासोक्ति है। सक्षिप्तवचन के कारण इसको समासोक्ति कहते है। उदाहरण का अनुवाद है मरुभूमि म स्थित वह करील श्लाघ्य है जो पथिको की थकावट दूर करता है उस कल्पवृक्ष को धिक्कार है जो सुमेरु पर स्थिर है और याचको की इच्छा का अनुभव नही करता। यह उदाहरण भामह से प्रभावित है।

उदभट की वज्ञानिकता वामन म नही आ पाई। इसका कारण सूत्रशली है। वामन प्रतिवस्तूपमा, समासोक्ति तथा अप्रस्तुत प्रशसा तीनो का वणन उपमेय के प्रसग से ही करना चाहते हैं उपमेय की उक्ति म प्रतिवस्तूपमा, अनुक्ति मे समासोक्ति और किंचिदुक्ति मे अप्रस्तुत प्रशसा अलकार है। ये लक्षण असमथ एव अस्पष्ट है।

रुद्रट

सकलसमानविशेषणमेक यत्राभिधीयमान सत।
उपमानमेव गमयेद उपमेय सा समासोक्ति ॥८ ६७॥

लक्षण सरल एव परम्परागत है उदाहरण म भी कोई विशेषता नही।

मम्मट

श्लेष अलकार के पश्चात समासोक्ति का विवचन है। लक्षण अत्यन्त सक्षिप्त है परोक्ति भेदकै श्लिष्ट समासोक्ति।'

श्लिष्ट विशेषणा युक्त ऐसी अप्रस्तुत उक्ति समासोक्ति है जो प्रस्तुत अथ का प्रतिपादन करने म समथ हो। वत्ति मे इसको और भी स्पष्ट कर दिया गया है--

प्रकृताथप्रतिपादकवाक्येन श्लिष्टविशेषणमाहात्म्यात न तु विशेष्यस्य सामर्थ्यादपि, यत अप्रकृतस्य अथस्य अभिधान सा समासेन सक्षेपेण अथद्वयकथनात समासोक्ति। (काव्यप्रकाश, विश्वश्वर पृ० ६७४)

रुय्यक

विशेषणाना साम्याद अप्रस्तुतस्य गम्यत्वे समासोक्ति ॥

---

१ अग्निपुराण का लक्षण है—
यत्रोक्त गम्यतेऽन्योऽर्थस्तत समान विशेषण ।
सा समासोक्तिरुदिता स क्षेपार्थतया बध ॥

रुय्यक ने समासाक्ति का अत्य"त विस्तार स वणन किया है। अनेक अलकारो से ममासाक्ति का अ"तर भी स्थापित किया गया है और उसके अनेक भेदो का भी वणन है।

प्रस्तुत अप्रस्तुत कही वाच्य होते हैं, कही गम्य। वाच्य समासोक्ति का विषय नहीं है। गम्यत्व जहां प्रस्तुतनिष्ठ हो वहा अप्रस्तुत प्रशसा है और जहां अप्रस्तुतनिष्ठ हो वहा समासाक्ति अलकार है। विशेषणसाम्य इसका आधार है, विशेषणसाम्य के कारण प्रतीयमान अप्रस्तुत प्रस्तुतवत प्रतीत होता है। समासाक्ति का प्राण "यवहारसमारोप है रूपममाराप' नही। व्यवहार के अनेक रूपा के आधार स समासोक्ति के अनेक रूप हैं।

जयदेव

समासाक्ति का लक्षण सक्षिप्त एव सामा"य है—

समासोक्ति परिस्फूर्ति प्रस्तुतेऽप्रस्तुतस्य चेत ॥५।६२॥

'कुवलयान"द (श्लोक ६१) म भी यही लक्षण है।

विश्वनाथ

समासोक्ति समयत्र कार्यलिगविशेषण।
"यवहारसमारोप प्रस्तुतेऽ"यस्य वस्तुन ॥१०।५६॥

समासोक्ति की "याख्या एव वणन बडे विस्तार मे रुय्यक के आधार पर है और अनेक भेदोपभेदा का वणन विश्वनाथ न किया है प्राय रुय्यक का श"दावली को ही अपनाकर।

जग नाथ

रस गगाधर मे इसी परम्परा का लक्षण दूसरी श"दावली म दिया गया है—

यत्र प्रस्तुतधर्मिको "यवहार साधारणविशेषणमात्रोपस्थापिता
प्रस्तुतधर्मिकव्यवहाराभेदेन भासते सा समासाक्ति। (पृ० ४९२)

हि"दी के आचाय

केशव न समासाक्ति का वणन नहा किया। देवकवि का वणन अत्य"त सदोष है—

समासोक्ति कछु वस्तु लखि कहिय ता मम और॥

दासकवि का वणन भी सामा"य है—

जहँ प्रस्तुत म पाइय अप्रस्तुत का ज्ञान।
कहुँ वाचक कहुँ श्लेष तें समासाक्ति पहिचान ॥१२।१९॥

---

१ इह प्रस्तुताप्रस्तुतया क्वचिद्वाच्यत्व क्वचिद्गम्यत्वम्। गम्यत्व तु प्रस्तुतनिष्ठम् अप्रस्तुतप्रशसाविषय अप्रस्तुतनिष्ठ तु समासोक्तिविषय। तत्र च निमित्त विशेषणसाम्यम। अव"छेदकत्व च व्यवहारसमारोपो न तु रूपसमारोप। (वृत्ति १०८ ६)

कन्हैयालाल पोद्दार न विश्वनाथ के अनुसार तथा रामदहिन मिश्र ने मम्मट क अनुसार समासोक्ति का वणन किया है।

उपसहार

समासोक्ति प्राचीन एव प्रतिष्ठित अलकार है। सभी उत्तर आचार्यों न इसका वणन किया है। भामह ने इसके तीन अगो का विवेचन किया था—

(१) समान विशेषण, (२) प्रकृत अथ से अप्रकृत अथ की प्रतीति तथा (३) सक्षिप्त कथन। उदभट ने इस लक्षण का विकास किया कि समासोक्ति म अभिप्रताथ प्रकृत होता है और उक्ताथ अप्रकृत। मम्मट ने इस लक्षण का और भी आग बढाया और श्लिष्ट विशेषणा को लक्षण मे जोड दिया, समासोक्ति म श्लिष्ट विशपणा के द्वारा प्रस्तुत से अप्रस्तुत की प्रतीति होती है। रुय्यक ने समासोक्ति विवेचन का विस्तार किया और "व्यवहार-समारोप पदों को जोड दिया, समासोक्ति मे प्रस्तुत पदाथ के व्यवहार म अप्रस्तुत पदाथ के व्यवहार का समारोप होता है। अन्तिम योग विश्वनाथ का है जिन्होंने विशेषण के साथ 'काय एव लिंग पद भी लक्षण म सम्मिलित कर दिये समान काय, लिंग अथवा विशेषणो के द्वारा प्रस्तुत मे अप्रस्तुत के व्यवहार का समारोप समासोक्ति है। विश्वनाथ-कृत लक्षण है—

समासोक्ति समैयत्र काय लिंग विशेषण ।
व्यवहार-समारोप प्रस्तुतेऽन्यस्य वस्तुन ॥१०।५६॥

समासोक्ति से दूसरे अलकारा का अन्तर भी आचार्यों के ध्यान म रहा है। रुय्यक क अनुसार अप्रस्तुत प्रशसा म प्रस्तुत गम्य होता ह और समासोक्ति म अप्रस्तुत गम्य होता है। रूपक म प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत दोनो वाच्य हात है परन्तु समासोक्ति म प्रस्तुत वाच्य रहता है और अप्रस्तुत व्यग्य। रूपक म प्रकृत म अप्रकृत के स्वरूप का आरोप होता है, समासोक्ति म प्रकृत म अप्रकृत के काय का आरोप। श्लेष म दोनो अथ विवक्षित होते हैं परन्तु समासोक्ति म एक अथ वाच्य है दूसरा व्यग्य। समासोक्ति म केवल विशपण श्लिष्ट होते है परन्तु श्लेष म विशपण तथा विशेष्य दोनो ही श्लिष्ट है।

रुय्यक ने समासोक्ति के अनक भेदा की कल्पना की है परन्तु वह वणन मात्र है। विश्वनाथ के लक्षण के अनुसार काय लिंग और विशपण के आधार पर समासोक्ति के तीन भेद हो सकते हैं।

११ अतिशयोक्ति

भामह

जब कोई कथन सकारण लोकातिक्रान्तगोचर'[1] वर्णित किया जाय तो वह सौन्दय अति

---

१ निमित्ततो वचो यत्तु लोकातिक्रान्तगोचरम् ॥२।८१॥

शयोक्ति है। इस सौदय का आधार गुणातिशययोग"[1] है। अतिशयोक्ति एक प्रकार स वक्रोक्ति[2] है। इससे अथ म सौदय आता है, कवि को इसका प्रयत्न करना चाहिए क्योकि इसके बिना कोई सौन्दय सम्पादित नही होता।

भामह ने अतिशयोक्ति का क्षेत्र बडा व्यापक बना दिया है और इसको वक्रोक्ति का पर्याय सा माना है और सौन्दय मात्र तथा काव्य का मूल सिद्ध किया है। आगे चलकर अतिशयोक्ति और वक्रोक्ति दोना सीमित सौन्दय का पर्याय बनकर अलकार विशेष ही रह गये।

भामह ने दो उदाहरण दिये हैं और दोना भिन्न प्रकार के है। प्रथम भेदकातिशयोक्ति का है और द्वितीय सम्बन्धातिशयोक्ति का (श्लोक सख्या ८२—८३)।

दण्डी

प्रस्तुत वस्तु गत विशेष की लोकसीमातिवर्तिनी विवक्षा अतिशयोक्ति ह वह उत्तम[3] अलकार है। दण्डी के अनुसार अतिशयोक्ति विशेष[4] अर्थात धर्मविशेष के आधिक्य के वणन मे होती है, धर्मी के म नही।

अतिशयोक्ति के चार उदाहरण दिये गय है। प्रथम उस सौदय का है जिसको अर्वाचीना ने मीलित अलकार माना है। मल्लिका माला धारिणी चन्दन चर्चित-तनु सित दुकूल धारिणी अभिसारिकाएँ ज्योत्स्ना म दिखलायी नही पडती।" (२।२१५) दूसरा उदाहरण **सशयातिशयोक्ति** का है जो सन्देह अलकार से भिन्न सौदय है।

स्तनयोजघनस्यापि मध्ये मध्य प्रिये तव।
अस्ति नास्तीति सन्देहो न मेऽद्यापि निवतत ॥२।२१७॥

तीसरा उदाहरण **निणयातिशयोक्ति** का है और चतुथ **आश्रयातिशयोक्ति** का। आश्रयातिशयोक्ति का उदाहरण अर्वाचीनो के 'अधिक' अलकार का उदाहरण है यहाँ आश्रयीभूत त्रिभुवनोदर के विशालता प्रतिपादन के कारण तत्रस्थ यशोराशि का आधिक्य द्योतित होता है—

अहो विशाल भूपाल! भुवनत्रितयोदरम्।
भाति मातुमशक्योपि यशोराशियदत्र त ॥२।२१९॥

---

१ इत्येवमाभिहिता गुणातिशययोगत ॥२।८४॥

२ सषा सर्वैव वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते।
यत्नोऽस्या कविना काय कोऽलंकारोऽनया विना ॥२।८५॥

३ विवक्षा या विशषस्य लोकसीमातिवर्तिनी।
असावतिशयोक्ति स्यादलकारोत्तमा यथा ॥२।२१४॥

४ अपर च इयमतिशयोक्तिविशष धर्मविशेष तस्यैव आधिक्येन वणने भवति न त धर्मिण। (प्रभा पृ० २२१)

भामह के समान दण्डी ने भी अन्त म अतिशयोक्ति[1] के महत्त्व का पुन प्रतिपादन किया है—

> अलकारान्तराणामप्येकमाहु परायणम ।
> वागीशमहितामुक्तिमिमामतिशयाह्वयाम् ।।२।२२०।।

इसमे 'अपि शब्द महत्त्वपूण है, अतिशयोक्ति न केवल उत्तम अलकार है प्रत्युत विविध अलकारो का भी परमाश्रय (परायण) है ।

उद्भट

द्वितीय वग का अन्तिम विवेच्य अलकार अतिशयोक्ति है । भामह से ही उदभट ने अतिशयोक्ति का लक्षण ले लिया है और *लोकातिक्रान्तगोचरम उसका प्राण है । उदभट ने अत्यन्त* वैज्ञानिक वर्गीकरण किया है जो उत्तर आचार्यों का आधार बन गया ।

अतिशयोक्ति के चार भेद है—भेदेऽनन्यत्वम[2] *अन्यत्र (अभेदे) नानात्वम सम्भाव्यमानार्थ* निब ध कायकारणयो पौर्वापय विपयय —आशुभाव[3] के आधार पर । प्रथम दो भद मम्मट के 'प्रस्तुतस्य यदन्यत्वम के अन्तगत ह, तृतीय तथा चतुथ सभी उत्तर आचार्यों ने यथावत स्वीकार कर लिये है ।

भेदेऽनन्यत्वम भेद के उदाहरण मे पावती के विषय म कहा गया है कि वह कृशामप्य कृशामेव है—भिन्न होकर भी अभिन्न ही लगती है तपस्तेज के कारण । अन्यत्र नानात्वम भद *के उदाहरण मे उमा कुमारी होती हुई भी युवती लगती है—अभेद होते हुए भी भेद ह । अन्तिम* दो भेद स्पष्ट तथा प्रसिद्ध है ।

वामन

सम्भाव्यधमतदुत्कपकल्पनाऽतिशयोक्ति ।।४ ३ १०।।

सम्भाव्य धम की और उसके उत्कप की कल्पना अतिशयोक्ति है । इस प्रकार इसके दो रूप हो गये । प्रथम रूप तो सामान्यत सभी आचार्यो मे स्वीकृत चला आता है, परन्तु दूसरा रूप अतिशयोक्ति नही अत्युक्ति मात्र है । वामन न उदभट के वैज्ञानिक वर्गीकरण स कोई लाभ नही उठाया ।

---

१ अग्निपुराण म अतिशयोक्ति का लक्षण है—
लोकसीमातिवत्तस्य वस्तुधमस्य कीतनम ।
भवेदतिशयो नाम सभवासभवा द्विधा ।।

२ भदेनन्यत्वमन्यत्र नानात्व यत्र बध्यते ।
तथा सम्भाव्यमानाथनिबन्धातिशयोक्तिगी ।।का सा०स० २।१२।।

३ कायकारणयोयत्र पौर्वापिदविपययात ।
आशभाव समालम्ब्य बध्यत सोपि पूववत ।।का सा०स २।१३।।

मम्मट

निगीर्याध्यवसानन्तु प्रकृतस्य परेण यत ।
प्रस्तुतस्य यद यत्व यद्यर्थोक्तौ च कल्पनम् ॥
काय-कारणयोयश्च पौर्वापयविपयय ।
विनेयाऽतिशयोक्ति सा ॥

अतिशयोक्ति के चार भेद हैं जिन पर उद्भट का प्रभाव है—

(क) उपमेय का उपमान द्वारा निगरण एव अध्यवसान[1],
(ख) प्रस्तुत अर्थ का अन्य रूप से वणन[2] (ग) यदि —अर्थोक्ति द्वारा कल्पना[3],
(घ) काय-कारण का पौवापय विपयय[4] ।

रुय्यक

अध्यवसाय की साध्यता म उत्प्रेक्षा का चमत्कार है और सिद्धत्व म अतिशयोक्ति का लक्षण है अध्यवसितप्राधान्य त्वतिशयोक्ति ।

रुय्यक न अतिशयोक्ति के पाच भेद बतलाये हैं—

(क) भेदेऽभेद । (ख) अभेदे भेद । (ग) सम्बन्धेऽसम्बन्ध ।
(घ) असम्बन्धे सम्बन्ध । (ङ) काय-कारण-पौर्वापयविध्वमश्च ।

पचम भेद के दो उपभेद हो सकते हैं— काय कारण पौवापयविध्वस पौर्वापयविपययात तुल्यकालत्वाद वा ।' अतिशयोक्ति का यह स्वरूप एव ये भेद सभी उत्तरकालीन आचार्यों ने स्वीकार किये हैं।

जयदेव

चन्द्रालोक म अतिशयोक्ति का लक्षण नही दिया गया, परन्तु उसके छह भेदो का वणन है और उन भेदो का नामकरण भी है जो प्राय मान्य हो गया है—

(क) अक्रमातिशयोक्तिश्चेद युगपत्कायकारणे ॥५।४१॥
(ख) अत्यन्तातिशयोक्तिस्तत पौर्वापयव्यतिक्रम ॥५।४२॥
(ग) चपलातिशयोक्तिस्तु कार्ये हेतु प्रसक्तिज ॥५।४३॥
(घ) सम्बन्धातिशयोक्ति स्यात तदभावेऽपि तद्वच ॥५।४४॥

---

१ उपमानेनान्तर्निगीर्णस्य उपमेयस्य यदध्यवसान सका । (पृ ४८३)
२ यच्च तत्रैव अन्यत्वेन अध्यवसीयते साऽपरा ।
३ यद्यर्थस्य यदि शब्देन चेच्छब्देन वा उक्तौ यत्कल्पनम् (अर्थात् असम्भाविनोऽर्थस्य) सा ततीया । (पृ० ४८४)
४ कारणस्य शीघ्रकारिता वक्तु कार्यस्य पूवमक्तौ चतर्थी ।
५ हेतो कारणस्य प्रसक्ति प्रसग तज्जन्ये कार्ये सति । (पौर्णमासी पृ० १२७)

(ट) भेदकातिशयोक्तिश्चेद एकस्यवान्यतोच्यते ॥५।४५॥
(च) रूपकातिशयोक्तिश्चेद रूप्य[1] रूपकमध्यगम ॥५।४६॥

विश्वनाथ

रुय्यक क आधार पर अतिशयाक्ति के पाच भेदा का वणन है और एक भेद के दो उपभेद भी हैं। लक्षण सरल और वज्ञानिक है तथा उत्प्रेक्षा से इसका अन्तर स्पष्ट करता है—

सिद्धत्वेऽध्यवसायस्यातिशयोक्तिर्निगद्यते ॥१०।४६॥

अप्पय्यदीक्षित

अतिशयाक्ति का वणन जयदेव क अनुसार है। क्रम म रूपकातिशयाक्ति' को प्रथम स्थान मिला है इसका प्रभाव हिन्दी क आचार्यो पर पडा। रूपकातिशयोक्ति के दो उपभेद—सापह्नवा तथा निरपह्नवा—किये गय है—

रूपकातिशयोक्ति स्यान्निगीर्याध्यवसानत ॥३६॥
यद्यपह्नुतिगभत्व सैव सापह्नवा मता ॥३७॥

शेप भद हैं—भेदक सम्बन्ध असम्बन्ध अक्रम चपल अत्यन्त। असम्बन्धातिशयोक्ति भेद चन्द्रालोक' म नही था।

चित्रमीमासा' मे अतिशयोक्ति का निम्नलिखित लक्षण है—

विषयस्यानुपादानाद विषय्युपनिबध्यते।
यत्र सातिशयोक्ति स्यात कविप्रौढोक्तिजीविता॥

इसक केवल चार भेदा का वणन है—कायकारण पौर्वापयविध्वस नामक रुय्यकोक्त पचम भेद का नही।

जगन्नाथ

रस-गगाधर म भी अतिशयोक्ति का परम्परागत वणन है—

विषयिणा विषयस्य निगरणमतिशय। तस्योक्ति। (पृ० ४०९)

हिन्दी के आचाय

केशव म अतिशयोक्ति विपय नही है और दव म बहुत चलता हुआ है। दासकवि ने अतिशयाक्ति का विस्तार किया है और विश्वनाथ क आधार पर पाँच भेदा का वणन है। साथ ही उपमातिशयोक्ति रूपकातिशयोक्ति तथा उत्प्रक्षातिशयाक्ति का भी वणन है। इसी सम्बन्ध म अत्युक्ति तथा उदात्त भी आ गय हैं। दासकवि क वणन म कुछ तथ्या पर ध्यान चला जाता है—

---

१ रूप्य विषय उपमयमिति रूपकमध्यग विषयिमध्यग स्यात्। (पृ० १२६)

(क) अनन्वयहु की व्यगि यह भेदक अतिशय उक्ति ॥११।५॥
(ख) जहा दीजिय जोग्य कौं, अधिक जोग्य ठहराइ ।
अलकार अत्युक्ति तहँ वरनत हैं कविराइ ॥११।१७॥

कन्हैयालाल पोद्दार तथा रामदहिन मिश्र ने अतिशयोक्ति का वर्णन विश्वनाथ के आधार पर किया है।

उपसहार

भामह ने अतिशयोक्ति का विवेचन करते हुए इसका मुख्य लक्षण लोकातिनातिगोचरत्व माना था। यही लक्षण अन्त तक मान्य रहा, केवल इसमे सूक्ष्मता आती गई। भामह के पश्चात दूसरे मुख्य आचार्य मम्मट हैं। 'काव्यप्रकाश' मे 'निगीर्यध्यवसान' के प्रयोग से अतिशयोक्ति का लक्षण अध्यवसान पर केन्द्रित हो गया। रुय्यक ने और भी विकास किया और साध्य अध्यवसाय मे उत्प्रेक्षा एव सिद्ध अध्यवसाय मे अतिशयोक्ति अलकार माना। विश्वनाथ ने भी इसी शब्दावली को लक्षण के लिए स्वीकार किया है।

उदभट ने सर्वप्रथम अतिशयोक्ति के चार भेदो का निरूपण किया था। रुय्यक ने पाच भेद किये, जयदेव ने छह तथा अप्पय्यदीक्षित ने आठ। विश्वनाथ ने रुय्यक के पाच भेदो का ही उल्लेख किया है। सामान्यत अतिशयोक्ति के पाँच से आठ तक भेद माने जाते हैं।

१२ हेतु

भामह

भामह ने अतिशयोक्ति के महत्त्व प्रतिपादन के अनन्तर हेतु सूक्ष्म तथा लेश का अनलकारत्व सिद्ध किया था। जो सामान्य कथन (समुदायाभिधान)[१] है उसमे वक्रोक्ति नही है और वक्रोक्ति के बिना कोई अलकार हो नही सकता— कोऽलकारोऽनया विना । भामह ने हेतु अलकार के उदाहरण को वार्ता माना है, जिसमे अलकारत्व नही है।

दण्डी

हेतु-सूक्ष्म-लेश के सम्बन्ध मे मूल मतभेद भामह और दण्डी का है। भामह ने दण्डी का ही खण्डन किया है जो उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है। दण्डी ने उत्प्रेक्षा अलकार के अनन्तर इस त्रिवर्ग का समर्थ प्रतिपादन किया है जो इनको 'वाचामुत्तमभूषणम्'[२] कहने से स्पष्ट है। 'काव्यादर्श' मे हेतु का लक्षण तो नही दिया गया परन्तु वर्णन बहुत विस्तृत (श्लोक-सख्या २३५ से २६० तक) है।

---

१ हेतुश्च सूक्ष्मो लेशोऽथ नालकारतया मत ।
समुदायाभिधानस्य वक्रोक्त्यनभिधानत ॥ काव्यालकार २।८६॥

२ हेतुश्च सूक्ष्मलेशौ च वाचामुत्तमभूषणम् ॥ काव्यादर्श २।२३५॥

हेतु के दो मुख्य भेद हैं—कारकहेतु तथा ज्ञापकहेतु इनके अनेक उपभेद भी है। कारक हेतु के जो उदाहरण है वे अन्यों ने अतिशयोक्ति के माने हैं और ज्ञापकहेतु मे अन्य लोग अलंकारत्व नही मानते।

कारक हेतु के दो उदाहरण दिये गये हैं — एक भावसम्पादन में हेतु है दूसरा अभावसम्पादन में। सामान्यतः हेतु दो प्रकार का है—क्रियार्थ सम्पादक तथा कर्मार्थसम्पादक। क्रियार्थसम्पादक को कारक ज्ञापक उपभेदों में वर्गीकृत किया गया है कारण के रूप भावसम्पादक तथा अभाव सम्पादक हैं।

कर्मार्थसम्पादक हेतु के तीन रूप—निवर्त्य, विकार्य तथा प्राप्य—कर्म के त्रिविध रूप पर निर्भर है। काव्यादर्श में इनके अलग-अलग उदाहरण (श्लोक-संख्या २४० से २४३ तक) दिये गये हैं।

ज्ञापकहेतु के भावहेतु[1] तथा अभावहेतु तथा अभावहेतु के प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अत्यन्ताभाव तथा अन्योन्याभाव उपभेद हैं और सबके उदाहरण काव्यादर्श (श्लोक-संख्या २४४ से २५२ तक) में दिये गये हैं।

ज्ञापकहेतु के भावहेतु उपभेद को स्पष्ट करने के लिए दण्डी का प्रसिद्ध उदाहरण है—

गतोऽस्तमर्को भातीन्दुर्यान्ति वासाय पक्षिणः ॥२।२४४॥

भामह ने इसी की आलोचना करते हुए कहा था— इत्येवमादि किं काव्यं वार्तामेनां प्रचक्षते (काव्यालंकार २.८७) और दण्डी इसी का प्रत्युत्तर देते हैं इतीदमपि साध्वेव, कालावस्था निवेदने (काव्यादर्श २.२४४)। ज्ञापकहेतु का अतिशयोक्ति में अन्तर्भाव भी नहीं हो पाता इसमें तो अनलंकारता ही रह जाती है।

हेतु प्रसङ्ग के अन्तिम आठ श्लोकों में हेतु के अन्य भेदों—दूरकार्य सहज कार्यान्तरज, अयुक्तकार्य, युक्तकार्य आदि—का मार्गदर्शक वर्णन है— इति हेतुविकल्पाना दर्शिता गतिरीदृशी।[2]

रुद्रट

हेतुमता सह हेतोरभिधानमभेदकृद् भवेद्यत्र।
सोऽलंकारो हेतुः स्यादन्येभ्यः पृथग्भूतः ॥७।८२॥

हेतु अलंकार का स्वरूप अन्य अलंकारों से भिन्न है। कार्य के साथ कारण के अभेदपूर्वक कथन में इस अलंकार का चमत्कार है। उदाहरण है अविरलकमलविकासः सकलालि-रम्योऽयमलिकाल। —यहाँ वसन्त (कारण) एवं कमल विकास आदि (कार्य) का अभेदपूर्वक कथन है।

---

१ भोज ने दण्डी के समान ही अपार का विस्तृत वर्णन किया है। (सरस्वतीकण्ठाभरण (निर्णय सागर प्रेस) पृ ३५२ से ३६० तक)

२ उद्भट वामन मम्मट रुय्यक जयदेव तथा जगन्नाथ ने हेतु अलंकार का वर्णन नहीं किया।

विश्वनाथ

हतु और हेतुमान का अभेद स कथन हेतु अलकार ह—

अभेदेनाभिधा हतु, हेतोर्हेतुमता सह ।

विश्वनाथ ने मम्मट रुय्यक एव जयदेव से मतभेद व्यक्त करते हुए इस सौन्दय का अलका रत्व प्रतिपादन किया है—

'अस्य च विच्छित्तिविशेषस्य सर्वालकारविलक्षणत्वेन
स्फुरणात पृथगलकारत्वमव याय्यम ।' (पृ० ३४९)

अप्पय्यदीक्षित

कुवलयानन्द क सौ अलकारो मे से अन्तिम अलकार हेतु है, जिसका वणन विश्वनाथ के अनुमार किया गया है—

हतार्हेतुमता साध वणन हेतुरुच्यत ॥१६७॥
हेतु-हेतुमतोरक्य हेतु केचित प्रचक्षते ॥१६८॥

हिन्दी के आचाय

कविप्रिया' म हेतु प्रारम्भिक अलकारा म स ह । इसका लक्षण नही है, परन्तु तीन भेदा का वणन है—सभाव अभाव तथा सभाव-अभाव हेतु । देवकवि न हेतु सूक्ष्म तथा लश का एकत्र वणन किया है हेतु का लक्षण— हेतु सहतु समै सहज' । दासकवि के अनुसार—

या कारन को है यही कारज यह कहि देतु ।
कारज कारन एक ही, कहै जानियत हेतु ॥१७।७॥

कन्हैयालाल पोद्दार न रुद्रट तथा अप्पय्यदीक्षित के अनुमार हतु अलकार का वणन सक्षप म किया है ' रूपक म उपमय और उपमान का अभेद कहा जाता है और हतु म कारण और काय का अभेद हाता ह । (अलकारमजरी, पृ० ४२१)

उपसहार

हेतु अलकार का प्रथम सकेत भामह म मिलता है, भामह ने वक्रोक्ति के अभाव म हतु के *अलकारत्व का खण्डन किया है । उदभट, वामन, मम्मट एव रुय्यक आदि न भी हेतु को अलकार* नही माना । मम्मट के अनुमार हतु का अन्तभाव काव्यलिग म हो जाता है ।

दण्डी ने हेतु का वाचामुत्तमभूषणम कहकर इसकी प्रतिष्ठा की । दण्डी के अनुमार कारण और काय की सहस्थिति हतु है । रुद्रट क अनुसार, कारण और काय का अभेद-वणन हेतु अलकार है । विश्वनाथ भी रुद्रट म सहमत है । अप्पय्यदीक्षित तक आकर हेतु के दो रूप प्रतिष्ठित हो गय—सहस्थिति तथा अभद, दाना मिलकर हतु का लक्षण बन । दासकवि न हतु का यही व्यापक लक्षण दिया ह ।

हतु क सबम अधिक (सोलह) भेद दण्डी न दिये थ । अग्निपुराण म दो भेद कारक तथा

है। दो उदाहरण दिये गये हैं एक अनिष्ट की आशका से सवरण है और दूसरा लज्जा का वारण।

दण्डी ने वणन के बीच म इसके अलकारत्व[1] का फिर प्रतिपादन किया है। और लेश का एक अन्य लक्षण भी दिया है—कुछ लोग[2] लशन कृता निन्दा अथवा स्तुति को लेश अलकार मानते हैं। यह व्याजस्तुति से भिन्न है, इसम लश की प्रधानता[3] होती है और दोष का गुणीभाव अथवा गुण का दोषीभाव कल्पित किया जाता है। एक उदाहरण 'स्तुतिमिषेण निन्दाविधानात लेश का है दूसरा निन्दाव्याजेन स्तुति का है।

रुद्रट

दोषीभावो यस्मिन गुणस्य दोषस्य वा गुणीभाव ।
अभिधीयते तथाविधकर्मनिमित्त स लेश स्यात ॥७।१००॥

यह लक्षण दण्डी के अन्य लक्षण के समान है। जिस परम्परा से रुद्रट ने यह लक्षण लिया है उस परम्परा को सामान्यत दण्डी ने भी स्वीकार किया था यद्यपि महत्त्व नहीं दिया था—'लेशमेके विदुर्निन्दा स्तुतिं वा लेशत कृताम्'। उदाहरण म व्यजना का चमत्कार है—धन्यास्ते गुणहीना विदग्धगोष्ठीरसापेता ।

अप्पय्य दीक्षित के अनुसार तो—

लेश स्याद दोषगुणयो गुणदोषत्वकल्पनम ॥१३८॥

परन्तु रस-गगाधर म लेश अलकार के दो रूप है—गुण को अनिष्ट का साधन मानकर उसका दोष रूप मे वणन तथा दोष को अभीष्ट का साधन मानकर उसका गुण रूप म वणन—

'गुणस्यानिष्टसाधनतया दोषत्वेन दोषस्येष्टसाधनतया गुणत्वेन च वणन लेश'। (पृ० ६८९)

हिन्दी के आचार्य

केशवदास ने दण्डी के अनुकरण पर लेश का लक्षण दिया है—

चतुराई के लेश तें चतुर न समय लेश ॥११।४७॥

देवकवि के अनुसार— लेस खुलत छिपि जानि।

दासकवि ने लेश का दो प्रकार से वणन किया है—

जहा दोष गुण होत है लेस वहै सुखकन्द ॥१४।२२॥
गुनौ दोष ह्वै जात है लेस रीति यह और ॥१४।२४॥

कन्हैयालाल पोद्दार ने रुद्रट के अनुसार लेश के दो भेदों का वणन किया है।

---

१ इत्येवमादिस्थानेयमलकारोतिशोभते ॥२।२६८॥

२ लेशमेके विदुर्निन्दा स्तुतिं वा लशत कृताम् ॥२।२६८॥

३ यथा लशन निभिन्नवस्तुनिगूहनात लेशालकार तथा लशेन स्तुतिनिन्दाविधानेपि स एव अलकार उचित। चमत्कृतौ लशस्य प्राधान्यात्। एव च व्याजस्तुत्यलकारान्तराभ्युपगमन न युक्तम। (प्रभा पृ २९३)

उपसहार

लेश भी महत्त्वपूर्ण अलकार नही रहा। भामह ने वक्रोक्ति के अभाव म इसको अलकार नही माना। परन्तु दण्डी ने बल लगाकर लेश की प्रतिष्ठा कर दी तथा भोज, दीक्षित आदि भी इसका वणन करते रहे। दण्डी तथा रुद्रट लेश के मुख्य समथक है।

दण्डी ने लेश अलकार के दो रूप माने थे। एक रूप है कुछ-कुछ प्रकट होते हुए पदाथ के रूप को छिपाना, यहा लेशत प्रकट एव लेशत निगूहन म चमत्कार है। लेश का दूसरा रूप है स्तुति रूप निन्दा और निन्दा रूप स्तुति। रुद्रट ने इस अलकार का स्वरूप स्पष्ट कर दिया जो उत्तर आचार्यों का मान्य रहा। रुद्रट के अनुसार (१) गुण का दोष के रूप म, तथा (२) दोष का गुण के रूप म ग्रहण लेश अलकार है। जगन्नाथ ने रुद्रट की ही व्याख्या की है कि (१) गुण को अनिष्ट का साधन मानकर दोष रूप म, और (२) दोष को अभीष्ट का साधन मानकर गुण रूप म वणन लेश अलकार का चमत्कार है।

ये दोनो रूप ही लेश के दो प्रकार बन गये। प्रथम लेश—गुण का दोष रूप मे कथन है। द्वितीय लेश—दोष का गुण रूप मे कथन है।

१५ यथासख्य

भामह

भामह ने यथासख्य तथा उत्प्रेक्षा दो अर्थालकारो का एक अलग[1] वग म विवेचन किया है। असमानधर्मी[2] बहुत से कथित अर्थों का क्रमश अनुनिर्देश यथासख्य कहलाता है। इसके तीन अग हैं—अनेक असमानधर्मी अथ उनका कथन तथा उसी क्रम से अनुनिर्देश।

दण्डी

काव्यादश म यथासख्य अलकार का विवेचन उत्प्रेक्षा हेतु सूक्ष्म-लेश अलकारो के अनन्तर किया गया है। दण्डी ने इसके तीन नाम बतलाये है— यथासख्य, सख्यान[3] तथा क्रम। प्रथम कथित[4] पदार्थों का यथाक्रम अनुकथन 'यथाक्रम अलकार है। उदाहरण एकमेव तथा स्पष्ट है। भामह के असमानधर्माणाम का दण्डी ने ग्रहण नही किया।

उदभट

'काव्यालकार के तृतीय वग मे तीन अलकार हैं—यथासम्य उत्प्रेक्षा तथा स्वभावोक्ति।

---

१ यथासख्यमथोत्प्रेक्षामलकारद्वय विदु ॥२।८८॥
२ भूयसामुपदिष्टानामर्थानामसधर्मणाम ।
क्रमशो योऽनुनिर्देशो यथासख्य तदुच्यते ॥२।८९॥
३ यथासख्यमिति प्रोक्त सख्यान क्रम इत्यपि ॥काव्यादश २ २७३॥
४ उद्दिष्टाना पदार्थानामनूद्देशो यथाक्रमम् ॥ काव्यादर्श २ २७३ ॥

यथाक्रम के दो भेदो का सकेत रुय्यक ने दिया है। यथाक्रम 'शाब्द' तथा 'आर्थ' दो प्रकार का है, असमस्त पदा के सम्बन्ध मे शाब्द' एवं समस्त पदा के सम्बन्ध म 'आर्थ' यथाक्रम है। जयदेव ने यथासख्य के दो भेद कारक अथवा क्रियाओ के क्रमश सम्बन्ध म माने हैं—कारक का कारक के साथ, और क्रिया का क्रिया के साथ।

जगन्नाथ ने नव्याचार्यों के अनुसार यथाक्रम के अलकारत्व पर प्रश्न किया है। यथाक्रम दोप का अभाव है क्रमभग दोप का इसम कवि प्रतिभा का चमत्कार नही है जो अलकारत्व प्रदान करता है। फिर भी यथाक्रम का वर्णन सभी उत्तर आचार्यों ने किया है, और इसका चमत्कार आज भी मान्य है।

१६ उत्प्रेक्षा

भामह

उत्प्रेक्षा अलकार म उपमानोपमेय के सामान्य गुणा के कथन के विना ही उपमा का किंचित[1] रूप रहता है और उपमेय म जो गुण क्रिया नही है उनका अतिशय के निमित्त कल्पित किया जाता है। उत्प्रेक्षा अतिशयगर्भिणी है और उपमा के स्पर्श स युक्त है इसम उपमाभाव है परन्तु उपमान और उपमेय के सामान्य गुणो का कथन नही अतिशय का आधार है उपमेय म उस गुण क्रिया की कल्पना जो वस्तुत उसम नही है। किंशुक पुष्पो के व्याज मे विभावसु वृक्ष पर चढ़कर यह देख रही है कि अरण्य का कितना भाग जल चुका है और कितना अनजला है —उदाहरण बडा स्पष्ट है।

दण्डी

काव्यादर्श' के द्वितीय परिच्छेद म अतिशयोक्ति के अनन्तर विस्तार से उत्प्रेक्षा का विवेचन है। चेतन अथवा अचेतन प्रस्तुत की अन्यथा स्थित वृत्ति की अन्यथा सभावना उत्प्रक्षा है।[2]

दण्डी ने एक उदाहरण चेतनगत उत्प्रक्षा का दिया ह और दूसरा अचेतनगत उत्प्रक्षा का। चेतनगत उत्प्रेक्षा का उदाहरण है—

मध्य दिनार्कसन्तप्त सरसी गाहते गज ।
मन्य मातण्डगृह्याणि पद्मान्युद्धतुमुद्यत ॥२।२२२॥

यहा सूयपक्षाश्रित कमलो का उन्मूलन करने की इच्छा स प्रत्यनीक अलकार का सकेत मिलता है परन्तु दण्डी क शास्त्र म प्रत्यनीक अलकार है ही नही इसलिए यह सकेत व्यर्थ है

---

१ अविवक्षितसामान्या किंचिच्चोपमया सह।
अतद्गुणक्रियायोगाद् उत्प्रेक्षातिशयान्विता ॥२।९१॥

२ अन्यथैव स्थिता वृत्तिश्चेतनस्येतरस्य वा।
अन्यथोत्प्रेक्ष्यते यत्र तामुत्प्रेक्षां विदुर्यथा ॥काव्यादश, २।२२१॥

यह भी कहा जा सकता है कि प्रत्यनीक मे पक्षापकार[1] वास्तविक होता है सभावना मात्र द्वारा कल्पित नही।

विवचन के अत मे दण्डी ने उत्प्रेक्षा के मुख्य वाचक शब्द पाच बतलाये हैं—मन्ये शके ध्रुव, प्राय तथा नून। 'इव' शब्द को भी[2] द्वितीय कोटि का वाचक माना है। 'इत्येवमादिभि द्वारा इन शब्दो को सीमित होने से बचा लिया है, सस्कृत म 'तकयामि', 'सभावयामि', 'जाने', 'उत्प्रेक्षे' आदि अनेक शब्द तथा भाषाओ के 'जानो', 'मानो' 'लगता है', 'प्रतीत होता है' आदि नये शब्द उत्प्रेक्षा के अतिरिक्त वाचक हैं।

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जन नभ ॥२।२२६॥

इस प्राचीन श्लोकार्द्ध पर दण्डी ने विस्तार से विचार किया है और इसम उत्प्रेक्षा का चमत्कार सिद्ध किया है। 'तम अगानि लिम्पतीव, नभ अञ्जन वर्षतीव इस कथन म अचेतन तम के व्यापन रूप धम की लेपन द्वारा सभावना की गई है। यह 'भूयिष्ठमुत्प्रेक्षालक्षणान्वित'[3] है। दण्डी ने सात श्लोको (सख्या २२७ से २३३ तक) म अपने मत की पुष्टि की है।

'इव' शब्द को सुनकर ही कुछ लोगो को इसमे उपमा की भ्रान्ति हो जाती है[4] वे यह भूल जाते है कि आप्त वाक्यानुसार तिडन्त के द्वारा उपमान नही हो सकता। पतजलि ने धातो कमण' (३ १,७) सूत्र पर व्याख्या की है— न तिडन्तेन उपमानमस्तीति', और कैयट ने स्पष्ट किया है कि किन्तु तत्र सभावनाथक इव शब्द इति'।

दूसरा तक यह है कि उपमानोपमेय भाव के लिए तुल्य[5] धम की अपेक्षा है परन्तु इस उदाहरण मे लिम्पति तथा तम का समान धम कौन-सा है समानधर्माभाव मे भी इसे उपमान नही मान सकते। यदि कोई कहे कि लेपन ही धम है तो धर्मी[6] कौन है ? वही धम है और वही धर्मी है, ऐसा तो कोई विचारवान न कहेगा।

यदि यह कहा जाय कि तिडन्थ कत्ता ही उपमान है, तम उपमेय है और लेपन साधारण धम है—इस प्रकार उपमा सिद्ध हो गइ, तो उत्तर यह है कि तिन्थ कर्त्ता नही बन सकता वह

---

१ अत्र कविना तत्पगोद्धरणस्य सभावनामात्रेण कल्पितत्वेन प्रतिकारस्य तात्त्विकवणन क्व नाभिप्रेतम्। यत्र तु तत्पक्षापकार वास्तव ववर्णमिप्रेत तत्रैव सोऽनकार इति विचायम्। (प्रभा २२७)

२ मन्ये शके ध्रुव प्रायो नूनमित्येवमादिभि ।
उत्प्रेक्षा व्यज्यते शब्दैरिवशब्दोऽपि तादृश ॥२।२३४॥

३ इतीदमपि भूयिष्ठमुत्प्रेक्षालक्षणान्वितम् ॥२।२२६॥

४ कषाचिदुपमाभ्रान्तिरिव श्रुत्येह जायते ।
नोपमान तिङन्तेनेत्यतिक्रम्याप्तभाषितम ॥२।२२७॥

५ उपमानोपमेयत्व तुल्यधमव्यपेक्षया ।
लिम्पतेस्तमसश्चासौ धम कोऽत्र समीक्ष्यते ॥२।२२८॥

६ यदि लपनमेवेष्ट लिम्पतिर्नाम कोपर ।
स एव धर्मो धर्मी चेत्यनुन्मत्तो न भाषते ॥२।२२६॥

तो विशेषण है, कर्ता तो 'तम' है, लेपन व्यापार म विशेषणतया अवित कर्ता का उपमान सम्बध स अयत्र अवययोग नही हो सकता, जो लेपनादि स्वक्रिया[1] की सिद्धि म व्यग्र है उसका पदार्थातर मे अवयबोध सभव नही।

जो यह मानते हैं कि 'लिम्पतीव तमोङ्गानि' इत्यादि मे नयायिका के अनुसार[2] 'अङ्गवृत्ति फलजनक लेपनानुकूलकृतिमान् इव तम' वाक्यार्थबोध मे समथ है और लेपनकर्तृ तम' का उपमानोपमेयभाव है वे भी युक्त नहा हैं क्योंकि अगलेपन भी समानधम नही हो सकता। जिस प्रकार इदुरिव ते वक्त्रम् कहने से काति प्रतीत होती है, उस प्रकार लिम्पतीव तमोङ्गानि कहने मे लेपन के अतिरिक्त कोइ साधारण धम प्रतीत नही होता। इस प्रकार यहा उपमा का अभाव है।[1]

उद्भट

उत्प्रेक्षा का लक्षण[3] भामह के आधार पर ही है, उत्तराध तो यथावत भामह से गृहीत है। इव आदि वाच्य पदो के द्वारा, साम्य के रूप की विवक्षा के अभाव म जो अतिशयावित सौदय होता है वह उत्प्रेक्षा है उपमेय म जो गुण क्रिया नही है उनको अतिशय के निमित्त कल्पित किया जाता है। भामह के लक्षण के समान ही इस लक्षण के दो अग है—(१) साम्य रूप की अविवक्षा तथा (२) उपमेय मे अतिशय के निमित्त गुण क्रिया की कल्पना। लक्षण का सार है कि प्रकृत और अप्रकृत का साम्य जहाँ विवक्षित नही है परन्तु अप्रकृत की गुण क्रिया का जहाँ प्रकृत मे अध्यास हो जाता है वहा इव आदि शब्दा द्वारा उत्प्रेक्षा का सौन्दय सम्पादित हाता है।

उदभट ने उत्प्रेक्षा का दण्डी से प्रभावित वणन भी किया है—लोकातिक्रान्तविषया सभावना उत्प्रेक्षा है। यह भाव की अथवा अभाव की हा सकती है। यदि 'इव आदि वाच्यो का प्रयोग है तो वाच्योत्प्रेक्षा अयथा गम्योत्प्रेक्षा है।

---

१ कर्ता यद्युपमान स्याद यग्भूतोसौ क्रियापदे।
स्वक्रियासाधनव्यग्रो नालमयन्पेक्षितम ॥२।२३ ॥

२ यो लिम्पत्यमना तुल्य तम इत्यपि शसत ।
अगानीति न सम्बद्ध सोपि मग्य समो गण ॥२।२३१॥

३ अग्निपुराण मे उत्प्रेक्षा का वणन इस प्रकार है—
अयथोपस्थिता वत्ति चेतनस्येतरस्य च ।
अयथा मयते यत्र तामत्प्रेक्षा प्रचक्षते ॥

४ साम्यरूपाविवक्षाया वाच्येवाद्यात्मभि पद ।
अतद्गुणक्रियायोगा उत्प्रेक्षातिशयाविता ॥का सा । ।३॥

५ लोकातिक्रान्तविषया भावाभावाभिमानत ।
सभावनेयमुत्प्रेक्षा वाच्येवादिभिरुच्यते ॥का सा ३।४॥

वामन

जो वस्तु जैसी नहीं है उसका अतिशय-द्योतन के निमित्त अन्यथा अध्यवसान उत्प्रेक्षा है। अतदरूपस्यान्यथाध्यवसानमतिशयार्थमुत्प्रेक्षा (४।३।९) इसमें न तो रूपक के समान अध्यारोप[1] होता है और न वक्रोक्ति के समान लक्षणा होती है। इस अध्यवसान को भ्रम भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह यथार्थ अध्यवसान नहीं, अतिशयार्थ[2] मात्र के निमित्त है। उत्प्रेक्षा का कारण सादृश्य है, इव आदि शब्द (उपमा के समान) उत्प्रेक्षा के भी वाचक हैं।

रुद्रट

उत्प्रेक्षा के तीन रूप हैं और रुद्रट ने तीनों के लक्षण तथा उदाहरण अलग दिये है।

प्रथम अति सारूप्य के आधार पर ऐक्य स्थापित करके सिद्ध उपमान के गुण क्रिया का उपमेय में, सम्भव न होने पर, आरोप किया जाय। उदाहरण है —

चम्पकतरुशिखरमिदं कुसुमसमूहच्छलेन मदनशिखी।
अयमुच्चैरारूढ पश्यति पथिकान दिधक्षुरिव ॥८।३३॥

यह लक्षण भामह के अनुसार है तथा उदाहरण तो भामह के उदाहरण का ही प्रकारांतर है।

द्वितीय जहां उपमेयस्थ वर्णनीय (उपमेय) की उपमान प्रतिबद्ध तत्त्व से आरोप-पूर्वक संभावना की जाय। उदाहरण सरल तथा स्पष्ट है — इस सुंदरी के शुभ्र कपोल प्रदेश पर कस्तूरी से रचित पत्र रचना ऐसी लगती है जैसे चन्द्र की शंका से उस पर लाञ्छन बन गया हो।

तृतीय जहां विशिष्ट उपमेय में अविद्यमान गुण की साम्य के आधार पर उपपत्ति द्वारा संभावना की जाय। उदाहरण है— अतिसघन कुंकुमराग से युक्त यह प्रातःकालीन संध्या ऐसी लग रही है मानो उदयाचल की ओट से आ रहे सूर्य के रथ की पताका हो।

रुद्रट ने अतिशय वर्ग में भी उत्प्रेक्षा का वर्णन किया है। उत्प्रेक्षा के तीन भेद हैं दो का सम्बन्ध क्रिया से है एक का हेतु से।

(१) अतिशय के कारण असंभाव्य क्रियादि की संभावना—

यत्रातितथाभूतं संभाव्यते क्रियाद्यसंभाव्यम् ॥९।११॥

(२) असंभाव्य क्रियादि की संभूति का वर्णन (विद्यमानता)

(३) जो वस्तु अन्य प्रकार से जो रूप प्राप्त करती है उससे भिन्न प्रकार के हेतु का आरोप—

अन्यनिमित्तवशाद्यद्यथा भवेद्वस्तु तस्य तु तथात्वे।
हेत्वन्तरमतदीयं यत्रारोप्येत सान्येयम् ॥९।१४॥

---

१ न पुनरध्यारोपो लक्षणा वा। (वृत्ति)

२ अतिशयार्थमिति भ्रान्तिज्ञाननिरासपरम्। (वृत्ति)

मम्मट

उत्प्रेक्षा का वर्णन अपेक्षाकृत संक्षिप्त है—

संभावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत ॥१०।९२॥

इसके भेदोपभेदों का वर्णन नहीं है। दण्डी से सहमत होते हुए 'लिम्पतीव तमोऽङ्गानि' को भी मम्मट ने उत्प्रेक्षा का उदाहरण माना है।

रुय्यक

'अध्यवसाये व्यापारप्राधान्ये उत्प्रेक्षा।'

इसकी वृत्ति रुय्यक ने विस्तार से लिखी है और सभी उत्तर आचार्यों ने उसको स्वीकार किया है—

विषयनिगरणेन अभेदप्रतिपत्ति विषयिणाऽध्यवसाय। स च द्विविध साध्य सिद्धश्च। तत्र साध्यत्वप्रतीतौ व्यापारप्राधान्येऽध्यवसाय सभावनमभिमानस्तर्क ऊह उत्प्रेक्षेत्यादिशब्दैरुच्यते। तदेवम् अप्रकृतगतगुणक्रियाभिसम्बन्धाद अप्रकृतत्वेन प्रकृतस्य सभावनमुत्प्रेक्षा।"

(पृ० ७२)

रुय्यक ने उत्प्रेक्षा के अनेक भेदों का वर्णन किया है जिनमें जाति, क्रिया, गुण के अतिरिक्त प्रतीयमाना, सापह्नवा आदि मुख्य हैं।

जयदेव

चन्द्रालोक में वाच्या एवं प्रतीयमाना (गूढा) उत्प्रेक्षा का अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन है—

उत्प्रेक्षा नीयते यत्र हेत्वादिर्निह्नुतिं विना ॥५।२९॥
इवादिकपदाभावे गूढोत्प्रेक्षा प्रचक्षते ॥५।३०॥

विश्वनाथ

साहित्यदर्पण में 'अलंकार सर्वस्व' के प्रभाव से उत्प्रेक्षा का वर्णन बड़े विस्तार से किया गया है—

भवेत संभावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना।
वाच्या प्रतीयमाना सा प्रथम द्विविधा मता।
वाच्यवाचिप्रयोगे स्याद् अप्रयोगे परा पुन ।
जातिगुण क्रिया द्रव्य यदुत्प्रेक्ष्य द्वयोरपि ॥
तदष्टधाऽपि प्रत्येक भावाऽभावाभिमानत ।
गुण क्रिया-स्वरूपत्वात् निमित्तस्य पुनश्च ता ॥

इस प्रकार रुय्यक के मत को और भी विस्तार देकर विश्वनाथ ने उत्प्रेक्षा के एक सौ छिहत्तर (१७६) भेदों का वर्णन किया है।

अप्पय्यदीक्षित

कुवलयानन्द म उत्प्रेक्षा का वणन साहित्यदपण' के अनुसार है—

सभावना स्यादुत्प्रेक्षा वस्तु-हेतु फलात्मना।
उक्तानुक्तास्पदाद्यात्र सिद्धाऽसिद्धास्पदे परे ॥३२॥

जगन्नाथ

'रस-गगाधर म भी उत्प्रेक्षा का विस्तार है इसके भेदो का वणन एव इसके सम्बन्ध की शकाओ का निवारण भी जगन्नाथ ने किया है। जगन्नाथ-कृत उत्प्रेक्षा-लक्षण म पाण्डित्य का चमत्कार मुख्य है—

तदभिन्नत्वेन तदभाववत्त्वेन वा प्रमितस्य पदाथस्य रमणीयतदवृत्ति-तत्समानाधिकरणान्यतर-तद्धमसम्बन्धनिमित्तक तत्त्वेन तद्वत्तेन वा सभावनमुत्प्रेक्षा।' (पृ० ३७३ ४)

हिन्दी के आचाय

केशव ने उत्प्रेक्षा का सक्षिप्त वणन किया है—

केशव और वस्तु म, और कीजिय तक ॥९।३०॥

देवकवि ने भी उत्प्रेक्षा के भेदो का उल्लेख नही किया, केशव की शब्दावली म सक्षिप्त लक्षण दे दिया है—

उत्प्रक्षा कछु और को तर्कै औरइ जुक्ति ॥

दासकवि ने उत्प्रेक्षा का विस्तार स वणन किया है—

वस्तु निरखि के हेतु लखि, कै आगम फल-काज।
कवि के बकता कहत यह, लग और सो आज ॥
सम वाचक कहुँ परत यहु, मानहु मेरे जान ॥

तीनो भेदो के सिद्धविषया तथा असिद्धविषया भेद हैं, लुप्तोत्प्रेक्षा तथा उत्प्रेक्षामाला का भी वणन ह। कन्हैयालाल पोद्दार ने श्लेषमूला तथा सापह्नवा का भी रुय्यक के अनुसार वणन किया है। सापह्नवा का वणन रामदहिन मिश्र ने भी किया ह।

उपसहार

उत्प्रेक्षा एक महत्त्वपूण अलकार है। इसका प्रथम विवचन भामह न किया था। इसके चार अग थे—(१) सादृश्य की अविवक्षा (२) इव आदि शब्दो के कारण उपमा का पुट (३) अतिशयोक्ति गर्भित (४) अविद्यमान गुण क्रिया की सभावना। उदभट ने इस लक्षण म 'सभावना' पद का प्रयाग किया जो मान्य बन गया। वामन न 'अध्यवसान पद को लक्षण म समावश किया। रुय्यक न 'सभावना एव अध्यवसान' पदो के स्थान पर 'साध्य अध्यवसाय का प्रयाग किया और इस पदावली के प्रयाग स उत्प्रेक्षा का अतिशयोक्ति से अन्तर स्पष्ट किया।

यही अतर उत्तर आचार्यों को मान्य हुआ।

दण्डी ने चेतन तथा अचेतन के आधार पर उत्प्रेक्षा के दो रूप बतलाय थे। रुद्रट ने उत्प्रेक्षा का औपम्यमूलक अलकारो के अतगत भी वणन किया है और अतिशयमूलक अलकारो के साथ भी दोनो अलग अलग रूप हैं।

उत्प्रेक्षा क भेदा की व्याख्या रुय्यक म है। वाच्या एव प्रतीयमाना के द्वारा उत्प्रेक्षा के छियानवे भेद हैं विश्वनाथ म यह सख्या एक सौ छिअत्तर तक पहुँच गई है। अप्पय्यदीक्षित ने छह भेदा का वणन करके अत म गम्योत्प्रेक्षा का वणन कर दिया है। हिन्दी के आचाय कही कही विश्वनाथ तथा मुख्यत दीक्षित से प्रभावित रहे हैं।

१७. स्वभावोक्ति

भामह

काव्यालकार के द्वितीय परिच्छेद का अतिम अलकार स्वभावोक्ति है। भामह ने इसको एक अलग वग मे लिया है, मानो इसके विषय म मतभेद पर्याप्त सबल था। अथ का उसी अवस्था म वणन स्वभाव[1] कहलाता है। चिल्लाता हुआ पुकारता हुआ इधर-उधर दौडता हुआ और रोता हुआ बालक दड स गाया को खेत म आने से रोक रहा है।"[2]

दण्डी

भामह ने स्वभावोक्ति का अलकार नही माना, परन्तु दण्डी इसको प्रथम वणनीय[3] अलकार ठहराते है। इसके दो नाम हैं—स्वभावोक्ति[3] तथा जाति। परिगणन प्रक्रिया म इसको स्वभावाख्यान भी कहा गया है।

पदार्थों के नानावस्थाओं म प्रकटित रूप का साक्षात[4] दर्शन करानेवाली अलकृति स्वभावोक्ति है। नानावस्थाओ से अभिप्राय जाति-गुण क्रिया द्रव्य-गत[5] अवस्थाओ स है। कुछ आचाय यह मानते हैं कि इस अलकार का चमत्कार नाना अवस्थाओ स है, एक अवस्था[6] म वर्णन होने पर अलकारता न रहेगी।

दण्डी ने चार उदाहरण दिये हैं क्रमश जाति, गुण, क्रिया तथा द्रव्य-गत स्वभावोक्ति के। प्रथम म शुको का, द्वितीय म पारावत का तृतीय म प्रिया-स्पश का तथा अतिम म कपध्वज का वणन है।

---

१ अर्थस्य तदवस्थत्वं स्वभावोऽभिहितो यथा ॥२।९३॥

२ आक्रोशन्नाह्वयन्नन्यानाधावन्मण्डलैर्नदन्।
गा वारयति दण्डेन डिम्भ सस्यावतारणी ॥२।९४॥

३ स्वभावोक्तिश्च जातिश्चेत्याद्या सालंकृतिर्यथा ॥ काव्यादर्श २।८॥

४ नानावस्थं पदार्थानां रूपं साक्षाद् विवृण्वती ॥२।८॥

५ जाति क्रिया-गुण द्रव्य-स्वभावाख्यानमीदृशम्।

६ अत्र केचित् नानावस्थमित्यनेन एकावस्थवस्तुकथने न वैचित्र्यातिशय इति मामकारता।(प्रभा ११६)

उपसहार मे स्वभावोक्ति का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है कि शास्त्र म इसी का साम्राज्य है और काव्य म भी यह ईप्सित[1] है। परिच्छेद के अत के सकेत से स्पष्ट है कि दण्डी के मत मे वाङ्मय के दो भद है—स्वभावोक्ति[2] तथा वक्रोक्ति। वक्रोक्ति श्लेषप्राया होती है इसकी अलकारता निस्सदिग्ध है। स्वभावोक्ति वस्तुस्वरूप का वणन है यह काव्य का एक आवश्यक आधार है।[3]

उदभट

भामह के अनुसार ही उदभट न स्वभावोक्ति का चलता हुआ वणन किया है। किसी पशु बालक आदि के किसी समुचित क्रिया[4] म प्रवृत्त होने पर स्वजात्यनुरूप व्यापार का वणन स्वभावोक्ति है। उदाहरण सरल तथा स्पष्ट है। वामन ने स्वभावोक्ति अलकार का वणन नही किया।

रुद्रट

कदाचित दण्डी से सहमत होत हुए रुद्रट ने स्वभावोक्ति का जाति[5] नाम से वणन किया है। इसका प्राण *अन्यथा-कथनम* है—

सस्थानावस्थानक्रियादि यद्यस्य यादृश भवति।
लोक चिरप्रसिद्ध तत्कथनमनन्यथा जाति ॥७।३०॥

मम्मट

'काव्यप्रकाश' म स्वभावोक्ति का वणन सरल तथा सक्षिप्त है और उदभट क अनुसार बालकादि की चेष्टाओ म इसका चमत्कार माना गया है—

---

१ शास्त्रष्वस्यव साम्राज्य काव्यष्वप्यतदीप्सितम् ॥२।१३॥

२ श्लेष सर्वासु पुष्णाति प्रायो वक्रोक्तिषु श्रियम।
भिन्न द्विधा स्वभावोक्तिर्वक्रोक्तिश्चेति वाङ्मयम ॥२।३६३॥

३ अग्निपुराण म स्वभाव तथा स्वरूप नाम हैं। इसके दो भद हैं—निज तथा आगन्तुक। स्वाभाविक वणन निज कहलाता है और नमित्तिक वणन आगन्तुक कहलाता है—

स्वभाव एव भावाना स्वरूपमभिधीयते।
निजमागन्तुक चेति द्विविध तदुदाहृतम् ॥
सासिद्धिक निज नमित्तिकमागन्तुक तथा ॥

४ क्रियाया सप्रवृत्तस्य हेवाकाना निबन्धनम।
कस्यचिन् मृगडिम्भादे स्वभावोक्तिरुदाहृता ॥ का सा० ३।५॥

५ भोज के अनुसार—
जाति अलकार का सौन्दय यह है कि कोई वस्तु स्वाभाविक रूप से नाना अवस्थाओ म जिस रूप म दिखलाई पडती है उसका उसी रूप म वणन हो। जाति का चमत्कार है वस्तु स्वभाव का प्रदर्शन। इसक अन्तगत वस्तु-स्वरूप वस्तु-सस्थान वस्तु अवस्थान वेष व्यापार आदि का समावेश हो जाता है।

स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादे स्वक्रियारूपवर्णनम ॥१०।१११॥

रुय्यक

'सूक्ष्मवस्तु स्वभाव यथावद वणन स्वभावोक्ति ॥

भामह की आपत्ति को दूर करने के लिए सूक्ष्म विशेषण जोडा गया है। वृत्ति म स्पष्ट किया गया है— इह वस्तु स्वभाव वर्णनमात्र नालकार। तत्त्वे सति सव काव्यम अलकारि स्यात। न हि तत्काव्यमस्ति यत्र न वस्तुस्वभाववर्णनम्। तदथ सूक्ष्मग्रहणम। सूक्ष्म कवित्व मात्रस्य गम्य। (पृ० २२३)

जयदेव

चन्द्रालोक म स्वभावोक्ति का वणन भी सामान्य है—

स्वभावोक्ति स्वभावस्य जात्यादिषु च वर्णनम ॥५।११२॥'

विश्वनाथ

रुय्यक की शब्दावली से स्वभावोक्ति का लक्षण प्रभावित है—

स्वभावोक्ति दुरूहार्थ स्वक्रियारूपवर्णनम ॥१०।९३॥

हिन्दी के आचाय

दण्डी के अनुकरण पर केशवदास म स्वभावोक्ति का प्रथम वर्णन तो है परन्तु सक्षिप्त—

जाको जसा रूप-गुण कहिय ताही साज ॥९।८॥

देवकवि ने भी अलकारो म प्रथम वर्णन स्वभावोक्ति का किया है—

केवल जहा सुभाव विधि, दरसत रस आसन्न ॥

दास न स्वभावोक्ति के दो लक्षण दिये हैं एक तो केशव की शब्दावली म ही है—

सत्य-सत्य बरनन जहाँ सुभावोक्ति सो जानु ॥१७।३॥

जाको जसो रूप-गुन, बरनत ताही साज ॥१७।४॥

कन्हैयालाल पोद्दार ने मम्मट के अनुसार इस अलकार का वणन किया है और इसका खडन करने वाले राजानक कुन्तक से असहमति प्रकट की है। रामदहिन मिश्र भी इसी परम्परा म विश्वास रखत हैं।

उपसहार

स्वभावोक्ति अलकार काव्यशास्त्र म सर्वाधिक मतभेद का विषय रहा है। भामह और दण्डी के इस विषय को लेकर भिन्न भिन्न विचार थे। भामह के खडन का कुन्तक न बलपूर्वक

---

१ कुवलयानन्द का लक्षण है—
स्वभावोक्ति स्वभावस्य जात्यादिस्थस्य वर्णनम् ॥१६०॥

दुहराया, कुतक के अनुसार स्वभावोक्ति की सामग्री अलकाय है, अलकार नही। वक्रोक्तिवादी स्वभावोक्ति को अलकार नही मानते—

अलकारकृता येषा स्वभावोक्तिरलङ्कृति ।
अलकायतया तेषा किमन्यदवतिष्ठते ॥
शरीर चेदलङ्कार किमलकुरुते परम ।
आत्मैव नात्मन स्कन्ध क्वचिदप्यधिरोहति ॥

भामह का उत्तर दण्डी न दिया था और कुन्तक का महिमभट्ट ने। वस्तु के दो रूप होते है—सामान्यरूप एव विशिष्टरूप। विशिष्टरूप का ग्रहण कवि ही कर सकता है। स्वभावोक्ति अलकार मे इसी विशिष्टरूप का वणन है—

विशिष्टस्य च यदरूप तत प्रत्यक्षस्य गोचर ।
स एव सत्कविगिरा गाचर प्रतिभाभुवाम ॥

आधुनिक काल म रामच द्र शुक्ल ने अपनी सहमति कुतक के साथ प्रकट की है और स्वाभाविक चष्टाओ को आलवन के धम माना है।

स्वभावोक्ति के नाम हैं—स्वभावोक्ति तथा जाति। अग्निपुराण म इसको 'स्वरूप' भी कहा गया है। भामह के अनुसार तदवस्थत्व' इस सौन्दय का प्राण है, और दण्डी के अनुसार 'साक्षाद' इसकी आत्मा है। उदभट न इसके लक्षण म पशु बालक आदि की क्रिया को स्वभावोक्ति माना। रुद्रट तथा भोज ने इसके क्षेत्र का विस्तार किया है। रुय्यक ने कदाचित महिमभट्ट के समान सूक्ष्म' विशेषण जोड दिया जो विश्वनाथ म 'दुरूह' बन गया। इस प्रकार चेतन एव अचेतन के विशेष अर्थात कविप्रतिभाग्राह्य क्रिया व्यापार आदि को स्वभावोक्ति माना गया है। इसक भेदापभेदो की आवश्यकता ही नही हुई।

चतुथ अध्याय

‘काव्यालकार’ के तृतीय परिच्छेद मे अतिरिक्त विवेचित अलकार

१८ प्रेयस

भामह

काव्यालकार के ततीय परिच्छेद म जिन तेईस अलकारा का वणन है उनम पर्यायोक्त के व्यवधान से प्रथम चार अलकार प्रेय, रसवद, ऊजस्वि तथा समाहित हैं (पर्यायोक्त ‘ऊजस्वि तथा ‘समाहित के बीच म रख दिया गया है)।

प्रेय का लक्षण नही दिया गया पर तु महाभारत के एक प्रसग को अपनी भाषा म रखकर यह दिखलाया गया है कि प्रेय प्रीति की चमत्कारपूण अभिव्यक्ति है। गहागत कृष्ण से विदुर न कहा— ह गोवि द, जो प्रीति (आन द) मुझे आज आपके आने स प्राप्त हुई है वह कभी फिर आपके इसी प्रकार आने से ही प्राप्त होगी।[1] आन द की चमत्कारपूण अभिव्यक्ति होने के कारण यह प्रेयस् अलकार है।

दण्डी

काव्यादश मे प्रेय का लक्षण दिया गया है— प्रेय प्रियतराख्यानम, और उदाहरण वही दिया है जो भामह ने दिया था (काव्यादश २ २७६)। प्रय के दो उदाहरण हैं—एक (जो भामह ने दिया था) श्रोता की प्रीति का है दूसरा वक्ता का प्रीति प्रकाशन है।

उद्भट

अलकार का नाम प्रेयस्वत् है। रत्यादिक स्थायीभाव जहाँ अनुभावा के द्वारा[2] सूचित हा, वहाँ प्रेयस्वत् अलकार है। उदाहरण है—

---

१ यद्य या मम गोविन्द जाता त्वयि गृहागत।
कालेनैषा भवत्प्रीतिस्तवैवागमनात्पुन ॥३।५॥

२ रत्यादिकाना भावानामनुभावादिसूचनै ॥का०सा०स० ४।२॥

इय सुतवाल्लभ्यान्निर्विशेषा स्पृहावती ।
उल्लापयितुमारब्धा कृत्वम क्रोड आत्मन ॥

यहा 'आत्मन क्रोडे कृत्वा आदि के द्वारा रत्यात्मक स्थायीभाव सूचित होता है, जो वात्सल्य स्वभाव का होने के कारण रस नही बन पाता ।

वामन,रुद्रट तथा मम्मट ने इस अलकार का वणन नही किया। रुय्यक जयदेव विश्वनाथ तथा अप्पयदीक्षित इस अलकार का वणन 'रसवत अलकार के अनतर, उसी परम्परा मे करत हैं ।

केशवदास न प्रेय को तुकबन्दी के कारण 'प्रेम अलकार लिख दिया है और उसका वणन मनोभाव का निष्कपट वणन' मानकर किया है । देव कवि के अनुसार 'पिय प्रेय अति' (पृ० १६९) अलकार है। दासकवि 'प्रेयस का वणन 'रसवत के अनुसार रुय्यक की परम्परा' मे करत हैं।

उपसहार

भामह ने प्रेय अलकार का विवचन किया था दण्डी ने भामह का ही समथन किया। उदभट ने रसवत प्रेयस ऊजस्वि तथा समाहित अलकारो की एक स्थिर व्याख्या की जिसको सब उत्तर आचार्यों ने स्वीकार किया है। सब उत्तर आचाय इन चारो को अलकार नही मानते परन्तु जो इनको अलकार मानते हैं उनम इनके स्वरूप के विषय मे कोई मतभेद नही है।

१६ रसवद

भामह

रसवद् अलकार प्रच्छन्न शृगार आदि रस का चमत्कारपूर्ण[१] उदघाटन है। उदाहरण मे उस रानी का वणन है जो देवी बनकर मच पर आती है और अकस्मात् अपने मूल स्वरूप को प्रकट कर देती है।

दण्डी

रसवद के लिए दण्डी ने आठो[२] रसो के उदाहरण दिये हैं। उपसहार स यह स्पष्ट है कि रस का चमत्कारमय वणन ही रसवद अलकार है।

उदभट

प्रेयस्वत का सम्बन्ध स्थायीभाव से है रसवत का रस[३] से। प्रेयस्वत मे अनुभावो के द्वारा

---

१ रस भावादिक होत जहँ और और को अग ।
तह अपराग कहै कोऊ कोउ भूषन इति ढग ॥२।१॥

२ रसवदर्शितस्पष्टशृगारादिरस यथा ॥३।६॥

३ इह त्वष्टरसायत्ता रसवत्ता स्मता गिराम् ॥काव्यादर्श ।२।२९२॥

४ रसवद्दर्शितस्पष्टशृगारादिरसादयम् ॥का०सा ,४।३॥

स्थायीभाव सूचित होता है, रसवत् म रस की पूणता के लिए इसका पचरूप-वणन हाता है। पचरूप हैं—स्वशब्द, स्थायी, सचारी विभाव तथा अनुभाव। उद्भट न नौ रसा के सम्बन्ध म इसे स्वीकार किया है।

वामन, रुद्रट, मम्मट ने रसवत् को भी अलकार नही माना।

रुय्यक

रसवत प्रेय, ऊजस्वि तथा समाहित अलकारा का रुय्यक न एक साथ वणन किया है क्योकि इन चारा अलकारा म रस आदि का अलकारत्व है।

जहाँ रसादि विषय अग बनकर प्रयुक्त हो, वहाँ रसवत् अलकार है। भाव क अलकारत्व म प्रेय अलकार है। रसादि के अनौचित्य के कारण अलकारत्व म ऊजस्वि। रसादि के प्रशम म समाहित अलकार है। रुय्यक के शब्दो म—

'रत्यादिश्चित्तवृत्तिविशेषो रस। देवादिविषयश्च रत्यादिर्भाव। तदाभासो रसाभासो भावाभासश्च। आभासत्वम् अविषयप्रवृत्त्यानौचित्यम। तत्प्रशम उक्तप्रकाराणा निवतमानत्वेन प्रशाम्यदवस्था। एषामुपनिबन्ध क्रमेण रसवदादयोऽलकारा। रसा विद्यते यत्र निबन्धने व्यापारात्मनि तद रसवत्। प्रियतर प्रेयो निबन्धनमेव द्रष्टव्यम्। एवमूर्जो बल विद्यते तत्र तदपि निबन्धनमेव। अनौचित्यप्रवृत्तत्वादत्र बलयोग। समाहित परिहार। स च प्रकृतत्वाद उक्तभेदविषय प्रशमापरपर्याय।' (पृ० २३२ ३)

जयदेव

रुय्यक का अनुसरण करते हुए लगभग उसी शब्दावली में जयदेव ने रसवद आदि अलकारा का एक छद म वणन कर दिया है—

रस भाव तदाभास भावशान्तिनिबन्धना।
रसवत् प्रेय ऊर्जस्वित्-समाहितमयाभिधा ॥५।११७॥

विश्वनाथ

रसवत आदि का वणन रुय्यक की परम्परा मे उसी शब्दावली म है—

रस भावौ तदाभासौ भावस्य प्रशमस्तथा ॥
गुणीभूतत्वमायान्ति यदालकृतयस्तदा।
रसवत प्रेय ऊजस्वि समाहितमिति क्रमात ॥१०।९६॥

वृत्ति म कुछ बातें और भी स्पष्ट की गई हैं—प्रकृष्टप्रियत्वात प्रेय ऊर्जो बलम अनौचित्यप्रवृत्तौ तदत्रास्तीति ऊजस्वि समाहित परीहार।

अप्पय्यदीक्षित

रस भाव-तदाभास भावशान्तिनिबन्धना।

चत्वारो रसवत प्रेय ऊजस्वि च समाहितम ॥१७०॥

चन्द्रालोक' की शब्दावली का ही प्राय यथावत अनुकरण है।

हिन्दी के आचार्य

रसमय होय सु जानिये रसवत केशवदास ॥११।५३॥

रसवत रसनि उदात। (शब्दरसायन, पृ० १६९)

दासकवि ने रुय्यक आदि की परम्परा म रसवद आदि का वणन किया है। आधुनिक आचार्यों ने रसवत आदि का अलकार रूप म वर्णन नही किया।

उपसहार

उद्भट से पूर्व भामह-दण्डी ने रसवत का विवेचन किया था। उद्भट की वैज्ञानिक व्याख्या को उत्तर आचार्यों ने स्वीकार कर लिया और इन चारो अलकारो का एक साथ वणन किया।

रस भाव, आभास तथा प्रशम म क्रमश रसवत प्रेयस ऊजस्वि तथा समाहित अलकार होते हैं। रस जहाँ अगी न बनकर अग बन जाता है वहाँ रसवत है। इसी प्रकार भाव के अगत्व म प्रेयस अलकार है। रसाभास एव भावाभास के अगत्व म ऊजस्वित रस भाव के प्रशम म समाहित अलकार होता है। इनके स्वरूप म सब आचाय एकमत रहे हैं।

२० ऊजस्वि

भामह

ऊजस्वि अलकार का लक्षण नही दिया गया महाभारत के प्रसग के उदाहरण स स्पष्ट है कि भामह के मत म ऊजस्वि अपनी ऊर्जा (स्वाभिमान अथवा अहकार) की चमत्कारपूण अभिव्यक्ति है। कर्ण के बाण से जो सर्प अर्जुन पर छोडा गया था वह लौटकर आ गया और शल्य ने कर्ण स फिर उसी सर्प को छोडने के लिए कहा तो कर्ण न उत्तर दिया— क्या कर्ण दूसरी बार बाण सधान करता है? दण्डी ने भी ऊजस्वि' का लक्षण नही दिया केवल एक उदाहरण दिया है। (काव्यादर्श, २ २९३)

उदभट

प्रेयस्वत का सम्बन्ध स्थायीभाव से है, रसवत का रस स और ऊजस्वि का रसाभास तथा भावाभास से। उद्भट के अनुसार काम क्रोधादि के कारण अनौचित्य प्रवृत्त[1] रसो और भावो का वणन ऊजस्वि[2] है। यह लक्षण भामह के वणन की अपक्षा अधिक वैज्ञानिक तथा स्पष्ट है।

---

१ अनौचित्यप्रवृत्ताना कामक्रोधादिकारणात।
भावाना च रसाना च बन्ध ऊजस्वि कथ्यते ॥ का०सा स० ४।५॥

२ यत्र तु तन्निरूढत्व तन्मूललोकव्यवहारविरुद्धत्व च तद्विषयाणा रसभावानामुपनिबन्ध सत्यूर्जस्वित्वाव्य भवति। (वृत्ति पृ० ५४)

दूसरा एक नया रूप है जिसका अनुकरण हिन्दी के आचार्यों ने किया है—

पर्यायोक्त तदप्याहुयद् व्याजेनेष्टसाधनम् ॥६९॥

जगन्नाथ

विवक्षित अर्थ का किसी दूसरे प्रकार से प्रतिपादन पर्यायोक्त है—

विवक्षितार्थस्य भग्यन्तरेण प्रतिपादन पर्यायोक्तम्। (पृ० ५४७)

हिन्दी के आचार्य

केशवदास का लक्षण दण्डी का छायानुवाद है—

कौनहु एक अदृष्ट तें, अनही किये जु होय।
सिद्धि आपने इष्ट की, पर्यायोक्ति सोय ॥११।२९॥

'शब्द रसायन' में देव कवि ने निम्नलिखित वर्णन किया है—

पर्यायोक्ति सुचाहि कछु और कहै कछु और। (पृ० १६४)

दासकवि ने अप्पय्यदीक्षित के प्रभाव से दोनो लक्षण दिये हैं—

कहिय लक्षना रीति ल, कछु रचना सा बैन।
मिसु करि कारज साधिबो परजाजावित सु अन ॥१२।४१॥

कन्हैयालाल पोद्दार एवं रामदहिन मिश्र ने पर्यायोक्ति के दोनो प्रकारो का वर्णन किया है।

उपसंहार

पर्यायोक्ति अथवा पर्यायोक्त अलकार के विकास के दो चरण है—एक भामह से मम्मट तक दूसरा मम्मट से जगन्नाथ तक। मम्मट से पूर्व इसका स्वरूप अधिक स्पष्ट नही था—अन्य प्रकार से कथन पर्यायोक्त कहलाता था। मम्मट के अनुसार व्यग्यार्थ का अभिधा द्वारा प्रतिपादन पर्यायोक्ति है। रुय्यक ने कार्यमुखद्वारेणाभिधानम् को महत्त्व दिया अर्थात प्रस्तुत कार्यरूप वाचकत्व के द्वारा प्रस्तुत कारण की व्यग्यता का बोध पर्यायोक्त है।

पर्यायोक्त के दो रूप हैं। एक तो भामह से जयदेव तक होता हुआ उत्तर आचार्यों तक प्रचलित रहा दूसरा रूप अप्पय्य दीक्षित से विकसित होता है—व्याजेनेष्टसाधनम्। ये दोनो रूप उत्तर आचार्यों ने स्वीकार किये हैं। जगन्नाथ ने तीन रूपो का उल्लेख किया है।

पर्यायोक्ति मे वाच्यार्थ एव व्यग्यार्थ दोनो ही प्रस्तुत होते हैं परन्तु अप्रस्तुत प्रशसा मे वाच्यार्थ प्रस्तुत रहता है व्यग्यार्थ अप्रस्तुत।

२२ समाहित

भामह

समाहित का लक्षण नही दिया गया परन्तु उदाहरण से ज्ञात होता है कि किसी अर्थ के सम्पादन मे चमत्कारपूर्ण आकस्मिक दैवयोग का नाम समाहित है।

दण्डी

दण्डी का 'समाहित' भामह के 'समाहित' से किंचित्[1] भिन्न है। किंचित् कार्य को आरम्भ करते हुए दैववशात्[2] उस कार्य का सम्पादक साधनान्तर प्राप्त हो जाना समाहित है। उदाहरण स्पष्ट तथा सरल है—

मानमस्या निराकर्तु पादयोर्मे पतिष्यतः ।
उपकाराय दिष्टयतदुदीर्ण घनगर्जितम ॥२।२९९॥

उद्भट

प्रेयस्वत का सम्बन्ध स्थायिभाव से है रसवत का रस से, ऊर्जस्वि का रसाभास भावाभास से और समाहित का सम्बन्ध रसभाव रसाभास भावाभास की शान्ति से। भामह और उद्भट का समाहित एक ही है, दण्डी[3] के समाहित का रस के साथ उतना स्पष्ट सम्बन्ध नहीं है। लक्षण है—

रसभावतदाभासवृत्ते •प्रशमबन्धनम ।
अन्यानुभावनिःशून्यरूप यत्तत्समाहितम् ॥४।७॥

भामह के उदाहरण को दण्डी ने एक रूप दिया और उद्भट ने दूसरा। भामह के उदाहरण —क्षत्रियाएँ परशुराम को प्रसन्न करने जा रही थीं कि इतने में नारद उपस्थित हो गये— में दण्डी ने नारद की उपस्थिति को दैवी सहायता माना है और उद्भट ने आतंक भाव की शान्ति।

वामन रुद्रट तथा मम्मट ने 'समाहित' को अलंकार नहीं माना। रुय्यक, जयदेव, विश्वनाथ तथा अप्पय्यदीक्षित इसका वर्णन रसवत के साथ उसी परम्परा में करते हैं।

केशवदास ने दण्डी के लक्षण का छायानुवाद कर दिया है। दासकवि रसवत की परम्परा में समाहित का वर्णन करते हैं। आधुनिक कवि इसका अलंकार रूप में वर्णन नहीं करते।

उपसंहार

उद्भट में इन चार अलंकारों का वैज्ञानिक विवेचन प्रारम्भ होता है जिसका समस्त उत्तर आचार्यों ने अनुकरण किया है। आचार्यों का एक वर्ग ऐसा भी है जो इनको अलंकार नहीं मानता।

---

१ उत्तर आचार्यों ने इस चमत्कार को समाधि अलंकार माना है।

२ किंचिदारभमाणस्य कार्य दैववशात् पुनः ।
तत्साधनसमापत्तिर्या तदाहुः समाहितम् ॥ काव्यादर्श २।२९८॥

३ फॉर हिज फिगर समाहित इज नौट कनेक्टेड विद रस एट आल।
समाहित दर हिच इज नेम्ड बाई मॉडन राइटर्स एज समाधि।

२३ उदात्त

भामह

उदात्त के दो भेद हैं—आशय महत्त्व तथा विभूति-महत्त्व। प्रथम भेद का लक्षण नहीं दिया गया परन्तु उदाहरण से विदित होता है कि लोकोत्तर चरित का असामान्य वर्णन उदात्त का मुख्य रूप है। विभूतिमहत्त्व का लक्षण भी दिया गया है— नानारत्नादियुक्तम्।[1]

दण्डी

'काव्यादर्श' में भी उदात्त का यही लक्षण[2] है और दो ही भेद हैं जिनको आशयमाहात्म्य तथा अभ्युदयगौरव संज्ञाएँ दी गई हैं—

पूर्वत्राशयमाहात्म्यमत्राभ्युदयगौरवम्।
सुव्यञ्जितमिति प्रोक्तमुदात्तद्वयमप्यदः ॥२।३०३॥

उद्भट

भामह तथा दण्डी के अनुसार ही उद्भट ने उदात्त का लक्षण दिया है परन्तु एक सूक्ष्मता का प्रतिपादन किया है कि 'ऋद्धिमद्वस्तु' अथवा 'महात्मनां चरितम्' जो उदात्त के आधार हैं वे मुख्य इतिवृत्त'[3] के अंग न हों। यदि उपलक्षणताप्राप्त का अनुबंध न हो तो नेता के गुणों के प्रति भाव प्रकाशन रसवत् की सम्भावना प्रस्तुत कर सकता है। अतः उद्भट के लक्षण की विशेषता मान्य एवं सग्राह्य है। वामन तथा रुद्रट ने उदात्त का वर्णन नहीं किया।

मम्मट

उदात्तं वस्तुनः सम्पत्।

वस्तु की समृद्धि का वर्णन उदात्त अलंकार है। यह लक्षण भामह से प्रभावित है। आगे सूत्र में उद्भट के अनुसार प्रतिपादित किया गया है—

महतां चोपलक्षणम् ॥११५॥

किसी प्रधान वर्णनीय अर्थ में महापुरुषों का गौणत्व प्रदर्शन दूसरे प्रकार का उदात्त है। आगे के आचार्यों ने भामह-उद्भट मम्मट द्वारा वर्णित उदात्त के दोनों रूपों को स्वीकार किया है।

रुय्यक

उदात्त के वर्णन में मम्मट का प्रभाव है— समृद्धिमद् वस्तुवर्णनमुदात्तम्।

---

१ नानारत्नादियुक्तं यत्तत्किलोदात्तमुच्यते ॥३।१२॥
२ आशयस्य विभूतेर्वा यन्महत्त्वमनुत्तमम् ॥ काव्यादर्श २।३ ०॥
३ उदात्तमृद्धिमद्वस्तु चरितं च महात्मनाम्।
उपलक्षणतां प्राप्तं नेतिवृत्तत्वमागतम् ॥ का०सा० ४।८॥

यह अलंकार स्वभावोक्ति तथा भाविक का विपक्षी है, उन अलंकारों में यथावत वर्णन होता है — 'स्वभावोक्तौ भाविके च यथावद् वस्तुवर्णनम । तदविवक्षत्वेनारोपित वस्तु वर्णनात्मन उदात्तस्यावसर ।' (पृ० २३०)।

उदात्त का दूसरा रूप भी है—'अंगभूतमहापुरुषचरितं च ।'

जयदेव

उदात्त के दोनों प्रकारों के लक्षण चन्द्रालोक तथा 'कुवलयानन्द' में एक ही हैं—

उदात्तमृद्धिश्चरितं श्लाघ्यं चान्योपलक्षणम ॥५।११५॥

विश्वनाथ

इसी परम्परा में विश्वनाथ ने उदात्त का वर्णन किया है—

लोकातिशय सम्पत्तिवर्णनादात्तमुच्यते।
यद्वापि प्रस्तुतस्याङ्गं महतां चरितं भवेत ॥

हिन्दी के आचार्य

देव के अनुसार उदात्त अति सम्पत्ति में होता है।

संपति की अत्युक्ति का, सुकवि कहै उदात्त।
जहँ उपलक्षण बडेन्ह को, ताहू की यह बात ॥ (काव्यनिर्णय, ११,३२)

कन्हैयालाल पोद्दार (पृ० ४१३) ने भी उदात्त के दोनों रूपों का वर्णन किया है।

उपसंहार

उदात्त का स्वरूप एवं दोनों प्रकार भामह से प्रचलित होकर अन्त तक उसी रूप में चलते रहे। उद्भट ने इस अलंकार को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया और समस्त उत्तर आचार्यों ने उसका यथावत ग्रहण कर लिया। इसके दो रूप बड़े विचित्र हैं—एक वस्तु-समृद्धि को आधार बनाता है दूसरा व्यक्ति-समृद्धि को। प्रायः सभी आचार्यों ने उदात्त का अलंकार रूप में वर्णन किया है।

२४ श्लिष्ट

भामह

श्लिष्ट का वर्णन सात श्लोकों में है। गुण क्रिया अथवा नाम के द्वारा उपमान के साथ उपमेय की तत्त्व-साधना[1] श्लिष्ट है। रूपक अलंकार पर भी यह लक्षण सिद्ध होता है, परन्तु

---

१ उपमानेन यत्तत्वमुपमेयस्य साध्यते ।
गुणक्रियाभ्यां नाम्ना च श्लिष्टं तदभिधीयते ॥३।१४॥

अन्तर यह है कि रूपक में भिन्न श्लिष्ट अलंकार में उपमानोपमेय की तत्त्व-साधना युगपद्[1] होती है, अर्थात् एक ही शब्द उपमानोपमेय की समता प्रतिपादित करता है।

श्लिष्ट अलंकार का आधार अर्थ तथा उसको अभिव्यक्त करने वाले शब्द का श्लेष[2] है, जो इसको रूपक से भिन्न सिद्ध करता है। श्लिष्ट में सहोक्ति उपमा अथवा हेतु[3] का तत्त्व विद्यमान रहता है। भामह ने तीन उदाहरण दिये हैं। एक में सहोक्ति अथवा समुच्चय का स्पर्श है, श्लिष्ट विशेषणों के साथ आधार-वाक्य है— गाम्भीर्यमहाशैलपरपाभेर भूनय जो उपमानोपमेय का साथ-साथ वर्णन करता है। दूसरे उदाहरण में उपमा का स्पर्श है, आधार-वाक्य है— शमयन्त शितस्ताप सुराजाना घना इव। तीसरे उदाहरण में हेतुनिर्देश है, अन्तिम चरण है— बहुसत्त्वाश्रयत्वाच्च सदृशास्त्वनुदन्वता। (३।२०)

दण्डी

अनेकार्थ एकरूपान्वित[4] वचन को श्लिष्ट कहते हैं। इसके मुख्य दो रूप हैं—अभिन्नपद तथा भिन्नपद। अभिन्नपद अभङ्गश्लेष है तथा भिन्नपद सभङ्गश्लेष है। काव्यादर्श में श्लेष के सात भेदों का वर्णन किया गया है—अभिन्नक्रियाश्लेष, अविरुद्धक्रियाश्लेष, विरुद्धकर्माश्लेष, नियमवान्श्लेष, नियमाक्षेपरूपोक्तिश्लेष, अविरोधीश्लेष तथा विरोधीश्लेष।

अभिन्नक्रियाश्लेष में एकक्रियात्व आधार है। 'दृशो दूत्यश्च कर्षन्ति कान्ताभि प्रेषिता प्रियान्' उदाहरण में कर्षन्ति क्रिया दृष्टि तथा दूती दोनों पक्षों में प्रयुक्त होती है और वक्रा स्वभावमधुरा आदि श्लिष्ट विशेषणों को सार्थक बनाती है। 'अविरुद्धक्रियाश्लेष' में क्रियाएँ अलग-अलग होती हैं परन्तु उनका पारस्परिक विरोध नहीं होता—उनकी एककालीनत्वसम्भावना[5] होती है।

विरुद्धकर्मा अथवा विरुद्धक्रियाश्लेष में श्लिष्टार्थ को प्रसारित करने वाली क्रियाएँ अलग अलग भी होती हैं और परस्पर विरुद्ध भी—

> रागमादर्शयन्नेष वारुणीयोगवर्धितम्।
> तिरोभवति घर्माशुरङ्गजस्तु विजृम्भते ॥२।३१८॥

इस उदाहरण में वारुणीयोगवर्धितम तथा रागमादर्शयन् पदों का श्लेष परस्पर विरोधी तिरोभवति तथा विजृम्भते क्रियाओं पर आधारित है।

नियमवान् श्लेष आधुनिकों की परिसंख्या है जो काव्यादर्श में अलग अलंकार नहीं माना

---

१ लक्षण रूपकेऽपीद स यते नाममात्र त।
इष्ट प्रयोगो युगपदुपमानोपमेययो ॥३।१५॥
२ श्लेषादेवार्थवचसोरस्य च क्रियते भिदा ॥३।१७॥
३ तत्सहोक्त्युपमाहेतुनिर्देशात्त्रिविध यथा ॥३।१७॥
४ श्लिष्टमिष्टमनेकार्थमेकरूपान्वित वच ॥ काव्यादर्श २।३१ ॥
५ वक्रा स्वभावमधुरा शस यो रागमुल्वणम्।
दृशोदूत्यश्च कर्षन्ति कान्ताभि प्रेषिता प्रियान् ॥२।३१६॥

गया। यदि नियमवान श्लेप पर 'अथवा' आदि पदो के प्रयोग स आक्षेप कर दिया जाय तो 'नियमाक्षेपरूपोक्ति' श्लेप का उदाहरण बन जाता है—

पदमानामेव दण्डेपु कण्टकस्त्वयि रक्षति।
अथवा दृश्यत रागिमिथुनालिङ्गनेप्वपि ॥२।३२०॥

अविरोधीश्लेप म श्लिष्टपदयुगल म विरोध नही रहता, इसके विपरीत विरोधीश्लेप है। विरोधीश्लेप का उदाहरण है—

अच्युतोप्यवृपच्छेदी राजाप्यविदितक्षय ।
देवोप्यविबुधा जने शकरोप्यभुजङ्गवान ॥२।३२२॥

श्लेप प्राय किसी-न किसी अलकार का अग बनकर आता है। अभिन्न क्रिया अविरुद्ध-क्रिया तथा विरुद्ध क्रिया श्लेप मे प्राय तुल्ययोगिता अथवा क्रियादीपक, नियमवान तथा नियमाक्षेप रूपोक्ति म परिसख्या तथा विरोधी श्लेप मे प्राय विरोधाभास अलकार पाया जाता है। श्लेप प्राय उन सभी अलकारा के सौदय मे वृद्धि करता है जो वक्रोक्ति' के कारण[1] आकपक लगते हैं।

उदभट

उस वध का श्लिष्ट कहत हैं जो (१) एक प्रयत्नोच्चाय (भिन्नाथक) हो, अथवा (२) एकप्रयत्नोच्चायता की छाया[2] से युक्त परन्तु स्वरितादि के कारण वस्तुत भिन्न हो। दो प्रकार के पदा पर आश्रित, अलकारान्तरगता प्रतिभा का प्रकाशक यह सौदय, अथ और शब्द के कारण, दो[3] प्रकार का है। श्लेप का यह लक्षण पूर्वाचार्यो के लक्षणो से अधिक स्पष्ट, वज्ञानिक एव सूक्ष्म है, उत्तर आचार्यो की विचारणीय समस्याओ का यह सूत्रपात है।

यदि एक पद के दा अथ हैं तो उदभट प्रत्यक अथ स युक्त पद को एक अलग पद मानते हैं, यद्यपि उसम ठीक वही उच्चारण तथा ठीक वे ही वण हैं। कुछ पद एसे होते है जिनके दोना अथ भी समान हैं परन्तु कुछ ऐस होते है जिनम स्वरित, व्यजन प्रयत्न आदि के कारण अतर आ जाता है। जब पद रूप नितात समान है तो पद का एक बार प्रयोग होने पर दो अलग-अलग अर्थो का द्योतन होना है, ऐसे श्लेप को *अथश्लेय* कहते है। परन्तु जब स्वरित आदि के कारण पद रूपा मे अन्तर होता है तो उसे शब्दश्लेप कहत हैं। उदभट ने प्रथम बार श्लेप का वर्गीकरण अथश्लेप तथा शब्दश्लप म किया है।

श्लिष्ट का अलकारत्व किसी अन्य अलकार की चित्रणा के साथ आता है। अर्थात श्लिष्ट क

---

१ श्लेष सर्वासु पुष्णाति प्रायो वक्रोक्तिष श्रियम् ॥ काव्यादर्श २।३६३॥

२ एकप्रयत्नोच्चार्याणा तच्छाया चव बिभ्रताम् ।
स्वरितादिगुणर्भिन्नबन्ध श्लिष्टमिहोच्यते ॥ का०सा०स० ४।६॥

३ अलकारान्तरगता प्रतिभा जनयत्पद ।
द्विविधरथशब्दोक्तिविशिष्ट तत्प्रतीयताम् ॥ का०सा०स०, ४।१०॥

साथ किसी अन्य अलकार का अस्तित्व निश्चित है श्लिष्ट का स्वतन्त्र अवकाश नही होना, परन्तु दूसरे अलकारो का होता है। अत जहाँ श्लिष्ट विद्यमान है वहाँ अन्य अलकार की उपेक्षा करके श्लिष्ट को मुख्यता देनी चाहिए (अनेननानवकाशत्वात स्वविषय अलकारान्तराण्य पोहन्ते तेषा विषयान्तरे सावकाशत्वात्)।

श्लिष्ट के विषय मे उद्भट की उपलब्धियाँ महत्त्वपूर्ण हैं। (१) श्लिष्ट का विभाजन वज्ञानिक है और शब्दश्लिष्ट तथा 'अर्थश्लिष्ट भद अत्यन्त स्पष्ट हैं। (२) श्लेष तथा अन्य अलकार जहाँ साथ-साथ विद्यमान हो वहाँ श्लेष की मुख्यता मिलती है।

वामन

स धर्मेषु तन्त्रप्रयोगे श्लेष ॥४,३ ७॥

भामह के समान वामन ने भी रूपक को दृष्टि म रखकर श्लेष का लक्षण बनाया है। एक बार उच्चारण से अनेक अर्थों का बोध तन्त्र है। तन्त्रप्रयोग स उपमान और उपमेय[१] के गुण, क्रिया और शब्दरूप धर्मों म तत्त्वारोप श्लेष कहलाता है। भामह की गुण क्रिया तत्त्व तथा 'अर्थवचस अभिव्यक्तियाँ भी यहाँ ग्रहण कर ली गइ। उद्भट स एकप्रयत्नोच्चार्यता तथा 'अर्थशब्दोक्ति विशेषताएँ भी वामन म आ गइ। उदाहरण एकमात्र तथा सरल है।

रुद्रट

शब्दश्लेष का वणन है अर्थश्लेष का एक अलकार के रूप म नही। दशम अध्याय 'अर्थश्लेष' का अध्याय है, जिसके अन्तगत अनेक श्लेपाधत अलकार हैं, अर्थश्लेष मात्र का स्वतन्त्र अलकार रूप से विवेचन नही है। रुद्रट के श्लेष पर अन्यत्र यथास्थान विचार किया गया है।

मम्मट

श्लेष स वाक्य एकस्मिन यत्रानेकार्थता भवेत ॥९६॥
एकार्थप्रतिपादकानामेव शब्दाना यत्रानेकोऽर्थ स श्लेष।

श्लेष का वणन अत्यन्त सक्षिप्त एव वज्ञानिक है इसके भेदो का वणन नही है।

रुय्यक

'विशेष्यस्यापि साम्ये द्वयोर्वोपादाने श्लेष।

जहाँ केवल विशेषणसाम्य हो वहाँ समासोक्ति अलकार का चमत्कार है। विशेष्ययुक्त विशेषणसाम्य श्लेष का विषय है।

जहाँ उदात्तादि स्वर भेद मे और प्रयत्न भद स 'शब्दान्यत्व होता है वहाँ शब्दश्लेष माना

---

१ उपमानोपमेयस्य धर्मेषु गुणक्रियाशब्दरूपेषु स तत्त्वारोप। तन्त्रप्रयोग सकृदुच्चारणे सति श्लेष। (वृत्ति)

जाता है, इसम प्राय पदभग होता है। अथश्लेष मे स्वरादि का भेद नही होता और पदभग भी नही होता।

श्लेषगभ रूपक म श्लेष का उपयोग रूपक के लिए है, इसलिए मुख्य अलकार रूपक है। श्लिष्ट विशेषण निबधना समासोक्ति म विशेष्य गम्य होता है, इसलिए समासोक्ति मुख्य अलकार है, श्लेष गौण।

जयदेव

श्लेष के 'चन्द्रालोक' म तीन भेद हैं—खण्डश्लेष भगश्लेष तथा अथश्लेष। अथश्लेष का लक्षण है—'अथश्लेषोऽयमात्रस्य यद्यनकायसश्रय' ॥५।६५॥

अथश्लेष म केवल अथ का ही अनक पदार्थों के साथ सम्बध बतलाया जाता है। उदाहरण स स्पष्ट है कि पर्यायवाची शब्दा के परिवतन म भी अथभेद बना रहे तो अथश्लेष का चमत्कार माना गया है।

विश्वनाथ

मम्मट के अनुकरण पर श्लेष का सक्षिप्त वणन उसी शब्दावली म है—

शब्द स्वभावादेकार्थं श्लेपोऽनेकाथवाचनम ॥१०।५८॥

स्वभावादेकार्थं' इति शब्दश्लेषाद व्यवच्छेद । वाचनम इति च ध्वने । (पृ० ३८२)

अप्पय्यदीक्षित

नानाथसश्रय श्लेषा वण्यावर्ण्योभयाश्रित ॥६४॥

चित्रमीमासा' म इसका विस्तृत विवेचन है। परन्तु कुवलयानन्द म श्लेष (अथश्लेष) का सामान्य वणन है।

जगन्नाथ

एक श्रुति से अनक अर्थो के प्रतिपादन को श्लेष कहत हैं— श्रुत्यकयानकाथ प्रतिपादनम् श्लेष (पृ० ५२३)। सभगश्लेष शब्दालकार एव अभगश्लेष अर्थालकार है।

हिन्दी के आचाय

केशव, देव दास आदि समस्त आचार्यों ने श्लेष का वणन शब्दालकार प्रसग म किया है। कन्हैयालाल पोद्दार ने शब्दालकार श्लेष का वणन अलग (पृ० ७८) किया है और अर्थालकार श्लेष का 'अथश्लेष नाम से अलग (पृ० २५७)।

उपसहार

श्लिष्ट अथवा श्लेष अत्यधिक महत्त्वपूर्ण एव विवादास्पद अलकार ह। इसका प्रथम विव

चन भामह ने किया था। भामह की दृष्टि म 'अथ एव उसको अभिव्यक्त करने वाले शब्द श्लेष के आधार है। आचार्यो न शब्दश्लेष एव अथश्लेप अलग-अलग तो माने हैं, परन्तु उनकी कसौटी पर सब सहमत नही हैं।

शब्दश्लेप एव अथश्लेप के अन्तर के कुछ स्थूल आधार हैं। शब्दश्लेप अनेकाथक शब्दा के प्रयोग पर निभर है अत पर्यायवाची शब्द बदलने पर श्लेप नही रहता। इसके विपरीत अथश्लेप एकाथक शब्दा क प्रयाग पर निभर है और पर्यायवाची शब्द रख दन पर भी वह नष्ट नही होता। मम्मट ने भेदो का नही परन्तु श्लेप के शाब्द एव आथ रूपो का प्रतिपादन किया है।

भामह, दण्डी आदि प्राचीन एव रुय्यक, जगन्नाथ आदि नवीन आचाय श्लेप को अर्थालकार भी मानते हैं। रुय्यक के अनुसार सभगपद श्लेष शब्दालकार है परन्तु अभगपद श्लेष केवल अर्थालकार। रुद्रट ने शब्दश्लेप एव अथश्लेप का विवेचन अलग-अलग अध्यायो म किया है। व्रजभाषा के आचाय प्राय शब्दश्लेष को ही महत्त्व देते रहे हैं, खडी बोली के आचार्यों ने शब्द श्लेष तथा अथश्लेप अलकारो का अलग-अलग विवेचन किया है यद्यपि महत्त्व शब्दश्लेष को ही प्रदान किया है।

२५ अपह्नुति

भामह

अपह्नुति म भूताथ[1] (उपमय) का निषेध रहता है इसमे कुछ उपमा-तत्त्व[2] अन्तर्निहित रहता है। उपमा का सौंदय अपह्नुति क सौंदय म विलीन हो जाता है। उदाहरण सरल तथा स्पष्ट है।

दण्डी

दण्डी के अनुसार प्रकृत के गुणक्रियादिरूप धम को छिपाकर[3] धर्मान्तररूपारोप्यमाण अय अथ का कथन अपह्नुति का सामान्य रूप है जिसका उदाहरण है—

न पञ्चेषु स्मरस्तस्य सहस्र पत्रिणामिति ॥२।३०४॥

अपह्नुति के मुख्य भेद दो हैं— विषयापह्नुति तथा स्वरूपाह्नुति। विषयापह्नुति म वर्ण्य के निषेध्य तथा आरोप्य दोनो धर्मों का वणन होता है, उदाहरण म—चन्दन आदि विरहिणी के लिए अग्निमय हैं, साथ ही अय जनो के लिए शीतल भी हैं—

चन्दन चन्द्रिका मन्दो गन्धवाहश्च दक्षिण।
सेयमग्निमयी सृष्टिर्मयि शीता परान् प्रति ॥२।३०५॥

---

१ भूतार्थापह्नवादस्या क्रियते चाभिधा यथा ॥३।२१॥

२ अपह्नुतिरभीष्टा च किंचिदन्तर्गतोपमा ॥३।२१॥

३ अपह्नुतिरपह्नुत्य किंचिदन्यार्थदर्शनम् ॥ काव्यादर्श २।३०४॥

इसके विपरीत स्वरूपापह्नुति में धर्म का निषेध करके धर्मान्तर[1] का आरोप होता है।

उपमापह्नुति की चर्चा करते हुए दण्डी ने लिखा है कि इसका उपमा के सम्बन्ध में दिखाया जा चुका है। उपमा के अनेक भेदों में से बीसवाँ भेद प्रतिषेधोपमा (श्लोक-संख्या 34) है। उदाहरण है

न जातु शक्तिरिन्दोस्ते मुखेन प्रतिगर्जितुम्।
कलंकिनो जडस्येति प्रतिषेधोपमैव सा ॥2।34॥

यहाँ औपम्यचारुता[2] प्रधान है, इसलिए मुख्य अलंकार उपमा माना जायगा।

उद्भट

भामह के लक्षण को ही उद्भट ने स्वीकार किया है परिवर्तन कुछ पदों का ही है, अर्थ अथवा भाव का नहीं। "अपह्नुति में उपमा अथवा सादृश्य अन्तर्निहित रहता है, कविजन भूतार्थ (उपमेय) के निषेध[3] द्वारा इस सौंदर्य की योजना करते हैं। अपह्नुति का आधार उपमानोपमेय भाव है भामह तथा दण्डी दोनों ने इस पर बल दिया है, परन्तु दण्डी ने इस विशेषता की उपेक्षा कर दी है। उत्तर आचार्यों ने भामह का ही अनुकरण किया है और अपह्नुति के दो अङ्ग माने हैं—(1) उपमानोपमेयभाव तथा (2) उपमेय का अपह्नव।

वामन

समेन वस्तुनाऽन्यापलापोऽपह्नुति ॥4 3,5॥

सम अर्थात् तुल्य वस्तु अर्थात् वाक्यार्थ से अन्य वाक्यार्थ का अपलाप[4] (निषेध) अपह्नुति है। रूपक में पदार्थों का सादृश्य तादृरूप्य होता है, अपह्नुति में वाक्यार्थ के तात्पर्य से।[5] वामन ने एक उदाहरण दिया है।

रुद्रट

अतिसाम्य के कारण विद्यमान उपमेय को अविद्यमान रूप में और उपमान को विद्यमान रूप में वर्णन अपह्नुति है। यह लक्षण भामह-उद्भट की परम्परा में है, तथापि सदोष है।

---

1 रविचन्द्रवमेवेदी निवर्त्यान्तिरात्मता ॥2।307॥

2 अत्र औपम्यमूलभूतगुणातिशयस्यापिकेयमपह्नुति औपम्यचारुताया विकासयित्री इति तदङ्गभूता। (प्रभा, 291)

3 अपह्नुतिरभीष्टा च किंचिदन्तर्गतोपमा।
भूतार्थापह्नवेनास्या निबन्धः क्रियते बुधैः ॥ का०सा०सं० 5।3॥

4 समेन तुल्येन वस्तुना वाक्यार्थेनाऽन्यस्य वाक्यार्थस्य अपलापो निह्नवो यस्तत्त्वाभ्यारोपणाय असावपह्नुतिः। (वृत्ति)

5 वाक्यार्थयोस्तात्पर्यात् तादृरूप्यमिति न रूपकम्। (वृत्ति)

त्व विस विसमय-कोमल-सकलावयवा विनाशिनी मया।
आ्र्यति जाना नयनानि सिताशुलगन ॥८।५८॥

नमिसाधु को इस उदाहरण पर व्याख्या भी प्राप्त है। 'अत्रातिगाढ़त्वाद् विलासिनी मुखमेयमपह्नुत्य शशिलेखाया उपमानस्यव सद्भाव कथित। वस्तुत यह उदाहरण उपमालंकार का बन गया इसम अपह्नुव तो है ही नहीं। रुद्रट तथा नमिसाधु अपह्नुति का पृथक्त्व उत्प्रेक्षा के साथ प्रदर्शित करते हुए उसी उदाहरण को उपमा के पास ले गये हैं।

मम्मट

प्रकृत यन्निषिध्यान्यत् साध्यते सा त्वपह्नुति।"

अर्थात् 'उपमेयम् असत्य कृत्वा उपमान सत्यतया यत् स्थाप्यत सा त्वपह्नुति। 'काव्यप्रकाश' म इसके भेदों का वर्णन नहीं है परन्तु तीन उदाहरण हैं जिनम स एक शाब्द अपह्नुव का है दूसरा आर्थ अपह्नुव का ('छलन' के प्रयोग स), तीसरे म आर्थ अपह्नुव 'परिणमति' क्रिया के प्रयोग से है—

शिखा धूमस्येय परिणमति रामावलिवपु।

रुय्यक

विषयस्यापह्नवेऽपह्नुति।

इस अलंकार के तीन रूप हैं—अपह्नवपूर्वक आरोप, आरोपपूर्वक अपह्नव तथा छल आदि शब्दों के प्रयोग से अपह्नवनिर्देश। मम्मट के समान ही तृतीय रूप के दो उदाहरण दिये हैं—एक छल का दूसरा मम्मट का ही उदाहरण 'परिणमति' क्रिया का।

जयदेव

अतथ्यमारोपयितु तथ्यापास्तिरपह्नुति ॥५।२४॥

अतथ्य का आरोप करने के लिए तथ्य का निषेध (अपास्ति) अपह्नुति है। पर्यस्तापह्नुति म धर्मी की विद्यमानता[1] म धर्ममात्र का निषेध होता है। भ्रान्तापह्नुति एक पदार्थ म दूसरे पदार्थ के सन्देह[2] का निवारण करता है। छेकापह्नुति शंका के कारण[3] सत्य के गोपन में है। कैतव[4], छल आदि पदों के प्रयोग से वस्तु का गोपन कैतवापह्नुति है।

---

१ उत्प्रेक्षायां व्याजादिशब्दैरुपमेयस्य सत्त्वमप्युच्यते इह तु सत्त्वमपह्नूयत इति विशेष।(नमिसाधु पृ० १११)

२ पर्यस्तापह्नुतिर्यत्र धर्ममात्र निषिध्यते ॥५।२५॥

३ भ्रान्तापह्नुतिरन्यस्य शंकया तथ्यनिर्णये ॥५।२६॥

४ यह दण्डी की तत्त्वाख्यानोपमा है।

५ छेकापह्नुतिरन्यस्य शंकया तथ्यनिह्नवे ॥५।२७॥

६ कैतवापह्नुतिर्व्यक्तौ व्याजाद्यैर्निह्नुते पद ॥५।२८॥

विश्वनाथ

मम्मट के अनुकरण पर लक्षण एवं रुय्यक के अनुकरण पर वृत्ति है—

प्रकृत प्रतिषिध्यान्यस्थापनं स्यादपह्नुतिः ।

इयं द्विधा । क्वचिद् अपह्नवपूर्वक आरोपः । क्वचिद् आरोपपूर्वकोऽपह्नवः ।

गोपनीयं कमप्यर्थं द्योतयित्वा कथंचन ।

यदि श्लेषेणान्यथा वान्यथयेत् साऽप्यपह्नुतिः ॥१०।३९॥

यह दूसरा लक्षण छेकापह्नुति का है। इसका स्वरूप वृत्ति में स्पष्ट कर दिया गया है—'वक्रोक्तौ परोक्तेः अन्यथाकारः इह तु स्वोक्तेरेवेति भेदः ।

अप्पय्यदीक्षित

जयदेव के अनुसार ही अपह्नुति में छह भेदों का वर्णन है—

(क) शुद्धापह्नुतिरन्यस्यारोपार्थो धर्मनिह्नवः ॥२६॥

(ख) स एव युक्तिपूर्वश्चेदुच्यते हेत्वपह्नुतिः ॥२७॥

(ग) अन्यत्र तस्यारोपार्थः पर्यस्तापह्नुतिस्तु सः ॥२८॥

(घ) भ्रान्तापह्नुतिरन्यस्य शंकायां भ्रान्तिवारणे ॥२९॥

(ङ) छेकापह्नुतिरन्यस्य शंकातस्तथ्यनिह्नवे ॥३०॥

(च) कैतवापह्नुतिर्व्यक्तौ व्याजाद्यैर्निह्नुते पदैः ॥३१॥

यहाँ हेत्वपह्नुति जयदेव से अधिक है। अन्यत्र इसका वर्णन भिन्न प्रकार से है—

प्रकृतस्य निषेधेन यदन्यत्वप्रकल्पनम् ।

साम्यादपह्नुतिर्वाक्यभेदाभेदवती द्विधा ॥ (चित्रमीमांसा)

अत्र वाक्यभेदेऽपह्नवपूर्वक आरोपः आरोपपूर्वकापह्नवश्चेति द्वैविध्यम् ।

जगन्नाथ

उपमेयतावच्छेदक (मुखत्व आदि) के निषेध को साथ रखते हुए आरोपित किया जानेवाला उपमान का तादात्म्य अपह्नुति है । यथा—'उपमेयतावच्छेदकनिषेधसामानाधिकरण्येन आरोप्यमाणमुपमानतादात्म्यम् अपह्नुतिः । (पृ० ३६६)

हिन्दी के आचार्य

निज हित अर्थ छपाइ कैं कहै अपह्नुति आन । (शब्दरसायन, पृ० १७०)

दासकवि ने दीक्षित के अनुसार छह भेदों का वर्णन है—

धर्म, हेतु, परजस्त, भ्रम, छेक, कैतवहि देखि।

वाचक एक नकार है, सबमें निह्नव लेखि ॥९।२४॥

कन्हैयालाल पोद्दार ने केवल चार भेदों (हेतु, पर्यस्त, भ्रान्त, छेक) का, परन्तु रामदहिन

मिश्र ने सात (शुद्ध, कैतव, हेतु, भ्रान्त, पयस्त, छेक, विशेप) भेदो का वर्णन किया है।

उपसहार

अपह्नुति का प्रथम विवेचन भामह ने किया था। उसके अनुसार 'अपह्नव तथा 'किंचिदन्त गतोपमा इस सौन्दय के मुख्य तत्त्व हैं। दण्डी ने उपमातत्त्व की उपेक्षा कर दी परन्तु आचार्यों ने भामह का अनुसरण किया, दण्डी का नही।

मम्मट ने अपह्नुति के दो भेद शाब्दी एव आर्थी बतलाये थे। जयदेव ने चार भेदो का निरूपण किया और दीक्षित ने छह भेदो का। हिन्दी के आचार्यों ने दीक्षित के ही भेदो को प्राय स्वीकार कर लिया है।

रुय्यक ने अपह्नुति की व्याख्या मे 'आरोप' शब्द का प्रयोग किया था। तथापि अपह्नुति रूपक से भिन्न है। रूपक का आरोप निपेध रहित होता है और अपह्नुति का निपेध-सहित रूपक का लक्षण ही निपेध रहित आरोप के रूप मे किया गया है।

अपह्नुति का एक भेद छेकापह्नुति बडा लोकप्रिय रहा है। इसम अपनी उक्ति का ही दूसरा अथ कल्पित किया जाता है जब कि वक्रोक्ति मे दूसरे की उक्ति का दूसरा अथ कल्पित होता है।

२६ विशेपोक्ति

भामह

किसी वस्तु के एक गुण की समाप्ति[1] हो जाने पर अन्य गुण विद्यमान रहकर और भी विशेपता प्रतिपादन करे तो वह सौन्दय विशेपोक्ति है।

सा एकस्त्रीणि जयति जगन्ति कुसुमायुध ।
हरतापि तनु यस्य शम्भुना न हृत बलम ॥२४॥

(वह कुसुमायुध एकाकी ही तीनो श्लोको को जीत लेता है, शरीर हरण करते हुए भी भगवान शिव ने जिसके बल का हरण नही किया)।

यह उदाहरण काव्यप्रकाश मे अचिन्त्यनिमित्ता विशेपोक्ति के उदाहरणरूप म उदधृत किया गया है और साहित्यदपण मे अचिन्त्यनिमित्ता भेद न रहने के कारण अनुक्तनिमित्ता विशेपोक्ति का उदाहरण बनकर आया है।

दण्डी

वण्य की विशेपता दिखाने के लिए गुण-जाति क्रियादि का जहाँ कायसिद्धि म निष्फलत्व प्रतिपादन किया जाय वहाँ विशेपोक्ति है। दण्डी का यह लक्षण भामह के लक्षण स भिन्न नही

---

१ एकदेशस्य विगमे या गुणान्तरसंस्थिति ।
विशेपप्रथनायासौ विशेपोक्तिमता यथा ॥३।२३॥

है। उदाहरण गुण-वकल्य[1], जातिवकल्य, क्रियावकल्य तथा द्रव्यवकल्य के दिये गये हैं। प्रत्येक उदाहरण निषेधात्मक वाक्य मे समन्वित किया गया है (जिसकी कोई आवश्यकता प्रतीत नही होती), अन्यथा भामह का सामान्य उदाहरण दण्डी के गुणवकल्य का उदाहरण माना जा सकता है।

अन्त म एक विशेष रूप 'हेतुविशेषोक्ति' का भी वणन है—

एकचक्रो रथो यन्ता, विकला विषमा हया ।
आक्रामत्येव तेजस्वी, तथाप्यर्को नभस्तलम् ॥२।३२८॥

इस उदाहरण म 'तेजस्वी' विशेषण हेतु का आधार है।

उद्भट

समग्र[2] शक्तिया (कारणा) के विद्यमान रहने पर भी, विशेषता प्रतिपादन के निमित्त फल की अनुत्पत्ति का वणन विशेषोक्ति है। विशेषाक्ति के दो भेद हैं— (१) फलानुत्पत्ति का निमित्त[3] दिखलाया गया हो, (२) फलानुत्पत्ति का निमित्त अदर्शित हो।

उद्भट का लक्षण भामह के लक्षण से व्याख्या म भिन्न तथा अधिक वज्ञानिक है। उत्तर कालीन आचार्यों विशेषत मम्मट,ने उद्भट को ही आधार बनाया है। कायकारणभाव तथा फलानुत्पत्ति—विशेषाक्ति के दोना अग—यहाँ लक्षण म स्पष्ट हा गये हैं।

वामन

एक गुण की हानि (न्यूनता) की कल्पना[4] पर शेष गुणो से साम्य की दृढता का वणन विशेषोक्ति है। यह रूपक-तुल्य[5] होता है।

वामन का यह लक्षण नवीन आचार्यों के लक्षण स तो भिन्न है ही, पूर्वाचार्यों के लक्षण से भी नही मिलता। भामह के लक्षण का विस्तार उद्भट ने किया था जिससे प्राय समस्त नवीन आचाय प्रभावित हैं। वामन के उपमा प्रपच का आग्रह विशेषोक्ति के लक्षण म 'साम्य' को आकृष्ट कर ले आता है इसीलिए वामन की विशेषोक्ति के उदाहरण लक्षणा के उदाहरण बन गय हैं—

---

१ गुण-जाति क्रियादीना यत्त वकल्यदशनम् ।
विशषदर्शनायव सा विशेषोक्तिरिष्यते ॥ काव्यादश २।३२३॥

२ यत्सामग्र्यपि शक्तीना फलानुत्पत्ति बन्धनम् ।
विशषस्याभिधित्सात तदविशषोक्तिरुच्यते ॥का०सा०।५।४॥

३ दर्शितेन निमित्तेन निमित्तादशनेन च ।
तस्या बन्धो द्विधा लक्ष्य दृश्यते ललितात्मक ॥ का०सा० ।५।५॥

४ एकगुणहानि-कल्पनायां साम्यादाढ्य विशेषोक्ति ॥ ४ ३ २३॥

५ रूपक चेद प्रायण। (वत्ति)

'भवति मवौषधयो रजयामतैलपूरा सुरतप्रदीपा ।'
'व्यसन हि नाम सोच्छ्वास मरणम् ।'
'द्विजो भमिवृहस्पति ।

मम्मट

विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावच ॥१०८॥

सम्पूर्ण कारणो के होने पर फल का कथन न करना विशेषोक्ति है। वृत्ति—' मिलितेष्वपि कारणेषु कार्यस्याकथन विशेषोक्ति । अनुक्तनिमित्ता, उक्तनिमित्ता, अचिन्त्यनिमित्ता च।

रुय्यक

'अलकार-सर्वस्व' का लक्षण 'काव्यप्रकाश' का अनुकरण मात्र है—

''कारण-सामग्रये कार्यानुत्पत्तिर्विशेषोक्ति ।''

रुय्यक ने विशेषोक्ति के केवल दो भेद मान हैं—उक्तनिमित्ता तथा अनुक्तनिमित्ता। अचिन्त्यनिमित्ता तो अनुक्तिनिमित्ता का ही दूसरा नाम है। अनुक्त के दो रूप हैं—चिन्त्य तथा अचिन्त्य।

जयदेव

चन्द्रालोक' का लक्षण सामान्य है भेदों का वर्णन नहीं है—

विशषोक्तिरनुत्पत्ति कार्यस्य सति कारणे ॥५।७८॥

विश्वनाथ

सति हेतौ फलाभावे विशेषोक्तिस्तथा द्विधा ॥१०।६७॥

रुय्यक के अनुकरण पर दो ही भेद माने गये हैं और अचिन्त्यनिमित्ता का खण्डन है अचिन्त्यनिमित्तत्व चानुक्तनिमित्तस्यव भेद इति पृथङ नोक्तम।' (पृ० ३५१)

अप्पय्यदीक्षित

'कुवलयानन्द' का लक्षण भी इसी परम्परा मे है—

कार्याजनिर्विशेषोक्ति सति पुष्कलकारणे ॥८३॥

जगन्नाथ

प्रसिद्ध कायकलाप की विद्यमानता मे काय की अनुत्पत्ति विशेषोक्ति कहलाती है। 'प्रसिद्धकारणकलापसमानाधिकरण्येन वर्ण्यमाना कार्यानुत्पत्ति विशेषोक्ति। (पृ० ५८५)

हिन्दी के आचार्य

विद्यमान कारन सकल, कारज होय न सिद्ध।
सोई उक्ति विशेषमय, केशव परम प्रसिद्ध ॥१२।१४॥
कारन हू कारज न जहँ विशेषोक्ति कहि सोइ। (शब्दरसायन)
हेतु घनेहु काज नहिं, विशेषोक्ति निसदेह। (काव्यनिर्णय)

कन्हैयालाल पोद्दार तथा रामदहिन मिश्र ने मम्मट के अनुसार तीन भेदों का वर्णन किया है।

उपसंहार

भामह ने विशेषोक्ति का प्रथम विवेचन किया था। एक गुण (कार्य) की हानि होने पर भी दूसरे गुण (कारण) का कथन विशेषोक्ति है। उद्भट ने इसको स्पष्ट कर दिया कि समस्त कारणों के विद्यमान रहने पर भी फल की अनुत्पत्ति विशेषोक्ति है। और आचार्यों के लक्षण उद्भट के आधार पर ही हैं। दण्डी ने भामह से भिन्न रूप स्वीकार किया था जिसको आगे नहीं अपनाया गया।

मम्मट ने विशेषोक्ति के तीन भेद बतलाए, परन्तु रुय्यक ने उनमें से केवल दो को ही स्वीकार किया। विश्वनाथ ने रुय्यक का समर्थन किया। जयदेव आदि ने भेदों का वर्णन नहीं किया।

विशेषोक्ति एवं विभावना अलंकार एक ही भित्ति पर टिके हैं परन्तु इनका अन्तर बड़ा स्पष्ट है। विभावना में कारण के बिना कार्योत्पत्ति होती है इसके विपरीत विशेषोक्ति में कारण के विद्यमान रहते हुए भी कार्योत्पत्ति नहीं होती। 'कार्योत्पत्ति' को 'फलोत्पत्ति' भी कहा गया है।

२७ विरोध

भामह

विशेषाभिधान के निमित्त किसी क्रिया का उसके गुण अथवा क्रिया[1] के विरुद्ध वर्णन विरोध अलंकार है। "यह राज्यदण्ड समस्त प्रदेश में उपवन वाटिका की छाया के कारण शीतल बनकर भी तुम्हारे दूरस्थ शत्रुओं को जलाता रहता है।" उदाहरण स्पष्ट है।

दण्डी

विशेष दर्शन के निमित्त विरुद्ध पदार्थों का संसर्गदर्शन[2] विरोध अलंकार है। क्रियाविरोध

१ गुणस्य वा क्रियाया वा विरुद्धान्यक्रियाभिधा।
या विशेषाभिधानाय विरोधं तं विदुर्बुधाः ॥३।२५॥

२ विरुद्धानां पदार्थानां यत्र संसर्गदर्शनम्।
विशेषदर्शनायैव स विरोधः स्मृतो यथा ॥ काव्यादर्श २।३३३॥

वस्तुगत विरोध तथा अवयवगत विरोध के अनन्तर विषम विरोध, असगतिविरोध तथा श्लेष मूल विरोध के अलग-अलग उदाहरण दिये गये हैं।

विषम विरोध म आत्यतिक विरोध होता है—"मृणाल रूपी बाहु कदली रूपी ऊरु पदम रूपी मुख तथा उत्पल रूपी नेत्र, इन समस्त शीतल सामग्री से मुक्त तुम्हारा रूप मेरे मन म ताप उत्पन्न करता है'। ससग के अभाव म भी प्रभाव उत्पन्न करना असगतिविरोध है— 'पराग, स्पश किये बिना ही पथिको के नेत्रो को सवाष्प करते हैं। इस उदाहरण का असगति तथा विभावना दोनो से साम्य है। श्लेषमूल विरोध का उदाहरण है— 'कृष्णार्जुनानुरक्तापि दृष्टि कर्णावलम्बिनी।

उदभट

उद्भट ने भामह के लक्षण को ही स्वीकार करके उसम यत्किंचित[1] शाब्दिक परिवतन कर दिया है। पुराने आचाय सभी प्रकार की असगतियो को विरोध मानते हैं उनके सम्मुख विरोध असगति विषम आदि के स्वरूप स्पष्ट नही थे—उन सबम विरोध-तत्त्व उभरा हुआ था।

वामन

वामन का विरोध नवीन आचार्यों का असगति अलकार है यह उदाहरणों से प्रकट होता है। लक्षण अत्यन्त सामान्य है विरुद्धाभासत्व विरोध (४,३ १२)। वे अथ के विरुद्धाभासत्व मात्र को विरोध मानते हैं। दो उदाहरण दिये गये हैं जिनम से एक (सा बाला वयमप्रगल्भमनस) साहित्यदपण म असगति का उदाहरण है।

रुद्रट

यस्मिन् द्रव्यादीना परस्पर सवथा विरुद्धानाम।
एकत्रावस्थान समकाल भवति स विरोध ॥९।३०॥

परस्पर विरुद्ध द्रव्य गुण क्रिया-जाति का एकत्र समकाल मे अवस्थान विरोध है। सजातीयो मे विरोध के चार भेद (दो द्रव्यो म, अथवा दो गुणो म अथवा दो क्रियाओ म अथवा दो जातियो मे) है विजातियो म विरोध के पाँच भेद (द्रव्य और गुण म अथवा द्रव्य और क्रिया मे अथवा गुण और क्रिया म अथवा गुण और जाति म, अथवा क्रिया और जाति मे) हैं।

जडयति सतापयति च दूरे हृदय च म वसति ॥९।३६॥ (क्रियाओ का विरोध)
मष्टनासि येन नितरामबलापि बलान्मनो यूनाम ॥९।४०॥ (जाति क्रिया विरोध)

विरोध के चार भेद और भी है जहाँ दो सजातीय परस्पर विरोधी द्रव्य आदि अर्थों म से एक का रहना अवश्यम्भावी हो परन्तु उन दोनो के अभाव का वणन हो—

---

१ गुणस्य वा क्रियाया वा विरुद्धान्यक्रियावच।
यद्विशेषाभिधानाय विरोध त प्रचक्षते ॥ का०सा०स० ५। ॥

स्थान न जल न च स्थलम् ॥४।४१॥ (परस्पर विरोधी द्रव्यों का अभाव)
न मृदु न कठिनम् ॥४।४२॥ (परस्पर विरोधी गुणों का अभाव)
नास्ते न याति हंस ॥४।४३॥ (परस्पर विरोधी क्रियाओं का अभाव)

मम्मट

विरोध सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद्वच ॥११०॥

विरोध के दस रूप हैं—जाति, गुण, क्रिया तथा द्रव्य शब्दों के आधार पर—

(क) जाति के चार भेद—जाति, गुण, क्रिया तथा द्रव्य के साथ।
(ख) गुण के तीन भेद—गुण, क्रिया तथा द्रव्य के साथ।
(ग) क्रिया के दो भेद—क्रिया तथा द्रव्य के साथ।
(घ) द्रव्य का एक भेद—द्रव्य के साथ।

प्रत्येक रूप का 'काव्यप्रकाश' में एक एक उदाहरण है।

रुय्यक

विरुद्धाभासत्व विरोध ।
सति च समाधाने प्रमुख एव आभासमानत्वाद विरोधाभास ।'

मम्मट के अनुकरण पर विरोध के दस भेद किये गये है।

जयदेव

विरोध तथा विरोधाभास दो अलग अलंकार माने गये हैं। विरोध का लक्षण रुद्रट मम्मट रुय्यक का अनुकरण है—

विरोधोऽनुपपत्तिश्चेद गुण द्रव्य क्रियादिषु ॥५।७४॥

विरोधाभास का लक्षण —

श्लेषादिभूर्विरोधश्चेद विरोधाभासता मता ॥५।७५॥

श्लेष आदि अलंकार के कारण विरोध की प्रतीति विरोधाभास है। इस लक्षण पर रुय्यक का प्रभाव स्पष्ट है।

विश्वनाथ

मम्मट के अनुसार लक्षण, तथा दस भेद हैं। लक्षण सरल है—

विरुद्धमेव भासेत विरोधोऽसौ दशाकृति ॥१०।६९॥

विभावना एव विशेषोक्ति से विरोध का अंतर भी स्पष्ट कर दिया गया है—'विभावनाया कारणाभावेन उपनिबध्यमानत्वात कार्यमेव बाध्यत्वेन प्रतीयते। विशेषोक्तौ च कार्याभावेन कारणमेव। इह त्वन्योन्य द्वयोरपि बाध्यत्वमिति भेद ।' (पृ० ३५२ ३)

अप्पय्यदीक्षित

आभासत्वे विरोधस्य विरोधाभास इष्यते ॥७६॥

लक्षण सरल तथा स्पष्ट है। 'रस-गगाधर' के अनुसार—

"एकाधिकरणसम्बद्धत्वेन प्रसिद्धयो एकाधिकरणसम्बद्धत्वेन प्रतिपादन म।'

हिन्दी के आचार्य

केशवदास ने विरोध तथा विरोधाभास का एकत्र वर्णन किया है—

केशवदास विरोधमय, रचियत वचन बिचारि ॥९।१९॥
वरनत लगै विरोध सा, अर्थ सब अविरोध ॥९।२२॥

देव म भी यही प्रवृत्ति है—

जहाँ विरोध पदार्थ कहि कहिय विरोधा तासु।
है अविरोध विरोध सो, लग विरोधाभासु ॥

दास कवि ने मम्मट के अनुसार विरोध के दस भेदों का वर्णन किया है। कन्हैयालाल पोद्दार ने विरोध या विरोधाभास एक ही अलकार माना है। रामदहिन मिश्र इसको विरोधाभास कहते हैं और इसके दस भेदों का वर्णन करते हैं।

उपसहार

भामह ने विरोध अलकार का विवेचन किया था। वामन ने लक्षण देते समय विरोधाभासत्व पद का प्रयोग किया। रुद्रट से विरोधाभास नाम भी चल पडा। जयदेव ने इनको अलग अलग अलकार कह दिया। आचार्यों में दोनों को एक भी माना गया है और अलग अलग भी।

दण्डी ने विरोध के भेदों का वर्णन किया था रुद्रट ने इसके तेरह भेद बतलाये। मम्मट ने इस अलकार को वैज्ञानिक लक्षण दिया और इसके दस भेद निश्चित कर दिये जो कालान्तर में सर्वस्वीकृत हो गये।

विरोध अथवा विरोधाभास अलकार में केवल कल्पित विरोध रहता है वास्तविक नहीं और उस कल्पित विरोध का क्षेत्र बहुत व्यापक है। इस दृष्टि से विभावना विशेषोक्ति असगति विषम आदि अलकारों से विरोधाभास का अन्तर स्पष्ट है।

२८ तुल्ययोगिता

भामह

न्यून गुणवती वस्तु का विशिष्ट गुणवती वस्तु के साथ गुणसाम्य-कथन करने के लिए उन दोनों का एक समान कार्य के सम्पादन में वर्णन करना तुल्ययोगिता है[1]। लक्षण से स्पष्ट है कि

---

१ न्यूनस्यापि विशिष्टेन गुणसाम्यविवक्षया।
तुल्यकार्यक्रियायोगादित्युक्ता तुल्ययोगिता ॥३।२७॥

इसमें एक वाक्य का प्रयोग होता है दीपक के समान अलग-अलग वाक्यों का नहीं।

उदाहरण है— 'शेष, हिमालय तथा तुम तीनों महान गुरु तथा स्थिर हो और अपनी मर्यादा का उल्लंघन किये बिना घूमती हुई पृथ्वी का धारण किये हुए हो।'

दण्डी

भामह तथा दण्डी में तुल्ययोगिता का समान रूप है। दण्डी-कृत लक्षण है—स्तुति अथवा निन्दा के निमित्त प्रस्तुत के गुणों का उत्कृष्ट गुणों के साथ समीकृत[1] वर्णन तुल्ययोगिता है। स्तुतितुल्ययोगिता का उदाहरण भामह के सामान्य उदाहरण के समान ही है—यम, कुबेर, वरुण, इन्द्र तथा आप लोकपाल रूप की ख्याति को धारण करते हैं। निन्दातुल्ययोगिता का उदाहरण है

संगतानि मृगाक्षीणां तडिद्विलसितानि च।
क्षणद्वयं न तिष्ठन्ति घनारब्धान्यपि स्वयम् ॥२।३३२॥

उद्भट

उपमानोपमेयभाव से शून्य उपमानों अथवा उपमेयों का साम्याभिधायी[2] कथन तुल्ययोगिता है। इस साम्याभिधान में साधारण धर्म का अस्तित्व अनिवार्य है। भामह तथा दण्डी के लक्षणों की अपेक्षा उद्भट का लक्षण विकसित, वैज्ञानिक तथा परिपूर्ण है और मम्मट के लक्षण का आधार बना है। अप्रस्तुतों के साम्याभिधान का उदाहरण है—

त्वदङ्गमार्दवं द्रष्टुः कस्य चित्ते न भासते।
मालती शशभृल्लेखा-कदलीनां कठोरता ॥

वामन

वामन का लक्षण भामह के आधार पर है—

विशिष्टेन साम्यार्थमेककालक्रियायोगस्तुल्ययोगिता ॥४.३.२६॥

'विशिष्ट' पद में 'गुणविवक्षा' स्वतः आ जाती है। उद्भट के 'उपमेयोपमेयभावशून्यता' की आवश्यकता नहीं है क्योंकि 'अप्रस्तुत' पद का प्रयोग इस लक्षण में वामन ने नहीं किया है। उदाहरण सरल है।

मम्मट

'काव्यप्रकाश' के लक्षण पर उद्भट का प्रभाव है—

---

1 विवक्षितगुणोत्कृष्टैर्यत् समीकृत्य कस्यचित्।
कीर्तनं स्तुतिनिन्दार्थं सा मता तुल्ययोगिता ॥ काव्यादर्श २।३३०॥

2 उपमानोपमेयोक्तिशून्यैरप्रस्तुतैर्वचः।
साम्याभिधायि प्रस्तावभाग्भिर्वा तुल्ययोगिता ॥ का० सा० ५।७॥

नियताना सकृद्धम सा पुनस्तुल्ययागिता ॥१०४॥

वत्ति मे स्पष्ट किया गया है—' नियताना प्राकरणिकानामेव अप्राकरणिकानामेव वा। दोनो भेदा का एक एक उदाहरण दिया गया है।

रुय्यक

औपम्यस्य गम्यत्व पदार्थगतत्वेन प्रस्तुतानामप्रस्तुताना
वा समानधर्माभिसम्बन्धे तुल्ययागिता।

लक्षण मम्मट के अनुसार है, साथ ही औपम्यस्य गम्यत्व पर विशेष आग्रह है जो उदभट का प्रभाव है।

जयदेव

क्रियादिभिरनेकस्य तुल्यता तुल्ययोगिता ॥५।५१॥

क्रियादि (क्रिया अथवा गुण) के द्वारा अनेक प्रस्तुता अथवा अप्रस्तुता का सम्बन्ध तुल्य योगिता है।

विश्वनाथ

साहित्यदपण का लक्षण काव्यप्रकाश तथा अलकारसवस्व की अपेक्षा अधिक स्पष्ट एव सरल है—

पदार्थाना प्रस्तुतानाम यषा वा यदा भवेत।
एकधर्माभिसम्बन्ध स्यात्तदा तुल्ययोगिता ॥१०।४८॥

धम की व्याख्या की गई है— धर्मो गुण क्रियारूप।

अप्पय्यदीक्षित

तुल्ययोगिता के तीन अलग-अलग प्रकारा का वणन है—

(क) वर्ण्यानामितरेषा वा धर्मैक्य तुल्ययोगिता ॥४४॥

(ख) हिताहिते वत्तितौल्यमपरा तुल्ययोगिता ॥४६॥

(ग) गुणोत्कृष्ट समीकृत्य वचोऽन्या तुल्ययोगिता ॥४७॥

प्रथम रूप परम्परा मे स्वीकृत था द्वितीय सरस्वतीकण्ठाभरण के अनुसार है, तृतीय काव्यादश के अनुसार है।

जग नाथ

कवल प्रकृता का अथवा कवल अप्रकृता का गुण क्रिया आदि रूपी एक धम म अन्वय तुल्ययागिता है। प्रकृतानामेव अप्रकृतानामव वा गुण क्रियादिरूपकधर्मान्वयस्तुल्ययागिता। (पृ० ४२२)

रशनारूपतुल्ययोगिता, अलकाररूपतुल्ययोगिता कारकतुल्ययोगिता तथा व्यग्यतुल्ययोगिता इसके मुख्य भेद है।

हिन्दी के आचार्य

निन्दा-स्तुति हित तुल्य सब, तुल्ययोग यक ठौर। (शब्दरसायन)

(क) सम वस्तुनि गनि वालिय, एक बार ही धर्म।

(ख) समफलप्रद हित-अहित को, काहू को यह क्रम ॥८१८१॥

(ग) जा जा सम जेहि कहन को वहै वहै कहि ताहि ॥८२॥ (काव्यनिर्णय)

कन्हैयालाल पोद्दार तथा रामदहिन मिश्र ने भी अप्पय्यदीक्षित के अनुसार तुल्ययोगिता के तीन भेदो का वर्णन किया है।

उपसहार

तुल्ययोगिता अलकार का विवेचन भामह ने किया था और दीर्घकाल के अनन्तर विश्वेश्वर पण्डित ने इसका खण्डन करना चाहा। भामह के अनुसार गुणसाम्य की विवक्षा से उपमेयोपमान का एक कार्य अथवा क्रिया से योग तुल्ययोगिता है। दण्डी ने इस लक्षण मे निन्दा-स्तुति को जोड दिया।

उद्भट से वर्तमानिक लक्षण का प्रारम्भ हुआ—प्रस्तुतो अथवा अप्रस्तुतो का साम्याभिधायी कथन। मम्मट मे स्वरूप निश्चित हो गया। मम्मट विश्वनाथ के अनुसार प्रस्तुतो अथवा अप्रस्तुतो का एकधर्म से सम्बन्ध तुल्ययोगिता है।

जगन्नाथ का कथन है कि दीपक का अन्तर्भाव भी तुल्ययोगिता मे हो जाना चाहिए। इसका उत्तर विश्वेश्वर पण्डित ने दिया है कि यदि अन्तर्भाव आवश्यक ही है तो दीपक मे तुल्ययोगिता का हो, तुल्ययोगिता मे दीपक का नही—क्योकि दीपक भरत द्वारा प्रतिष्ठित प्राचीन अलकार है।

दीक्षित ने तुल्ययोगिता के तीन भेद बतलाये हैं जिनको कतिपय उत्तर आचार्यों ने भी स्वीकार किया है।

तुल्ययोगिता तथा दीपक बहुत निकट के सौन्दर्य-साधन है। अन्तर केवल यह है कि तुल्ययोगिता मे या तो अप्रस्तुतो का एक धर्म से सम्बन्ध होता है या केवल प्रस्तुतो का इसके विपरीत दीपक प्रस्तुत-अप्रस्तुत के समूह के एक धर्म से सम्बन्ध का वर्णन करता है।

२६ अप्रस्तुतप्रशसा

भामह

किसी वस्तु के सन्दर्भ मे प्रसग से अलग वस्तु की स्तुति[1] अप्रस्तुतप्रशसा है। अप्रस्तुतप्रशसा

[1] अधिकारादपेतस्य वस्तुनोऽन्यस्य या स्तुति ॥३।२९॥

के लक्षण म 'स्तुति शब्द का प्रयोग आग चलकर भ्रामक बन गया सयोग म भामह न जो उदाहरण दिया है वह भी सौदयप्रतिपादक होने क कारण स्तुतिपरक है।

दण्डी

अप्रस्तुत की स्तुति[1] यदि प्रस्तुत की निन्दा क लिए प्रयुक्त हो तो अप्रस्तुतप्रशसा है। दण्डी की दृष्टि भी इस अलकार म स्तुति निंदा पर थी। एकमात्र उदाहरण सरल तथा स्पष्ट है।

उद्भट

भामह के लक्षण को ही उदभट न स्वीकार किया है परन्तु इस सौदय के लिए एक अनिवाय विशेषण प्रस्तुतार्थानुबन्धिनी[2] जोड दिया है जो अप्रस्तुत प्रशसा क लिए उत्तर आचार्यों ने भी स्वीकार किया है। इन्दुराज के अनुसार यदि अप्रस्तुत प्रशसा प्रस्तुतार्थानुबन्धिनी न होगी तो वह उन्मत्त प्रलाप[3] बन जायगी।

वामन

किंचिदुक्तावप्रस्तुतप्रशसा ॥४ ३,४॥

उपमय की किंचिदुक्ति (एकदेश उक्ति) म अप्रस्तुत प्रशसा अलकार है। यह लक्षण अत्यन्त अपूण है वामन से पूव के आचार्यों क लक्षण भी इससे अधिक वैज्ञानिक थ। वामन न उपमय की उक्ति को ध्यान म रखकर तीन अलकारो के लक्षण लिखे हैं व सभी सदोष है अपूण एव अस्पष्ट है।

मम्मट

मम्मट-कृत लक्षण उद्भट से प्रभावित है और काव्यप्रकाश' अपेक्षाकृत विस्तार से अप्रस्तुत प्रशसा का प्रतिपादन करता है—

अप्रस्तुतप्रशसा या सा सव प्रस्तुताश्रया ॥
कार्ये निमित्ते सामान्ये विशेषे प्रस्तुते सति ।
तदन्यस्य वचस्तुल्ये तुल्यस्येति च पचधा ॥९९॥

वत्ति म स्पष्ट किया गया है— अप्राकरणिकस्याभिधानेन प्राकरणिकस्याक्षेपोऽप्रस्तुत प्रशसा । अप्रस्तुत प्रशसा के पाँच भेद हैं—

(क) काय के प्रस्तुत होने पर कारण का कथन।

---

१ अप्रस्तुतप्रशसा स्यादप्रक्रान्तेषु या स्तुति ॥ काव्यादश ॥२।३४०॥

२ अधिकारादपेतस्य वस्तुनोऽन्यस्य या स्तुति ।
अप्रस्तुतप्रशसेय प्रस्तुतार्थानुबन्धिनी ॥ का० सा ५।८॥

३ न चवमपि तस्या उन्मत्तप्रलापप्रख्यता यत सा केनचित् स्वाजयेन प्रस्तुतमर्थमनुबध्नाति। तदुक्तं प्रस्तुतार्थानुबन्धिनी इति। (पृ० ६५)

(ख) कारण के प्रस्तुत होने पर काय का कथन।
(ग) सामान्य के प्रस्तुत होने पर विशेष का कथन।
(घ) विशेष के प्रस्तुत होने पर सामान्य का कथन।
(ङ) तुल्य के प्रस्तुत होने पर उससे भिन्न दूसरे तुल्य का कथन।

पचम भेद की वत्ति म व्याख्या की गई है कि तुल्य के प्रस्तुत हान पर उसस भिन्न दूसर तुल्य अथ का कथन तीन प्रकार से हा सकता है—श्लेष स, समासोक्ति स, सादश्यमात्र स। तुल्य प्रस्तुते तुल्याभिधाने त्रय प्रकारा श्लेष समासोक्ति सादश्यमात्र वा तुल्यात् तुल्यस्य हि आक्षेपे हेतु।' (पृ० ४७८)।

रुय्यक

मम्मट के प्रभाव स रुय्यक न भी अप्रस्तुत प्रशसा का विस्तृत वणन किया है और इसके पाँच प्रकार बतलाय हैं—

अप्रस्तुतात (१) सामान्य विशेषभावे (२) काय-कारणभाव (३) सारूप्य च प्रस्तुत प्रतीतावप्रस्तुतप्रशसा। सारूप्य के साधम्य तथा वैधम्य से दो उपभेद हैं।

अप्रस्तुत प्रशसा एव पर्यायोक्त म अन्तर है। कायमुख स कारण का कथन पर्यायोक्त ह उसमे कारण की अपेक्षा काय म अतिशय सौन्दय हाता है। जहा कारण प्रस्तुत हो और काय अप्रस्तुत हो वहा अप्रस्तुत प्रशसा है।

सामान्य विशेष कायकारण का वाच्यत्व हो तो अर्थान्तरन्यास है सरूपा का वाच्यत्व हो तो दृष्टान्त है अप्रस्तुत वाच्य हो और प्रस्तुत गम्य हो तो अप्रस्तुत प्रशसा अलकार है।

जयदेव

अप्रस्तुतप्रशसा का लक्षण तथा भेद मम्मट के अनुसार है—

अप्रस्तुत प्रशसा स्यात सा यत्र प्रस्तुतानुगा।
काय-कारण सामान्य विशेषादेरसौ मता ॥५।६६॥

विश्वनाथ

अप्रस्तुत प्रशसा का लक्षण तथा भेद मम्मट के अनुकरण पर है। लक्षण का प्राण है— अप्रस्तुतात प्रस्तुत चेद् गम्यत।' उदाहरणो एव रूपो का साहित्यदपण म विस्तार है।

अप्पय्यदीक्षित

लक्षण जयदव स लिया गया है और भेद मम्मट से। लक्षण है—

अप्रस्तुतप्रशसा स्यात्सा यत्र प्रस्तुताश्रया ॥६६॥

जगन्नाथ

सादृश्यादि प्रकारों में से किसी एक प्रकार से वाच्य अप्रस्तुत व्यवहार के द्वारा व्यंग्य प्रस्तुत व्यवहार का वर्णन अप्रस्तुत प्रशंसा है—'अप्रस्तुतेन व्यवहारेण सादृश्यादिवक्ष्यमाणप्रकारान्यतमप्रकारेण प्रस्तुतव्यवहारो यत्र प्रशस्यते साऽप्रस्तुतप्रशंसा।' (पृ० ५३७)

हिन्दी के आचार्य

अप्रस्तुत प्रस्तुत कहिय अलंकार स्तुति ओर। (शब्दरसायन)

डा० कवि कन्हैयालाल पोद्दार तथा रामदहिन मिश्र ने मम्मट के अनुसार अप्रस्तुतप्रशंसा के पाँच भेदों का वर्णन किया है।

उपसंहार

भामह के अनुसार अप्रस्तुत के वर्णन से प्रस्तुत की प्रतीति अप्रस्तुतप्रशंसा है। दण्डी ने इस लक्षण को स्तुति निन्दापरक बना दिया। मम्मट ने इसका यथोचित लक्षण प्रस्तुत किया। उस लक्षण से प्रशंसा का अर्थ वर्णन स्पष्ट हो गया। उत्तर आचार्यों ने मम्मट का ही अनुकरण किया है।

मम्मट ने अप्रस्तुत प्रशंसा के पाँच भेदों का उल्लेख किया था जिनको सर्वमान्य ही समझना चाहिए।

हिन्दी के आचार्यों ने अप्रस्तुतप्रशंसा का अन्योक्ति नाम से भी वर्णन किया है। समासोक्ति में प्रस्तुत से अप्रस्तुत का संकेत मिलता है इसके विपरीत अप्रस्तुत प्रशंसा अप्रस्तुत के वर्णन से प्रस्तुत का संकेत देती है।

३० *व्याजस्तुति*

भामह

गम्य स्तुति के निमित्त प्रत्यक्ष निन्दा करते हुए जब किसी की दूराधिकगुणयुक्त[1] के साथ तुल्यता प्रदर्शित की जाय तो व्याजस्तुति अलंकार है। यहाँ स्तुति गम्य रहती है और निन्दा प्रत्यक्ष। जिससे तुल्यता प्रदर्शित की जाती है वह इतना अधिक गुणवान होता है कि उसके सम्मुख तुच्छता भी गुणस्तुति है। व्याजस्तुति का उदाहरण सरल है।

दण्डी

निन्दा के व्याज से प्रतीयमाना स्तुति को व्याजस्तुति कहते हैं यहाँ जो दोष[2] लगते हैं वे भी

---

१ दूराधिकगुणस्तोत्र-व्यपदेशेन तुल्यताम्।
किञ्चित् विधित्सोर्या निन्दा व्याजस्तुतिरसौ यथा ॥३।३१॥

२ यदि निन्दन्निव स्तौति व्याजस्तुतिरसौ स्मृता।
दोषाभासा गुणा एव लभन्ते ह्यत्र संनिधिम् ॥ काव्यादर्श २।३४३॥

गुण ही होते हैं। तापसन रामेण जितय भूतधारिणी इस उदाहरण म परशुराम की, निन्दा के व्याज से, स्तुति की गई है। दो अन्य उदाहरण श्लेषमूला के हैं, एक अर्थश्लेषमूला का और दूसरा शब्दश्लेषमूला का।

उद्भट

शब्द शक्ति-स्वभाव[1] स जहाँ निन्दा प्रतीत हो, परन्तु वस्तुत स्तुति होती है उस सौन्दय को व्याजस्तुति कहते हैं। यह लक्षण भामह तथा दण्डी के लक्षणा के समान ही है। उत्तर आचार्यों न इसके दो भेद किये हैं—१ निन्दाव्याजेन स्तुति तथा २ स्तुतिव्याजेन निन्दा।

वामन

सम्भाव्य विशिष्ट कर्माकरणान्निन्दा स्तोत्रार्था व्याजस्तुति ॥४ ३ २४॥

स्तोत्रार्था निन्दा को व्याजस्तुति कहते है, लक्षण का यह अश तो वामन न प्राचीन आचार्यों के अनुसार ही लिखा है। परन्तु सम्भाव्य विशिष्ट कम क अकरण' स सम्बन्ध जोडकर इसका क्षेत्र सीमित बना दिया है। यह सयोग मात्र है कि भामह तथा वामन दोनो क उदाहरणो म राम के विशिष्ट कर्मों को न करने वाले राजा की निन्दा की गई थी। परन्तु स्तोत्रार्था निन्दा' अन्यत भी तो हो सकती है।

मम्मट

व्याजस्तुतिमुख निन्दा स्तुतिवा रूढिरन्यथा ॥११२॥

व्याजस्तुति पद के दो अथ है व्याजरूपा स्तुति, अर्थात स्थूलत निन्दा परन्तु वास्तव म स्तुति, 'व्याजेन स्तुति अर्थात सुनने म स्तुति परन्तु वास्तव म निन्दा। व्याजस्तुति के य ही दो भेद हैं।

रुय्यक

स्तुति निन्दाभ्या निन्दास्तुत्योर्गम्यत्वे व्याजस्तुति ॥

मम्मट के अनुसार इसके दो भेदो का वणन है। स्तुति निन्दा रूप के आधार पर इसका अप्रस्तुत प्रशसा से अन्तर है— 'स्तुति निन्दारूपस्यास्य विच्छित्तिविशेषस्य भावाद अप्रस्तुतप्रशसातो भेद ।' (पृ० १४३)

जयदेव

मम्मट एव रुय्यक के अनुकरण पर व्याजस्तुति का वणन है—

---

१ शब्दशक्तिस्वभावेन यत्र निन्देव गम्यते ।
वस्तुतस्तु स्तुति श्रेष्ठा व्याजस्तुतिरसौ मता ॥का०सा०, ५।६॥

उक्तिर्व्याजस्तुतिर्निन्दास्तुतिभ्यां स्तुतिनिन्दयोः ॥८।७१॥

अप्पयदीक्षित ने भी यही लक्षण दिया है।

विश्वनाथ

मम्मट की शब्दावली का ही हेर फेर करके साहित्यदर्पण में व्याजस्तुति का लक्षण दिया गया है—

निन्दास्तुतिभ्यां वाच्याभ्यां गम्यत्वे स्तुतिनिन्दयोः ॥१०।६०॥

'वाच्याभ्यां' पद के प्रयोग से यह लक्षण अधिक स्पष्ट बन गया है।

जगन्नाथ

प्रथमतः प्रतीत होने वाली निन्दा का स्तुति में और स्तुति का निन्दा में पर्यवसान व्याजस्तुति है— *आमुखप्रतीताभ्यां निन्दास्तुतिभ्यां स्तुतिनिन्दयोः क्रमेण पर्यवसानं व्याजस्तुतिः।*

(पृ० ५५६)

हिन्दी के आचार्य

स्तुति निन्दा मिस होत जहँ स्तुति मिस निन्दा जान। (कविप्रिया)

निंदि सराहि सराहि कै निंदि बिबिस ब्याज। (शब्दरसायन)

स्तुति निन्दा के व्याज कहु निन्दा स्तुति के व्याज।

अस्तुति अस्तुति-व्याज कहैं, निन्दा निन्दा साज॥ (काव्यनिर्णय)

कन्हैयालाल पोद्दार ने व्याजस्तुति के दो रूपों तथा रामदहिन मिश्र ने चार रूपों का वर्णन किया है।

उपसंहार

भामह ने निन्दा के व्याज से की गई स्तुति को व्याज-स्तुति कहा था। मम्मट ने इसके दो रूप बतलाये—स्तुतिपर्यवसायी निन्दा तथा निन्दापर्यवसायी स्तुति। कुछ आचार्य स्तुतिपर्यवसायी स्तुति तथा निन्दापर्यवसायी निन्दा नामक भेदों का भी उल्लेख करते हैं।

उद्भट ने इस बात पर बल दिया था कि व्याजस्तुति का सौन्दर्य इस बात पर है कि इसमें एक अर्थ वाच्यार्थ है और दूसरा अर्थ व्यंग्यार्थ।

३१ निदर्शना

भामह

यथा, इव अथवा वत शब्दों के बिना केवल क्रिया द्वारा ही विशिष्ट अर्थ का उपदर्शन[1]

---

१ क्रिययैव विशिष्टस्य तदर्थस्योपदर्शनात्।
ज्ञेया निदर्शना नाम यथेववतिभिर्विना ॥३।३३॥

निदर्शना अलंकार है। "मन्दद्युति सूर्य अस्त होता जा रहा है, श्रीमत्ता को यह बोध कराता हुआ कि उदय पतन के लिए ही है।' उदाहरण स्पष्ट है।

दण्डी

अर्थान्तर के समान सत् अथवा असत्[1] फल का निदर्शनीय के प्रसंग में निर्देश 'निदर्शन' अलंकार है। भामह ने 'निदर्शना' नाम दिया था, दण्डी ने 'निदर्शन'। सत और असत के अलग अलग उदाहरण दिये गये हैं। सन्निदर्शन का उदाहरण है—

उदयन्नेष सविता, पद्मेष्वर्पयति श्रियम्।
विभावयितुमृद्धीना, फलं सुहृदनुग्रहम् ॥२।३४९॥

उद्भट

संयोग से इस अलंकार का नाम 'विदर्शना'[2] लिखा हुआ है। दो वस्तुओं में असंभव[3] अथवा संभव सम्बन्ध द्वारा जहाँ उपमानोपमेय भाव की कल्पना की जाय वहाँ विदर्शना अलंकार है। उद्भट ने अभवद्वस्तुसम्बन्ध का निम्नलिखित उदाहरण दिया है—

विनोचितेन पत्या च रूपवत्यपि कामिनी।
विधुवन्ध्यविभावर्या प्रविभर्ति विशोभताम्॥

भवद्वस्तुसम्बन्ध का उदाहरण नहीं दिया गया और इन्दुराज ने भामह के उदाहरण से इस भेद को स्पष्ट किया है।

इस अलंकार के सम्बन्ध में अभवद्वस्तुसम्बन्ध पद सर्वप्रथम उद्भट ने प्रयुक्त किया था, उत्तराचार्यों ने प्रायः उसी को आधार बना लिया है। भामह तथा दण्डी के लक्षण उतने स्पष्ट नहीं थे।

वामन

वामन ने दण्डी के नाम 'निदर्शन' को अपनाया है। लक्षण है—

'क्रिययैव स्वतदर्थान्वयख्यापनं निदर्शनम्' ॥४।३।२०॥

---

१ अर्थान्तरप्रवृत्तेन किंचित् तत्सदृशं फलम्।
सदसद्वा निदर्श्येत यदि तत् स्यान्निदर्शनम्॥ काव्यादर्श, २।३४८॥

२ उद्भट के अतिरिक्त सब आचार्यों ने इस अलंकार का नाम निदर्शना लिखा है। मद्रास प्रति में का० सा० भी निदर्शना लिखता है परन्तु इन्दुराज के प्रामाण्य पर उद्भट के पाठ को प्रायः विदर्शना ही माना जाता है।

३ अभवद्वस्तुसम्बन्धो भवन्वा यत्र कल्पयेत।
उपमानोपमेयत्वं कथ्यते सा विदर्शना॥ का० सा० ५।१॥

केवल क्रिया के द्वारा ही अपना तथा अपने प्रयोजन के सम्बन्ध का ख्यापन निदशना है। लक्षण पर भामह का प्रभाव स्पष्ट है।

मम्मट

उद्भट की शब्दावली म मम्मट ने निदशना का लक्षण लिखा है—

अभवन् वस्तुसम्बध उपमापरिकल्पक ॥९७॥

'काव्यप्रकाश' के दो उदाहरणा म से एक वाक्याथ निदशना का है और दूसरा पदाथ निदशना का यद्यपि भेद का कथन स्पष्ट नहीं है।

निदशना के एक दूसरे रूप का भी वणन है—

स्वस्वहेत्वन्वयस्योक्ति क्रिययैव च साऽपरा ॥९८॥

दूसरे प्रकार की निदशना मे क्रिया के द्वारा ही अपना और अपने कारण क सम्बन्ध का कथन होता है। यह वामन की शब्दावली म निदशना की व्याख्या है जो मूलत भामह का अनुकरण था। उदाहरण है—

उन्नत पदमवाप्य यो लघुर्हेलयव स पतदिति ब्रुवन।
शलशेखरगतो दपत्कणश्चारमारुतधुत पतत्यध ॥

रुय्यक

सम्भवतासम्भवता वा वस्तुसम्बन्धेन गम्यमान प्रतिबिम्बकरण निदशना।'

लक्षण का मुख्य आधार 'प्रतिबिम्बकरण' है जो भ्रान्ति उत्पन्न कर सकता है। क्योकि दष्टान्त म भी बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव होता है। दोना अलकारा का अन्तर रुय्यक ने इस प्रकार स्पष्ट किया है—

निरपेक्षयो वाक्यार्थयो हि बिम्बप्रतिबिम्बभावो दष्टान्त। यत्र च प्रकृते वाक्यार्थे वाक्यार्थान्तरमारोप्यते सामानाधिकरण्यन तत्र सम्बन्धानुपपत्तिमूला निदशनव युक्ता न दष्टान्त।' (पृ० ९९)

मम्मट के समान रुय्यक ने पदाथवृत्ति तथा वाक्याथवत्ति दो भेद बतलाये है। यह शृखलान्याय से तथा माला से भी होती है। क्वचित निषध की सामथ्य से आक्षिप्त होकर सम्बन्ध की अनुपपत्ति म भी निदशना होती है।

क्वचित्पुन निषेधसामर्थ्याद आक्षिप्ताया
प्राप्त सम्बन्धानुपपत्त्यापि भवति। (पृ० १०१)

जयदेव

चन्द्रालोक का लक्षण अत्यन्त सामान्य है—

वाक्यार्थयो सदशयोरक्यारोपो निदशना ॥५।५८॥

विश्वनाथ

निदशना का लक्षण भी अ यो की अपेक्षा अधिक स्पष्ट एव सरल है शब्दावली उदभट एव मम्मट की है बिम्बानुबिम्बत्व को लक्षण म स्वीकार किया गया है—

सभव वस्तुसम्ब धोऽसभवन वापि कुत्रचित ।
यत्र बिम्बानुबिम्बत्व बोधयत सा निदशना ॥१०।५२॥

अप्पय्यदीक्षित

निदशना के तीन प्रकारा का वणन है—

(क) वाक्याथयो सदशयोरक्यारोपो निदशना ॥५३॥
यह जयदेव की शब्दावली है।

(ख) पदाथवत्तिमप्येके वद त्य या निदशनाम ॥५४॥
पूवस्मिन उदाहरणे उपमेये उपमानधर्मारोप इह तूपमाने उपमय धर्मारोप इति भेद । इय पदाथवृत्तिनिदशना ललितोपमेति जयदेवेन व्याहृता। (पौणमासी)
वस्तुत वाक्याथवत्ति एव पदाथवत्ति एक ही निदशना के दो भेद है।

(ग) अपरा बोधन प्राहु क्रिययाऽसत सदथयो ॥५५॥
तृतीयनिदशनाया तु स्वक्रियया परान प्रति सदसदथबोधन सम्भवदव समता गर्भीकरोति। (पृ० ६८)

जग नाथ

(व्यग्य अर्थो का नही कि तु) गहीत दो अर्थो का उपमा म परिणत होने वाला अथ प्राप्त अभेद निदशना कहलाता है—

'उपात्तयोरथयोराथभेद औपम्यपयवसायी निदशना।' (पृ० ४५६)

हि दी के आचाय

कौनहु एक प्रकार तें, सत अरु असत समान। (कविप्रिया, ११ ४९)

भि न वाक्य विधि अथ मिलि, कहै निन्शन आनि॥
कहिए त्रिविधि निदसना, वाक्य अथ सम होइ॥
एकहि ये पुनि और गुनि और वस्तु मे होइ॥
कहिए कारज देखि कछु भलो बुरो फल भाव॥ (श न्रसायन पृ० १७२)
एक क्रिया तें देत जहँ दूजी क्रिया लखाइ॥
सत असतहुँ ते कहत है निदरसना कविराइ॥
सम अनेक वाक्याथ को एक कहै धरि टेक॥
एक पद के अथ को, थाप यह वह एक॥ (का यनिणय ८,७१ २)

कन्हैयालाल पोद्दार ने मम्मट के अनुसार तथा रामदहिन मिश्र ने अप्पय्यदीक्षित के अनुसार निदर्शना का वर्णन किया है।

उपसहार

भामह की निदर्शना क्रिया के द्वारा विशिष्ट अर्थ की प्रतीति थी। दण्डी ने अपने सत-असत कार्य के द्वारा अर्थो के सत-असत कार्य का बोध निदर्शना बतलाया।

उदभट ने भवद्वस्तुसम्बन्ध तथा अभवद्वस्तुसम्बन्ध पदो द्वारा निदर्शना की व्याख्या की जिसको उत्तर आचार्यों ने स्वीकार कर लिया है। मम्मट ने इस लक्षण को और भी व्यवस्थित रूप दे दिया।

रुय्यक ने औपम्य के स्थान पर बिम्बप्रतिबिम्बकरण पद का प्रयोग किया है बिम्बप्रतिबिम्बभाव पद विश्वनाथ म भी आया है। जयदेव तथा दीक्षित के मत म सादृश्य के कारण दो भिन्न वाक्यों म ऐक्यारोप निदर्शना है।

मम्मट के अनुसार निदर्शना वाक्यार्थरूपा तथा पदार्थरूपा है। दीक्षित ने तीन भेदो का वर्णन किया है जिसम दण्डी की निदर्शना भी सम्मिलित है। हिन्दी के आचार्यों ने प्राय दीक्षित का ही अनुकरण किया है।

३२ उपमारूपक

भामह

उपमा के साथ उपमेय की तद्भाव साधना[१] करता हुआ कवि उपमा का प्रयोग करे तो (रूपक के निमित्त उपमा का उपयोग) उपमारूपक कहलाता है। उदाहरण है—

समग्र गगनायाममानदण्डो रथाङ्गिन ।
पादो जयति सिद्धस्त्रीमुखेन्दुनवदर्पण ॥३।३६॥

यह तो रूपक का भी उदाहरण है। कदाचित आचार्य इसमे गुणाकृति-समाश्रयत्व देखकर इस रूपक को उपमा के रूप से सयुक्त मानते हैं विष्णु का चरण दण्ड से गुण म समान है साथ ही आकृति मे भी इसी प्रकार दर्पण स गुण म समान है साथ ही आकृति म भी—उपमा की यह विशेषता इस रूपक को विशेष चमत्कार प्रदान करती है।

दण्डी

दण्डी ने उपमारूपक का खण्डन करते हुए लिखा है। कि उपमारूपक का अन्तर्भाव[२] रूपक के भेदो म ही हो जाता है। (काव्यादर्श २ ८८ ९)। उद्भट ने उपमारूपक का वर्णन ही नही

---

१ उपमानेन तद्भावमुपमेयस्य साधयन् ।
या वदत्युपमामेतद् उपमारूपक यथा ॥३।३५॥

२ उपमारूपक चापि रूपकेष्वेव दर्शितम् ॥ काव्यादर्श २।३५८॥

किया। वामन ने भामह के अनुसार उपमारूपक का वर्णन तो किया, परन्तु संसृष्टि के दो भेदों में से एक भेद के रूप में—'उपमाजन्य रूपकम् उपमारूपकम्' (४,३ ३२)। रुद्रट, मम्मट रुय्यक जयदेव, विश्वनाथ, अप्पय्यदीक्षित भी उपमारूपक का वर्णन नहीं करते। हिन्दी के आचार्यों ने भी उपमारूपक का वर्णन नहीं किया।

उपसंहार

उपमारूपक को भामह ने अलग अलंकार माना था परन्तु उत्तर आचार्यों ने सामान्यतः इसको स्वीकार नहीं किया। इसका अन्तर्भाव रूपक में ही हो जाता है। इसके चमत्कार में सन्देह नहीं परन्तु अत्यन्त विरल होने के कारण ही कदाचित् उत्तर आचार्य इसको ग्रहण न कर सके।

३३ उपमेयोपमा

भामह

उपमेय और उपमान यहाँ पर्याय[1] से उपमान और उपमेय बन जाते हैं। यह तृतीय सदृश व्यवच्छेद भाव है जो उपमेयोपमा का आधार है। 'अम्भोजमिव वक्त्रं ते त्वदास्यमिव पङ्कजम्'—उदाहरण स्पष्ट है।

दण्डी

दण्डी ने उपमेयोपमा को अलग अलंकार नहीं माना। उपमा का वर्णन करते हुए उसके अनेक भेदों में से एक भेद को अन्योन्योपमा नाम दिया है। यह अन्योन्योत्कर्षशंसिनी[2] है। उदाहरण वही है जो भामह ने दिया था।

'तवाननमिवाम्भोजमम्भोजमिव ते मुखम्।

उद्भट

पक्षान्तर हानि[3] (अन्य किसी के साथ तुलना की सम्भावना का अभाव) के लिए उपमान और उपमेय की अन्योन्यता का वर्णन उपमेयोपमा है। उद्भट ने भामह के लक्षण में पक्षान्तर हानि' पद के सन्निवेश द्वारा अपने लक्षण को अधिक विकसित बनाया है। इस सौन्दर्य में यह महत्त्वपूर्ण नहीं है कि उपमान उपमेय बन गया प्रत्युत यह कि अन्य उपमान की सम्भावना ही नहीं रही—यही विशेषता 'पक्षान्तरहानि' पद द्वारा व्यक्त की गई है। इस सम्बन्ध में इन्दुराज के विचार महत्त्वपूर्ण हैं। 'नात्रोपमानोपमेयभाव तात्पर्य किन्तु एतन्नेव द्वयमेवविध विश्रुत न

---

१ उपमानोपमेयत्वं यत्र पर्यायतो भवेत् ॥२।३७॥

२ इत्यन्योन्योपमा सेयमन्योन्योत्कर्षशंसिनी ॥ काव्यादर्श २।१८॥

३ अन्योन्यमेव यत्र स्यादुपमानोपमेयता।
उपमेयोपमामाहुस्तां पक्षान्तरहानिगाम् ॥ (का०सा० ५।१४)

त्वयदेतयो सदश वस्त्वन्तर विद्यत इति— वर विप भक्षय मा चास्य गहे भुक्त्वा इतिवत। अत्र हि विपभक्षण न विधीयते दुजनगहे भोजनपरिवजनतात्पर्यात। (पृ० ७२)।

'अयोय पद लक्षण मे कदाचित दण्डी के प्रभाव से आया होगा, क्योकि दण्डी ने उपमेयोपमा का अयोयोपमा के नाम से उपमा के भेदा मे वणन किया है।

वामन

भामह के अनुसार लक्षण है— क्रमेणोपमयोपमा ॥४ ३ १५॥

एक ही अथ का क्रमश उपमेयत्व और उपमानत्व वर्णित करना उपमेयोपमा है। उदाहरण सरल तथा स्पष्ट है।

मम्मट

विपयास उपमेयोपमा तयो ॥९१॥

इतरोपमान व्यवच्छेदपरा अलकृति उपमेयोपमा है। वाक्यद्वय मे उन दोनो, उपमेय-उपमान, मे परिवतन हो जाता है। लक्षण सरल एव स्पष्ट है।

रुय्यक

भामह के अनुकरण पर मम्मट के प्रभाव स निम्नलिखित लक्षण है—

'द्वया पर्यायेण तस्मिन्नुपमेयोपमा।

'पर्याय पद का प्रयोग युगपदभाव सूचित करता है। इस अलकार म इसी कारण वाक्यभेद[1] अनिवाय है।

जयदेव

च द्रालाक का लक्षण भामह तथा रुय्यक का अनुकरण है। कुवलयान द म इस लक्षण का यथावत् ग्रहण कर लिया गया है—

पर्यायेण द्वयोस्तच्चदुपमेयोपमा मता ॥५।१३॥

विश्वनाथ

पर्यायेण द्वयारतदुपमयापमा मता ॥१०।२७॥

इस लक्षण म रुय्यक तथा जयदेव की श ावली का ही अधिक प्रयाग है।

अप्पय्यदीक्षित

चित्रमीमासा म अय-कृत लक्षणा का खडन करक अप्पय्यदीक्षित न उपमयापमा का निम्नलिखित लक्षण दिया है—

---

१ पर्यायो यौगपद्याभाव । अत एवात्र वाक्यभेद । (पृ० ३६ ४०)

अन्योन्येनोपमा बोध्या व्यक्त्या वृत्त्यन्तरेण वा।
एकधर्माश्रया या स्यात् सोपमेयोपमा मता॥

जगन्नाथ

ततीय सदश-पदार्थ की निवत्ति के बोधक वर्णन म परस्पर उपमान उपमेय बन पदार्थों का सुन्दर सादृश्य उपमेयोपमा है।

'तृतीयसदशव्यवच्छेदबुद्धि फलक-वर्णनविषयीभूत परस्परम् उपमानोपमेयभावमापन्नयो-रथयो सादृश्य सुन्दरमुपमेयोपमा। (पृ० २६२)

हिन्दी के आचार्य

उपमा लोऊ दुहुँन की सा उपमा उपमेय॥ (काव्यनिर्णय ८।३१)

कन्हैयालाल पोद्दार तथा रामदहिन मिश्र न भी इसका वर्णन किया है।

उपसंहार

भामह न उपमेयोपमा की उदभावना की थी। प्राय सभी आचार्यों न इस अलग अलकार स्वीकार किया है। उदभट ने इसकी मुख्य विशेषता पक्षान्तरहानि को स्पष्ट किया। दण्डी ने इस सौन्दय का अन्योन्योपमा नाम से लिखा था। चित्रमीमांसा म अन्योन्येनोपमा पद का भी प्रयोग है। रुय्यक न लक्षण म 'पर्यायेण पद का प्रयोग किया था जो कई उत्तर आचार्यों म भी मिलता है। जगन्नाथ ने पुन 'ततीय सदृश्य व्यवच्छेद' को लक्षण म महत्त्व दिया है।

३४ सहोक्ति

भामह

वस्तुद्वय म समाश्रित परन्तु तुल्यकाल म विद्यमान दो क्रियाओं का जहा एक ही पद[1] के द्वारा कथन हो वहा सहोक्ति है। उदाहरण सरल है—

वर्द्धिमायान्ति यामिन्य कामिना प्रीतिभि सह।

दण्डी

सम्बन्धी भेद से भिन्न दो गुण, क्रिया आदि का सहभाव[2] स कथन सहोक्ति ह। यहाँ सहभाव कायकारण[3] सम्बन्ध के बिना होना चाहिए। एक उदाहरण गुणसहोक्ति का है दूसरा

---

१ तुल्यकाले क्रिये यत्र वस्तुद्वयसमाश्रये
पदेनैकेन कथ्यते सहोक्ति सा मता यथा॥३।३६॥

२ सहोक्ति सहभावेन कथन गुणकर्मणाम्॥ काव्यादर्श २।३५१॥

३ यत्र तु कार्यकारणभाव विना सहभाव तत्र सहोक्ति। (प्रभा, ३०४)

क्रियासहोक्ति का और तीसरा गुण क्रिया-सहोक्ति का। तीसरे उदाहरण में गुणक्रियासहोक्ति का चमत्कार आचार्यों ने इंगित किया है—

'यान्ति साधं जनानन्दं वृद्धिं सुरभिवासराः ॥ २।३५८॥"

(वृद्धिरूपस्य गुणस्य व्याप्तिरूपस्य गमनस्य च तुल्यतया वचनात् एषा गुणक्रियासहोक्तिरिति तरुणवाचस्पत्यादयः ।—प्रभा पृ० ३०५)

उद्भट

सहोक्ति का यथावत्[1] वही लक्षण है जो भामह ने दिया। सहोक्ति में एक ही पद के द्वारा वस्तुद्वय में समाश्रित परन्तु तुल्यकाल में विद्यमान दो क्रियाओं का वर्णन होता है। तुल्यकाले पद का प्रयोग भामह तथा उद्भट ने सहोक्ति को दीपक से पृथक करने के लिए किया है। इस लक्षण के सम्बन्ध में विवृतिकार की टिप्पणी भी ध्यान देने योग्य है— अलंकारप्रस्तावाच्चात्र चक्षुषा सह मैत्रः भुङ्क्ते इत्यत्र सहोक्तिर्न तु चैत्रमैत्रौ सह भुञ्जाते इत्यत्र। (नोट्स पृ० १४१)

वामन

लक्षण भामह के अनुसार है—

वस्तुद्वयक्रिययोस्तुल्यकालयोरेकपदाभिधानं सहोक्तिः ॥४.३.२८॥

सहोक्ति में दो वस्तुओं की तुल्यकालीन दो क्रियाओं का एक ही पद से कथन होता है। यह तुल्ययोगिता से भिन्न है। सहोक्ति का चमत्कार सहार्थक[2] शब्द के प्रयोग पर आश्रित है तुल्ययोगिता का नहीं। तुल्ययोगिता में 'न्यूनाधिक भाव' विवक्षित होता है सहोक्ति में नहीं।[3]

रुद्रट

वास्तव-वर्ग का प्रथम अलंकार सहोक्ति है। रुद्रट ने इसके तीन प्रकारों का वर्णन किया है। ये तीनों एक ही विशेषता के उपभेद मात्र हैं। सामान्य लक्षण है—

भवति यथारूपोऽर्थः कुर्वन्नेवापरं तथाभूतम्।

उक्तिस्तस्य समाना तेन समं या सहोक्तिः सा ॥७।१३॥

एक (प्रधान) अर्थ जिस गुण से युक्त हो दूसरे अप्रधान अर्थ को भी उसी गुण से युक्त कर दे तो प्रधान अर्थ के अप्रधान के साथ कथन को सहोक्ति कहते हैं। दोनों अर्थों में एककालता आवश्यक है। नमिसाधु के अनुसार— एवकारोऽयकाल निवृत्त्यर्थः। कुर्वन्नेव भवति। न तु भूत्वा करोति कृत्वा भवतीत्यर्थः। अतस्तस्य कुर्वतोऽर्थस्य तेन कार्येणार्थेन समं समाना तुल्या

---

१ तुल्यकाले क्रिये यत्र वस्तुद्वयसमाश्रिते।
पदेनैकेन कथ्येते सा सहोक्तिर्मता सताम् ॥ का० सा० ५।१५॥

२ दण्डी के प्रभाव से वामन ने वृत्ति में सह शब्दसामर्थ्यात् जोड़ दिया है। (पृ० २७४)

३ अत्रार्थयोर्न्यूनत्वविशिष्टत्वे न स्तः। इति नेयं तुल्ययोगिता। (कविप्रियावृत्ति)

यान्ति सा सह साधमुक्ति सहोक्ति । (काव्यालकार, पृ० ७७)

सहोक्ति के अन्य भेद म कर्त्ता का प्राधान्य नही, प्रत्युत क्रियमाण[1] का प्राधान्य होता है।

यो वा यन नियत तथव भवता च तेन तस्यापि ।
अभिधान यत्क्रियत समानमन्या सहोक्ति सा ॥७।१५॥

उदाहरण क्षयमति सा वराकी स्नेहेन सम त्वदीयेन ॥७।१६॥

सहोक्ति के मुख्य अवयव तुल्यकाल' तथा एकपदाभिधान एक प्रकार स आ गय है। भामह, उद्भट न 'तुल्यकाले क्रिय और वामन ने 'क्रिययोस्तुल्यकालयो द्वारा 'क्रिया पर वल दिया था दण्डी न "सहभावेन कथन गुणकर्मणाम द्वारा 'गुण भी जोड दिया। रुद्रट ने सामान्य लक्षण के अनन्तर एक लक्षण गुण के लिए भी दे दिया ह यद्यपि क्रिनेत्यपर पद द्वारा खडन की ध्वनि[2] व्यक्त होती है।

अन्योन्य निरपेक्षौ यावर्थविककालमकविधौ ।
भवतस्तत्कथन यत्सापि सहोक्ति क्रिनेत्यपरे ॥७।१७॥
(एकविधौ समानधमयुक्तौ) ।

मम्मट

सा सहोक्ति सहाथस्य बलादक द्विवाचकम ॥११२॥

'सह शब्द के अथ की सामथ्य से एक पद दो पदा से सम्बद्ध हो ता वह सहोक्ति का चमत्कार है। यह लक्षण भामह-उद्भट की परम्परा म है।

रुय्यक

'उपमानोपमययोरेकस्य प्राधान्यनिर्देशेऽपरम्य सहाथसम्बन्धे सहोक्ति ।'

सहोक्ति के मूल म अतिशयोक्ति रहती है तत्र नियमनातिशयोक्तिमूलत्वमस्या । सा च काय-कारणप्रतिनियमविपययरूपा अभेदाध्यवसायरूपा च। अभेदाध्यवसायश्च श्लेषभित्तिका ऽन्यथा वा। एतद विशेषणपरिहारेण सहोक्तिमात्र नालकार ।' (पृ० १०८ ५)

जयदेव

चन्द्रालोक' (तथा कुवलयानन्द' का) लक्षण अत्यन्त सामान्य एव प्राथमिक है।

सहोक्ति सहभावश्चेद भासते जनरजन ॥५।६०॥

---

१ पूवस्या कतु प्राधान्य क्रियमाणस्य गणभाव । इह तु क्रियमाणस्य प्राधान्य कुवनस्त्वप्राधान्यमिति भेद । (नमिसाधु प ७८)

२ क्लिश दोऽस्ताद्यौ । (नमिसाधु, पृ ७८)

विश्वनाथ

सहार्थस्य बलादेक यत्र स्यादवाचक द्वया ।
सा सहोक्तिमूलभूतातिशयोक्तिर्यदा भवेत ॥१०।५५॥

इस लक्षण म मम्मट की शब्दावली तथा रुय्यक की वत्ति का सम्मिलित प्रभाव है—विश पत अतिशयोक्तिमूलत्व की दृष्टि स। साहित्यदपण का लक्षण अधिक विकसित एव स्पष्ट ह।

जगन्नाथ

एक गौण और एक प्रधान अर्थों का सह शब्द के अथ के साथ सम्बध सहोक्ति है— गुण प्रधानभावाच्छिन्न सहार्थसम्बध सहोक्ति । (पृ० ४८०)।

हिन्दी के आचार्य

हानि-वद्धि सुभ-असुभ कछु कहिय गूढ प्रकास।
होय सहोक्ति सु साथ ही बरनत केशवदास॥१२।२०॥

दवकवि ने सहोक्ति के नाम म ही लक्षण माना है। दास कवि के अनुसार —

कछु कछु सग सहोक्ति कछु ॥१५।४६॥

कन्हैयालाल पाद्दार तथा रामदहिन मिश्र न मम्मट के अनुसार सहोक्ति का वणन किया है।

उपसहार

भामह न सहोक्ति की उद्भावना की थी। दण्डी न सहभाव पर जोड दिया। उदभट, वामन के लक्षण परम्परा की पुष्टि करत ह। मम्मट स सहार्थस्य बलाद पदो का लक्षण म योग होन लगा। विश्वनाथ न इस बात पर बल दिया है कि इस अलकार के मूल म अतिशयोक्ति रहती है यह विशेषता रुय्यक ने लक्षण की वत्ति म स्पष्ट कर दी थी, विश्वनाथ ने अनुकरण मात्र किया है। रुद्रट न वास्तव एव औपम्य दो वर्गों म सहोक्ति का वणन किया है जिसस काय कारण भाव एव औपम्य दोना का समावश हो गया है।

३५ परिवृत्ति

भामह

किसी वस्तु क त्यागने पर बदले म किसी विशिष्ट[1] वस्तु की प्राप्ति परिवृत्ति है यह अर्था न्तरन्यास म युक्त होती है। भामह न दो बातो पर बल दिया है—विशिष्ट की प्राप्ति तथा अर्थान्तरन्यास की अनिवार्यता। दूसर आचाय इन बातो को नही मानत।

---

१ विशिष्टस्य यदादानमन्यापोहेन वस्तुन ।
अर्थान्तरन्यासवती परिवृत्तिरसौ यथा ॥३।४१॥

दण्डी

'का यादश म परिवत्ति का लक्षण अत्य त सामा य है— अर्थों (वस्तुओ) का विनिमय[1] परिवत्ति है।' उदाहरण स्पष्ट तथा सामा य है। अथा तर यास का सकेत न लक्षण मे है और न उदाहरण म।

उदभट

किसी वस्तु का सम, यून अथवा विशिष्ट क साथ परिवतन[2] परिवत्ति है इसका स्वभाव अर्थानथ है। 'अर्थानथस्वभावम की याख्या म इ दुराज न लिखा है— अथश देन हि उपादेयो र्थोभिधीयत अथ्यते साविति कृत्वा। यत्र च साम्य तत्राथनीयत्व नास्ति। तेनाथ्यत्वाभावानुगमा त्तत्रानथत्वमभिधीयते। तेन यत्रा कृष्टेन निकृष्ट परिगृह्यते तत्र दु खहेतुत्वादथ प्रतिपक्षत्वेना नथस्वभावता। यत्र तु निष्कृष्टेनोत्कृष्ट परिगृह्यते तत्रोत्कृष्टस्य सुखहेतुत्वेनापादेयत्वादथस्व भावता। (पृ० ७४) इस प्रकार क्रम विपयय द्वारा स्पष्टीकरण यह होगा कि सम-न्यून के साथ अनथ का तथा विशिष्ट के साथ अथस्वभाव का विनिमय परिवत्ति है।

वामन

उदभट के समान वामन का लक्षण है—

'सम विसदशाभ्या परिवतन परिवत्ति ।' (४,३,१६)

परिवतन पद का प्रयोग तथा समान असमान की योजना उदभट के प्रभाव का सकेत देती है।

रुद्रट

युगपददानादान अ यो य वस्तुना क्रियेत यत।
क्वचिद उपचर्यते वा प्रसिद्धित सति परिवत्ति ॥७।७७॥

दो वस्तुओ का एक साथ त्याग और ग्रहण परिवत्ति है। दानादान के अभाव म भी प्रसिद्धि के कारण उपचार वश एसा मान लिया जाता है। लक्षण म कोई विशषता नही है।

मम्मट

उदभट के प्रभाव म मम्मट ने परिवत्ति अलकार का विवेचन इस प्रकार किया है—

परिवर्तिविनिमयो योऽर्थाना स्यात समासमै ॥११३॥

---

१ अर्थाना यो विनिमय परिवृत्तिस्तु सा स्मता ॥ काव्यादश २।३५१॥

२ सम-न्यून विशिष्टस्तु कस्यचित्परिवर्तनम्।
अर्थानर्थस्वभाव यत् परिवृत्तिरभाणि सा ॥ का०सा ५।१६॥

एक उदाहरण म सम से सम का विनिमय है दूसर म असम का। मम्मट का ल ाण अ यत स्पष्ट तथा सरल है।

रय्यक

सम-न्यूनाधिकाना समाधिकन्यूनविनिमय परिवत्ति ।'

मम्मट के लक्षण को ही अधिक स्पष्ट किया गया है वत्ति और भी याख्या करती है—समेन तुल्यगुणेन त्यज्यमानन तादशस्यादानम। तथाधिकनोत्कृष्टगुणन दीयमानेन न्यूनस्य गुण हीनस्य परिग्रह । एव न्यूनेन हीनगुणेन त्यज्यमानेन अधिकगुणस्य उत्कृष्टस्य स्वीकार । तदेषा त्रिप्रकारा परिवत्ति । (पृ० १९१)

जयदेव

च द्रालोक (एव कुवलयान द') का लक्षण रय्यक की शब्दावली म है—

परिवत्तिविनिमयो न्यूनाभ्यधिकयोर्मिथ ॥५।९४॥

विश्वनाथ

परिवृत्तिर्विनिमय सम-न्यूनाधिकर्भवत ॥१०।८१॥

इस लक्षण पर रय्यक एव जयदेव की श दावली का सम्मिलित प्रभाव है।

जग नाथ

' परकीय यत्किचिद् आदानविशिष्ट परस्म स्वकीय यत्किचिद वस्तु-समपण परिवत्ति । (पृ० ६४७)

समपरिवत्ति के दो उपभेद हैं उत्तम क साथ उत्तम का एव यून क साथ यून का। इसी प्रकार विषमपरिवत्ति के भी दो उपभेद है।

हि दी के आचार्य

जहाँ करत कछु और ही उपजि परत कछु और। (कविप्रिया १३ ३९)

केशव का लक्षण भ्रामक है परन्तु उदाहरण ठीक है—

द परिरभन मोहन का मन मोहि लिया सजनी सुघराई ॥१३।४१॥

देवकवि क अनुसार—पद अयन का लौटिया सा कहिय परिवृत्ति।

दासकवि का लक्षण ह—कछु लीया दीजो कयन ताको विनिमै जानु ॥१५।१८॥

क हैयालाल पाद्दार तथा रामदहिन मिश्र न जयदेव क अनुसार वणन किया है।

उपसहार

भामह न परिवत्ति की उद्भावना की थी और इस अलङ्कार को अथान्तरवती माना था।

दण्डी ने लक्षण म 'विनिमय पद का प्रयोग किया। उदभट ने लक्षण को वधानिक बनाया एव 'सम-न्यूनविशिष्ट' एव अथानथ दा विशेषताआ को जोड दिया। उत्तर आचार्यो ने इन विशेषताआ को लक्षण म आदर दिया है।

मम्मट ने 'समपरिवत्ति एव 'असमपरिवत्ति दा भेद बतलाय थ जगनाथ ने इनके दो दो उपभेद कर दिये। भेद वणन आचार्यों का प्राय अभीष्ट नही रहा।

३६ ससन्देह

भामह

उपमेय की स्तुति' करने के लिए कभी उपमान के साथ उसकी तदरूपता और कभी भेद का मसन्देह वणन ससन्देह अलकार है।

दण्डी

दण्डी ने इस अलकार का अतभाव' उपमा के एक भेद सशयापमा' मे कर दिया है (काव्यादश, २,२६)।

उदभट

समन्दह का लक्षण यथावत भामह मे ग्रहण किया गया है। उपमय की प्रशसा के निमित्त कवि प्रथम तो उपमान के साथ उसकी समानता के कारण एकता का सन्देह करता है फिर उप मय-उपमान के अतर पर आ जाना ह। विष्णु क हाथ म शख का वणन करत हुए कवि ने सन्दह व्यक्त किया— क्या यह यश सचय है ? फिर अतर व्यक्त किया— यश सचय हाता तो पिण्डीभूत क्या हाता ?

उदभट ने समन्देह क अय रूप सन्देह का भी विवचन किया है। किसी अय अलकार के सौन्दय को उत्पन्न करन क लिए सन्देह न होत हुए भी कल्पित सन्देह व्यक्त करना भी सन्दह' अलकार है। इम रूप म कवि का सन्देह नहा होता वह दूसरा के सन्देह की सभावना करता ह।

उदाहरण स्पष्ट है—

नीलान्द क्रिमय मरौ धूमोथ प्रलयानल।
इति य शङ्कयत श्याम पक्षीन्द्रेकत्विपि स्थित॥

---

१ उपमानेन तत्त्व च भद च वण्न पुन।
ससन्देह वच स्तुत्यै ससन्देह विदुयथा॥३।४३॥

२ अनन्वयससन्देहावुपमास्वव दर्शितौ॥काव्यालङ्कार २।३५८॥

३ अलकारान्तरच्छायो यत्कृत्वा धीषु बधनम्।
असन्देहेपि सन्देहरूप सन्देहनाम तत्॥ का० सा० ६।३॥

वामन

भामह का समन्वय यहाँ सन्देह का गया है। अतिशयार्थ (चमत्कार के निमित्त) उपमान और उपमेय का उभय कोटि का गमन सन्देह अलंकार है—

उपमानोपमेयगमन सन्देह ॥४।३।११॥

रुद्रट

रुद्रट के अनुसार सन्देह अलंकार का नाम संशय है। संशय है—सादृश्य के कारण एक वस्तु में अन्य विषयों का सन्देह अतिशयोक्ति संशय है। संशय के अन्य प्रकार भी हैं जो दोनों ही निश्चयगर्भ अथवा निश्चयान्त हो सकते हैं—

(क) उपमेय में असंभव वस्तु की विद्यमानता अथवा संभव वस्तु की अविद्यमानता का वर्णन।

(ख) उपमान में असंभव वस्तुओं की विद्यमानता अथवा संभव वस्तु की अविद्यमानता।

संशय का एक भेद यह है जहाँ सादृश्य के कारण उपमानोपमेय में कर्ता आदि कारकों से सम्बद्ध इस प्रकार का सन्देह हो कि कारक उपमान है या उपमेय। उदाहरण सरल है—

गमनमधीत हंसस्त्वत्त सुभग त्वया नु हंसस्य ।
किं शशिनः प्रतिबिम्बं वदनं ते किं मुखस्य शशी ॥८।६६॥

मम्मट

ससन्देहस्तु भेदोक्तौ तदनुक्तौ च संशयः ॥९२॥

सन्देह के दो प्रकार हैं—उपमानोपमेय के भेद का कथन करते हुए तथा भेद का कथन न करते हुए। यह निश्चयगर्भ भी हो सकता है और निश्चयान्त भी।

रुय्यक

विषयस्य सन्दिह्यमानत्वं सन्देहः ।

'प्रकृताप्रकृतगतत्वेन कविप्रतिभा थापिते सन्देहे सन्देहालंकार । स च त्रिविधि । शुद्धो निश्चयगर्भो निश्चयान्तश्च। (पृ० ५३) मम्मट के प्रभाव को ही रुय्यक ने आगे बढ़ाया है।

जयदेव

स्मृति तथा भ्रान्ति के समान सन्देह का लक्षण उनके नामों में ही माना गया है—'तदेवा लकृतित्रयम्।' 'कुवलयानन्द' में भी यही शब्दावली है—

'स्यात स्मृति भ्रान्ति सन्देहैस्तदङ्कालकृतित्रयम् ॥२४॥"

विश्वनाथ

सन्देहः प्रकृतेऽन्यस्य संशयः प्रतिभोत्थितः ।
शुद्धो निश्चयगर्भोऽसौ निश्चयान्त इति त्रिधा ॥१०।३६॥

इस लक्षण एव भेदो पर रुय्यक की वृत्ति का प्रभाव स्पष्ट है।

अप्पय्यदीक्षित

चित्रमीमासा म अन्य मता का खण्डन करके सदह अलकार का निम्नलिखित लक्षण दिया गया है—

बुद्धि सर्वात्मना यो याक्षेपिनानाथसश्रया।
सादश्यमूला वाधस्पृक स देहालङ कृतिमता॥

जग नाथ

सादश्य के कारण हानेवाला परस्पर विराध भासित करनेवाली अनक कोटिया का सुदर ज्ञान ससदेह अलकार है सादृश्यमूला भासमानविरोधका समबला नानाकोटयवगाहिनी धी रमणीया मस देहालकृति।' (पृ० ३३९)

हिन्दी के आचाय

देवकवि ने सदह को लक्षण नाम म ही माना है। दासकवि के अनुसार भी यह लश्न प्रकट नाम है। कहैयालाल पाद्दार तथा रामदहिन मिश्र ने मम्मट के अनुसार वणन किया ह।

उपसहार

सस देह स देह तथा सशय ये तीन नाम इस अलकार के लिए प्रचलित है 'सशय' का प्रयोग कम है यह नाम रुद्रट द्वारा दिया गया वामन न स देह नाम का प्रयाग किया था।

मस देह के उदभावक भामह है। दण्डी ने सशयापमा म इसका अन्तर्भाव कर दिया। उदभट ने भामह का लक्षण ग्रहण किया था साथ ही एक अन्य रूप 'स देह' की भी कल्पना की है। भाज ने स दह का विस्तार[1] से विवेचन किया है। रुय्यक के अनुसार विषय मे विषयी का स दह ही स देह अलकार है।[2] स देह कवि-कल्पित हाना चाहिए, अयथा अलकार नही बन सकता।

सन्देह क भेदो का सकेत उदभट म प्राप्त होता है। रुद्रट ने इसक तीन भेद शुद्ध निश्चयगभ एव निश्चयान्त बतलाय जिनका वणन उत्तर आचार्यों ने भी किया है। मम्मट इसके *प्रथम* दो भेद 'भेद की उक्ति' तथा अनुक्ति' बतलाते हैं। 'अलकार रत्नाकर म' सादश्येतर सम्बघ

---

१ अथयोरतिसादश्याद्यत्र दोलायते मन।
तमेकानेकविषय कवय सशय विदु॥
यत्रकविषयोऽनको यस्मिन्नेकत्र शङ्क्यते।
यस्मिन्नेकमनेकत्र सोऽनेकविषय स्मृत॥ (४४१ २)

२ तस्यार्थे सन्दिह्यमानत्वे सन्देह॥३०॥

निदर्शन म भी सदेह माना गया है परन्तु अन्य आचाय इससे सहमत नही। हिन्दी के अधिकतर आचार्यों ने सन्देह को 'लक्षण नाम प्रकाश' माना है।

३७ अनन्वय

भामह

असादृश्य की विवक्षा[1] *म किसी वस्तु की उसी के साथ उपमयता और* उपमानता को अनन्वय कहते हैं— 'इन्दीवराभनयन तवेव वदन तव।"

दण्डी

अनन्वय अलग अलकार नहा है इसका अन्तर्भाव 'असाधारणोपमा' म हा जाता है— 'आत्म नवाभवत तुल्यमित्यसाधारणापमा (काव्यादश २।३७) द्वारा इसकी व्याख्या हो चुकी है।

उद्भट

भामह के लक्षण की ही यहाँ यथावत आवृत्ति हो गई है। असादृश्य की विवक्षा का इन्दुराज ने स्पष्ट कर दिया है कि उपमेय के समान कोई भी उपमान नही है यही इस अलकार का अभीष्ट है नात्रोपमानापमेयभाव तात्पय किन्तु उपमेयोपमावद उपमानान्तरव्यावृत्ताविल्यय।

वामन

असादृश्य विवक्षा की वज्ञानिकता के बिना ही वामन ने अनन्वय का सामान्य लक्षण बना दिया है— एकस्योपमयापमानत्वेऽनन्वय। (४ ३ १४) वामन की सूत्र शैली पूर्वाचार्यों से कोई लाभ न उठा सकी।

मम्मट

उपमानोपमेयत्वे एकस्यैवकवाक्यगे ॥९१॥

एक वाक्य म एक ही उपमानत्व एव उपमयत्व को अनन्वय कहते हैं। अनन्वय म अन्य उपमान के सम्बन्ध का अभाव होता है। एकवाक्य पद अनन्वय क लक्षण का अधिक वज्ञानिक बना देता है।

रुय्यक

मम्मट की शब्दावली मे ही अनन्वय का लक्षण है—

'एकस्यवोपमानोपमेयत्वेऽनन्वय।

---

१ यत्र तेनव तस्य स्यादुपमानोपमेयता।
असादृश्यविवक्षातस्तमित्याहुरनन्वयम् ॥३।४५॥

जयदेव

मम्मट तथा रुय्यक की शब्दावली म अनन्वय का लक्षण है—

उपमानोपमयत्वे यत्रवस्यव जाग्रत ' ॥५।१२॥

विश्वनाथ

उपमानोपमेयत्वमेकस्यव त्वनन्वय" ॥१०।२६॥

रुय्यक एव जयदेव की शब्दावली का लक्षण म प्रयोग है। 'कुवलयानन्द' म "उपमानोपमेयत्व यदेकस्यव वस्तुन '॥१०॥

अप्पय्यदीक्षित

'चित्रमीमासा का लक्षण निम्नलिखित है—

स्वस्य स्वनोपमा या स्यादनुगाम्यकधर्मिका।
अन्वथ नामधेयोऽयमनन्वय इतीरित ॥

जगन्नाथ

दूसरे सदृश के निवारक वणन म एक ही उपमान उपमेय वाला सादृश्य अनन्वय है। उपमा क समान अनन्वय के भी पूण लुप्त भेद हैं जिनके उपभेद भी हो सकते हैं। लक्षण है—

द्वितीयसदृशव्यवच्छेदफलकवणनविषयीभूत यदेकोपमानोपमेयक सादृश्य तदनन्वय। (पृ० २६९)

हिन्दी के आचाय

जाकी समता ताहि कौ कहत अनन्वय भेय (काव्यनिणय ८।३१)

कन्हैयालाल पोद्दार तथा रामदहिन मिश्र न मम्मट के अनुसार विवचन किया है।

उपसहार

उदभावक भामह के अनुसार असादृश्यविवक्षा' अनन्वय का आधार है। दण्डी न इसका अन्तर्भाव' असाधारणोपमा म कर लिया परन्तु उत्तर आचार्यों ने उस अन्तर्भाव को स्वीकार नहीं किया। उदभट म भामह की आवृत्ति है। रुय्यक न असादृश्य विवक्षा को 'द्वितीय सब्रह्मचारिनिवृत्ति कहा है। मम्मट न एकवाक्य पद को लक्षण म जोड दिया जिसको उत्तर आचार्यों न प्राय स्वीकार कर लिया।

जगन्नाथ न अनन्वय के पूण' एव 'लुप्त[2] भेद किय और पूण के उपमा के समान छह उप

---

१ भोज तथा हेमचन्द्र ने भी इसको उपमा का भद माना है।

२ स च पूर्णो लुप्तश्चेति तावद्द्विविध। पूर्णस्तूपमावत षड्विधोऽपि सभवति। लुप्तेष्वपि धमलुप्त पञ्च विधोऽपि सभवति। (पृ २७१)

निरधन म भी सदेह माना गया है परन्तु अन्य आचाय इससे सहमत नही। हिन्दी के अधिकतर आचार्यों न सन्देह को 'लक्षण नाम प्रकाश' माना है।

३७ अनन्वय

भामह

असादृश्य की विवक्षा[1] म किसी वस्तु की उसी के साथ उपमेयता और उपमानता को अनन्वय कहते हैं—'इन्दीवराभनयन तवेव वदन तव।

दण्डी

अनन्वय अलग अलकार नही है इसका अन्तर्भाव असाधारणोपमा मे हो जाता है—'आत्म नवाभवत तुल्यमित्यसाधारणापमा (कान्यादश, २।३७) द्वारा इसकी व्याख्या हो चुकी है।

उदभट

भामह के लक्षण की ही यहाँ यथावत आवत्ति हो गई है। असादृश्य की विवक्षा को इन्दु राज ने स्पष्ट कर दिया है कि उपमेय के समान कोई भी उपमान नही है यही इस अलकार का अभीष्ट है नात्रापमानोपमेयभावे तात्पय किन्तु उपमेयोपमावद उपमानान्तरव्यावत्तावित्यथ।

वामन

असादृश्य विवक्षा की वज्ञानिकता के बिना ही वामन न अनन्वय का सामान्य लक्षण बना दिया है— एकस्योपमयापमानत्वेऽनन्वय।' (४ ३,१८) वामन की सूत्र शली पूर्वाचार्यों से कोई लाभ न उठा सकी।

मम्मट

उपमानोपमेयत्वे एकस्यवकवाक्यगे ॥९१॥

एक वाक्य म एक ही उपमानत्व एव उपमयत्व को अनन्वय कहते हैं। अनन्वय म अन्य उप मान के सम्बन्ध का अभाव होता है। 'एकवाक्य पद अनन्वय के लक्षण को अधिक वज्ञानिक बना देता है।

रुय्यक

मम्मट की शब्दावली म ही अनन्वय का लक्षण है—

एकस्यवोपमानोपमेयत्वेऽनन्वय।

---

[1] यत्र तेनव तस्य स्यादुपमानोपमेयता।
असादृश्यविवक्षातस्तमित्याहुरनन्वयम् ॥३।४५॥

जयदेव

मम्मट तथा रुय्यक की शब्दावली में अनन्वय का लक्षण है—

'उपमानोपमेयत्वे यदेकस्यैव जाग्रत' ॥५।१२॥

विश्वनाथ

'उपमानोपमेयत्वमेकस्यैव त्वनन्वय' ॥१०।२६॥

रुय्यक एवं जयदेव की शब्दावली का लक्षण में प्रयोग है। कुवलयानन्द में 'उपमानोपमेयत्व यदेकस्यैव वस्तुन' ॥१०॥

अप्पय्यदीक्षित

'चित्रमीमांसा' का लक्षण निम्नलिखित है—

स्वस्य स्वेनोपमा या स्यादनुगाम्येकधर्मिका।
अन्वर्थ नामधेयोऽयमनन्वय इतीरित ॥

जगन्नाथ

दूसरे सदृश के निवारक वर्णन में एक ही उपमान-उपमेय वाला सादृश्य अनन्वय है। उपमा के समान अनन्वय के भी पूर्ण लुप्त भेद हैं जिनके उपभेद भी हो सकते हैं। लक्षण है—

द्वितीयसब्रह्मचार्यव्यवच्छेदफलकवर्णनविषयीभूत यदेकोपमानोपमेयक सादृश्य तदनन्वय। (पृ० २६९)

हिन्दी के आचार्य

जाकी समता ताहि कौं कहत अनन्वय भेय (काव्यनिर्णय ८।३१)

कन्हैयालाल पोद्दार तथा रामदहिन मिश्र ने मम्मट के अनुसार विवेचन किया है।

उपसंहार

उदभावक भामह के अनुसार 'असादृश्यविवक्षा' अनन्वय का आधार है। दण्डी ने इसका अन्तर्भाव[1] असाधारणोपमा में कर दिया परन्तु उत्तर आचार्यों ने उस अन्तर्भाव को स्वीकार नहीं किया। उद्भट में भामह की आवृत्ति है। रुय्यक ने असादृश्य विवक्षा को 'द्वितीय सब्रह्मचारिनिवृत्ति' कहा है। मम्मट ने 'एकवाक्य' पद को लक्षण में जोड दिया, जिसको उत्तर आचार्यों ने प्राय स्वीकार कर लिया।

जगन्नाथ ने अनन्वय के 'पूर्ण' एवं 'लुप्त'[2] भेद किये और पूर्ण के उपमा के समान छह उप

---

१ भोज तथा हेमचन्द्र ने भी इसको उपमा का भेद माना है।

२ स च पूर्णो लुप्तश्चेति तावद्द्विविध । पूर्णस्तूपमावत् षड्विधोऽपि सम्भवति। लुप्तेष्वपि धर्मलुप्त पञ्च विधोऽपि सम्भवति। (पृ० २७१)

भेद एव लुप्त के पाच भेद बतलाये। भेदोपभेदो का वणन आचार्यों को रुचिकर नही रहा।

अनन्वय तथा लाटानुप्रास म अतर है। अनन्वय म शब्दक्य आनुषगिक है, परन्तु लाटानुप्रास मे प्रयोजक—

> अनन्वये च शब्दक्यमौचित्यादानुषगिकम।
> अस्मिस्तु लाटानुप्रासे साक्षादेव प्रयोजकम्॥ (साहित्यदपण, १० २६)

३८ उत्प्रेक्षावयव

भामह

श्लिष्ट के अथ[1] से सयुक्त उत्प्रेक्षावयव किंचित उत्प्रेक्षा स समन्वित होता है और रूपकाथ से भी युक्त होता है। उदाहरण है—

> तुल्योदयावसानत्वाद गतेऽस्त प्रति भास्वति।
> *वासाय वासर क्लान्तो, विशतीव तमोगहम्॥३।४८॥*

यहा 'उदय' तथा अवसान म श्लिष्ट का अथ' है विशतीव मे उत्प्रेक्षा का स्पश, तमो गहम मे रूपक का अथ है। यहा उत्प्रेक्षा का सौन्दय सबसे आकषक है 'क्लान्त वासर वासाय गह विशतीव, उसकी सहायता तमागृहम का रूपक करता है श्लिष्टाथ की सहायता से इस सौन्दय की वद्धि होती है।

दण्डी

दण्डी के अनुसार उत्प्रेक्षावयव उत्प्रेक्षा का एक भेद[2] मात्र है। उदभट ने उत्प्रेक्षावयव अलकार का वणन नही किया। वामन के मत म ससृष्टि का एक भेद उपमारूपक है और दूसरा *'उत्प्रेक्षावयव। उत्प्रेक्षा को रूपकादि कोई अय अलकार अनुप्राणित करे तो वह 'उत्प्रेक्षावयव* कहलाता है—

> *उत्प्रेक्षाहतुरुत्प्रेक्षावयव ॥४,३ ३३॥*

भामह स प्रभावित होते हुए भी यह व्याख्या भिन्न है। रुद्रट मम्मट रुय्यक जयदेव विश्वनाथ, अप्पय्यदीक्षित आदि म उत्प्रेक्षावयव का *वणन नहा है। हिन्दी के आचार्यों न भी* इसका अलग अलकार नही लिखा।

उपसहार

भामह न उत्प्रेक्षावयव की उद्भावना की थी परतु उत्तर आचार्यों न इसका अलकार नहीं

---

१ श्लिष्टस्यार्थेन सयुक्त किंचिदुत्प्रेक्षयान्वित।
रूपकार्थेन च पुनरुत्प्रेक्षावयवो यथा ॥३।४७॥

२ उत्प्रेक्षाभेद एवासावुत्प्रेक्षावयवोऽपि च ॥ काव्यादर्श २।३५९॥

माना। दण्डी के अनुसार यह उत्प्रेक्षा का एक भेद है, और वामन के अनुसार ससृष्टि का एक रूप। अधिकतर उत्तर आचाय इसका वणन ही नही करते।

३६ ससृष्टि

भामह

ससृष्टि एक श्रेष्ठ अलकार है क्योकि इसमे कई अलकारा का योग[1] रहता है, यह अनेक रत्ना से निर्मित माला है जिसम अपूव सौदय पाया जाता है।

भामह ने दो उदाहरण दिये हैं। प्रथम मे श्लिष्ट उपमा तथा व्यतिरेक का सौदय है, द्वितीय म विभावना, उपमा और अर्थान्तरयास का। आचाय का मत है कि इसी प्रकार अय अलकारो की भी ससृष्टि करनी चाहिए—"अयेषामपि कतया ससृष्टिरनया दिशा।"

दण्डी

अनेक अलकारो की ससृष्टि[2] को ससृष्टि कहते हैं। इसके दो भेद हैं—अगाङ्गीभाव मे अवस्थिति तथा सबकी समकक्षता (तुल्यबलता)। ये भेद उत्तर आचार्यों क क्रमश सकर' तथा 'ससृष्टि' हैं। दूसर भेद का उदाहरण है—

लिम्पतीव तमोङ गानि वपतीवाञ्जन नभ।
असत्पुरुषसवव दृष्टिर्निष्फलता गता ॥२।३६२॥

यहा पूर्वाद्ध मे उत्प्रेक्षाद्वय और उत्तराद्ध म उपमा तुल्यबल से अवस्थित हैं।

उद्भट

अनेक अथवा केवल दो परस्पर निरपेक्ष अलकारा की समाश्रयता[3] ससृष्टि है। इस लक्षण म ससृष्टि का सकर स, अपनी दष्टि स, अतर स्पष्ट किया गया है यह अतर मम्मट आदि उत्तर आचार्यों के अतर के समान नहा है। जहाँ परस्पर सापेक्षता हागी वहाँ सकर, और जहा निरपक्षता होगी वहा ससृष्टि इसी प्रकार जहाँ शब्दाथ द्वितयनिष्ठता हागी वहा सकर, और जहाँ शब्द अथवा अथ की उपनिबन्धता होगी वहा ससृष्टि अलकार है।

वामन

ससृष्टि का अथ 'ससग, सम्बध है। एक अलकार का दूसरे अलकार के साथ कायकारण

---

१ वरा विभूषा ससष्टिर्बह्वलकारयोगत ॥३।४६॥

२ नानालकारससृष्टि ससष्टिस्तु निगद्यते ॥ काव्याऽश २।३५६॥

३ अलङ्कृतीनां बह्वीनां द्वयोर्वापि समाश्रय।
एकत्र निरपेक्षाणा मिथ ससृष्टिरुच्यते ॥ का०सा० ६।५॥

४ अलकारस्यालकारयोनित्व यन्सौ ससृष्टिरिति। ससष्टि ससग सम्बध इति। (वृत्ति)

सम्बन्ध ससृष्टि है। इसके दो भेद उपमारूपक तथा उत्प्रेक्षावयव हैं जिनकी चर्चा यथास्थान हो चुकी है।

मम्मट

सेष्टा ससृष्टिरेतेषा भेदेन यदिह स्थिति ॥१३९॥

एतेषा समनन्तरमेव उक्तस्वरूपाणा यथासभवम् अन्योन्यनिरपेक्षतया यत्रैकत्र शब्दभाग एव अर्थविषये एव उभयत्रापि वा अवस्थान सा एकार्थसमवायस्वभावा ससृष्टि ।

एक उदाहरण शब्दालकारससृष्टि का है दूसरा अर्थालकार ससृष्टि का और तीसरा शब्दार्थालकार ससृष्टि का।

रुय्यक

अलकार-सवस्व म ससृष्टि तथा सकर का जो अन्तर स्पष्ट किया गया वही उत्तर आचार्यों को मान्य रहा। ससृष्टि का लक्षण है—

एषा तिल-तण्डुल न्यायेन मिश्रत्वे ससृष्टि ।'

तिल-तण्डुल-न्याय स ससृष्टि तीन प्रकार की होती है—शब्दालकार ससृष्टि अर्थालकार ससृष्टि तथा उभय (उभयालकार) ससृष्टि।

विश्वनाथ

जयदेव न ससृष्टि का खडन[1] किया है। परन्तु विश्वनाथ ने ससृष्टि सकर के पृथक अलकारत्व की स्थापना[2] मानो जयदेव को उत्तर देने के लिए की है—

यद्येत एवालकारा परस्परविमिश्रिता ।
तदा पृथगलकारौ ससृष्टि सकरस्तथा ॥१०।९८॥

ससृष्टि का लक्षण सरल एव स्पष्ट है—

मिथोऽनपेक्षयतेषा स्थिति ससृष्टि रुच्यते ॥१०।९८॥

हिन्दी के आचार्य

दासकवि ने ससृष्टि का बडा सरल एव स्पष्ट लक्षण दिया है—

एक छन्द मे जहँ पर अलकार बहु दृष्टि।
तिल तदुन से है मिले ताहि कहैं ससृष्टि ॥३।४६॥

कन्हैयालाल पोद्दार तथा रामदहिन मिश्र ने मम्मट के अनुसार इसके तीन भेदो का वर्णन किया है।

---

१ एतेषामेव विन्यासान् नानकारा तराण्यमी ॥५।११६॥
२ कुवलयानन्द म ससृष्टि-सकर अलकारो की विश्वनाथ के अनुकरण पर स्थापना है। (पृ० १६३)

उपसहार

भामह ने ससृष्टि की उदभावना की थी, दण्डी ने भी इसको अलकार माना। उदभट का लक्षण वनानिक है और सकर से इसके अन्तर का सकेत देता है। मम्मट ने इसके तीन भेदो का विवेचन किया जो आगे भी मान्य रहे। रुय्यक ने तिल-तण्डुल-न्याय से मिश्रण को ससृष्टि माना। यही लक्षण उत्तर आचार्यों मे मान्य रहा।

४० भाविकत्व

भामह

भाविकत्व प्रबन्ध[1] का गुण है (शब्द और अथ का नही)। इसम भूताथ तथा भाव्यथ प्रत्यक्ष के समान दिखलाए जाते हैं। अथ मे चित्रता, उदात्तता एव अदभुतत्व कथा म अभिनीतता और शब्दो म अनुकूलता इस गुण के सहायक हैं। भामह न इसका उदाहरण नही दिया, कदाचित इसलिए कि यह प्रबन्ध का गुण है पद का नही।

दण्डी

भामह तथा दण्डी का भाविक' अलकार का एक ही लक्षण है। भाविक प्रबन्ध विषय[2] गुण है। काव्य म समाप्तिपयन्त विद्यमान कवि का अभिप्राय ही भाव[3] है उसके दो रूप हैं आधिकारिक तथा प्रासगिक अथवा वस्तु की परस्पर उपकारिता तथा प्रकृतोपयुक्त विषयो की वणना।[4] उक्तिक्रम से गम्भीर वस्तु की भी अभिव्यक्ति भावाधीन है यही भावायत्तता[5] भाविक कहलाती है। दण्डी ने भूताथ तथा भाव्यथ को भाविक के लक्षण म नही जोडा।

उदभट

भामह के लक्षण को ही उद्भट न विशेषताओ सहित ग्रहण कर लिया है। वाणी के चमत्कार[6] से भूत अथवा भविष्य की वस्तुएँ यदि प्रत्यक्ष सी दिखलाई पडें तो वह चमत्कार भाविक अलकार है। भामह के पद चित्रोदात्ताद्भुतार्थत्वम' को ग्रहण करके उद्भट ने वाचा

---

१ भाविकत्वमिति प्राहु प्रबन्धविषय गुणम।
प्रत्यक्षा इव दश्यन्त यत्रार्था भूतभाविन ॥३।५३॥

२ तद्भाविकमिति प्राहु प्रबन्धविषय गुणम्। काव्यादर्श ॥२।३६४॥

३ भाव कवेरभिप्राय काव्येष्वासिद्धि-सस्थित ॥२।३६४॥

४ परस्परोपकारित्व सर्वेषा वस्तुपवणाम्।
विशेषणाना व्यर्थानामक्रिया स्थानवणना ॥२।३६५॥

५ व्यक्तिरुक्तिक्रमबलाद् गम्भारस्यापि वस्तुन।
भावायत्तमिद सर्वमिति तद्भाविक विदु ॥२।३६६॥

६ प्रत्यक्षा इव यत्रार्था दृश्यन्ते भूतभाविन।
अत्यद्भुता स्याल्लवाचामनाकुल्यन भाविकम् ॥का०मा० ६।६॥

मनाकुल्येन पद द्वारा भाविक के रहस्य का सकेत किया है—वाणी की अनाकुलता[1] (शक्ति) से ही भूतभाव्यथ प्रत्यक्ष जसे दिखलाई पड सकते है।

वामन तथा रुद्रट ने भाविक का वणन नही किया।

मम्मट

प्रत्यक्षा इव यदभावा क्रियन्ते भूतभाविन ॥११४॥

कवि अतीत तथा अनागत को प्रत्यक्षवद दिखलाना चाहता है इस भाव के कारण इस अलकार को भाविक कहते हैं।

रुय्यक

"अतीतानागतयो प्रत्यक्षायमाणत्व भाविकम ॥"

रुय्यक ने भाविक पर विस्तृत वत्ति लिखी है और अतिशयोक्ति काव्यलिंग रसवद तथा स्वभावोक्ति से इसका स्वतत्र अस्तित्व सिद्ध किया है।

जयदेव

भाविक भूत भाव्यथ साक्षाद दशनवणनम ॥५।११३॥

जयदेव का लक्षण सरल एव परम्परागत है। कुवलयानन्द की भी यही शब्दावली है—

भाविक भूत भाव्यथसाक्षात्कारस्य वणनम् ॥१६१॥

विश्वनाथ

अदभुतस्य पदाथस्य भूतस्याथ भविष्यत ।
यत् प्रत्यक्षायमाणत्व तदभाविकमुदाहृतम ॥१०।९४॥

विश्वनाथ ने भाविक अलकार की स्थापना इस प्रकार की है—

न चाय प्रसादाख्या गुण भूतभाविनो प्रत्यक्षायमाणत्वे तस्याहेतुत्वात। न चादभुतो रस विस्मय प्रत्यस्य हेतुत्वात । न चातिशयोक्तिरलकार अध्यवसायाभावात। न च भ्रान्तिमान, भूतभाविनोभूतभावितयव प्रकाशनात। न च स्वभावोक्ति तस्य लौकिकवस्तुगतसूक्ष्मधम स्वभावस्यव यथावद वर्णन स्वरूपम। अस्य तु वस्तुन प्रत्यक्षायमाणत्वरूपो विच्छित्तिविशेषो ऽस्तीति। (पृ० ३६५)

हिन्दी के आचार्य

भूत भाव्य भाविक कहौ। (शब्दरसायन पृ० १८०)
भूत भविष्यहु बात का जह बोलत वरतमान। (काव्यनिर्णय १५ १६)

---

[1] भामह ने लिखा है चित्रोदात्ताद्भुतार्थत्व कथाया स्वभिनीतता ।
शब्दानाकुलता चेति तस्य हेतुप्रचक्षते ॥ (काव्यालकार)

कन्हैयालाल पोद्दार तथा रामदहिन मिश्र ने भी इसी प्रकार भाविक का वर्णन किया है।

उपसहार

भामह के अनुसार भाविक प्रबध का गुण है, दण्डी, उदभट ने भामह के लक्षण को ही स्वीकार किया। भूत एव भावी अर्थो का प्रत्यक्ष अथवा वत्तमानवत वर्णन भाविक है। वामन, रुद्रट तथा जगन्नाथ ने इसको अलकार नही माना। भोज[1] के भाविक का स्वरूप भिन्न है।

भाविक के दो भेद हैं—भूत का वतमानवत वर्णन एव भविष्य का प्रत्यक्षवत वर्णन।

४१ आशी

भामह

काव्यालकार' म अतिम विवेच्य अलकार आशी है। भामह ने इसका उल्लेख दूसरो[2] (दण्डी आदि) के मत स किया है स्व-सहमति से नही। सौहाद अथवा अविरोध की उक्ति[3] (कामना) म इसका प्रयोग होता है। एक उदाहरण म रूठे हुए मित्रो को मिलाकर उनके प्रति मेल जाल से रहने की कामना की गई है—'अस्मिञ्जहीहि सुहृदि प्रणयाभ्यसूयाम। दूसरे म राजा के शत्रुआ म पराजय स्वीकार करके अविरोध की कामना की गई है।

दण्डी

अभिलषित वस्तु म शुभ प्राथना[4] आशी है। उदाहरण म आशीवचन है। दण्डी आशी को स्वमत से अलकार मानते हैं परन्तु उन्होने केवल एक श्लोक म इसके लक्षण और उदाहरण दोनो समा दिये हैं।

उद्भट न आशी को अलकार नही माना। वामन, रुद्रट मम्मट रुय्यक जयदेव विश्वनाथ अप्पय्यदीक्षित ने भी आशी अलकार का वणन नही किया।

हिन्दी के आचाय

केशव ने आशीर्वाद को 'आशिष (कविप्रिया ११।२४) अलकार माना है। देवकवि ने

---

१ स्वाभिप्रायस्य कथन यदि वाप्ययभावना।
अन्यापदेशो वा यस्तु त्रिविध भाविक विदु ॥४ ८६ ७॥

२ आशीरपि च केषाचिद् अलकारतया मता ॥३।५५॥

३ सौहृदस्याविरोधोक्तौ प्रयोगोऽस्याश्च तद्यथा ॥३।५५॥

४ आशीर्नामाभिलषिते वस्तुन्याशसन यथा ॥काव्यादश । २।३५७॥

केशव का अनुसरण किया है (पृ० १८०)। सामान्यत अन्य आचार्यों ने इस अलकार का वर्णन नही किया।

उपसहार

भामह ने आशी का उल्लेख किया है, उदभावना नही। दण्डी ने इसको आशीर्वाद बना दिया। उत्तर आचार्यों ने प्राय इसका वणन नही किया। हिन्दी मे केशवदास तथा देवकवि ने दण्डी के अनुसार इसका वर्णन किया है।

पचम अध्याय

दण्डी, उद्भट तथा वामन द्वारा कल्पित अलकार

(क) दण्डी द्वारा कल्पित अलकार

४२ आवृत्ति

दण्डी

दीपक के अनन्तर दण्डी ने एक सजातीय अलकार आवृत्ति' का निरूपण किया है। लक्षण नही है परन्तु तीन भेद—अर्थावृत्ति, पदावृत्ति तथा उभयावृत्ति— अलकार-त्रय[1] माने गये हैं। वस्तुत ये भेद ही है।

अर्थावृत्ति म भिन्न रूप के एकार्थपदो की आवृत्ति होती है उदाहरण म विकसन्ति'[2] 'स्फुटन्ति' 'उन्मीलन्ति', 'भिन्नरूप, एकार्थ पद प्रयुक्त हुए हैं। पदावृत्ति म एक पद की भिन्नार्थ म आवृत्ति होती है यह यमक अथवा लाटानुप्रास के समान होते हुए भी उनसे भिन्न है। उत्कण्ठयति पद की आवृत्ति का उदाहरण है—

> उत्कण्ठयति मेघाना माला वृन्द कलापिनाम।
>
> यूना चोत्कण्ठयत्यद्य मानस मकरध्वज ॥२।११८॥

यह चमत्कार नानार्थवती धातु के प्रयोग का है।

उभयावृत्ति म पद की आवृत्ति भी होती है और उसके 'अर्थ की भी।'[3] विहरति पद के चमत्कार का यह उदाहरण है—

> जित्वा विश्व भवानत्र विहरत्यवरोधन ।
>
> विहरत्यप्सराभिस्ते रिपुवर्गो दिव गत ।२।११९॥

उपसहार

उत्तर आचार्यो ने 'आवृत्ति' का अलग अलकार नही माना, प्रत्युत दीपक के ही मादय म

---

१ दीपकस्थान एवेष्टमलकारत्रय यथा ॥ काव्यादर्श २।११६ ॥

२ विकसन्ति कदम्बानि स्फुटन्ति कुटजद्रुमा ।
उन्मीलन्ति च कन्दल्यो दलन्ति ककुभानि च ॥२।११७॥

३ अर्थावृत्तिर्नाम एकस्य वाक्यार्थस्य पुन वाक्यान्तरेणोपस्थापनम। पदावृत्ति एकस्मिन् वाक्ये स्थितानां पदानां पुनर्वाक्यान्तरे तेन रूपेणोत्थिति । उभयावृत्ति वाक्यार्थपदयोरेकतरस्मिन वाक्ये निर्दिष्टयो पुनरन्यत्रोभयोरुत्थिति ॥(प्रभा पृ० १८२)

इसका वर्णन किया है। दण्डी का आवृत्ति न तो लाटानुप्रास है और न दीपक, इसका चमत्कार इन दोनों में भिन्न है। फिर भी कदाचित् क्षेत्र की सीमा के कारण उत्तर आचार्य इसको अपना न सके।

४३ चित्र

दण्डी

काव्यादर्श के तृतीय परिच्छेद में यमक चक्र के अनन्तर दण्डी ने अठारह श्लोकों में चित्रचक्र का वर्णन किया है। चित्र के अन्तर्गत—

(क) अर्ध गोमूत्रिकाबन्ध (ख) अर्ध भ्रम। (ग) सर्वतोभद्र

का वर्णन करके खड्गबन्ध आदि को छोड़ दिया गया है। दण्डी का उद्देश्य केवल दुष्कर[1] का ही वर्णन था सामान्य का नहीं। चित्र के अनन्तर 'स्वर-स्थान वर्ण के नियम के दुष्कर वैचित्र्य का वर्णन भी है। दण्डी के इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि चित्र का बहुविध चमत्कार काव्यादर्श की रचना से पूर्व भी विज्ञ प्रिय था। दण्डी ने सुकर को अन्य आचार्यों के लिए छोड़ दिया परन्तु दुष्कर का शब्द चमत्कार के अन्तर्गत वर्णन कर दिया।

अग्निपुराणकार

अग्निपुराण में चित्र तथा उसके भेदों की पूर्ण चर्चा है —

गोष्ठ्या कुतूहलाधायी वाग्बन्धश्चित्रमुच्यते।
प्रश्न प्रहेलिका गुप्त, च्युत दत्त तथोभयम्॥[1]
समस्या सप्त तद्भेदा नानार्थस्यानुयोगत॥

प्रश्न के दो उपभेद हैं—एकपृष्टप्रश्नोत्तर (समस्त अथवा व्यस्त) तथा द्विपृष्टप्रश्नोत्तर। चित्र अलंकार की परम्परा में ही दुष्कर के तीन भेदों का वर्णन है—नियम विदर्भ तथा बन्ध। बन्ध के अन्तर्गत गोमूत्रिका, अर्धभ्रमण सर्वतोभद्र (तीनों दण्डी द्वारा वर्णित) तथा अम्बुज चक्र चक्राब्ज दण्ड एवं मुरज (पाँचों दण्डी द्वारा सुकर समझकर अवर्णित) की चर्चा है, उदाहरण नहीं दिए गए। अग्निपुराणकार यह जानता था कि ये समस्त शब्द-चमत्कार नीरस हैं फिर भी कवि-सामर्थ्य-सूचक एवं विदग्धों का रुचिकर हैं इसी हेतु से इनका वर्णन किया गया है—

---

१ (क) न प्रारब्धमपाद् भदा कास्यैनाभ्यातुमाहिता।
दुष्करामिमता य त वक्ष्यन्ते तेत्र कथन॥३।३८॥
(ख) गोमूत्रिकेति तत् प्राहुर्दुष्कर तद्विदो यथा॥३।७८॥
(ग) य स्वर-स्थान वर्णानां नियमा दुष्करेष्वसौ।
इष्टश्चत प्रभ पत दर्शत सुकर. पर.॥३।-३॥

दु मन कृतमयथ कवि-सामथ्य-सूचकम ।
दुष्कर नीरसत्वेऽपि विदग्धाना महोत्सव ॥

रुद्रट

शब्दालकारा म अतिम 'चित्र' है। काव्यादश क तृतीय परिच्छेद का अनुकरण करत हुए रुद्रट न चित्र का विस्तृत वर्णन 'काव्यालकार' के पचम अध्याय म किया है।

'चित्र' अलकार के दो रूप मुख्य हैं—(१) खडग मुसल आदि आकृतिया को प्रकट करने वाले, (२) अक्षरा के विभिन्न क्रम विन्यास स विभिन्न विच्छित्तिया को प्रकट करन वाले। भेदा की गणना सम्भव नही है—

भेदविभिद्यमान सख्यातुमनन्तमस्मि नैतदलम ।
तस्मादतस्य मया दिङ्मात्रमुदाहृत कवय ॥५।४॥

मात्राच्युतक, विन्दुच्युतक प्रहेलिका कारकगूढ, क्रियागूढ तथा प्रश्नोत्तर आदि सामान्यत [१] अलकारा स भिन्न हैं और क्रीडामात्र के लिए ही उनका प्रयोग है—

मात्रा विन्दुच्युतके प्रहेलिका कारकक्रियागूढे ।
प्रश्नोत्तरादि चान्यत क्रीडामात्रोपयोगमिदम ॥५।२४॥

मम्मट

काव्यप्रकाश म स्थान मिलने स चित्र अलकार को सयम तथा लोकप्रियता दोना की प्राप्ति हो गई। मम्मट ने चित्र क कवल एक रूप को लिया है—

तच्चित्र यत्र वणना खडगाद्याकृतिहेतुता ॥९।८५॥

रुय्यक

अलकार-सवस्व म मम्मट की शब्दावली का ग्रहण मात्र है—

'वर्णाना खडगाद्याकृतिहेतुत्वे चित्रम ।

जयदेव

जयदेव आदि उत्तर आचार्यों ने भी मम्मट का ही अनुकरण किया है—

काव्यवित्प्रवरश्चित्र खडगबन्धादि लक्षयत ।५।९॥

विश्वनाथ

'साहित्यदपण' म चित्र अलकार का वणन है परन्तु प्रहेलिका, मात्राच्युतक आदि का खण्डन किया गया है—

---

१ च समुच्चये । अयत्पूर्वालकारेभ्यो व्यतिरिक्त तत्क्रीडामात्रोपयोगम् । मात्रग्रहणनाल्पप्रयोजनता सूचयति । अल्पप्रयोजनत्वान्नालङ्कारमध्य न सगृहीतम् । काव्येषु च दर्शनाद् वक्तव्यमिति ॥ (नमिसाधु पृ० ५८)

पदमायावारहेतुत्व वर्णाना चित्रमुच्यत ।
रमस्य परिपन्थित्वा नालकार प्रहेलिका ॥
उक्तिवचित्र्यमात्र सा च्युतदत्ताक्षरादिका ॥१०।१४॥

हिन्दी के आचाय

केशवदास ने कविप्रिया के सालहवें प्रभाव म विस्तार स (लगभग साठ पृष्ठा म) चित्र समुद्र' का वणन किया है। काव्यनिणय म भी इक्कीसवें अध्याय म (लगभग बीस पृष्ठा म) चित्र का वणन है। पोद्दार ने अतिम शब्दालकार क रूप मे चित्र का वर्णन किया है।

उपसहार

कवि-समाज क बीच जिन अनक चमत्कारा का आदर था उनम स चित्र भी एक है। चित्र काव्य (एव चित्र अलकार) कवि-सामर्थ्य-सूचक है और विदग्धजना का रुचिकर भी लगता है। कवि-गोष्ठिया मे इसकी बडी धाक थी। काव्यशास्त्री इसको चित्रकाव्य के अतगत स्थान देता था। कालातर म इसका शब्द का चमत्कार मानकर अलकार क अन्तगत इसका वणन होने लगा। भामह क अनुयायी चित्र का महत्त्व नही देते थे उत्तर रसवादी आचाय भी इसकी उपेक्षा करते है। परतु वणन को सौदय का पर्याय माननेवाले दण्डी आदि आचार्यों न इसका वणन किया है।

दण्डी ने चित्र के केवल उन भेदा का वणन किया है जो दुष्कर हैं सुकर भेदा का पाठक की सामथ्य पर ही छोड दिया है। अग्निपुराण म समस्त चित्र चक्र की चर्चा है उदाहरण किसी का भी नही है। रुद्रट चित्र क दो रूप मानत हैं—एक का सम्बध आकृतिया स है दूसरे का अक्षरा के क्रम विन्यास से। मम्मट आदि चित्र का चलता वणन कर देत हैं भाज[2] एव केशवदास ने चित्र-समुद्र'[1] का विस्तार स वणन किया है। मम्मट क प्रभाव स चित्र का वणन बहुत सयत हो गया और वह काव्य की अपेक्षा विनोद गोष्ठिया का विषय अधिक माना गया।

४४ प्रहेलिका

यमक का वणन करने के अनतर काव्यालकार के द्वितीय परिच्छेद म भामह ने रामशर्मा

---

१ केशव चित्र-समुद्र म बूडत परम विचित्र।
ताके बूँदक के कण बरनत हौं सुनि मित्र ॥१६।१॥

२ 'सरस्वतीकण्ठाभरण काव्यान्त्र की परम्परा का ग्रथ है। इसम काव्य के इतिवृत्तात्मक सौदय का विस्तार से वणन है। द्वितीय परिच्छेद शब्दालकार निणय ग्रथ का एक चौथाई भाग यमक एव चित्र के भाँति भाँति के सौदय को चित्रित करता है।

३ काशी नरेश चेतसिंह क पुत्र बलवन्तसिंह ने स० १८८९ वि० में चित्र चद्रिका की रचना की जो केवल चित्र विषय का पाण्डित्यपूर्ण एव उपयोगी वणन करती है। (दे हिन्दी अलकार साहित्य पृ० १६२)

ने 'अच्युतोत्तर'[1] म वर्णित प्रहेलिका का खण्डन किया है—प्रहेलिका जो यमक के व्याज से काव्यसौन्दर्य म स्थान प्राप्त करना चाहती है। भामह का खण्डन भट्टिकाव्य के उपसहार-पद्य का उत्तर है—

व्याख्यागम्यमिद काव्य उत्सव सुधियामलम।
हता दुर्मेधसश्चास्मिन् विद्वत्प्रियतया मया॥ (भट्टिकाव्य)
काव्यान्यपि यदीमानि व्याख्यागम्यानि शास्त्रवत।
उत्सव सुधियामेव हन्त दुर्मेधसा हता॥ (काव्यालकार)

दण्डी

काव्यादर्श के तृतीय परिच्छेद म चित्र चक्र के अनन्तर दण्डी ने उन्तीस श्लोको म प्रहेलिका का वर्णन किया है। खण्डन का उत्तर देते हुए प्रथम प्रहेलिका की उपयोगिता बतलाई गई है—

क्रीडा गोष्ठीविनोदेषु तज्ज्ञैराकीर्णमन्त्रणे।
परव्यामोहने चापि सोपयोगा प्रहेलिका॥३।९७॥

प्रहेलिका के सोलह भेद (काव्यादर्श ३ १०६) है—

समागता, वचिता, व्युत्क्रान्ता प्रमुषिता, समानरूपा परुषा सख्याता प्रकल्पिता, नामान्तरिता, निभृता समानशब्दा समूढा, परिहारिका एकच्छन्ना उभयच्छन्ना सकीर्णा।

अग्निपुराणकार

'अग्निपुराण' म चित्र का एक भेद प्रहेलिका है। यह 'शाब्दी' तथा 'आर्थी' दोनो प्रकार की होती है इसके छह रूप हो सकते हैं—

द्वयारप्योथयागुह्यमान शब्द प्रहेलिका।
सा द्विधाऽर्थी च शाब्दी च तत्राऽर्थी चार्थबोधत।
शब्दावबोधत शाब्दी प्राहु षोढा प्रहेलिकाम्॥

'चित्र' के समान प्रहेलिका का भी केवल वर्णन है, उदाहरण नही दिये गये।

नव्याचार्य

उत्तर आचार्यों ने प्रहेलिका' अलकार के चमत्कार को स्वीकार नहीं किया। 'चित्र' का वर्णन करते हुए भी विश्वनाथ ने 'प्रहेलिका का खण्डन किया है, यह उक्ति-वैचित्र्य मात्र है और रस म बाधा उपस्थित करती है—

---

१ नाना धात्वर्थगम्भीरा यमकव्यपदेशिनी।
प्रहेलिका सा ह्युदिता रामशर्माच्युतोत्तरे॥२।१९॥

रसस्य परिपन्थित्वान्नालकार प्रहेलिका ।
उक्ति-वचित्र्यमात्र सा च्युतदत्ताक्षरादिका ॥१०।१३ १४॥

भामह के खण्डन को विश्वनाथ ने अपने ढग से व्यक्त किया है। वस्तुत काव्यास्वाद एव मनोविनोद, ये परस्पर म पर्याय नही हैं।

हिन्दी के आचाय

दण्डी-परम्परा के हिन्दी-आचाय केशवदास न 'कविप्रिया' के तरहवें प्रभाव म प्रहेलिका अलकार का वणन किया है—

बरनिय वस्तु दुराय जह, कौनहुँ एक प्रकार ।
तासो कहत प्रहेलिका, कवि-कुल बुद्धि-उदार ॥१३।३०॥

केशव ने प्रहेलिका के भेदो का वणन नही किया, परन्तु आठ उदाहरण दिय हैं।

उपसहार

प्रहेलिका को गोष्ठिया मे स्थान मिलता था परन्तु उसको काव्य मानने को आचाय तयार नही हैं। प्राच्य आचार्यों म भामह एव नव्य आचार्यों म विश्वनाथ न तो इसके अलकारत्व का खण्डन भी किया है। काव्यादश अग्निपुराण सरस्वतीकण्ठाभरण[1] तथा कविप्रिया की इसम रुचि है ये ग्रन्थ वणन को ही अलकार मानते है। इनके विपरीत जो रस, वक्रोक्ति आदि मे चमत्कार मानते हैं वे प्रहेलिका का वणन नही करते—केवल यथावश्यकता खण्डन करते हैं।

(ख) उद्भट द्वारा कल्पित नवीन अलकार

४५ पुनरुक्तवदाभास

उदभट

काव्यालकार-सार सग्रह के प्रथम वग म प्रथम विवेच्य अलकार पुनरुक्तवदाभास (अथवा पुनरुक्ताभास) है। प्रथम बार इसका विवेचन उदभट न किया है। लक्षण है—

पुनरुक्ताभासमभिन्नवस्त्विवोदभासि भिन्नरूपपदम ॥१।३॥

(पुनरुक्तवदाभास म भिन्नरूपपद अभिन्न वस्तुइव प्रतीत होता है, अर्थात जहाँ दो पद एक से प्रतीत हो परन्तु वस्तुत अथ मे भिन्न हो)। उदाहरण है—

तदाप्रभृति निःसङ्गो नागकुञ्जरकृत्तिभृत ।
शितिकण्ठ कालगलस्सतीशोकानलव्यथ ॥

---

१ विउ के प्रसग म यह लिखा जा चुका है कि काव्य के इतिवृत्तात्मक सौन्दर्य को कुछ ग्रन्थो ने विशष महत्त्व दिया है। सरस्वतीकण्ठाभरण भी इसी परम्परा मे है। स्वय राजा भोज की गोष्ठियो मे रुचि थी और वे काव्य शास्त्र विनोदेन काल-यापन करते थे। उनके ग्रन्थ मे विनोद-गोष्ठियो के सहायक साधनो की विस्तृत चर्चा स्वाभाविक है।

यहा नाग' 'कुजर' पद गजवाची होने से भिन्नरूपपद होते हुए भी अभिन्नवस्तु इव प्रतीत होते हैं—परन्तु वस्तुत नाग' हस्तिवाची है, 'कुजर' नही, कुजर' श्रेष्ठतावाची है। इसी प्रकार 'शितिकण्ठ तथा 'कालगल शिववाची हैं, परन्तु वस्तुत कालगलत पद का अर्थ है 'समय पाकर नष्ट होने वाला, और यह पद सती के शोक का विशेषण है।

वामन तथा रुद्रट ने इस अलकार का वर्णन नहीं किया।

मम्मट

'काव्यप्रकाश' के नवम उल्लास म शब्दालकारो म अन्तिम विवेच्य अलकार पुनरुक्तवदाभास है। विभिन्नाकारशब्दगा प्रतीत एकार्थता को पुनरुक्तवदाभास कहते ह अर्थात् विभिन्न स्वरूप के शब्दो म एकार्थता के न रहने पर भी एकार्थता का आभास पुनरुक्तवदाभास है—

पुनरुक्तवदाभासो विभिन्नाकारशब्दगा।

एकार्थतेव ॥९।८६॥

विभिन्न रूप के कही दोनो सार्थक[1] कही दोनो निरर्थक और कही एक सार्थक एव निरर्थक शब्दो म जो प्रारम्भ म एकार्थता की प्रतीति होता है वह पुनरुक्तवदाभास का चमत्कार है। यह उभयालकार[2] है।

शब्द का पुनरुक्तवदाभास केवल शब्द म रहता ह और सभग अथवा अभग है। सभग का उदाहरण है—

अरिवध दह शरीर सहसा रथिसूततुरगपादात।

भाति सदानत्याग स्थिरतायामवनितलनिलक ॥[3]

इस प्रकार पुनरुक्तवदाभास शब्द तथा अर्थ दोनो म भी होता है।

रुय्यक

'अलकारसवस्व के प्रारम्भ म रुय्यक ने तीन प्रकार के पौनरुक्त्य[4] का वर्णन किया ह और अर्थपौनरुक्त्य को दोष[5] मानते हुए शब्दार्थपौनरुक्त्य एव शब्दपौनरुक्त्य का वर्णन 'पुनरुक्तवदाभास नाम से किया है—

'आमुखावभासन पुनरुक्तवदाभासम्।

यह लक्षण मम्मट की ही शब्दावली मे है। प्रारभ मे समान प्रतीत होने वाली शब्दावली

---

१ भिन्नरूप सार्थकानर्थक शब्दनिष्ठम् एकार्थत्वेन मुखे भासन पुनरुक्तवदाभास। (वृत्ति)

२ अत्र एकस्मिन पद परिवर्तिते नालकार इति शब्दाश्रय अपरस्मिस्तु परिवर्तितेऽपि स न हीयते इत्यर्थनिष्ठ इत्युभयालकारोऽयम्। (वृत्ति)

३ देह शरीर में दोनों शब्द सार्थक और सभग है। सारथि-सूत में पहला शब्द अनर्थक और दूसरा सार्थक है और दोनों सभग हैं। दान-त्याग मे दोनों अनर्थक और सभग हैं। (विश्वेश्वर पृ० ४३६)।

४ 'इहार्थपौनरुक्त्य शब्दपौनरुक्त्य शब्दार्थपौनरुक्त्य चेति त्रय पौनरुक्त्य प्रकारा। (पृ० १०)

५ तत्रार्थपौनरुक्त्य प्रख्ढ दोष। (पृ० २०)

का पौनरुक्त्य पुनरुक्तवदाभास है। इसके दो भेद हैं—व्यजनमात्र पौनरुक्त्य अर्थात् शब्द पौनरुक्त्य तथा स्वर-व्यजन समुदाय पौनरुक्त्य अर्थात् शब्दार्थ पौनरुक्त्य। मम्मट के ही अनुसार अर्थ-पौनरुक्त्य का खण्डन है—

जलकार प्रस्तावे केवल स्वरपौनरुक्त्यम् अचारुत्वान्न गण्यते।" (पृ० २४)

जयदेव

चन्द्रालोक में पुनरुक्तवदाभास को 'पुनरुक्तप्रतीकाश' नाम से लिखा गया है। भेदों की चर्चा नही है। लक्षण-उदाहरण सरल हैं—

पुनरुक्तप्रतीकाश पुनरुक्तार्थसनिभम्।
अभुजगात शशी कुर्वन्नम्बरान्तमुपैत्यसौ ॥५।७॥

विश्वनाथ

विश्वनाथ ने मम्मट के सूत्र एव वृत्ति की शब्दावली में ही पुनरुक्तवदाभास का लक्षण सरल बना दिया है—

आपाततो यदर्थस्य पौनरुक्त्येन भासनम्।
पुनरुक्तवदाभास स भिन्नाकारशब्दग ॥१०।२॥

भेदों की चर्चा नही है परन्तु उभयालकारत्व का कथन मम्मट के समान ही है—

शब्द-परिवृत्ति-सहत्वासहत्वाभ्याम् अस्योभयालकारत्वम्। (वृत्ति)

केवल अर्थालकार का निरूपण करने वाले कुवलयानन्द में पुनरुक्तवदाभास की चर्चा नही है।

हिन्दी के आचार्य

दासकवि ने शब्दालकार प्रसग में पुनरुक्तवदाभास का वर्णन किया है, भेदों की चर्चा नही है। लक्षण सरल एव उदाहरण रोचक है—

कहत लगे पुनरुक्त सो प पुनरुक्त न होइ ॥२०।१८॥
अली भवर गुजन लगे होन लग्यो दल-पात ।२०।१९॥

पोद्दार ने पुनरुक्तवदाभास का वर्णन मम्मट की शब्दावली में किया है उदाहरण भी मम्मट के उदाहरणों के अनुवाद है। यमक से पुनरुक्तवदाभास का अन्तर भी स्पष्ट किया गया है—

यमक अलकार में एक आकार वाले भिन्नार्थक शब्दों का और इसमें भिन्न भिन्न आकार वाले भिन्नार्थक शब्दों का प्रयोग होता है। इसमें और यमक में यह भेद है।' (पृ० ९८)

उपसहार

पुनरुक्तवदाभास की कल्पना उद्भट ने की थी। मम्मट ने इस पर अपनी छाप लगा दी। उत्तर आचार्यों ने इसका वर्णन किया है। सस्कृत में 'पुनरुक्तवदाभास' तथा 'पुनरुक्तवदाभास' दोनों रूप मिलते हैं। जयदेव ने इसको पुनरुक्तप्रतीकाश लिखा है।

मम्मट ने इसको अन्वय-व्यतिरेक भाव से उभयालकार माना था। विश्वनाथ मम्मट से सहमत हैं। परन्तु शोभाकार मित्र ने इसको शब्दालकार माना है।

पुनरक्तवदाभास के दो भेद मम्मट से चलने लगे। पोद्दार तक उन्ही की स्वीकृति मिलती है।

४६ छेकानुप्रास

उद्भट

चार विवेच्य शब्दालकारो मे द्वितीय छेकानुप्रास है। लक्षण है—

छेकानुप्रासस्तु द्वयोर्द्वयो सुसदृशोक्तिकृतौ ॥१।३॥

दो दो समान स्वर व्यजनो की सुदर अभिव्यक्ति छेकानुप्रास है। इसम दो दो पदा म सौन्दय रहता है तीन-चार म नही, और ऐसे सौन्दय-कोष अनेक हो सकते हैं। अनेक अक्षरा का दो-दो के समूह म उच्चारण छेकानुप्रास है। उदाहरण सरल तथा स्पष्ट है—

स देवो दिवसान्नित्ये तस्मिन शले द्रक दरे।
गरिष्ठगोष्ठी प्रथमै प्रमथै पयुपासित ॥

यहाँ 'सदेव दिवस', 'इद्रक दर', 'गरिष्ठ गोष्ठी', प्रथम प्रमथ' आदि युग्मा मे रमणीय अक्षरावत्ति है।

वामन तथा रुद्रट ने छेकानुप्रास का वणन नही किया।

मम्मट

'काव्यप्रकाश' के नवम उल्लास मे अनुप्रास के दो भेदा का निरूपण है—छेकानुप्रास तथा वत्यनुप्रास। अनेक व्यजना के एक बार आवत्ति रूप साम्य को छेकानुप्रास कहते हैं छेक अर्थात विदग्धा म प्रिय होने के कारण इसका नाम छेकानुप्रास है।

वणसाम्यमनुप्रास, छेक-वत्तिगतो द्विधा।
सोऽनेकस्य सकृत्पूव, एकस्याप्यसकृत्पर ॥७९॥

उदभट की अपेक्षा मम्मट का लक्षण अधिक वज्ञानिक है। इसम दोना की परस्पर तुलना भी है—अनेक वर्णों का एक बार साम्य छेकानुप्रास है और एक वण (अथवा अनेक वर्णों) का अनक वार साम्य वृत्यनुप्रास है। सकृत एव 'असकृत्' की यह विशेषता मम्मट का योग है।

रुय्यक

'अलकार-सवस्व' म 'काव्यप्रकाश' की शब्दावली का अनुकरण है। केवल 'सख्यानियम पद रुय्यक की कल्पना है। सख्यानियम की व्याख्या है—

"द्वयोर्व्यञ्जन समुदाययो परस्परमनेकधा सादृश्य सख्यानियम।

रुय्यक ने भेदा का वर्णन नही किया। लक्षण सक्षिप्त एव सरल है— सख्यानियमे पूव छेकानुप्रास'।

जयदेव

चन्द्रालोक' के पंचम मयूख में काव्यप्रकाश के अनुसार छेकानुप्रास का सम्मिलित लक्षण उदाहरण है—

स्वर-व्यञ्जनावलीढ-व्यूहा मदनमोहना ।
गीर्जगज्जीवनुगरा छेकानुप्रासभागुरा ॥५।२॥

यह लक्षण अनावश्यक रूप से कृत्रिम हो गया है।

विश्वनाथ

छेकानुप्रास के लक्षण में विश्वनाथ ने सुधार किया है—

अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत् ।
छेको व्यञ्जनसंघस्य सकृत्साम्यमनेकधा ॥१०।३॥

यह लक्षण मम्मट के लक्षण की अपेक्षा अधिक सरल है। साथ ही अनेकधा पद एवं उसकी व्याख्या छेकानुप्रास के स्वरूप को अधिक स्पष्ट करने में समर्थ है—

अनेकधेति स्वरूपतः क्रमतश्च। रसः सर इत्यादौ क्रमभेदेन सादृश्यं नास्यालङ्कारस्य विषयः। (पृ० २७५)

हिन्दी के आचार्य

दासकवि ने मम्मट के अनुकरण पर छेकानुप्रास का वर्णन किया है—

वर्न अनेक नि एक की आवृत्ति एकहि बार।
सो छेकानुप्रास है आदि अंत इक वार ॥१९।३६॥

उदाहरणों में एक आदिवर्ण की आवृत्ति का है और दूसरा अन्त्य वर्ण की आवृत्ति का।

पोद्दार ने विश्वनाथ के अनुसार छेकानुप्रास का वर्णन किया है और इस बात की ओर ध्यान आकृष्ट किया है कि एक वर्ण की एक बार सादृश्य में छेकानुप्रास नहीं होता है। (पृ० ६५)

उपसंहार

छेकानुप्रास को रुय्यक आदि आचार्य स्वतन्त्र अलंकार मानते हैं परन्तु मम्मट आदि आचार्य अनुप्रास का एक भेद मात्र मानते हैं। इस अलंकार की कल्पना उद्भट ने की थी। उद्भट के लक्षण को मम्मट ने एक वैज्ञानिक रूप दे दिया। मम्मट ने सकृत और असकृत पदों के प्रयोग से छेकानुप्रास एवं वृत्त्यनुप्रास का अन्तर दिया। विश्वनाथ 'अनेकधा' पद जोड़कर छेकानुप्रास के लक्षण को और भी सरल एवं स्पष्ट बना देते हैं। पोद्दार ने छेकानुप्रास के स्वरूप को और भी अधिक स्पष्ट कर दिया है।

४७ लाटानुप्रास

काव्यालंकार के द्वितीय परिच्छेद में अनुप्रास भेदों का वर्णन करते हुए भामह ने लिखा था कि कुछ लोग लाटीय को भी अनुप्रास का एक भेद मानते हैं—

लाटीयमप्यनुप्रासमिहेच्छन्त्यपरे यथा ।
दष्टि दृष्टिसुखा धेहि चन्द्रश्चन्द्रमुखोन्ति ॥२।८॥

उदभट

स्वतन्त्र अलकार के रूप मे लाटानुप्रास की कल्पना उदभट ने की थी। 'काव्यालकार-सार सग्रह' के प्रथम वग म लाटानुप्रास अलकार का वणन किया गया है—

स्वरूपार्थाविशेषेऽपि पुनरुक्ति फलान्तरात् ।
शब्दाना वा पदाना वा लाटानुप्रास इष्यते ॥

स्वरूप एव अथ मे भेद न रहने पर भी जहाँ प्रयोजनान्तर से शब्दो अथवा पदो की पुन रुक्ति हो वहाँ लाटानुप्रास का चमत्कार है। यही लक्षण उत्तर आचार्यों म भी मान्य रहा है।

लाटानुप्रास के प्रथम तो तीन भेद हैं—दोना स्वतन्त्र हो, अथवा दोनो [परतन्त्र हो, अथवा दोना म से एक स्वतन्त्र हो और दूसरा परतन्त्र। प्रथम तथा अन्तिम के दो-दो उपभेद हैं। इम प्रकार लाटानुप्रास के पाँच भेद हैं—

स पदद्वितयस्थित्या, द्वयोरेकस्य पूववत ।
तदन्यस्य स्वतन्त्रत्वात, द्वयोर्वैकपदाश्रयात ॥
स्वतन्त्रपदरूपेण द्वयार्वापि प्रयोगत ।
भिद्यतेऽनेकधा भेद पादाभ्यासक्रमेण च ॥

मम्मट

शान्दस्तु लाटानुप्रासो भेदे तात्पयमात्रत ॥९।८१॥
पदा ग स पदस्यापि, वत्तावन्यत्र तत्र वा।
नाम्न स वत्त्यवत्त्योश्च तदेव पञ्चधा मत ॥९।८२॥

मम्मट का लक्षण सरल है, उसम उदभट का ही अनुकरण है।

इतर आचार्य

तात्पयभेदवत्तु लाटानुप्रास । (अलकार सवस्व)
तात्पयमन्यपरत्वम । तदेव भिद्यते, न तु शब्दाथयो स्वरूपम । (वत्ति)

जयदेव तथा विश्वनाथ क लक्षण सरल तथा स्पष्ट हैं—

लाटानुप्रासभूभिन्नाभिप्राया पुनरुक्तता।
यत्र स्यान्न पुन शत्रोर्गजित तज्जित जितम् ॥५।४॥ (चन्द्रालोक)
शब्दाथयो पौनरुक्त्य भेदे तात्पयमात्रत । (साहित्यदपण)
एक शन्द बहु बारगी सो लाटानुप्रास।
तातपज तें होतु है, और अथ प्रकास॥१९।४८॥ (काव्यनिणय)

उपसंहार

भामह ने लाटानुप्रास का अनुप्रास भेद के रूप में वर्णन किया था। अनेक उत्तर आचार्य इसी परम्परा में लाटानुप्रास का वर्णन अनुप्रास के एक भेद के रूप में करते हैं। परन्तु उद्भट ने लाटानुप्रास को एक स्वतन्त्र अलंकार माना। कतिपय आचार्य इसका स्वतन्त्र वर्णन भी करते रहे हैं। अनुप्रास का यह विशेष भेद है जिसकी तुलना तत्काल ही यमक से करनी पड़ती है।

लाट-जन-वल्लभ होने के कारण इसको लाटानुप्रास कहते हैं। लाट गुजरात का एक भाग है उसके नाम पर लाटीया वृत्ति भी प्रसिद्ध है।

लाटानुप्रास के स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। उद्भट के अनुसार शब्द तथा अर्थ तो वे ही रहते हैं परन्तु प्रयोजनान्तर हो जाता है और मम्मट के अनुसार तात्पर्य मात्र में भेद उत्पन्न हो जाता है।

उदभट के अनुसार लाटानुप्रास के पाँच भेद हैं। मम्मट भी पाँच भेदों का वर्णन करते हैं—अनेक-पद-गत, एक-पद-गत, समास गत, भिन्न-समास-गत तथा समास-असमास-गत।

मम्मट ने वृत्ति में लाटानुप्रास को पदानुप्रास कहा है। इस पर अनुप्रास का सामान्य लक्षण वर्णसाम्यमनुप्रास सिद्ध नहीं होता। इसी कारण काव्यप्रकाश के टीकाकार वामन झलकीकर ने इसको अनुप्रास का भेद[1] मानने पर आपत्ति की है। भामह की अपेक्षा उद्भट का विचार ही अधिक ठीक था जो लाटानुप्रास को स्वतन्त्र अलंकारत्व प्रदान कर देता है।

४८ प्रतिवस्तूपमा

उपमा के भेदों का वर्णन करते हुए भामह ने लिखा था—

समानवस्तुन्यासेन प्रतिवस्तूपमोच्यते।
यथेवानभिधानेऽपि गुण-साम्यप्रतीतितः ॥२।३४॥

(जब दो वाक्यों में यथा इव आदि शब्दों के प्रयोग के बिना ही गुण-साम्य की प्रतीति समान वस्तु के न्यास द्वारा हो तो वह प्रतिवस्तूपमा का सौन्दर्य है।)

दण्डी ने भी इसी प्रकार की शब्दावली में उपमा के इस भेद का निरूपण किया है—

वस्तु किंचिदुपन्यस्य न्यसनात्तत्सधर्मणः।
साम्यप्रतीतिरस्तीति प्रतिवस्तूपमा यथा ॥२।४६॥

उदभट

'काव्यालंकार सार संग्रह' के प्रथम वर्ग का अन्तिम विवेच्य अलंकार प्रतिवस्तूपमा है। उदभट ने इसका वर्णन स्वतन्त्र अलंकार के रूप में किया है। उपमान एवं उपमेय के सन्निधान

---

१ काव्यालंकार-सार संग्रह (साहित्य-सम्मेलन प्रयाग) पृ० ७६।

में जहाँ साम्यवाचक शब्द का विद्वानों द्वारा अनेकधा प्रयोग किया गया हो, वहाँ प्रतिवस्तूपमा अलंकार है—

उपमानसन्निधाने च साम्यवाच्युच्यते बुधयत्र ।
उपमेयस्य च कविभिः सा प्रतिवस्तूपमा गदिता ॥

इन्दुराज के अनुसार 'साम्यवाचिनः पदस्यासकृदुपादानं क्रियते' । इस प्रतिवस्तूपमा में केवल अर्थ की महिमा से उपमानोपमेयभाव की अवगति होती है । एकमात्र उदाहरण है—

विरलास्तादृशा लोके शील-सौन्दर्य-सम्पदः ।
निशाः कियत्यो वर्षेऽपि यास्विन्दुः पूर्णमण्डलः ॥

वामन

'काव्यालंकार-सूत्रवृत्ति' में प्रतिवस्तूपमा का लक्षण है—

उपमेयस्योक्तौ समानवस्तुन्यासः प्रतिवस्तु ॥४.३.२॥

इस लक्षण पर भामह का प्रभाव है । वृत्ति में स्पष्ट किया गया है—'समानं वस्तु वाक्यार्थः । अत्र द्वौ वाक्यार्थौ, एको वाक्यार्थ उपमायामिति भेदः ।'

मम्मट

'काव्यप्रकाश' से प्रतिवस्तूपमा तथा दृष्टान्त का साथ-साथ विवेचन प्रारम्भ हो गया। मम्मट का लक्षण अधिक वैज्ञानिक है—

सामान्यस्य द्विरेकस्य यत्र वाक्यद्वये स्थितिः ॥१०२॥

प्रतिवस्तूपमा में एक ही सामान्य धर्म को दो वाक्यों में दो बार भिन्न शब्दों द्वारा[1] कहा जाता है । यह अलंकार केवल रूप तथा माला रूप दोनों प्रकार का है ।

रुय्यक

'अलंकार सर्वस्व' का लक्षण मम्मट के अनुकरण पर तथा संक्षिप्त है—

"वाक्यार्थगतत्वेन सामान्यस्य वाक्यद्वये पृथङ् निर्देशे प्रतिवस्तूपमा ।

रुय्यक ने वृत्ति में समान अलंकारों का पारस्परिक अंतर अत्यन्त स्पष्ट शब्दावली में लिखा है—

"तत्र सामान्यधर्मस्य इवाद्युपादाने सकृन्निर्देशे उपमा । वस्तु प्रतिवस्तुभावेन असकृन्निर्देशेऽपि सैव । इवाद्यनुपादाने सकृन्निर्देशे दीपक तुल्ययोगिते । असकृन्निर्देशे तु शुद्धसामान्य रूपत्वं बिम्बप्रतिबिम्बभावो वा । आद्ये प्रकारे प्रतिवस्तूपमा । द्वितीयप्रकाराश्रयेण दृष्टान्तो वक्ष्यते ।" (पृ० ९४-५)

रुय्यक के अनुसार प्रतिवस्तूपमा साधर्म्य तथा वैधर्म्य दोनों ही से हो सकती है ।

---

१ साधारणो धर्मः उपमेयवाक्ये उपमानवाक्ये च शब्दभेदेन यदुपादीयते सा वस्तुनो वाक्यार्थस्य उपमानत्वात् प्रतिवस्तूपमा । (वृत्ति)

जयदेव

जयदेव तथा अप्पय्यदीक्षित ने एक ही शब्दावली म लक्षण उदाहरण दिये हैं—

वाक्ययोरथसामान्ये प्रतिवस्तूपमा मता ।
तापेन भ्राजते सूय शूरश्चापेन राजते ॥५५।५॥

विश्वनाथ

साहित्यदपण म प्रतिवस्तूपमा का लक्षण अत्यन्त सुगम स्पष्ट एव पूण है—

प्रतिवस्तूपमा सा स्याद वाक्ययोगम्यसाम्ययो ।
एकोऽपि धम सामान्यो यत्र निर्दिश्यते पृथक् ॥१०।५०॥

उदाहरण भी उतना ही प्रसिद्ध एव सुगम है—

धन्यासि वैदर्भि गुणैरुदार यया समाकृष्यत नपधोऽपि ।
इत स्तुति का खलु चन्द्रिकाया, यदब्धिमप्युत्तरलीकरोति ॥

विश्वनाथ के अनुसार इसकी माला भी होती है और इसका चमत्कार वधम्य म भी होता है यह मम्मट तथा रुय्यक का सम्मिलित प्रभाव है ।

हिन्दी के आचाय

दासकवि ने प्रतिवस्तूपमा का तीन प्रकार से वणन किया है—

नाम जु है उपमेय को सोई उपमा नाम ।
ताका प्रतिवस्तूपमा कहैं सकल गुनधाम ॥८।९०॥
जहँ उपमा उपमेय को नाम अथ है एक ।
ताहू प्रतिवस्तूपमा कहैं सु बुद्धिविवेक ॥८।९१॥
जहा बिम्ब प्रतिबिंब नहि धमहि तें सम ठान ।
प्रतिवस्तूपमा तहि कहैं दष्टान्त तहि मो जान ॥८।९८॥

प्रथम लक्षण उदभट के प्रभाव स लिया गया है । दूसरा लक्षण वामन के प्रभाव से आगत प्रतीत होता है । तीसरा मम्मट के प्रभाव से आया है । प्रथम तथा द्वितीय लक्षण एव उनके उदाहरण अनुकरण की त्रुटि के कारण सदोष[1] बन गये हैं ।

पोद्दार ने मम्मट एव रुय्यक के अनुसार वणन किया है । रामदहिन मिश्र का वणन अत्यन्त सक्षिप्त है ।

---

1 एक सदोष उदाहरण देखिए

नारा छूटि गये भई मोहन की गति सोइ ।
नारो छूटि गये ज गति और नरन की होइ ॥८।९३॥

उपसहार

उपमा भेद के रूप म भामह तथा दण्डी ने प्रतिवस्तूपमा का वणन किया था। उद्भट न स्वतत्र अलकारत्व प्रदान करके प्रतिवस्तूपमा का महत्त्व दिया और इसके प्रतियोगी दृष्टात अलकार का भी वणन किया। वामन का वणन सामान्य है। मम्मट रुय्यक से प्रतिवस्तूपमा का स्वरूप अधिक वज्ञानिक बना और दूसर अलकारा से इसका पृथक सौन्य स्पष्ट हा सका। विश्वनाथ के लक्षण एव उदाहरण दोना सुगम तथा स्वच्छ हैं।

प्रतिवस्तूपमा के तीन भेद हैं—साधम्य म वधम्य स तथा मालारूप।

प्रतिवस्तूपमा वाक्याथ की उपमा है पदाथ की नही इसम सादश्य व्यग्य हाता है यथा इव आदि के उपादान द्वारा नही इसम साधारण धम का कथन असकृत होता है, कवल एक बार नही। धम का यह कथन शब्द भेद स होता है। प्रतिवस्तूपमा म बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव नही होता, जा दृष्टान्त की अपनी विशेषता है।

४६ सकर

उद्भट

'काव्यालकार-सारसग्रह' के पचम वग म उदभट ने सकर को अलग अलकार मानकर इसका विवेचन किया है और पष्ठ वग के ससृष्टि अलकार के साथ पारस्परिक अन्तर, दाना अलकारा के लक्षणा के समय, कवि के ध्यान म रहा है। सकर और ससृष्टि का जो अन्तर उदभट न माना है ठीक वही मम्मट ने नही माना।

सकर का लक्षण नही दिया गया। उसके चारा भेदा का अलग-अलग वणन है। य भेद है—सन्देह सकर शब्दाथवर्त्यलकारसकर एकशब्दाभिधानसकर तथा अगागिभावसकर।

एक से अधिक अलकार एक साथ नात[1] हात हा, परन्तु सबका अस्तित्व असभव हो और किसी एक को ग्रहण करने अथवा त्यागने का कोई आधार न हो—उस अलकार मिश्रण को सदेह सकर कहते हैं। 'यद्यप्यत्य तमुचितो वरेन्दुस्तेन लभ्यते' उदाहरण म 'वरेन्दु' पद म 'वर एव इन्दु' रूपक तथा वर इन्दुरिव समासोपमा म सदेह सकर है।

एक वाक्य[2] (अथवा पद्य) मे शब्दालकार तथा अर्थालकार ससग को प्राप्त होन है तो वह शब्दाथवर्त्यलकारसकर है। उत्तर आचार्यों न इसको ससृष्टि माना है। 'एक शब्दाभिधान सकर' के दो अलकार एक वाक्याश[3] म विद्यमान रहत है। इन्दुराज का मत है कि ये दोना अथालकार हाने चाहिए। जब अलकार परस्पर उपकार करें, स्वतन्त्र न हा ता वह अनुग्राह्यानुग्राहक अथवा

१ अनेकालक्रियोल्लेखे सम तद्वृत्त्यसम्भवे।
एकस्य च ग्रहे न्यायदोषाभाव च सकर ॥ का०सा स० ५।११॥

२ शब्दाथवर्त्यलकारा वाक्य एकत्र भासिन ॥ का सा०स ५।१२॥

३ एकवाक्याशप्रवेशाद्वाभिधीयते ॥ का सा०स ५।१२॥

४ परस्परोपकारेण यत्रालङ्कृतय स्थिता।
स्वातन्त्र्यणात्मलाभ नो लभन्ते सोपि सकर ॥ का०सा०स०, ५।१३॥

अगागिभाव सकर है। उदभट के मत मे इदुराज के अनुसार इसके चार भेद हैं—विकल्प, व्यवस्था समुच्चय तथा अगागिभाव। (पृ० ७१)

रुद्रट

अर्थालकारा का विवेचन करने के अनन्तर कायालकार' के दशम अध्याय मे अलकारो की सकीणता का विवचन किया गया है और सकर के उन दो भेदो का उल्लेख है जो आगे चलकर समृष्टि एव सकर नाम से प्रसिद्ध हुए—

योगवशादतेषा तिलतण्डुलवच्च दुग्धजलवच्च।
व्यक्ताव्यक्ताशत्वात सकर उत्पद्यत द्वेधा॥१०।२५॥

मम्मट

काव्यप्रकाश के दशम उल्लास म ससृष्टि के अनन्तर सकर का विवेचन किया गया है। उद्भट के समान ही सकर का लक्षण नही है। सकर के तीन भेद बतलाय है—

(क) अगागिभाव सकर। (ख) सदेह सकर। (ग) एकाश्रयानुप्रवेश सकर।

जो परस्पर निरपक्ष स्वतत्र रूप स अलकार न बनते हो उनका अगागिभाव, सकर का प्रथम भद है। जहाँ अलकार अपन स्वरूपमात्र म स्वतत्र रूप स स्थित नही होते और अनुग्राह्य-अनुग्राहक[1] भाव को प्राप्त हो जात है उनकी सकीणता सकर है। इस भेद का विवेचन उदभट ने भी किया था। मम्मट का मत है कि इस प्रकार का सकर शब्दालकारो[3] म भी हो सकता है।

एक अलकार के मानन अथवा न मानने म न्यायदोप हो तो वह सदेह सकर है। दो अथवा दो स अधिक अलकारो का एकत्र समावश होन पर भी विरोध के कारण एक का ग्रहण तथा इतर का परिहार न हो सके तो निश्चयाभाव रूप द्वितीय सकर है। इस भेद का विवेचन भी उद्भट ने किया है।

एकाश्रयानुप्रवश सकर म दो अलकार एक स्थान पर सदिग्ध अथवा अगागिभाव म न रह कर स्पष्ट एव अलग-अलग रूप स रहते हैं। लक्षण है—

स्फुटमकत्र विषय शब्दार्थालकृतिद्वयम्।
व्यवस्थित च ॥

यहाँ एक ही पद म शब्दालकार और अर्थालकार दोनो स्पष्ट रूप स विद्यमान एव व्यवस्थित रहत हैं। एकाश्रयानुप्रवश उद्भट का एकशब्दाभिधान सकर है। उदभट के सकर का चतुर्थ भेद (द्वितीय) शब्दार्थवर्त्यनेकालकार सकर उत्तर आचार्यों की ससृष्टि है।

---

१ अविश्रान्तिजुषामात्मन्यङ्गाङ्गित्वं तु सकर।
२ एत एव यत्रालकारा अवश्रान्ता स्वतन्त्रभावा परस्परमनुग्राह्यानुग्राहकता दधाति स एषां सकीर्यमाणस्वरूपत्वात सकर। (वृत्ति)
३ स्वतन्त्र सकर शब्दालकारयोरपि परिकल्पते। (वृत्ति)
४ एकस्य च ग्रहे न्यायदोषाभावादनिश्चय ॥१४०॥

रुय्यक

'क्षीर-नीर-न्यायेन तु सकर ।"

इसके तीन भेद हैं—अगागिभाव, सशय तथा एकवाचकानुप्रवेश। इन भेदा म मम्मट की शब्दावली तक का अनुकरण है। अगागिभाव सकर के प्रसग म रुय्यक ने बताया है कि शब्दा लकारो का अगागिसकर नही हो सकता, ससृष्टि हागी—

"शब्दालकारयो शब्दवदुपकार्योपकारकत्वाभावनाङ्गाङ्गीभावाभावात । शब्दालकार ससृष्टिस्त्वत्र श्रेयसी। (वृत्ति पृ० २५०)

रुय्यक ने इन तीना भेदा का वणन करने के अनन्तर यह भी स्पष्ट कर दिया है कि उदभट द्वारा प्रतिपादित शेष भेद ससृष्टि के अन्तगत आ जाता है सकर का अलग भेद नही है—सकर के तीन ही भेद है—

"शब्दाथवत्यलकारसकरस्तु भट्टोदभटप्रकाशित ससृष्टावन्तर्भावित इति त्रिप्रकार एव सकर इह प्रदर्शित ।" (पृ० २८६)

जयदेव

'चन्द्रालोक के पचम मयूख म ससृष्टि सकर आदि के अलकारत्व का खण्डन है। ये अलकार इन उपयुक्त अलकारा के विन्यास विशेष म ही बनते ह इसलिए इनको अलग अलकार नही मानना चाहिए। यदि न्यूनता अथवा अधिकता के आधार पर इनका अलग माना जायगा तो अलकारा की गणना अनन्त हा जायगी क्योकि सौदय की न्यूनता अथवा अधिकता तो सवत्र है। जयदेव के शब्दा म—

शुद्धिरेकप्रधानत्व तथा ससृष्टि सकरौ।
एतेषामेव विन्यासान नालकान्तराण्यमी ॥५।११९॥
सर्वेषा च प्रतिद्वन्द्व - प्रतिच्छन्दभिन्नाभृताम ।
उपाधि क्वचिदुदभिन्न स्यादन्यत्रापि सभवात ॥५।१२०॥

विश्वनाथ

साहित्यदपण म मम्मट के अनुसार सकर के तीन प्रकार के वणन है, वणन म छन्द की सुविधा के कारण क्रम भिन्न है, परन्तु उदाहरणा म काव्यप्रकाश का ही क्रम है—

अगागित्वेऽलकृतीना तदवन्कैकाश्रयस्थितौ।
सदिग्धत्वे च भवति सकरस्त्रिविध पुन ॥१०।९९॥

अप्पय्यदीक्षित

'कुवलयानन्द म प्रमाणालकारा के अनन्तर अन्त म ससृष्टि तथा सकर का परिचय है। उनके केवल उदाहरण दिये गये हैं। सकर के पाच भेद हैं—

(१) अगागिभाव सकर, (२) सम प्राधान्य सकर, (३) सदेह सकर, (४) एकवचना

नुप्रवेश संकर (५) संकर संकर।

प्रथम, तृतीय तथा चतुर्थ भेद तो परम्परागत हैं, द्वितीय तथा पंचम नवीन हैं। 'सम प्राधान्य संकर' की विशेषता है, 'परस्परापेक्षया चारुत्वसमुन्मेषश्चोभयोस्तुल्यः' (पृ० १९५) 'चतुर्णामपि संकराणां यथायोग्यं संकरः' (पृ० २३०) को 'संकर संकर' कहा गया है।

हिन्दी के आचार्य

द्वै त्रि तीन भूषन मिलें छीर-नीर के न्याय।
अलंकार संकर कहैं, तिहि प्रवीन कविराय ॥३।८९॥

दासकवि ने अंगागिसंकर, सम प्रधान संकर तथा सन्देह संकर का वर्णन किया है। यह सम प्रधानसंकर मम्मट का 'एकाश्रयानुप्रवेश संकर' ही है। पोद्दार ने दस पृष्ठों में 'काव्यप्रकाश', 'अलंकारसर्वस्व' तथा 'साहित्यदर्पण' के अनुसार संकर का वर्णन किया है। रामदहिन मिश्र का वर्णन संक्षिप्त एवं 'काव्यप्रकाश' के आधार पर है।

उपसंहार

उद्भट ने संकर अलंकार की कल्पना की थी। जयरथ ने इसका खंडन किया है। शेष आचार्य संकर का वर्णन करते रहे हैं। संकर के स्वरूप का जो विवेचन रुद्रट ने किया, वही उत्तर आचार्यों को मान्य रहा। उद्भट का संकर व्यापक है—संसृष्टि भी उसके अन्तर्गत है। रुद्रट संसृष्टि संकर का पारस्परिक अंतर स्पष्ट कर देते हैं।

उद्भट ने संकर के चार भेद बतलाये थे। एक भेद संसृष्टि बन गया, शेष तीन भेद सभी आचार्यों को मान्य रहे। केवल अप्पय्य दीक्षित ने दो अन्य भेदों का भी वर्णन किया। तीन भेदों में से दो के नाम मम्मट एवं रुय्यक में समान हैं। तीसरे भेद का नाम 'एकवाचकानुप्रवेश' (रुय्यक) अधिक लोकप्रिय रहा।

५० काव्यहेतु

उद्भट

काव्यहेतु अथवा काव्यलिंग अलंकार का प्रथम विवेचन उद्भट ने 'काव्यालंकारसारसंग्रह' के षष्ठ वर्ग के अन्त में किया है। जब एक सुनी हुई वस्तु किसी अन्य की स्मृति अथवा अनुभव का कारण बने तो काव्यलिंग अलंकार का सौंदर्य है—

श्रुतमेकं यदन्यत्र स्मृतेरनुभवस्य वा।
हेतुतां प्रतिपद्येत काव्यलिंगं तदुच्यते ॥६।७॥

(यत्र एकं वस्तु श्रुतं सद्वस्त्वन्तरं स्मारयति अनुभावयति वा तत्र काव्यलिंगम्।)

तार्किकों का एक सम्प्रदाय यह मानता है कि हेतुव्यापार स्मृति है। कारण को देखकर अनुभूत कार्य की स्मृति होती है। दूसरा सम्प्रदाय यह मानता है कि हेतुव्यापार अनुमान है, कारण को देखकर अननुभूत कार्य का अनुमान कर लिया जाता है। इन दोनों सम्प्रदायों को मान्यता देते हुए उद्भट ने स्मृति तथा अनुभव दोनों का ग्रहण कर लिया है। शास्त्रहेतु देखने

पर निभर है परतु काव्यहतु सुनने पर। एकमात्र उदाहरण सरल तथा स्पष्ट है—

छायेय तव शेपाङ्गका ते किञ्चिदनुज्वला।
विभूपाघटनादेशान् दशयन्ती दुनोति माम् ॥

पावती के उन अगा की कान्ति, जहा आभूपण नही पहन जाते थे, कम हो गई, उसको देख कर आभूपणयुक्त अगो का अनुमान कर लिया जाता है।

वामन तथा रुद्रट मे इस अलकार का वणन नही है।

मम्मट

काव्यप्रकाश मे काव्यलिंग का सक्षिप्त लक्षण तथा तीन उदाहरण (वाक्यायरूप, अनेक पदाथरूप तथा एकपदाथरूप) दिय गये हैं। लक्षण है—

"काव्यलिंग हेतार्वाक्यपदाथता ॥११४॥

हेतु का वाक्याथ अथवा पदाथ (अनकपदाथ अथवा एकपदाथ) रूप म कथन काव्यलिंग अलकार है।

रुय्यक

अलकारसवस्व म काव्यप्रकाश की शब्दावली से ही लक्षण लिखा गया है। वत्ति म लक्षण को स्पष्ट किया गया है—

"यत्र हेतु कारणरूपा वाक्याथगत्या विशपणद्वारण वा पदाथगत्या लिंगत्वन निबद्धचते तत्काव्यलिंगम्। वाक्याथगत्या च निबध्यमाना हेतु वनवापनिवद्धव्य नोपनिबद्धस्य हेतुत्वम्। अन्यथा अर्थान्तरन्यासान नास्य भेद स्यात्।' (पृ० १८१)

जयदेव

'चन्द्रालोक म काव्यलिंग का लक्षण उदाहरण सामान्य एव सक्षिप्त है—

स्यात काव्यलिंग वागर्थो नूतनाथसमपक।
जितोऽसि मन्दकन्दप मच्चित्तेऽस्ति त्रिलाचन ॥५।३८॥

विश्वनाथ

साहित्यदपण' म काव्यलिंग का वणन मम्मट की शब्दावली मे ही है—

हेतोर्वाक्यपदाथत्व काव्यलिंग निगद्यते।

मम्मट के ही समान काव्यलिंग के तीन रूपा का वणन है। वत्ति म विश्वनाथ ने अनुमान काव्यलिंग तथा अर्थान्तरन्यास का अन्तर स्पष्ट किया है—

तथा ह्यत्र हतुस्त्रिधा भवति—ज्ञापका निष्पादक, समथकश्चेति। तत्र ज्ञापकोऽनुमानस्य विषय निष्पादक काव्यलिंगस्य, समथकोऽर्थान्तरन्यासस्य इति पृथगव काय-कारण भावेऽर्थान्तरन्यास काव्यलिंगात्। (विमला, पृ० ३४८)

अप्पय्यदीक्षित

कुवलयानन्द' में उदाहरण तो चन्द्रालोक से आया है, परन्तु लक्षण की शब्दावली अलग तथा सरल है— समर्थनीयस्यार्थस्य काव्यलिंग समर्थनम् ॥१२१॥'

जगन्नाथ

दीक्षित के लक्षण पर अर्थान्तरन्यास की अतिव्याप्ति की आपत्ति करते हुए रसगंगाधरकार ने निम्नलिखित लक्षण दिया है—

> अनुमितिकरणत्वेन सामान्य विशेषभावाभ्यां चानालिङ्गित प्रकृतार्थोपपादकत्वेन विवक्षितोऽर्थ काव्यलिंगम। (पृ० ५२८)

हिन्दी के आचार्य

दासकवि ने अप्पय्य दीक्षित के प्रभाव से काव्यलिंग का निम्नलिखित लक्षण दिया है—

> जहँ सुभाव के हेतु को कै प्रमान को कोइ।
> कै समर्थन जुक्तिबल काव्यलिंग है सोइ ॥१७।२५॥
> कहुँ वाक्यार्थ समर्थिये कहुँ सन्धार्थ सुजान।
> काव्यलिंग कविजुक्ति गनि कहै निरुक्ति न आन ॥१७।२६॥

कन्हैयालाल पोद्दार ने काव्यलिंग का वर्णन मम्मट के अनुकरण पर दिया है। रामदहिन मिश्र का वर्णन कुवलयानन्द पर आश्रित है।

उपसंहार

काव्यहेतु अथवा काव्यलिंग नाम से उद्भट ने इस सौन्दर्य की कल्पना की थी। मम्मट ने इसका व्यवस्थित वर्णन किया और तीन भेद बतलाये। उत्तर आचार्य मम्मट के ऋणी हैं। जयदेव ने भिन्न शब्दावली में काव्यलिंग का वर्णन किया। दीक्षित का लक्षण अलग है परन्तु उदाहरण चन्द्रालोक से आया है। विश्वनाथ ने अनुमान काव्यलिंग और अर्थान्तरन्यास के स्वरूप को अलग-अलग समझाया। दीक्षित ने परिकर और काव्यलिंग का भेद स्पष्ट किया है।

मम्मट ने काव्यलिंग के अन्तर्गत हेतु अथवा काव्यहेतु का भी वर्णन किया है इसके विपरीत पूर्ववर्ती दण्डी और भोज काव्यलिंग को हेतु अलंकार के अन्तर्गत कारकहेतु' नाम से लिखते हैं। रुय्यक के टीकाकार जयरथ' काव्यलिंग के चमत्कार में सौन्दर्य नहीं मानते इसलिए काव्यलिंग को अलंकारता प्रदान नहीं करते।

हेतु अलंकार का भामह ने खण्डन एवं दण्डी ने विवेचन किया था। उद्भट का काव्यहेतु उससे भिन्न है इसकी विच्छित्ति में तर्कशास्त्र का हेतु मात्र ही नहीं आता जिसका दण्डी वर्णन

---

१ अलंकार मंजरी पृ० ३५८।
२ अलंकारानुशीलन पृ० ४२३।

करते ह। यह वास्तविक हतु नही काव्यात्मक हेतु ह, "शास्त्रहेतु देखन पर निभर ह काव्यहतु सुनने पर। 'हतु अलकार क स्वरूप का विश्लेपण यथास्थान हो चुका है।

५१ दृष्टान्त

उद्‌भट

काव्यहेतु अथवा काव्यलिंग अलकार के अनन्तर काव्यदृष्टान्त अथवा दृष्टान्त अलकार का विवचन उदभट न किया है। दृष्टान्त का लक्षण है —

इष्टस्यार्थस्य विस्पष्टप्रतिबिम्बनिदर्शनम्।
यथेवादिपदै शून्य बुधदृष्टान्त उच्यते ॥६।८॥

(यथा इव आदि पदो के प्रयाग के बिना इष्ट अथ का स्पष्ट प्रतिबिम्ब निदर्शन दृष्टान्त अलकार है।)

दृष्टान्त म इष्टार्थ तथा प्रतिबिम्ब दाना का कथन आवश्यक है यथा इव आदि रहने से यह उपमा बन सकता है। आदि से साधारण धर्म[1] लिया जाता है क्याकि साधारण धर्म की उपस्थिति म प्रतिवस्तूपमा बन जायगी।

उदाहरण सरल तथा स्पष्ट है—

विचार्य बहुनात्र्नेन व्रज भर्तारमाप्नुहि।
उन्नतमनासाद्य महानद्य विश्रामो ॥

यहा पार्वती की पतिप्राप्ति इष्टार्थ तथा महानदी की सागर प्राप्ति प्रतिबिम्ब दाना का कथन है, वाचक शब्द तथा साधारणधर्म का अभाव है।

वामन म दृष्टान्त अलकार का वर्णन नही है।

रुद्रट

अर्थविशेष पूर्व यादृग्न्यस्ता विवक्षिततरया।
तादृशमन्य न्यस्येद्यत्र पुन सोऽत्र दृष्टान्त ॥८।९४॥

प्रस्तुत अथवा अप्रस्तुत अर्थों म जिस प्रकार का अथ पूर्वस्थित हो उसी प्रकार का अन्य अर्थ *वक्ता पुन रखे तो दृष्टान्त का चमत्कार है। यदि प्रस्तुत पूर्व हो तो उसी प्रकार का अप्रस्तुत* पश्चात हो यदि अप्रस्तुत पूर्व हो तो उसी प्रकार का प्रस्तुत पश्चात हो। यहा 'प्रतिबिम्ब' का भाव लक्षण म नही है। विवक्षित (प्रस्तुत) की पूर्वस्थिति का उदाहरण है—

त्वयि दृष्ट एव तस्या निर्वाति मनो मनोभवज्वलितम्।
आलोके हि सिताशोर्विकसति कुमुद कुमुद्वत्या ॥८।९५॥

---

[1] यत्र तु इष्टमर्थ स्वकण्ठेनोपात्त तस्य प्रतिबिम्बमुपदर्श्यते तत्र दृष्टान्तत्वम्। अतो नातिव्याप्ति। उपमाया वप्यवविधस्य रूपस्य सम्भव इति तन्निराकरणायमुक्तम् यथेवादिपदै शून्यमिति। आदिग्रहणात्र साधारण धर्मस्यापि परिग्रह। (इन्दुराज पृ० ८५)

मम्मट

'काव्यप्रकाश' में प्रतिवस्तूपमा के अनन्तर दृष्टान्त का अत्यन्त संक्षिप्त एवं स्पष्ट निरूपण किया है —

दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बनम् ॥१०२॥

उपमान, उपमेय, उनके विशेषण[1] और साधारण धर्म[2] आदि सबका (भिन्न होने हुए भी औपम्य के प्रतिपादनार्थ उपमान-वाक्य तथा उपमेय-वाक्य में पृथगुपादानरूप) बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव होने पर दृष्टान्त अलंकार है। दृष्टान्त साधर्म्य से भी हो सकता है और वैधर्म्य से भी।

रुय्यक

अलंकार-सर्वस्व में भी प्रतिवस्तूपमा के अनन्तर मम्मट के अनुकरण पर दृष्टान्त का वर्णन है। लक्षण है—

'तस्यापि बिम्बप्रतिबिम्बभावतया निर्देशे दृष्टान्तः।

मम्मट की शेष बातें वृत्ति में स्पष्ट कर दी गई हैं —

तस्यापीति न केवलमुपमानोपमेययोः। तच्छब्देन सामान्यधर्मः प्रत्यवमृष्टः। अयमपि साधर्म्य-वैधर्म्याभ्यां द्विविधः। (पृ० ९६)

जयदेव

मम्मट के अनुकरण पर लक्षण उदाहरण सरल तथा स्पष्ट है—

चेद् बिम्बप्रतिबिम्बत्वं दृष्टान्तस्तदलङ्कृतिः।
त्वमेव कीर्तिमान् राजन् विधुरेव हि कान्तिमान् ॥५।५६॥

दृष्टान्तश्चेद् भवन्मूर्तिस्तन्मृष्टा दैवदुर्लिपिः।
जाता चेत्प्राक् प्रभा भानोस्तर्हि याता विभावरी॥५।५७॥

विश्वनाथ

साहित्यदर्पण में मम्मट के प्रतिपादन को लक्षण एवं वृत्ति द्वारा और अधिक स्पष्ट किया गया है। लक्षण है— दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्।

वृत्ति की व्याख्या है—

सधर्मस्येति प्रतिवस्तूपमाव्यवच्छेदः। अयमपि साधर्म्य-वैधर्म्याभ्यां द्विधा। अत्र समर्थ्यसमर्थकवाक्ययोः सामान्यविशेषभावादर्थान्तरन्यासः, प्रतिवस्तूपमादृष्टान्तयोस्तु न तथेति भेदः। (विमला पृ० ३३१)

---

१ विश्वेश्वर पृ० ४८६।

२ एतेषां साधारणधर्मान्तानाम्। (वृत्ति)

अप्पय्य दीक्षित

लक्षण 'चन्द्रालोक' से आ गया है। उसकी व्याख्या वृत्ति में की गई है—

यत्र उपमानोपमेयवाक्ययो भिन्नावेव धर्मौ बिम्ब प्रतिबिम्बभावेन निर्दिष्टौ तत्र दृष्टान्त।" (पृ० ५७) साधर्म्य तथा वैधर्म्य के उदाहरण दिये गये हैं।

जगन्नाथ

'रस-गगाधर' मे दृष्टान्त का लक्षण इस प्रकार है—

प्रकृतवाक्यार्थघटकानाम उपमानादीनाम साधारणधर्मस्य च बिम्बप्रतिबिम्बभावे दृष्टान्त।' (पृ० ४५१)

हिन्दी के आचार्य

देवकवि ने दृष्टान्त को 'लक्षन नाम प्रमान' माना है—

दृष्टान्तालकार सो, लक्षन नाम प्रमान। (पृ० १७२)

दासकवि का लक्षण मम्मट के अनुसार है—

लखि बिम्ब प्रतिबिम्ब गति, उपमेयौ उपमान।
लुप्त सब्द-वाचक किये, है दृष्टान्त सुजान ॥८।५४॥
साधर्मो वैधर्म सो कहुँ बसाई धर्म।
कहूँ दूसरी बात ते, जानि परै सोइ मर्म ॥८।५५॥

पोद्दार तथा मिश्र का वर्णन मम्मट के अनुसार है। दृष्टान्त का प्रतिवस्तूपमा से अन्तर स्पष्ट करते हुए पोद्दार लिखते है—

'प्रतिवस्तूपमा मे केवल साधारण धर्म का वस्तु प्रतिवस्तुभाव अर्थात शब्द भेद द्वारा एक धर्म दोनो वाक्यो मे कहा जाता है। दृष्टान्त मे उपमेय, उपमान तथा साधारण धर्म—तीनो का बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव रहता है।" (अलकार-मजरी, पृ० २२१)

उपसहार

'दृष्टान्त अथवा काव्यदृष्टान्त' की कल्पना उदभट ने की थी और बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव एव उपमासूचक पदो का अभाव इसकी दो विशेषताएँ थी। उत्तर आचार्य इसको केवल दृष्टान्त' कहने लगे। रुद्रट का लक्षण कुछ भिन्न है, परन्तु मम्मट ने प्रतिवस्तूपमा से अन्तर करते हुए दृष्टान्त का लक्षण लिखा है जिसका सभी आचार्यों ने अनुकरण किया।

दृष्टान्त साधर्म्य से भी हो सकता है तथा वैधर्म्य से भी। कुछ आचार्य 'माला' का भी वर्णन करते हैं।

प्रतिवस्तूपमा तथा 'दृष्टान्त' दोनो की कल्पना उदभट ने की थी। रुद्रट के अतिरिक्त समस्त आचार्यों के ध्यान मे ये दोनो अलकार साथ-साथ आते हैं। इन दोनो मे साम्य गम्य होता है वह भी दो स्वतन्त्र वाक्यो मे, पदार्थों मे नही। जगन्नाथ ने इसी कारण इन दोनो का एक ही

आलस्यमालिङ्गति गात्रमस्या ।[1]
असादृश्यनिबन्धना लक्षणा[2] वक्रोक्ति नही होती ।

रुद्रट

'काव्यालकार' के द्वितीय अध्याय मे रुद्रट ने शब्द के पाच अलकारो का वर्णन किया है—

वक्रोक्तिरनुप्रासो यमक श्लेषस्तथा पर चित्रम् ॥२।१३॥

इस पुस्तक मे शब्दालकारो का विवेचन पहले है, अर्थालकारो का तदनन्तर। शब्दालकारो मे भी प्रथम 'वक्रोक्ति' का विवेचन है। यह वक्रोक्ति वामन की परम्परा मे अलकार मात्र है, भामह की परम्परा का, अलकार का प्राण नही।

वक्त्रा तदन्यथोक्त व्याचष्टे चान्यथा तदुत्तरद ।
वचन यत्पदभङ्गै र्ज्ञेया सा श्लेषवक्रोक्ति ॥२।१४॥

वक्रोक्ति का प्रथम भेद श्लेषवक्रोक्ति है। वक्ता के विशिष्ट अभिप्राय से कहे गये वचन को सुनकर, उत्तरदाता उस वचन के पदो को भग करके उसका अन्यथा उत्तर देने का प्रयत्न करता है। उदाहरण है—

कि गौरि मा प्रतिरुषा ननु गौरह किं
कुप्यामि का प्रति मयीत्यनुमानतोऽहम।

इसमे 'गौरि मा' को उत्तरदाता गौ इमा कर देती है और 'मयीत्यनुमानतोऽहम' को 'मयि इति अनुमा नतोऽहम कर देती है।

वक्रोक्ति का दूसरा भेद काकुवक्रोक्ति है—

विस्पष्ट क्रियमाणादक्लिष्टा स्वरविशेषो भवति ।
अर्थान्तरप्रतीतिर्यत्रासौ काकुवक्रोक्ति ॥२।१६॥

अत्यन्त स्पष्ट रूप से किये गये विशेष स्वर (=उच्चारण) से अक्लिष्ट अर्थात नितान्त सरल अर्थान्तर की प्रतीति 'काकुवक्रोक्ति' का चमत्कार है। उदाहरण है—

शल्यमपि स्खलदन्त सोढु शक्यत हालाहलदिग्धम ।
धीरन पुनरकारणकुपितखलालीकदुर्वचनम ॥२।१७॥

जो धीर पुरुष अपने वक्ष स्थल पर मर्मभेदी विषले शल्य का प्रहार सह सकते है वे अकारण-कुपित खलो के कटु वचन नही सह सकते।

रुद्रट ने वक्रोक्ति शब्दालकार को एक नयी व्याख्या दी, जिसको मम्मट रुय्यक आदि समस्त आचार्यों ने अपना लिया। रुद्रट द्वारा कल्पित भेद द्वय भी सबको उन्ही *लक्षणो के साथ* मान्य रहे।

---

१ आलस्य का शरीर को आलिगन करना लक्षणा से शरीर म आलस्य की स्थिति का सूचित करता है।
२ असादृश्यनिबन्धना तु लक्षणा न वक्रोक्ति । (पृ० २३७)

मम्मट

यदुक्तमन्यथा वाक्यमन्यथाऽन्येन योज्यते।
श्लेषेण काक्वा वा ज्ञेया सा वक्रोक्तिस्तथा द्विधा ॥९।७८॥

रुद्रट की स्थापना को ही मम्मट ने अधिक स्पष्ट कर दिया है।

अन्य आचार्य

रुय्यक, जयदेव तथा विश्वनाथ के वर्णन इसी परम्परा में हैं—

'अन्ययोक्तस्य वाक्यस्य काकुश्लेषाभ्यामन्यथायोजनं वक्रोक्तिः।' (अलंकारसर्वस्व)
"वक्रोक्ति श्लेष-काकुभ्यां वाच्यार्थान्तरकल्पनम् ॥५।१८०॥ (चन्द्रालोक)
अन्यस्यान्यार्थकं वाक्यमन्यथा योजयेद्यदि।
अन्यः श्लेषेण काक्वा वा सा वक्रोक्तिस्ततो द्विधा ॥१०।९॥ (साहित्यदर्पण)
वक्रोक्तिः श्लेष-काकुभ्यामपरार्थप्रकल्पनम् ॥१५९॥ (कुवलयानन्द)

हिन्दी के आचार्य

एक वाक्य बहु अर्थ पद जहं सुश्लेष बखानि।
श्लेष काकु अपराध धुनि वक्र उक्ति सो ठानि॥ (शब्दरसायन)
द्वय काकु तें अर्थ को फेरि लगाव तक।
वक्रउक्ति तासों कहे ज बुधि-अबुज अक ॥२० १४॥ (काव्यनिर्णय)

कन्हैयालाल पोद्दार ने मम्मट के अनुसार वक्रोक्ति का वर्णन किया है।

उपसंहार

वक्रोक्ति को काव्यशास्त्र में कई अर्थों में ग्रहण किया गया है। भामह से जो परम्परा चली, वह अतिशयोक्ति एवं वक्रोक्ति को समानार्थ मानती थी और उसे सौंदर्य का मूल घोषित करती थी—उसके बिना कोई अलंकार नहीं होता। दण्डी ने इसमें केवल इतना परिवर्तन किया कि वाङ्मय को वक्रोक्ति के साथ साथ स्वभावोक्ति के सौंदर्य पर भी निर्भर माना। ध्वनिकार तथा वक्रोक्तिकार तो भामह के मुख्य समर्थक हैं। मम्मट ने भी भामह को नामपूर्वक उद्धृत किया है।

दूसरी परम्परा वामन से चली जो वक्रोक्ति को अलंकार-मात्र मानती है। वामन सादृश्य की लक्षणा के चमत्कार को वक्रोक्ति मानते थे। रुद्रट ने वक्रोक्ति को नवीन व्याख्या प्रदान की। वक्रोक्ति शब्दालंकार बन गया और श्लेषवक्रोक्ति तथा काकुवक्रोक्ति उसके दो भेद मान लिये गये। रुद्रट की व्याख्या सभी उत्तर आचार्यों ने स्वीकार की है और संस्कृत एवं हिन्दी के आचार्य वक्रोक्ति को शब्दालंकार मानकर उसके दो भेदों का वर्णन करते हैं।

५३ व्याजोक्ति

वामन

काव्यालंकार-सूत्र वृत्ति के चतुर्थ अधिकरण में 'व्याजस्तुति' अलंकार का निरूपण करने

के अनन्तर वामन ने सक्षेप म 'व्याजोक्ति' का विवेचन किया है। 'व्याजस्तुति' तथा 'व्याजोक्ति दो अलग अलकार है, यह वत्ति से ही स्पष्ट है—"व्याजस्तुतेर्व्याजोक्ति भि ना दशयितुमाह।"

व्याजोक्ति का लक्षण है—'याजस्य सत्यसारूप्य व्याजोक्ति ॥४,३ २५॥

अथात् 'व्याजस्य छद्मना सत्येन सारूप्य व्याजोक्ति' असत्य के व्याज से सत्य का सादश्य अथवा प्रतिपादन व्याजोक्ति अलकार का चमत्कार है। इस सौदय को 'मायोक्ति' भी कहत हैं। उदाहरण एकमात्र तथा सरल है—

> शरच्च द्राशुगौरेण वाताविद्धेन भामिनि ।
> काश-पुष्प-लवेनेद साश्रुपात मुख कृतम ॥

यहा सात्त्विक भाव से होने वाले अश्रुपात को 'काशपुष्प के तिनके के आख म पड जाने से होने वाला अश्रुपात' कहकर सत्य को छिपाने का यत्न किया गया है।

मम्मट

> व्याजोक्तिश्छद्मनोद्भि न वस्तुरूप निगूहनम् ॥१०।११८॥

उद्भि न अर्थात् प्रकट वस्तु के रूप का किसी छद्म से गोपन, व्याजोक्ति है। अपह्नुति म[1] प्रकृत और अप्रकृत का साम्य विवक्षित होता है जिसके द्वारा प्रकृत का अपह्नव किया जाता है, व्याजोक्ति म प्रकृत और अप्रकृत का साम्य नही होता।

एकमात्र उदाहरण सात्त्विक भावो को छिपान का यत्न चित्रित करता है—

> शलेन्द्र प्रतिपाद्यमानगिरिजा हस्तोपगूढोल्लसत-
> रोमाञ्चादि विसष्ठुलाखिल विधि-व्यासङ्ग भङ्गाकुल ।
> हा शैत्य तुहिनाचलस्य करयोरित्यूचिवान सस्मित
> शला त पुर-मातृमण्डलगणै द ष्टोऽवताद् व शिव ॥

रुय्यक

अलकार-सवस्व' मे काव्यप्रकाश' की शब्दावली मे ही लक्षण है और वही उदाहरण उदधृत किया गया है। लक्षण है—

> "उद्भि नवस्तुनिगूहन व्याजोक्ति ।'

इस लक्षण की व्याख्या भी है—"यत्र निगूढ वस्तु कुतश्चिन्निमित्ताद उदभि न प्रकटता प्राप्त सद्वस्व तरप्रक्षेपेण निगूह्यते अपलप्यते सा वस्त्व तरप्रक्षेपरूपस्य व्याजस्य वचनाद् व्याजोक्ति ।" (पृ० २१८)

रुय्यक ने अपह्नुति तथा व्याजोक्ति का अ तर भी स्पष्ट किया है—

अपह्नुति म सादश्य के लिए अपह्नव होता है व्याजोक्ति म अपह्नव के लिए वस्त्वन्तर का कथन किया जाता है। (पृ० २१९)

---

१ न चैषापह्नु ति प्रकृताप्रकृतोभयनिष्ठस्य साम्यस्येहासम्भवात्। (वत्ति)

जयदेव

'चन्द्रालोक' में व्याजोक्ति का लक्षण-उदाहरण सरल एवं सुगम है—

व्याजोक्तिः शङ्कमानस्य छद्मना वस्तुगोपनम्।
सखि पश्य गृहारामपरागैरस्मि धूसरा ॥५।१०॥

विश्वनाथ

व्याजोक्तिर्गोपनं व्याजात् उद्भिन्नस्यापि वस्तुनः ॥१०।९२॥

जो उदाहरण मम्मट ने दिया है वही विश्वनाथ ने भी। प्रथम अपह्नुति से व्याजोक्ति का अन्तर यह है कि इसमें उपमेय का कथन नहीं होता। यह द्वितीय अपह्नुति से भी भिन्न है क्योंकि उसमें गोप्य वस्तु का पहले कथन होता है फिर गोपन होता है।

अप्पय्यदीक्षित

कुवलयानन्द में उदाहरण तो चन्द्रालोक से आया है परन्तु लक्षण अपना है—

व्याजोक्तिरन्यहेतूक्त्या यदाकारस्य गोपनम्।
सखि! पश्य गृहारामपरागैरस्मि धूसरा ॥१५३॥

छेकापह्नुति से व्याजोक्ति का अन्तर स्पष्ट किया गया है—

छेकापह्नुतावस्याश्चायं विशेषः। तस्यां वचनस्य अन्यथा नयनेन अपह्नवः।
अस्यामाकारस्य हेत्वन्तरवर्णनेन गोपनमिति। (पृ० १६९)

हिन्दी के आचार्य

व्याज उक्ति छल सों कहै। (शब्दरसायन, पृ० १८०)
वचन चातुरी सों जहाँ, कीजै काज दुराउ।
सो भूषन व्याजोक्ति है, सुनो सुमति-समुदाउ॥ (काव्यनिर्णय)

देव, दास, पोद्दार तथा मिश्र ने व्याजोक्ति का वर्णन मम्मट के अनुसार किया है।

उपसंहार

व्याजोक्ति अलंकार की कल्पना वामन ने की थी। वामन के अनुसार असत्य के व्याज से सत्य का सादृश्य (सत्य को छिपाना) व्याजोक्ति है। मम्मट से व्याजोक्ति का स्वरूप व्यवस्थित हुआ उत्तर आचार्यों में इसी का अनुकरण है। दीक्षित के लक्षण में आकार गोपन पद का प्रयोग है अन्य आचार्य गोपन को आकार तक सीमित नहीं करते।

वामन के समक्ष व्याजस्तुति तथा व्याजोक्ति का लक्षण था। मम्मट से अपह्नुति तथा व्याजोक्ति का अन्तर वर्णन में आने लगा। दीक्षित ने व्याजोक्ति तथा युक्ति अलंकारों का एक ही प्रकार से वर्णन किया है, जिसका आलोचकों ने खण्डन[1] किया है।

---

१ अलंकारानुशीलन पृ० ४७१।

षष्ठ अध्याय

रुद्रट द्वारा उद्भावित अलंकार

(क) वास्तव-मूल के नवीन अलंकार

५४ समुच्चय

रुद्रट

यत्रैकत्रानेकं वस्तु परं स्यात्सुखावहाद्येव ।
ज्ञेयः समुच्चयोऽसौ त्रेधान्यः सदसतोर्योगः ॥७।१९॥

जहाँ एक आधार पर अनेक सुखावह अथवा दुःखावह वस्तुओं का उत्कृष्ट वर्णन किया जाय, वहाँ समुच्चय अलंकार है। इस समुच्चय के तीन भेद हैं—दो सत्पदार्थों का योग, दो असत्पदार्थों का योग, दो सदसत्पदार्थों का योग।

दुर्गं त्रिकूटः, परिखा पयोनिधिः, प्रभुर्दशास्यः, सुभटाश्च राक्षसाः ।
नरोऽभियोक्ता सचिवैः प्लवंगमैः किमत्र वो हास्यपदे महद्भयम् ॥७।२०॥

यहाँ एक आधार राम को लक्ष्य करके रावण के अनेक उपकरणों का वर्णन है। रुद्रट ने द्रव्यसमुच्चय, गुणसमुच्चय एवं क्रियासमुच्चय के उदाहरण देने के उपरान्त 'सतोर्योग' 'असतोर्योग' एवं 'सदसतोर्योग' के भी उदाहरण दिये हैं।

समुच्चय का एक प्रकारान्तर वह भी है जहाँ भिन्न स्थानों में स्थित गुण अथवा क्रिया एक स्थान पर एक ही समय में वर्णित हों—

व्यधिकरणे वा यस्मिन् गुणक्रिये चैककालमेकस्मिन् ।
उपजायेते देशे समुच्चयः स्यात्तदन्योऽसौ ॥७।२७॥

'काव्यालंकार' में गुण-समुच्चय और क्रियासमुच्चय के उदाहरण दिये गये हैं।

विदलित-सकलारिकुलं तव बलमिदमभवदाशु विमलं च ।
प्रखलमुखानि नराधिप ! मलिनानि च तानि जातानि ॥७।२८॥

यहाँ विमलत्व एवं मलिनत्व गुणों का समुच्चय है।

रुद्रट ने औपम्य-वर्ग में भी समुच्चय अलंकार का वर्णन किया है। 'उपमानोपमेयत्व' इस समुच्चय का प्राण है—

सोऽयं समुच्चयः स्याद्यत्रानेकोऽर्थ एकसामान्यः ।
अनिवादिद्रव्यादि सत्युपमानोपमेयत्वे ॥८।१०३॥

इव आदि के प्रयोग के बिना, उपमानोपमेयत्व भाव में द्रव्य आदि अनेक अर्थ एक सामान्य धर्म से युक्त हों। उपमा में इव आदि का प्रयोग होता है और रूपक में उपमानोपमेयत्व अभेद से रहता है—यही समुच्चय से उनका अन्तर है। उदाहरण—

जालेन सरसि मीना हिंसरणा वने च वागुरया।
संसारे भूतमृजा स्नेहेन नराश्च बध्यन्ते ॥८।१०८॥

सामान्य धर्म बध्यन्ते से अनेक अर्थों का उपमानोपमेयत्व भाव से सम्बन्ध है।

मम्मट

तत्सिद्धिहेतावेकस्मिन् यत्रान्यत् तत्करं भवेत्।

तस्य प्रस्तुतस्य कार्यस्य एकस्मिन् साधके स्थिते साधकान्तराणि यत्र सम्भवन्ति स समुच्चयः।—एष एव समुच्चयः सद्योगे असद्योगे सदसद्योगे च पर्यवस्यतीति न पृथक् लक्ष्यते।

(पृ० ५१५ ६)

वस्तुतः यह रुद्रट का प्रथम समुच्चय है जिसके तीनों भेद मम्मट को मान्य हैं। समुच्चय के लक्षण में कुछ सुधार हुआ है। रुद्रट एक आधार पर अनेक सुखावह अथवा दुःखावह वस्तुओं का वर्णन समुच्चय मानते थे। मम्मट ने साधक-साध्य-सम्बन्ध की योजना कर दी और प्रथम साधक को मुख्यता प्रदान कर दी।

स त्वन्यो युगपत् या गुणक्रिया ॥११६॥

द्वितीय समुच्चय का लक्षण है दो गुणों अथवा दो क्रियाओं अथवा एक गुण और एक क्रिया का एक साथ वर्णन। रुद्रट का खण्डन करते हुए मम्मट कहते हैं कि व्यधिकरण पद का प्रयोग इस लक्षण में उचित नहीं है इसी प्रकार से एकस्मिन् देशे की भी लक्षण में आवश्यकता नहीं है।

रुय्यक

गुणक्रियायौगपद्यं समुच्चयः।

रुय्यक का प्रथम समुच्चय मम्मट का द्वितीय समुच्चय है। इसका लक्षण व्यापकतर है। यह सौन्दर्य विभिन्नविषयत्व में भी पाया जाता है तथा एकाधिकरण में भी। गुणक्रिया के व्यस्तत्व में भी यह सौन्दर्य है तथा समस्तत्व में भी। (पृ० २०१)

एकस्य सिद्धिहेतुत्वेऽन्यस्य तत्करत्वं च।

रुय्यक का द्वितीय समुच्चय मम्मट का प्रथम समुच्चय है। यह सद्योग, असद्योग एवं सदसद्योग में पाया जाता है। रुय्यक ने समाधि से समुच्चय का अन्तर वृत्ति में स्पष्ट किया है—

न चायं समाध्यलंकारान्तर्भवति। तत्र ह्येकस्य कार्यं प्रति पूर्णं साधकत्वम्। अन्यस्तु काकतालीयन्यायेनापततीति यत्र समाधिर्वक्ष्यते। यत्र तु खले कपोतिकया बहूनामवतारः स्तत्रायं समुच्चयः। (पृ० २०२)

जयदेव

जयदेव का समुच्चय वणन अ'यत सामा'य एव सक्षिप्त है—

भूयसामेकसम्ब धभाजा गुम्फ ममुच्चय ।।५।९७।।

विश्वनाथ

रुय्यक के प्रभाव स 'साहित्यदपण' म निम्नलिखित लक्षण दिया गया है—

समुच्चयोऽयमकस्मिन सति कायस्य साधके ।।
खले कपोतिका यायात तत्कर स्यात्परोऽपि चेत ।
गुणौ क्रिय वा युगपत्स्याता यद्वा गुणक्रिय ।।१०।८४ ।।

अप्पय्यदीक्षित

कुवलयान द म प्रथम एव द्वितीय समुच्चय के क्रमश लक्षण है—

बहूना युगपद्भावभाजा गुम्फ समुच्चय ।।११५।।
अह प्राथमिकाभाजामेककार्या वयेऽपि स ।।११६।।

जग नाथ

रस-गगाधर म रुय्यक की श दावली स समाधि एव समुच्चय का अ तर दिखलाया गया है (पृ० ६६०) । लक्षण सरल है—

युगपत्पदाथानाम वय समुच्चय ।'

हि दी के आचार्य

बहुन एक ही बार पद, गुहे समुच्चय जानि ।
क बहु बात एक मैं एकहि बार बखानि ।। (शब्दरसायन)
एक करता सिद्धि का, और हाहि सहाइ ।
बहुत हाहि इक बार क द्व अनमिल इक भाइ ।। (का यनिणय, १५ ३२)

मम्मट का प्रभाव देवकवि, दासकवि, पोद्दार (प० ३४६) तथा रामदहिन मिश्र (पृ० ४१३) पर स्पष्ट लक्षित हाता है—लक्षण म भी तथा भेद-वणन म भी ।

उपसहार

समुच्चय अलकार का वणन रुद्रट ने किया था। सभी उत्तर आचार्यों ने इसको मा यता प्रदान की है । रुद्रट क अनुसार एक ही आधार म अनेक पदार्थों का एकत्रीकरण समुच्चय का सौन्दय है। रुद्रट का द्वितीय समुच्चय सुख-दु खपरक अनेक पदार्थों का वणन है। मम्मट न समुच्चय को वनानिक लक्षण प्रदान किया। रुय्यक न खले कपोतिका याय के आधार पर समुच्चय की व्याख्या की और समाधि स इसका अन्तर स्पष्ट किया। जगन्नाथ न वस्तुआ के योग-

पद्य सबध को समुच्चय बतलाया और क्रम अथवा काल भेद का लक्षण म स्थान नही दिया। हिन्दी क आचार्यो ने प्राय मम्मट रुय्यक का अनुकरण किया है।

समुच्चय के दो रूप रुद्रट न भी मान थे परन्तु मम्मट के दो समुच्चय रुद्रट का अनुकरण मात्र नही हैं। मम्मट के भेद आग भी स्वीकार किय गय। किसी काय की सिद्धि म एक साधक के होत हुए भी अन्य साधक का कथन—प्रथम समुच्चय है इसके तीन भेद बतलाये गये हैं। अनक गुणा अथवा क्रियाओ अथवा गुणा और क्रियाओ का एक साथ वणन द्वितीय समुच्चय है इसके भी तीन भेद माने गये हैं।

५५ भाव

रुद्रट

यस्य विकार प्रभवन्नप्रतिबद्धेन हेतुना येन।
गमयति तदभिप्राय तत्प्रतिबन्ध च भावोऽसौ ॥७।३८॥

विकारयुक्त व्यक्ति का चेष्टादि विकार उत्पन्न होकर जिस अप्रतिबद्ध (अनकान्तिक) हेतु द्वारा विकारयुक्त व्यक्ति के अभिप्राय एव प्रतिबन्ध को प्रकट कर देता है वह भाव अलकार का सौन्दय है। मम्मट ने ऐसे उदाहरण मे गुणीभूतव्यड ग्य[1] माना है।

ग्रामतरुण तरुण्या नववञ्जुलमञ्जरीसनाथकरम।
पश्यन्त्या भवति मुहुर्नितरा मलिना मुखच्छाया ॥७।३९॥

यहाँ विकार मुखमालिन्य है उसका हेतु मञ्जरी-दशन है विकारयुक्त नायिका की खिन्नता यहाँ मालिन्य द्वारा प्रकट है।

भाव का दूसरा भेद है—

अभिधेयमभिदधान तदेव तदसदृशसकलगुणदोषम्।
अर्थान्तरमवगमयति यद्वाक्य सोऽपरा भाव ॥७।४०॥

जहाँ पर वाक्य अभिधयाथ को बताकर तदसदृश गुणदोषयुक्त अर्थान्तर का बोध कराता है वह भाव का दूसरा रूप है। उत्तर आचार्यो के अनुसार यहाँ ध्वनि का चमत्कार है—

एकाकिनी यदबला तरुणी तथाहम
अस्मिन्गृहे गृहपतिश्च गतो विदेशम्।
किं याचसे तदिह वासमिय वराकी
श्वश्रूममान्धबधिरा ननु मूढ पान्थ ॥७।४१॥

मम्मट रुय्यक जयदेव विश्वनाथ दीक्षित जगन्नाथ आदि ने इसे अलकार नही माना। इसी प्रकार हिन्दी क आचार्यो म भी भाव नामक अलकार का वणन नहा है।

उपसहार

भाव अलकार का वर्णन रुद्रट ने किया था। मम्मट ने इसको स्वीकृति नही दी। अन्य आचाय

---

१ भारतीय साहित्यशास्त्र प्रथम खण्ड प ९७

भी इसका वणन नही करते। इस चमत्कार को अलकार न मानकर प्रथम भेद म गुणीभूत व्यग्य तथा द्वितीय भेद मे ध्वनि का सौन्दर्य माना जाता है।

५६ पर्याय

रुद्रट

पर्याय अलकार के दो प्रकार हैं। विवक्षित अथ के प्रतिपादन मे समथ अथ से ऐसे अथ का कथन हो जो न उसके सदश है न उसका जनक है, और न उसम जनित है — इसे प्रथम प्रकार का पर्याय कहत हैं—

वस्तु विवक्षितवस्तु प्रतिपादनशक्तमसदश तस्य।
यदजनकमजन्य वा तत्कथन यत्स पर्याय ॥७।४२॥

यथा राजन्जहासि निद्रा रिपुवधूदी निविड निगन्शब्देन।
तेनव यदुत्तरित म वल्वला वन्दिवदस्य ॥७।४३॥

नवाचार्यों के अनुसार यह व्यजना का चमत्कार है।

द्वितीय पर्याय उस कहते हैं जहाँ अनेक आधारा म एक अथवा एक आधार म अनेक सुख दुखादिस्वरूप वस्तुआ का क्रम स वर्णन हो—

यत्रैकमनेकस्मिन्ननेकमेकत्र वा क्रमेण स्यात।
वस्तुसुखादिप्रकृति क्रियत वान्य स पर्याय ॥७।४४॥

मम्मट

"एक क्रमेणानेकस्मिन् पर्याय । अन्यस्ततोऽयथा ॥"

प्रथम पर्याय म एक वस्तु क्रम से अनेक म होती है या की जाती है। द्वितीय पर्याय मे अनेक वस्तुएँ क्रम से एक म होती या की जाती हैं। ये दोना पयाय रुद्रट के द्वितीय पर्याय के ही दो रूप हैं। रुद्रट के प्रथम पर्याय को, व्यजना का चमत्कार मात्र होने से, यहा स्वीकार नही किया गया।

पर्याय परिवृत्ति से भिन्न है। परिवृत्ति मे एक व्यक्ति एक वस्तु का त्याग और दूसरी का ग्रहण करता है, पर्याय मे ऐसा नही है।

रुय्यक

'अलकार-सवस्व' म मम्मट की अपेक्षा रुद्रट का अनुकरण अधिक है और रुद्रट के दोना ही पर्यायो का वणन है—

(क) 'एकमनेकस्मिन्ननेकमेकस्मिन क्रमेण पर्याय ।"

विशेष तथा पर्याय के इस भेद म अन्तर है। विशेष अलकार म एकमनेकगोचर आधार है, पर्याय म क्रम का उपादान[1] है।

---

१ तत्रैकमनेकगोचरमिति प्राक्तनेन लक्षणेन विशेषोऽलकारोऽभिहित । इह च क्रमोपादानाद् अर्थात्तत्र यौगपद्यप्रतीति । (वृत्ति, पृ० १८६)

(ख) एकस्मिन्नाधारेऽनेकमाधेय यत्स द्वितीय पर्याय ।
एतदथमपि क्रमेणेति याज्यम् । अतएव क्रमाश्रयणात पर्याय इत्यन्वथमभिधानम्—
विनिमयाभावात परिवृत्तिवलक्षण्यम् । (पृ० १८९ ९०)

जयदेव

जयदेव का पर्याय का लक्षण उदाहरण सरल है—

पर्यायश्चेदनेकत्र स्यादेकस्य सम वय ।[1]
पद्म मुक्त्वा गता चन्द्र कामिनीवदनोपमा ॥५।९३॥

विश्वनाथ

साहित्यदपण का लक्षण मम्मट के अनुकरण पर है—

क्वचिदेकमनेकस्मिन अनेक चकग क्रमात ।
भवति क्रियत वा चत्तदा पर्याय इष्यते ॥१०।८०॥

विशेष एव परिवृत्ति से पर्याय का अन्तर वत्ति म दिखलाया गया है—

अत्र चकस्यानेकत्र क्रमेणव वत्ति विशेषालकाराद भेद । विनिमयाभावात परिवृत्ते । (पृ० ३५७)

अप्पय्यदीक्षित

कुवलयानन्द के लक्षणोदाहरण चन्द्रालोक के अनुसार हैं—

पर्यायो यदि पर्यायेणकस्यानेकसश्रय ।
पद्म मुक्त्वा गता चन्द्र कामिनीवदनोपमा ॥११०॥

जगन्नाथ

रस-गगाधर म रुय्यक का अनुकरण है—

क्रमेणानेकाधिकरणमेकमाधेयमेक पर्याय
क्रमेणानेकाधेयकमेकमधिकरणमपर ॥ (पृ० ६४५)

हिन्दी के आचाय

दासकवि का लक्षण उपयुक्त एव सरल है—

तजि तजि आश्रय करत तें है पर्जाय विलास ।
घन्ती बन्ती देखिक कहि सकोच विकास ॥१८।२०॥

---

1 कुवलयानन्द में उदाहरण चन्द्रालोक का एव लक्षण निम्नलिखित है—
पर्यायो यदि पर्यायेणकस्यानेकसश्रय ॥११ ॥

पयाय के दो भेद मकोच-पर्याय तथा विकास पर्याय है। पोद्दार (पृ० ३३३) तथा मिश्र (पृ० ४०९) ने मम्मट के अनुकरण पर पर्याय का वर्णन किया है।

उपसहार

पर्याय का वणन रुद्रट ने किया था। मम्मट तथा रुय्यक ने इसको एक व्यवस्थित रूप दिया। जयदेव दीक्षित इसका सक्षिप्त वणन करते है। विश्वनाथ विशेष एव परिवृत्ति से इसका अ तर स्पष्ट करके इसकी पुन प्रतिष्ठा करत हैं।

रुद्रट के अनुसार पर्याय के दो प्रकार है। उत्तर आचाय भी दो प्रकार मानते है। मम्मट आदि रुद्रट क प्रथम पर्याय को नही मानत, दूसरे पयाय के ही दो भदा का प्रथम तथा द्वितीय पर्याय नाम दे देते है। दासकवि ने इन दोना भेदा का सकाच-पर्याय और विकास पर्याय कहा है।

५७ विषम

रुद्रट

विषम इति प्रथिताऽसौ वक्ता विघटयति कमपि सम्बन्धम ।
यत्राथयारसन्त परमतमाशङ्क्य तत्सत्त्वे ॥७।४७॥

यहाँ पर वक्ता दो अर्थो म अविद्यमान सम्बन्ध की किसी अन्य के मत से कल्पना करके उसका स्वय खण्डन कर देता है। क्व खला क्व च सज्जनस्तुतय इसका उदाहरण है। विषम का आधार जाति है।

विषम का एक अन्य भेद है जहा विषम का आधार गुण है—

अभिधीयते सतो वा सम्बन्धस्याथयारनौचित्यम ।
यत्र स विषमोऽन्योऽय यत्रासम्भाव्यभावो वा ॥७।४९॥

(दो अर्थों म विद्यमान सम्बन्ध का अनौचित्य, अथवा असभाव्य अथ का भाव—अस्तित्व)।

यथा—'रूप क्व मधुरमतत क्व चेन्म अस्या सुदारुण व्यसनम।

विषम के चार भेद काय की विषमता के अनुसार हैं—

(१) कर्त्ता अल्पपि काय न कुर्यात। (२) गुवपि काय च कुर्यात।
(३) हीनाऽपि काय कुर्यात। (४) अधिकोऽपि न कुर्यात।

विषम का एक अन्य भेद वहा है जहा कम के नाश होने मे न केवल क्रियाफल प्राप्त न हो, प्रत्युत कर्त्ता का अनथ भी हो।[1] यहाँ विषम अलकार दारुण परिणाम म है। यह फल विषम है।

रुद्रट ने अतिशय वग म भी विषम का वणन किया है। यह 'विषम' विरोध म अगला अलकार है। यहा काय-कारण से सबद्ध दो गुणा अथवा क्रियाओं का विरोध होता है—

कायस्य कारणस्य च यत्र विरोध परस्पर गुणयो ।
तद्वत क्रिययोरथवा सजायेतेति तद्विषमम ॥९।४५॥

काय का गुण कारण के गुण का विरोधी काय की क्रिया कारण की क्रिया की विरोधी।

---

१ यत्र क्रियाविपत्तेन भवन्न्वे क्रियाफल तावत ।
कत रत्यस्च अवस्त्यपरमभिधीयते विषमम ॥७।५४॥

गुण विरोध का उदाहरण—

अरि-करि-कुम्भ विदारण रुधिरारुण-दारुणाद अत खड्गात।
वसुधाधिप धवल कात च यशो वभूव तव ॥९।४६॥

खड्ग कारण के गुण हैं रक्तता और दारुणता, यश काय के गुण हैं श्वेतता और सुदरता। इनके विरोध का वणन है।

मम्मट

विषम अलकार के चार प्रकार हैं—

(क) क्वचिद यदतिवधर्म्यान्न श्लेषो घटनामियात। (अत्यत वधम्य के कारण सम्बन्ध न बनना प्रतीत हो)

(ख) कनु क्रियाफलावाप्तिर्नैवानथश्च यद्भवेत। (कर्त्ता को अपनी क्रिया के अभीष्ट फल की प्राप्ति न हो उल्टा अनथ हो जाय)

(ग) काय कारण के अनुरूप हो फिर भी उन दोनो के गुण विरुद्ध हो।

(घ) काय कारण के अनुरूप हो फिर भी उन दोनो की क्रियाएँ विरुद्ध हो।

य चारा भद रुद्रट म विद्यमान थे, प्रथम दो भेद वास्तव-वग मे हैं अतिम दो भेद अतिशय वग म।

रुय्यक

विरूपकार्यानथयोरुत्पत्ति विरूपसघटना च विषमम् ॥

अननुरूप-ससग को विषम कहते हैं। इसके तीन प्रकार हैं—

(क) विरूप काय उत्पद्यमान दृश्यत।
यह मम्मट म विषम का प्रथम प्रकार ही है।

(ख) न कवल तस्याभस्याप्रतिलम्भो यावदनथप्राप्तिरपि।
यह मम्मट का द्वितीय विषम है।

(ग) अत्यन्ताननुरूपस घटनयाविरूपयोश्च सघटनम्।
यह मम्मट क विषम का तृतीय चतुथ भद है।

जयदेव

अनुचित रूप म दो पदार्थों के सम्बन्ध की कल्पना विषम अलकार है—

विषम यद्यनौचित्यान्नेकासम्बन्धकल्पनम् ॥५।८०॥

अप्पय्यदीक्षित

विषम के तीन रूपो पर रुय्यक का प्रभाव है—

१ विषम वर्ण्यते यत्र घटनाऽननुरूपयो ॥८८॥
२ विरूप कार्यस्योत्पत्तिरपर विषममतम् ॥८९॥
३ अनिष्टस्याप्यवाप्तिश्च तदिष्टार्थसमुद्यमात् ॥९०॥

रुय्यक एव दीक्षित के क्रमो मे अन्तर है, भेद लक्षणा मे नही।

जगन्नाथ

'रस-गगाधर' के अनुसार—

"अननुरूपससर्गो विषमम।" (पृ० ५९५)

हिन्दी के आचार्य

देव मे विषम का उदाहरण है परन्तु लक्षण नही है। परन्तु दासकवि ने मम्मट के अनुसार तीन रूपा का वर्णन किया है—

अनमिल बातन को जहा परत कसहू सग।
कारन को रँग औरई, कारज औरै रग॥
करता को न क्रिया फल, अनरथ ही फल होइ॥१३।४५ ६॥

पोद्दार ने मम्मट के अनुसार विषम के चार भेद बतलाये हैं, परन्तु मिश्र ने केवल तीन का वर्णन किया है।

उपसहार

विषम का विवेचन रुद्रट ने किया था। रुद्रट ने विषम का प्रथम विवेचन वास्तव-वग मे किया था और इसके पाच भेदा का वर्णन किया था। अतिशय-वग मे विषम का फिर विवेचन हैं। मम्मट ने रुद्रट के दोना प्रसगा से विषम को लिया है। रुय्यक से यह विवेचन अधिक व्यवस्थित हो गया। उत्तर आचार्यों ने इसका अनुकरण किया ह।

विषम के पाच प्रकार रुद्रट म थे जो रुय्यक मे तीन ही रह गये। कारण के गुण के विरुद्ध काय के गुण की उत्पत्ति प्रथम विषम है। प्रारभ किये गये काय से अनथ द्वितीय विषम है। विरूप पदार्थों का सघटन तृतीय विषम है।

विषम महत्त्वपूर्ण अलकार है। इसकी व्याख्या अनेक विरोधमूलक अलकारो के साम्य वैषम्य से ही हो सकती है।

५८ अनुमान

रुद्रट

वस्तु परोक्ष यस्मि साध्यमुपन्यस्य साधक तस्य।
पुनरन्यद उपन्यस्येद विपरीत चतन्नुमानम् ॥७।५६॥

(साध्य-परोक्ष वस्तु को प्रथम बतलाकर फिर उसके साधक हेतु को कहा जाता है। अथवा इसका विपरीत करे, अर्थात् प्रथम साधक और तदनंतर साध्य को बताये।)

अनुमान का एक अन्य रूप भी है जहाँ कारण के प्रबल होने से अभूत कार्य का, भूत अथवा भावि रूप से वर्णन हो—

यत्र बलीय कारणमालोक्याभूतमेव भूतमिति।
भावीति वा तथान्यत्र्यन्त तदन्यदनुमानम् ॥७।५९॥

मम्मट

अनुमान तदुक्त यत् साध्य-साधनयोर्वचः ॥

साध्य-साधन का कथन अनुमान है। यह लक्षण रुद्रट के अनुसार है परन्तु इस लक्षण में पूर्वापर सम्बन्ध मम्मट को मान्य नहीं—

साध्य-साधनयो पौर्वापर्यविकल्पे न किंचिद् वचित्र्यमिति न तथा दर्शितम्।
(पृ० ५२३)

रुद्रट द्वारा वर्णित अनुमान का दूसरा रूप मम्मट में नहीं है।

रुय्यक

रुय्यक के इस लक्षण पर मम्मट की शब्दावली का प्रभाव स्पष्ट है—

साध्य साधननिर्देशोऽनुमानम्।

जयदेव

जयदेव के अनुसार कार्य से कारण का ज्ञान अनुमान अलंकार है—

अनुमान च कार्यादि कारणाद्यवधारणम्[1] ॥५।३६॥

विश्वनाथ

मम्मट रुय्यक परम्परा में लक्षण इस प्रकार है—

अनुमान तु विच्छित्या ज्ञान साध्यस्य साधनात ॥१०।६३॥
उत्प्रेक्षायामनिश्चिततया प्रतीति इह तु निश्चिततयेत्युभयोर्भेद।

जगन्नाथ

जगन्नाथ के अनुसार—

'अनुमितिकरणमनुमानम्।'

---

1 कुवलयानंद में अनुमान अलंकार का वर्णन प्रमाणालंकारों के प्रसंग में किया गया है और वहाँ भी इसका लक्षण नहीं दिया गया।

यह लक्षण तर्कशास्त्र से आया है फिर भी जगन्नाथ उसके साथ कवि प्रतिभा का जोड देते हैं—

"अस्य च कविप्रतिभाकल्पितत्वेन चमत्कारित्वे काव्यालंकारता।" (पृ० ६४०)

हिन्दी के आचार्य

दासकवि ने दीक्षित के अनुकरण पर अनुमान के शास्त्रीय रूप का वर्णन किया है काव्यात्मक का नहीं। परन्तु पोद्दार तथा मिश्र ने अनुमान का वर्णन मम्मट के अनुकरण से किया है।

उपसंहार

रुद्रट ने अनुमान अलंकार का वर्णन किया था। मम्मट ने इसको एक वैज्ञानिक व्याख्या प्रदान की, रुय्यक विश्वनाथ ने मम्मट का अनुकरण किया है। जयदेव दीक्षित तथा दासकवि इस सौंदर्य की व्याख्या न्यायशास्त्र की शब्दावली में करते हैं।

अनुमान में चमत्कार का आधिक्य नहीं है, इसलिए इसके विस्तृत विवेचन का अवकाश कम ही रहा। विश्वनाथ ने अनुमान का उत्प्रेक्षा से अन्तर किया है और जगन्नाथ ने इस सौंदर्य में कवि प्रतिभा अनिवार्य कर दी है।

५६ परिकर

रुद्रट

साभिप्रायं सम्यग्विशेषणैर्वस्तु यद्विशिष्येत।
द्रव्यादिभेदभिन्नं चतुर्विधः परिकरः स इति ॥७।७२॥

वस्तु का साभिप्राय विशेषणों द्वारा विशेषता-वर्णन 'परिकर' है। द्रव्य गुण क्रिया जाति रूपी वस्तु के भेदों के अनुसार इस अलंकार के चार उपभेद हैं।

मम्मट

विशेषणैर्यत् साकूतैरुक्तिः परिकरस्तु सः।'

विशेष्य का साकूत (साभिप्राय) विशेषणों द्वारा कथन परिकर है। मम्मट ने इसके अलंकारत्व का शंका निवारण-पूर्वक प्रतिपादन किया है—' यद्यपि अपुष्टार्थस्य दोषताभिधानात् तन्निराकरणेन पुष्टार्थस्वीकारः कृतः, तथापि एकनिष्ठत्वेन बहूनां विशेषणानामेवमुपन्यासे वैचित्र्यमित्यलंकारमध्ये गणितः।

रुय्यक

रुय्यक का लक्षण सरल, संक्षिप्त एवं स्पष्ट है—

' विशेषणसाभिप्रायत्वं परिकरः।'

जयदेव

जयदेव तथा अप्पय्यदीक्षित के अनुसार—

अलकार परिकर साभिप्राये विशेषणे ।५।३९।।

विश्वनाथ

उक्तविशेषण साभिप्राय परिकरो मत ।।१०।५७।।

हिन्दी के आचार्य

है परिकर आसय लिये जहाँ विसेसन होइ ।। (शब्दरसायन)
बननीय के साज को नाम विशेषन जानि ।
सो है साभिप्राय तौ परिकर भूषन मानि ।। (काव्यनिर्णय)

पोद्दार तथा मिश्र ने जयदेव के अनुसार परिकर का वर्णन किया है ।

उपसहार

रुद्रट का लक्षण प्राय आचार्यों म मान्य रहा । साभिप्राय पद सभी आचार्य स्वीकार करते हैं । मम्मट ने यह भी सिद्ध किया है कि परिकर म अलकारत्व है । जयदेव का लक्षण सबसे सरल एव स्पष्ट है । हिन्दी के आचार्यों ने जयदेव का अनुकरण किया है।

६० परिसख्या

रुद्रट

पृष्टमपृष्ट वा सदगुणादि यत्कथ्यते क्वचित्तुल्यम् ।
अन्यत्र तु तदभाव प्रतीयते सेति परिसख्या ।।७।७९।।

प्रश्नपूर्वक अथवा प्रश्न के बिना ही जहाँ गुण क्रिया-जाति-लक्षण वस्तु की एक स्थान पर विद्यमानता वर्णित हो और उसी के समान दूसरे स्थान पर उसका अभाव प्रतीत हो, तो वह परिसख्या का चमत्कार है । प्रश्नपूर्वक परिसख्या का उदाहरण—

किं सुखमपारतन्त्र्य किं धनमविनाशि निमला विद्या ।
किं कार्य सन्तोषो विप्रस्य महेच्छता राज्ञाम ।।७।८०।।

मम्मट

किंचित पृष्टमपृष्ट वा कथित यत्प्रकल्पते ।
तादगन्यव्यपोहाय परिसख्या तु सा स्मृता ।।१०।११९।।

परिसख्या के भेद भी परम्परा के अनुसार हैं—

"अत्र च कथन प्रश्नपूवक तदयथा च परिदष्टम् । तथोभयत्र व्यपोह्यमानस्य प्रतीयमानता वाच्यत्व चेति चत्वारो भेदा ।' (पृ० ५२६)

रुय्यक

अलकार सवस्व' मे परिसख्या के चार भेदो का वणन है, जिनके बीज मम्मट म थे—

"एकस्यानेकप्राप्तावेकत्र नियमन परिसख्या।"*

जयदेव

जयदेव एव अप्पय्य दीक्षित के अनुसार—

परिसख्या निषिध्यकम यस्मिन वस्तुय त्रणम् ।।५।९५।।

परिसख्या निषिध्यकमेकस्मिन वस्तुय त्रणम् ।।११३।।

विश्वनाथ

मम्मट का अनुकरण विश्वनाथ मे भी है—

प्रश्नादप्रश्नतो वापि कथिताद वस्तुनो भवेत ।

तादग य व्यपोहृचेश्द् शाब्द आर्थोऽथवा तदा ।।१०।८२।।

विश्वनाथ ने उचित ही लिखा है कि श्लेष से परिसख्या म विशेष चमत्कार आ जाता है—

श्लेषमूलत्वे चास्य वचित्र्यविशेष ।' (पृ० ३५८)

जग नाथ

'रस-गगाधर' की श दावली भिन्न है परतु स्वरूप नही—

'सामा यत प्राप्तस्यायस्य कस्माच्चिद विशेषाद व्यावत्ति परिसख्या। (पृ० ६५२)

हि दी के आचार्य

नही बोलि पुनि दीजिये, क्योहूँ कहूँ लखाय।

करि विसस बरजन कर, सग्रह दोप बराय।।

पूछयौ अनपूछयौ जहाँ, अथ समथत आनि।

परिसख्या भूषन वही, यह तजि और न जानि।।

(काव्यनिणय, १७, ४१ ४२)

पोद्दार (पृ० ३३९) तथा मिश्र (पृ० ४११) म मम्मट का अनुकरण है।

उपसहार

परिसख्या का विवेचन रुद्रट से प्रारम्भ होता है उत्तर आचार्यों ने उसी लक्षण के भाव को स्वीकार कर लिया है। मम्मट स परिसख्या के चार भेद प्रचलित हो गये। विश्वनाथ के अनुसार शाब्द', आथ' भेद भी हो सकते हैं। विश्वनाथ ने यह भी कहा है कि श्लेष स परि-

सख्या म 'वचित्र्यविशेष आ जाता है । हिन्दी के आचार्यों म परिसख्या अयन्त प्रिय अलकार रहा, इसके लक्षण के साथ अनेक वचित्र्यपूण उदाहरण उन आचार्यों न दिये हैं ।

६१ कारणमाला

रुद्रट

कारणमाला सय यत्र यथा पूवमति कारणताम् ।
अर्थाना पूर्वार्थाद भवतीद सवमर्वति ॥७।८४॥

जहाँ पूव-पूव अथ उत्तर उत्तर अर्थ का कारण बनता चल । उदाहरण—

विनयेन भवति गुणवान गुणवति लोकोऽनुरज्यत सकल ।
अभिगम्यतेऽनुरक्त ससहायो युज्यते लक्ष्म्या ॥७।८५॥

मम्मट

मम्मट-कृत यह लक्षण रुद्रट के अनुकरण पर किन्तु अधिक कसा हुआ है—

यथोत्तर चत पूवस्य पूवस्याथस्य हतुता ।

रुय्यक

अलकार-सवस्व का लक्षण उसी परम्परा म है—

पूवस्य पूवस्योत्तरोत्तरहेतुत्वे कारणमाला । '
कार्य-कारण क्रम एवात्र चारुत्वहेतु ।' (पृ० १७७)

जयदेव

जयदेव एव अप्पय्यदीक्षित के अनुसार—

गुम्फ कारणमाला स्याद यथाप्राक्प्रान्तकारण ॥५।८७॥

पौणमासी के अनुसार पर पर प्रति पूव पूवस्य कारणे पूव पूव प्रति पर-परस्य कारणश्च गुम्फो कारणमालालकारो भवति । '(पृ० १६२)

विश्वनाथ

'साहित्यदपण' का विवेचन अधिक सरल तथा स्पष्ट है—

पर पर प्रति यदा पूव-पूवस्य हेतुता ॥१०।७६॥

जगन्नाथ

'रस-गगाधर म लक्षणो का समाहार-सा आ गया है—

सव शृखला आनुगुण्यस्य काय-कारणभावरूपत्वे कारणमाला । तत्र पूव पूव कारण पर कायमित्येका । पूर्वं पूर्वं काय पर पर कारणमित्यपरा । ' (पृ० ६२१)

हिन्दी के आचाय

कारन गुम्फित काज की, पक्ति सुकारन माल। (शब्दरसायन)
कारन ते कारन-जनम, कारनमाला चार। (काव्यनिणय)

पाद्दार (पृ० ३२८) तथा मिश्र (पृ० ४०६) का वणन मम्मट के अनुसार है।

उपसहार

कारणमाला के प्रथम आचाय रुद्रट है। मम्मट की शब्दावली अधिक वैज्ञानिक है जिसका उत्तर आचाय अपना लेते है। रुय्यक का मत है कि कायकारण क्रम' ही इस अलकार के सौन्दय का हेतु है। जगन्नाथ न इसके दो रूपो का वणन किया है।

६२ अन्योन्य

रुद्रट

यत्र परस्परमेक कारकभावोऽभिधेययो क्रियया।
सजायत स्फारिततत्त्व विशेषस्तद अन्यायम ॥७।९१॥

जहाँ दो पदार्थों का परस्पर एक कारकभाव क्रिया द्वारा वर्णित हो, इस अन्योन्य का आधार विशिष्ट धम है। उदाहरण सरल है—

रूप यौवनलक्ष्म्या यौवनमपि रूपसम्पदस्तस्या।
अन्योन्यमलकरण विभाति शरदिन्दुसुन्दर्या ॥७।९२॥

मम्मट

क्रियया तु परस्परम। वस्तुनोजननेऽन्यान्यम् ॥"
मम्मट के लक्षण एव वृत्ति मे वैज्ञानिकता अधिक है—
अथयोरकक्रियामुखेन परस्पर कारणत्वे सति अन्यान्यनामाऽलकार.। (वृत्ति, पृ० ५२९)

रुय्यक

रुय्यक एव विश्वनाथ ने मम्मट के अनुकरण पर क्रिया' को आधार माना है—

परस्पर क्रियाजननेऽन्योन्यम्। अन्योन्यमुभयोरेकक्रियाया। (अलकारसवस्व)
करण मिथ। (साहित्यदर्पण)

जयदेव

जयदव एव अप्पय्यदीक्षित म अन्योन्य का एक ही सरल लक्षण है—

अन्योन्य नाम यत्र स्यादुपकार. परस्परम् ॥५।८४॥

विश्वनाथ

उत्तर प्रश्नस्योत्तरादुन्नयो यदि।
यच्चासकृदसम्भाव्य सत्यपि प्रश्न उत्तरम् ॥१०।१०७॥

रुय्यक के समान कुछ अलकारो से उत्तर का अन्तर स्पष्ट किया गया है

"अत्र अयव्यपोहे तात्पर्याभावात परिसख्यातो भेद । न चेदमनुमानम् साध्य-साधन योर्द्वयोर्निदेश एव तस्यागीकारात्। न च काव्यलिगम् उत्तरस्य प्रश्न प्रत्यजनक त्वात। (पृ० ३५९)

अप्पय्यदीक्षित

किंचिदाकूतसहित स्याद गूढोत्तरमुत्तरम् ।१४९॥

उत्तर के एक विशेष भेद 'चित्रोत्तर' का लक्षण-उदाहरण भी कुवलयानन्द म दिया गया है

प्रश्नोत्तरान्तराभिन्नमुत्तर चित्रमुच्यते।
के-दारपोषणरता , के खेटा किं चल वय ॥१५०॥

जगन्नाथ

'रस-गगाधर' म भी इस अलकार का विवेचन सामान्य है—

"प्रश्नप्रतिबधकज्ञानविषयीभूतोऽय उत्तरम् ।" (पृ० ७०३)

हिन्दी के आचार्य

दासकवि ने जयदेव के अनुकरण पर प्रश्नोत्तर नाम से उत्तर अलकार का वणन किया है—

छोडि का कह्यौ का कह्यौ प्रस्नात्तर कहि जाइ।
प्रस्नोत्तर तासो कहैं जो प्रवीन कविराइ ॥४६॥
उत्तर दीवे मे जहा, प्रस्नौ परत लखाइ।
प्रस्नोत्तर ताहू कहैं सकल सुकवि-समुदाय ॥४८॥

पादार तथा मिश्र ने मम्मट के अनुसार उत्तर का वणन किया है।

उपसहार

रुद्रट ने उत्तर अलकार का विवेचन दो भिन भिन स्थानो पर किया था—वास्तव वग मे तथा औपम्य वग म। मम्मट ने स्पष्ट ही उत्तर के दो रूपो का वणन कर दिया और काव्यलिग तथा अनुमान से इसके एक भेद को अलग सिद्ध किया। रुय्यक ने द्वितीय उत्तर एव परिसख्या का अन्तर दिखाया।

उत्तर को जयदेव तथा दासकवि ने प्रश्नोत्तर नाम स लिखा है। दीक्षित ने इसके एक विशेष भेद 'चित्रोत्तर' का भी वणन किया है। उत्तर म चमत्कारातिशय नही है फिर भी उत्तर आचार्यों म उत्तर अलकार प्रिय रहा है।

६४ सार

रुद्रट

यत्र यथासमुदायाद्यथक्देश क्रमेण गुणवदिति ।
निर्धार्यते परावधि निरतिशय तदभवेत्सारम ॥७।९६॥

समुदाय म से एक देश को क्रम से उत्कृष्ट निर्धारित करना, सार है, इस निर्धारण का आधार गुण हो क्रिया-जाति नही। उदाहरण सरल है—

राज्ये सार वसुधा, वसु धराया पुर, पुरे सौधम ।
सौधे तल्प, तल्पे वाराङ्गनानङ्गसवस्वम ॥७।९७॥

मम्मट

उत्तरोत्तरमुत्कर्षो भवेत्सार परावधि ॥१२३॥

लक्षण रुद्रट की शब्दावली म है तथा उदाहरण भी रुद्रट से आ गया है।

रुय्यक

उत्तरोत्तरमुत्कर्षणमुदार ।

रुय्यक ने 'सार का नाम 'उदार' कर दिया है। लक्षण मम्मट की शब्दावली म दिया है। और द्वितीय उदाहरण रुद्रट मम्मट स ले लिया है।

अन्य आचाय

रुय्यक से प्ररणा लेकर अ य आचार्यों ने सार का सामा य वणन किया है—

सारो नाम पदोत्कष सारताया यथोत्तरम ॥ (च द्रालोक, ५।९०)
उत्तरोत्तरमुत्कर्षो वस्तुन सार उच्यते ॥ (साहित्यदपण, १०।७९)
उत्तरोत्तरमुत्कष सार इत्यभिधीयते ॥ (कुवलयान द, १०८)
सव ससगस्योत्कृष्टापकृष्टभावस्पत्वे सार ॥ (रस-गगाधर)

हि दी के आचाय

दासकवि ने 'सार' अलकार को 'उत्तरोत्तर'[1] नाम से भी लिखा है—

एक एक ते सरस लखि, अलकार कहि सारु।
याही को उत्तरोत्तरा कहैं जि हैं मति चारु ॥१८।११॥

पोद्दार ने सार' तथा उदार' (पृ० ३३०) नामो का प्रयोग किया है। पोद्दार तथा मिश्र का विवेचन मम्मट के अनुमार है।

---

१ हमारे मत में अलकार का नाम 'सार है और उत्तरोत्तर उसका गुण है। का यनिणय के सम्पादक उत्तरोत्तर को अलकार-नाम मानते हैं। (काव्यनिणय पृ० १६६)

उपसंहार

रुद्रट 'सार' के उद्भावक हैं। रुय्यक ने इसका 'उदार' नाम दिया है। दासरवि ने इसको 'उत्तरोत्तर' भी लिखा है। मम्मट एवं विश्वनाथ के लक्षण अधिक प्रचलित रहे हैं। 'सार' के साथ कुछ आचार्य इस अलंकार को 'उदार' नाम से भी लिखते हैं।

६५ अवसर

रुद्रट

अर्थान्तरमुत्कृष्टं सरसं यदि वोपलक्षणं क्रियते।
अर्थस्य तदभिधानप्रसंगतो यत्र सोऽवसरः ॥७।१०३॥

न्यून अर्थ के प्रसंग में उत्कृष्ट अथवा सरस अर्थान्तर की अवतारणा में अवसर अलंकार है। इस अवतारणा से प्रस्तुत अर्थ का भावातिशय हो जाता है। उदाहरण—

तदिदमरण्यं यस्मिन् दशरथ वचनानुपालनव्यसनी।
निवसन् बाहुसहायश्चकार रक्षः क्षयं रामः ॥७।१०४॥

मम्मट रुय्यक जयदेव विश्वनाथ दीक्षित जगन्नाथ आदि में इस अलंकार का वर्णन नहीं है। हिन्दी के आचार्यों ने भी इसको नहीं अपनाया।

उपसंहार

अवसर का विवेचन रुद्रट ने किया था। उत्तर आचार्यों में इसका वर्णन नहीं मिलता। रुद्रट का 'अवसर' मम्मट का द्वितीय 'उदात्त' है। नव्याचार्यों ने इसी कारण उसको स्वतन्त्र अलंकारत्व प्रदान नहीं किया और उसे सौंदर्य का उदात्त के अन्तर्गत विवेचन कर दिया।

६६ मीलित

रुद्रट

जहाँ हर्ष कोप आदि भावों को समान चिह्न वाले अपर भाव (स्वाभाविक हो अथवा कृत्रिम) विलीन करके तिरस्कृत कर देते हैं वहाँ मीलित अलंकार होता है—

तन्मीलितमिति यस्मिन् समानचिह्नेन हर्षकोपादि।
अपरेण तिरस्क्रियते नित्येनागन्तुकेनापि ॥७।१०६॥

रुद्रट ने एक उदाहरण स्वाभाविक का दिया है और दूसरा कृत्रिम का।

मम्मट

समेन लक्ष्मणा वस्तु वस्तुना यन्निगूह्यते।
निजेनागन्तुना वापि तन्मीलितमिति स्मृतम् ॥१०।१३०॥

मम्मट ने मीलित का विस्तार किया है, भाव के स्थान पर 'वस्तु' का प्रयोग करके। इसके दो भेद वर्णित हैं। सामान्य लक्षण रुद्रट से ही आया है।

रुय्यक

अलंकार-सर्वस्व में मम्मट की शब्दावली का लाभ उठाकर संक्षिप्त लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

'वस्तुना वस्त्वन्तरनिगूहनं मीलितम्॥

न चायं सामान्यालंकारः। तस्य हि साधारणगुणयोगाद् भेदानुपलक्षणं रूपम्। अस्य तूत्कृष्टगुणेन निकृष्टगुणस्य तिरोधानमिति महाननयोर्विशेषः।' (पृ० २१० ११)

अन्य आचार्य

जयदेव, विश्वनाथ एवं दीक्षित के अनुसार—

मीलितं बहुसादृश्याद् भेदवच्चेन्न लक्ष्यते॥ (चन्द्रालोक, ५।३३)
मीलितं यदि सादृश्याद् भेद एव न लक्ष्यते॥ (कुवलयानन्द, १४६)
मीलितं वस्तुना गुप्तिः केनचित् तुल्यलक्ष्मणा॥ (साहित्यदर्पण, १०।८९)

जगन्नाथ

'रसगंगाधर' में न्यायशास्त्र की शब्दावली से मीलित का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

स्फुटमुपलभ्यमानस्य कस्यचिद्वस्तुना लिङ्गेनिसाम्याद् भिन्नत्वेनागृह्यमाणानां वस्त्वन्तरलिङ्गानां स्वकारणानुमापकत्वं मीलितम्। (पृ० ६९३)

हिन्दी के आचार्य

दासकवि ने मीलित का लक्षण नितान्त भिन्न शब्दावली में दिया है—

मीलित जानिये जहँ मिलें छीर-नीर के न्याय॥१४।३८॥

पद्माकर (पृ० ३९०) का लक्षण मम्मट के अनुसार एवं मिश्र (पृ० ४१६) का लक्षण जयदेव के अनुसार है।

उपसंहार

रुद्रट ने 'मीलित' अलंकार का वर्णन किया है। मम्मट ने अपनी शब्दावली में उसको दुहराया है। उत्तर आचार्यों ने भी उसी रूप को अपनाया। चन्द्रालोक-कुवलयानन्द का लक्षण हिन्दी के आचार्यों में अधिक प्रचलित रहा।

'मीलित' की अपेक्षा से आगे चलकर आचार्यों ने कतिपय नवीन अलंकारों की कल्पना की जिनमें 'उन्मीलित' तथा 'सामान्य' मुख्य हैं—उनका विवेचन यथास्थान किया गया है।

६७ एकावली

रुद्रट

वास्तव-वग का अतिम अलकार एकावली है। यहा अर्थों की परम्परा उत्तरोत्तर उत्कृष्ट रखी जाती है और उत्तर अथ पूववर्ती अथ का विशेपण होता है। इस वणन के दो आधार स्थिति (विधि) तथा अपोह (निपेध) हैं। लक्षण—

एकावली सेय यत्रार्थपरम्परा यथालाभम ।
आधीयते यथोत्तरविशेपणा स्थित्यपोहाभ्याम ॥७।१०९॥

विधि का उदाहरण है—

सलिल विकासिकमल, कमलानि सुगन्धिमधुसमृद्धानि।
मधुलीनालिकुलाकुलम अलिकुलमपि मधुररणितमिह॥

निपेध का उदाहरण है—

नाकुसुमस्तररस्मिन्नुद्याने, नामधूनि कुसुमानि।
नालीनालिकुल मधु नामधुरक्वाणमलिवलयम ॥७।१११॥

समुच्चय म यथोत्तर विशेपणभाव नही होता, जो एकावली का आधार है।

मम्मट एव रुय्यक

काव्यप्रकाश म रुद्रट क अनुकरण पर ही एकावली तथा उनके दोना भेदा का वणन है—

स्थाप्यतऽपोह्यत वापि यथापूव पर परम।
विशेपणतया यत्र वस्तु सकावली द्विधा ॥१०।१३१॥

अलकार-सवस्व का लक्षण अधिक स्पप्ट एव सरल है—

यथापूव परस्य विशेपणतया स्थापनापोहने एकावली।

अन्य आचाय

जयदव तथा अप्पय्यदीक्षित का लक्षण एक ही है और उसम गहीतमुक्तरीति[1] विशप शब्दावली दुरूह बन गई है—

गहीतमुक्तरीत्यर्थश्रेणिरेकावली मता ॥५।८८॥

साहित्यदपण म लक्षण तथा भेद दोना म मम्मट की शब्दावली अपनाली गई है—

पूव पूव प्रति विशपणत्वन पर परम्।
स्थाप्यतऽपोह्यत वा चत्स्यात्तदकावली द्विधा ॥१०।३८॥

---

१ पूर्वोक्ता स्थानीया च मता च त्यक्ता यत्र गद्तानमतता मा मामी रीति विशष्यविशषणवत्रनिराननशीला तया विवक्षार्थश्रे पद्मावली भवति परिपन्थया। (पीयमाला प १६३)

जगन्नाथ

'सव शृङ्खला ससगस्य विशेष्यविशेषणभावरूपत्वे एकावली। सा च पूव-पूव स्योत्तरोत्तर प्रति विशेष्यत्वे विशेषणत्वे चेति द्विधा। (पृ० ६२४)

रस-गगाधर का प्रतिपादन स्थापनापोहन पद को सरल भाषा मे प्रस्तुत कर देता है।

हिन्दी के आचाय

एकावलि पद अथ का, गहै चन ततिकाल ॥ (शब्दरसायन)
किय जजीरा-जार पद एकावली प्रमाण ॥(काव्यनिणय, १८१६)

पोद्दार (पृ० ३३९) न मम्मट के अनुसार और मिश्र (पृ० ४०६) ने जयदव की शब्दावली मे वणन किया है।

उपसहार

रुद्रट न वास्तव-वग म एकावली का वणन किया ह और समुच्चय से इसका अ तर स्पष्ट किया है। मम्मट रुय्यक पर उसी का प्रभाव है। विश्वनाथ का लक्षण सवस स्पष्ट तथा सरल है। रुद्रट ने एकावली के दो भेद बतलाय थ जो यथावत चलते रह। 'एकावली' अलकार का महत्त्व मालादीपक की व्याख्या म इसके उपयोग स और भी बढ गया, जिसका प्रसग यथास्थान दखा जा सकता है।

(ख) औपम्य मूल के नवीन अलकार

६८ मत

रुद्रट

अ य मत स सिद्ध (लोकप्रसिद्ध) उपमय का वणन करके समानधर्मा हान क कारण उप मानवत स्वमत से वणन किया जाय तो वह 'मत' अलकार का चमत्कार है—

त मतमिति यत्रोक्त्वा वक्ता यमतन सिद्धमुपमेयम्।
ब्रूयादयोपमान तथा विशिष्ट स्वमतसिद्धम ॥८।६९॥

इस अलकार का प्राण 'म येऽहम है। उत्प्रेक्षा में पूवपक्ष अर्थात् अ यमत स सिद्ध वणन नही होता है, केवल स्वमत रहता है।

रुद्रट ने 'मत' अलकार का निम्नलिखित उदाहरण दिया है—

मदिरामद भर पाटलम अलिकुलनीलालकालिधम्मिल्लम्।
तरुणीमुखमिति यदिह कथयति लोक समन्तात्यम् ॥८।७०॥
म येऽहमिन्दुरेष स्फुटमुन्यऽस्णरचि स्थित पश्चात।
उदयगिरौ छद्मपर निशातमोभि गहीत इव ॥८।७१॥

मम्मट, रुय्यक जयदेव विश्वनाथ दीक्षित जगन्नाथ आदि न इस अलकार का वणन नही किया, हिन्दी के आचाय भी इसको नहीं लिखते।

उपसंहार

रुद्रट ने इस अलंकार का संकेत किया था परन्तु उसके आचार्य उसको नहीं जानते। इसका चमत्कार उत्प्रेक्षा के सौन्दर्य में समाविष्ट हो जाता है। अन्तर केवल यह है कि उत्प्रेक्षा में पूर्णता नहीं होती। पूर्णता के अभाव में कोई चमत्कार भी नहीं आता। इसलिए यह अलंकार आगे न चल सका।

६८ प्रतीप

रुद्रट

यत्रानुकम्प्यते सममुपमानं निन्द्यते वापि।
उपमेयमतिस्तोतुं दुरवस्थमिति प्रतीपं स्यात् ॥८।७६॥

उपमेय की अतिस्तुति करने के लिए जहाँ उपमान से तुलना करते हुए उपमेय की दुरवस्था की अनुकम्पा अथवा निन्दा की जाय। दुरवस्था की अनुकम्पा अथवा निन्दा द्वारा अतिस्तुति ही प्रतीप का प्राण है।

एक उदाहरण में दुरवस्था की प्रशंसा की गई है और दूसरे में निन्दा—

वदनमिदं सममिन्दो सुन्दरमपि तत्कथं चिरं न भवेत्।
मलिनयति यत्कपोलौ लोचनसलिलं हि कज्जलवत् ॥८।७७॥

(कज्जलवारि से मलिनता मुख की दुरवस्था है जिस कारण वह इन्दु से तुलनीय बन गया है—यहाँ मलिनता की प्रशंसा है।)

गवमसवाह्यमिमं लोचनयुगलेन वहसि किं भद्रे।
सन्तीदृशानि दिशि सरःसु ननु नील-नलिनानि ॥८।७८॥

(गवंवहन रूपी दुरवस्था की यहाँ निन्दा है।)

मम्मट

आक्षेप उपमानस्य प्रतीपमुपमेयता।
तस्यैव यदि वा कल्प्या तिरस्कारनिबन्धनम् ॥१०।१३३॥

प्रतीप के दो भेद हैं—

(क) उपमान की सत्ता पर कैमर्थ्य द्वारा आक्षेप। अर्थात् उपमान के कार्य को उपमेय ही भली भाँति कर सकता है तब उपमान की क्या आवश्यकता है?

(ख) अनादर के लिए उपमान को उपमेय बना देना।

दूसरे प्रतीप में उपमिति क्रिया उत्पन्न होकर ही प्रसिद्ध उपमान के तिरस्कार का कारण होती है। रुद्रट के उदाहरण की छाया मम्मट के उदाहरण में है।

रुय्यक

अलंकार-सर्वस्व में प्रतीप का वर्णन एवं भेद मम्मट के अनुसार है एवं उदाहरण रुद्रट से

और दूसरा मम्मट से ले लिया गया है। लक्षण सरल तथा स्पष्ट है—

"उपमानस्याक्षेप उपमेयतावरपन वा प्रतीपम।"

जयदेव

चन्द्रालोक का लक्षण अत्यन्त सक्षिप्त एव लोकप्रिय रहा है। हिन्दी के आचार्यो ने इसको अपनाया है—

प्रतीपमुपमानस्य हीनत्वमुपमेयत ॥५।१००॥

विश्वनाथ

मम्मट की शब्दावली में लक्षण इस प्रकार दिया गया है और प्रतीप के भेदो की भी स्थापना है—

प्रसिद्धस्योपमानस्योपमेयत्वप्रकल्पनम।
निष्फलत्वाभिधान वा प्रतीपमिति कथ्यते॥
उक्त्वा चात्यन्तमुत्कर्षमत्युत्कृष्टस्य वस्तुन।
कल्पितेऽप्युपमानत्वे प्रतीप केचिदूचिरे॥१०।८९॥

अप्पय्यदीक्षित

कुवलयानन्द में प्रतीप का विस्तार किया गया है और इसके पाच भेदो को लोकप्रिय बना दिया गया है। इन भेदो के लक्षण हैं—

(क) प्रतीपमुपमानस्योपमेयत्व प्रकल्पनम्॥१२॥
यह विश्वनाथ की शब्दावली में है।
(ख) अन्योपमेयलाभेन वर्ण्यस्यानादरश्च तत॥१३॥
(ग) वर्ण्योपमेयलाभेन तथान्यस्याप्यनादर॥१४॥
यह मम्मट का द्वितीय प्रतीप है।
(घ) वर्ण्येनान्यस्योपमाया अनिष्पत्तिवचश्च तत॥१५॥
(ङ) प्रतीपमुपमानस्य कमथ्यमपि मन्यते॥१६॥
यह मम्मट का प्रथम प्रतीप है।

जगन्नाथ

'प्रसिद्धोपमानोपमेयभाव प्रातिलोम्यात्प्रतीपम।"

दीक्षित के मत का खण्डन करते हुए प्रतीप के प्रथम तीन प्रकारो को उपमा के ही रूप माना गया है, चतुर्थ को आक्षेप का रूप, पचम को व्यतिरेक अथवा उपमा का रूप। (पृ० ६६९)

हिन्दी के आचार्य

दासकवि ने दीक्षित के अनुसार प्रतीप के पाँच भेदो का वर्णन किया है। पोद्दार तथा मिश्र

म भी कुवलयानन्द' का अनुकरण है।

उपसहार

प्रतीप का स्वरूप रुद्रट के प्रथम वणन म ही स्पष्ट हो जाता है मम्मट रुय्यक म प्रतीप के दो भेद हैं। दीक्षित ने पाँच भेदों का वणन किया है जिनको हिन्दी के आचार्यों ने यथावत स्वीकार कर लिया है। प्रतीप एव व्यतिरेक के चमत्कार हिन्दी के आचार्यों एव कवियों म बहुत प्रिय रहे हैं।

७० उभयन्यास

रुद्रट

अर्थान्तरन्यास से भिन्न उभयन्यास म दो सामान्य' अर्थों को ही उपमा के स्वरूप स दो भिन्न रूपों (उपमेयोपमान) म चित्रित किया जाता है—

सामान्यावप्यर्थौ स्फुटमुपमाया स्वरूपतोऽपेतौ।
निर्दिश्येते यस्मिन्नुभयन्यास स विज्ञेय ॥८।८५॥

सामान्य का सामान्य द्वारा समर्थन इस अलकार का प्राण है—

सकलजगत्साधारणविभवा भुवि साधवोऽधुना विरला।
सन्ति वियन्तस्तरव सुस्वादु सुगन्धि चारुफला ॥८।८६॥

मम्मट रुय्यक जयदेव, विश्वनाथ जगन्नाथ दीक्षित आदि न इस अलकार का वणन नहीं किया है। भोज के अनुसार उभयन्यास को अलग अलकार मानना उचित नहीं है यह तो अर्थान्तर न्यास ही है—

प्रोक्तो यस्तूभयन्यासोऽर्थान्तरन्यास एव स।
स प्रत्यनीकन्यासश्च प्रतीकन्यास एव च ॥४।६९॥ (पृ० ५०२)

उपसहार

उभय न्यास का वणन रुद्रट न किया था परन्तु उत्तर आचाय इस सौन्दय का वणन नहीं करते। हिन्दी के भी किसी आचाय न इसका वणन नहीं किया।

७१ भ्रान्तिमान

रुद्रट

अथविशेष पश्यन्नवगच्छेद अन्यमेव तत्सदृशम्।
निस्सन्देह यस्मिन् प्रतिपत्ता भ्रान्तिमान् स इति ॥८।८७॥

जहाँ कोई अथ विशेष (उपमेय) को देखता हुआ तत्सदृश अन्य अथ (उपमान) को निस्सन्देह समझ बठे। भ्रान्तिमान का आधार औपम्य है और प्राण निस्सन्देह। उदाहरण स्पष्ट है—

पालयति त्वयि वसुधा विविधाध्वरधूममालिनी ककुभ ।
पश्यन्तो दूयन्ते घनसमयाशङ्कया हंसा ॥८।८८॥

मम्मट

भ्रातिमानयमवित तत्तुल्यदशने ॥१०।१३२॥

रूपक आदि से इसका स्वरूप भिन्न ह न चव रूपक प्रथमातिशयोक्तिर्वा। तत्र वस्तुता भ्रमस्याभावात। इह च अर्थानुगमनेन सभाया प्रवत्ते तस्य स्पष्टमेव प्रतिपन्नत्वात।'(प० ५४३)

रुय्यक

'अलकारसवस्व' का लक्षण 'काव्य प्रकाश' की अपेक्षा अधिक सरल एव स्पष्ट है—

'सादृश्याद वस्त्वतरप्रतीति भ्रान्तिमान।'

'सादृश्यहेतुकापि भ्रातिर्विच्छित्त्यर्थ कविप्रतिभोत्थापितव गह्यते। (प०५८)

विश्वनाथ

'चन्द्रालोक' एव 'कुवलयानन्द' इस अलकार के नाम म ही लक्षण देखत हैं। परन्तु साहित्य-दपण' न रुय्यक की वृत्ति स लाभ उठाकर लक्षण इस प्रकार दिया ह—

साम्याद अतस्मिंस्तदबुद्धि, भ्रातिमान प्रतिभोत्थित ॥१०।३६॥

अप्पय्यदीक्षित एव जगन्नाथ

विश्वनाथोत्तर आचार्यों के भ्रम के लक्षण पाण्डित्य प्रदशन के कारण पाठक को भ्रम म ही छोड देते हैं—

कविसम्मतसादृश्याद विषय पिहितात्मनि ।
आराप्यमाणानभवा यत्र स भ्रातिमान मत ॥ (चित्रमीमांसा)

सदृशे धर्मिणि तादात्म्यन धम्यन्तरप्रकारकोऽनाहार्यो निश्चय सादृश्यप्रयोज्य श्चमत्कारी प्रतते भ्राति । सा च पशुपक्ष्यादिगता यस्मिन वाक्यसन्दर्भेऽनूद्यते स भ्रातिमान।' (रस-गगाधर, प० ३५२)

हिन्दी के आचाय

देवकवि के अनुसार सुभ्राति भ्रम' ह। दासकवि न इन अलकारो को लक्षन प्रगट नाम माना है। पादार न मम्मट का अनुसरण किया है और मिश्र पर विश्वनाथ का प्रभाव है।

उपसहार

भ्रातिमान का वणन रुद्रट न किया था। मम्मट स इसका व्यवस्थित लक्षण चला। जयदेव तथा दीक्षित एव हिन्दी के अधिकतर आचाय इसके नाम म ही लक्षण मानत हैं। सन्देह भ्रम तथा स्मरण का वणन आचार्यों न प्राय एक साथ किया है।

७२ प्रत्यनीक

रुद्रट

उपमेय को उत्तम व्यक्त करने के निमित्त उपमेय को जीतने के लिए प्रयत्नशील विरोधी (शत्रु) उपमान की कल्पना प्रत्यनीक है। लक्षण—

वक्तुमुपमेयमुत्तममुपमानं तज्जिगीषया यत्र।
तस्य विरोधीत्युक्त्या कल्प्यत प्रत्यनीकं तत ॥८।९२॥

उदाहरण—यदि तव तया जिगीषास्तद्वदनमहारि कान्तिसर्वस्वम्।
मम तत्र किमापतितं तपसि सिताशो यदेवं माम् ॥८।९३॥

उत्तर आचार्य

काव्यप्रकाश में प्रत्यनीक का लक्षण सरल बन गया। मम्मट की वृत्ति सबको मान्य रही है। *मम्मट आदि के प्रत्यनीक-लक्षण एवं से हैं—*

प्रतिपक्षमशक्तेन प्रतिकर्तुं तिरस्क्रिया।
या तदीयस्य तत् स्तुत्यै प्रत्यनीकं तदुच्यते ॥१०।१२९॥

यथाऽनीकेऽभियोज्ये तत्प्रतिनिधिभूतमपरं मूढतया केनचिद् अभियुज्यते, तथेह प्रतियोगिनि विजेये तदीयोऽन्यो विजीयते इत्यर्थः। (काव्यप्रकाश)

प्रतिपक्षतिरस्काराशक्तौ तदीयस्य तिरस्कारः प्रत्यनीकम्। (अलंकार-सर्वस्व)

प्रत्यनीकं बलवतः शत्रोः पक्षे पराक्रमः ॥५।९८॥ (चन्द्रालोक, कुवलयानन्द)

प्रत्यनीकमशक्तेन प्रतीकारे रिपोर्यदि।
तदीयस्य तिरस्कारः, तस्यैवोत्कर्षसाधकः ॥१०।८७॥ (साहित्यदर्पण)

तस्यैवेति रिपोरेव। विश्वनाथ के अनुसार प्रत्यनीक के चमत्कार में शत्रु या प्रतिपक्ष का ही उत्कर्ष प्रकट होता है। इस अनिवार्य विशेषता की ओर अन्य आचार्यों ने संकेत नहीं किया।

प्रतिपक्षसम्बन्धिनस्तिरस्कृतिः प्रत्यनीकम्। (रस-गंगाधर पृ० ६६४)

हिन्दी के आचार्य

सत्रु मित्र के पक्ष तें, किये बैर औ हेत।
प्रत्यनीक भूषन कहै जे हैं सुमति सचेत ॥१७।३७॥ (काव्यनिर्णय)

पोद्दार ने मम्मट के अनुसार तथा मिश्र ने जयदेव के अनुसार प्रत्यनीक का वर्णन किया है।

उपसंहार

प्रत्यनीक का वर्णन रुद्रट ने किया था। मम्मट से इसके लक्षण में 'तिरस्क्रिया' पद जुड़ गया। विश्वनाथ ने स्पष्ट किया है कि प्रत्यनीक के चमत्कार में शत्रु या प्रतिपक्ष का ही उत्कर्ष प्रकट होता है। हिन्दी में भी इस अलंकार की अच्छी धूम रही है। प्रत्यनीक का सौन्दर्य कवि

प्रतिभा पर निभर है, शत्रु एव 'तिरस्कार' दोनो की काव्यमयी कल्पना इस अलकार का आधार है।

७३ पूर्व

रुद्रट

'पूव' औपम्य वग का अलकार है। इसम साथ साथ घटित होने वाले उपमानोपमेय मे से पूव घटित न हाने पर भी उपमेय का उपमान से पूव घटित हाना वर्णित किया जाता है—

यत्रैकविधावर्थौ जायेते यौ तयोरपूवस्य।
अभिधान प्राग्भवत सताऽभिधीयत तत्पूवम ।।८।९७।।

अतिशयोक्ति क चमत्कार म उपमेयोपमान भाव नही रहता परन्तु पूव अलकार का प्राण औपम्य है। उदाहरण—

काले जलद कुलाकुलदशदिशि पूव वियोगिनीवदनम।
गलद विरलसलिलभर पश्चादुपजायते गगनम ।।८।९८।।

रुद्रट ने अतिशय वग मे भी पूव अलकार का वणन किया है। अतिप्रबलता के कारण जहा जन्य पदाथ का वणन पूव तथा जनक पदाथ का वणन पश्चात हो। यहाँ औपम्य भाव नहीरहता। उदाहरण है—

'आदौ दन्दह्यते मनो यूनाम, पश्चात मदनानलो ज्वलति। (९।४)

मम्मट रुय्यक, जयदेव, विश्वनाथ दीक्षित जगन्नाथ आदि म इस अलकारका वणन नही है। हिन्दी क आचार्यो न भी इसका वणन नही किया।

उपसहार

रुद्रट ने पूव' अलकार का विवेचन किया था, उत्तर आचाय इसम कोई सौन्दय न देख सके। मम्मट के अनुसार इस प्रकार का सौन्दय अतिशयोक्ति के चतुथ भेद के अन्तगत आता है। (*भारतीय साहित्यशास्त्र प्रथम खण्ड पृ० ६७*) इसी कारण अन्याचाय पूव को स्वतन्त्र अलकार के रूप म चित्रित नही करते। रुद्रट का 'पूव अलकार दो प्रकार का है—एक औपम्य वग का दूसरा अतिशय-वग का, परन्तु दोना रूपा का आधार अध्यवसाय का सिद्धत्व है जिसके आधार पर इसका अतिशयोक्ति का एक भेद मान लिया गया है।

७४ साम्य

रुद्रट

'साम्य अलकार म औपम्यव्यग्य होता है वाच्य नही। अत उपमा से इसका भेद स्पष्ट है। इसके दो भेद हैं—

(१) सामान्य गुण आदि कारणा वाली 'अर्थक्रिया' द्वारा जहाँ उपमेय उपमान की समानता प्राप्त करे—

अथक्रियया यस्मिन्नुपमानस्येति साम्यमुपमेयम्।
तत्सामान्यगुणादिकारणया तदभवेत्साम्यम ॥८।१०५॥

उदाहरण सरल है—' शशिन करोति काय सकल मुखमेव ते मुग्धे ।'

(२) इसकी व्यजना व्यतिरेक के समान है। उपमेय की उत्कृष्टता-द्योतक विशेषता को दिखाने के लिए जहाँ उपमेयोपमान का सर्वाकार साम्य चित्रित किया जाय—

सर्वाकार यस्मिन्नुभयोरभिधातुमन्यथा साम्यम।
उपमेयोत्कर्षकर कुर्वीत विशेषमन्यत्तत ॥८।१०७॥

उदाहरण है— मग मृगाड क सहज कलड क बिभर्ति तस्यास्तु मुख कदाचित।'
आहार्यमेव मगनाभिपत्रमियानशेषेण तयोर्विशेष ॥८।१०८॥

मम्मट, रुय्यक जयदेव विश्वनाथ, दीक्षित, जगन्नाथ आदि मे इस अलकार का वर्णन नही है। हिन्दी के आचार्यों ने भी इसका वर्णन नही किया।

उपसहार

साम्य का वर्णन रुद्रट ने किया था परन्तु उत्तर आचार्य इसकी चर्चा नही करते। रुद्रट ने साम्य के दो भेद माने थे। प्रथम भेद का चमत्कार परिणाम के सौन्दर्य के समान है द्वितीय भेद की व्यजना व्यतिरेक की व्यजना है।

भोज न साम्य अलकार का वर्णन तो अवश्य किया, परन्तु उस वर्णन से साम्य का अस्तित्व ही समाप्त हो गया क्योंकि भोज का साम्य एक अलकार नही एक अलकार-वर्ग का नाम है

द्वयोयत्रोक्तिचातुर्याद औपम्यार्थोऽवगम्यते।
उपमारूपकाद्यत्वे साम्यमित्यामनन्ति तत ॥४।३४॥
तदानन्त्येन भेदानामसख्य तस्य तूक्तय।
दष्टान्तोक्ति प्रपचोक्ति प्रतिवस्तूक्तिरेव च॥४।३५॥

[सरस्वतीकण्ठाभरण (काव्यमाला), पृ० ४३०]

७५ स्मरण

रुद्रट

औपम्य वर्ग का अतिम अलकार स्मरण है। लक्षण सरल है—

वस्तुविशेष दृष्ट्वा प्रतिपत्ता स्मरति यत्र तत्सदृशम।
कालान्तरानुभूत वस्त्वन्तरमित्यद स्मरणम ॥८।१०९॥

इस सौन्दर्य का प्राण औपम्य है। भ्रान्तिमान म उपमान की अवगति होती है उपमेय की नही स्मरण म उपमान का स्मरण होना है भ्रान्ति नही।

उत्तर आचार्य

मम्मट रुय्यक विश्वनाथ व भूषण इसी परम्परा म हैं—

यथाऽनुभवमथस्य दप्टे तत्सदशे स्मृति ॥ (काव्यप्रकाश)

सदशानुभवाद वस्त्वन्तरस्मृनि स्मरणम् ॥ (अलकारसवस्व)

सदशानुभवाद वस्तुस्मृति स्मरणमुच्यत ॥१०।२७॥ (साहित्यदपण)

'चद्रालोक' तथा 'कुवलयानन्द' के अनुसार स्मरण के नाम म ही लक्षण है।

स्मृति सादश्यमूला या वस्त्वन्तरसमाश्रया।

स्मरणालकृति सा स्यादव्यग्यत्वविशेपता ॥ (चित्रमीमासा)

सादश्यज्ञानोद्वुद्धसस्कार प्रयोज्य स्मरण स्मरणालकार। (रसगगाधर)

हिन्दी के आचाय

देवकवि के अनुसार सुमिरन सुमृति' है और दासकवि ने इन अलकारो को 'लक्षन प्रगटै नाम' माना है। पोद्दार का लक्षण विश्वनाथ के आधार पर है, मिश्र ने उसी का अनुकरण किया है।

उपसहार

रुद्रट ने 'स्मरण' का वणन किया था, मम्मट रुय्यक ने इसका स्वरूप स्पष्ट किया। जयदेव दीक्षित तथा हिन्दी के अधिकतर आचाय इनके नाम मे ही लक्षण मानते है। सन्देह तथा भ्रम के समान स्मरण' भी 'लोकप्रिय अलकार रहा है। 'स्मरण' तथा 'स्मृति' इस अलकार के दोनो ही नाम मिलते हैं। इसका सौन्दय कवि प्रतिभाश्रित है। चित्र मीमासाकार न ठीक ही लिखा है कि *स्मरण का प्राण 'सादश्यमूला स्मृति है इस अलकार मे व्यग्यत्व नही होता।*

(ग) अतिशय-मूल के नवीन अलकार

७६ विशेष

रुद्रट

विशेष अतिशय-वग[1] का द्वितीय अलकार है। रुद्रट ने इसके तीन भेदा का विवेचन किया है—

(१) अवश्याधेय (विद्यमानाधार) वस्तु का उपलभ्यमान निराधारता स वणन—
किंचिदवश्याधेय यस्मिनभिधीयते निराधारम।
तादृगुपलभ्यमानम् ॥९।५॥

(२) एक वस्तु का अनक आधारा म युगपद् वणन।

(३) किसी काय को करता हुआ कर्ता जब किसी ऐसे अन्य काय को भी कर दे जिसे करने म वह असमथ होता है।

प्रथम दो भेदा का सम्बध आधेयाधार की विच्छिन्नता है, तीसरे का सम्बन्ध असभव काय के प्रासगिक सम्पादन स।

---

१ राजशेखर के अनुसार अतिशय के प्रथम विवेचक पाराशर हैं।

मम्मट

'का्यप्रकाश' म विशेष एव उसके भेदा का वणन रुद्रट के अनुकरण पर है—

विना प्रसिद्धमाधारमाधेयस्य व्यवस्थिति ।
एकात्मा युगपदवृत्तिरेकस्यानेकगोचरा ॥
अ्यत् प्रकुवत कायमशक्यस्या्यवस्तुन ।
तथव कारण चेति विशेषस्त्रिविध स्मृत ॥१०।१३६॥

(क) प्रसिद्धाधारपरिहारेण यत आधेयस्य विशिष्टा स्थितिरभिधीयत।
(ख) एकमपि वस्तु यत एकेनव स्वभावन युगपन्नेकत्र वतते ।
(ग) यदपि किंचिद रभसन आरभमाणस्तेनव यत्नेनाशक्यमपि कार्या्तरमारभते।

इस प्रसग म भामह के उद्धरण से परिपुष्ट करके मम्मट ने स्थापना की है कि—' सवत्र एव विधविषयेऽतिशयोक्तिरेव प्राणात्वेनावतिष्ठते ता विना प्रायेणालकारत्वायोगात । (पृ० ५४९)

अ्य आचाय

'अलकार-सवस्व' म मम्मट के अनुसार लक्षण तथा तीना भेदा का वण्न है—

अनाधारमाधेयम, एकमनेकगोचरम अशक्यवस्त्व तरकरणम विशेष ।

जयदेव मे मम्मट रुय्यक के प्रथम आधार का ही वणन है—

विशेष ख्यातमाधार विनाप्याधेय वणनम ॥५।८५॥

पर्तु साहित्य-दपण म मम्मट के अनुकरण पर विशेष के तीन भेदा का वणन है—

यदाधेयमनाधारमेक चानेकगोचरम ।
किंचित प्रकुवत कायमशक्यस्यतरस्य वा ।
कायस्य करण दवाद विशेषस्त्रिविधस्तत ॥१०।७४॥

अप्पयदीक्षित

कुवलयान्द मे विशेष के तीन भद है जिनको हि्दी के आचार्यों ने अपनाया है—

(क) विशेष ख्यातमाधार विनाप्याधेयवणनम ॥९९॥
यह जयदव से आगत है।
(ख) विशेष सोऽपि यद्येक वस्तवनेकत्र वण्यते ॥१००॥
यह मम्मट रुय्यक का द्वितीय विशेष है।
(ग) किचि्दारम्भतोऽशक्यवस्त्व्तरकृतिश्च स ॥१०१॥
यह मम्मट रुय्यक का तृतीय विशेष है।

जग्नाथ

मम्मट क अनुकरण पर विशेष के तीन भद हैं—

(१) प्रसिद्धमाश्रय विना आधेय वर्ण्यमानम्।

(२) यच्चक्रमाधेय परिमित यत किचिदाधारगतमपि युगपदनेकाधारगततया वण्यते।
(३) किचित्कायम आरभमाणस्यासभाविताशक्यवस्त्वन्तर निवतनम्। (पृ० ६१३)

हिन्दी के आचाय

दासकवि ने विशेष का वणन मीलित आदि के साथ किया है—

जहँ मीलित सामान्य म, कछू भेद ठहराइ।
तहँ उनमिलित विशेष कहि बरनत सुकवि सुभाइ ॥१४।४२॥

'अलकारमजरी का वणन काव्यप्रकाश' के अनुसार है कान्यदपण म भी उसी का अनुकरण है।

उपसहार

'विशेष अलकार का विवचन रुद्रट ने किया था और इसके तीन भेद बतलाये थे। मम्मट ने अनुकरण करत हुए अधिक व्यवस्थित रूप प्रदान किया। उत्तर आचार्यों म मम्मट रुय्यक का ही अनुकरण है। विशेष महत्त्वपूण अलकार है कतिपय अलकारा से विशेष का साम्य-वषम्य आचार्यों के ध्यान म रहा है।

७७ तदगुण

रुद्रट

तद्गुण के दो भेद होते हैं—

१ योगलभ्य नानात्व (=एक साथ रखकर देखने से जिनमे अन्तर स्पष्ट हो जाय) गुण वाले अर्थों म नानात्व दिखलाई न पडे।

२ अति गण के कारण जहा असमान गुण वाली वस्तु भी उसी गुण को धारण कर ले। क्रमश दोना भेदा के उदाहरण हैं—

नवधौतधवलवसनाश्चन्द्रिकया सान्द्रया तिरोगमिता।
रमणभवनान्यशङ्क सपत्यभिसारिका सपदि ॥९।२३॥
कुञ्जकमालापि कृता कातस्वरभास्वर त्वया कण्ठे।
एतत्प्रमानुलिप्ता चम्पकदामभ्रम कुरुते ॥९।२५॥

मम्मट

स्वमुत्सृज्य गुण योगादत्युज्ज्वलगुणस्य यत।
वस्तु तद्गुणतामेति भण्यते स तु तदगुण ॥१०।१३७॥

यह रुद्रट के तद्गुण का दूसरा प्रकार है।

रुय्यक

मम्मट के अनुकरण पर तद्गुण का लक्षण है—

"स्वगुणत्यागाद् अत्युत्कृष्टगुणस्वीकारस्तद् गुण ।

"न चेद मीलितम्। तत्र हि प्रकृत वस्तु वस्त्वन्तरेणाच्छादितत्वेन प्रतीयते। इह तावत् पुनः स्वरूपमेव प्रकृत वस्तु वस्त्वन्तरगुणोपरक्ततया प्रतीयते। (वृत्ति पृ० २१३)

अन्य आचार्य

जयदेव विश्वनाथ, दीक्षित एव जगन्नाथ में रुय्यक की परम्परा का ही अनुकरण है—

तद्गुण स्वगुणत्यागादन्यदीय स्वगुणोदय ॥५।१०२॥ (चन्द्रालोक)

तद्गुण स्वगुणत्यागाद् अत्युत्कृष्टगुणग्रह ॥१०।१०॥ (साहित्यदर्पण)

तद्गुण स्वगुणत्यागाद् अन्यदीयगुणग्रह ॥१४१॥ (कुवलयानन्द)

'स्वगुणत्यागपूर्वक स्वसन्निहितवस्त्वन्तरसम्बन्धि गुणग्रहण तद्गुण ।

(रसगंगाधर पृ० ६१२)

हिन्दी के आचार्य

तदगुन तजि गुन आपनो सगति को गुन लेइ ॥ (नन्दरामायन)

तदगुन तजि गुन आपनो सगति को गुन लेत ॥ (काव्यनिर्णय)

पोद्दार तथा मिश्र के लक्षणों पर जयदेव का प्रभाव है।

उपसहार

रुद्रट ने तद्गुण के दो रूपों का वर्णन किया था। मम्मट रुय्यक आदि ने केवल एक भेद को ही लिया। तद्गुण के अनुकरण पर उत्तर आचार्यों ने अतद्गुण अनुगुण, पूर्वरूप आदि कतिपय अलकारों की कल्पना की थी मीलित उन्मीलित आदि अलकारों से तद्गुण आदि का साम्य वैषम्य भी उत्तर आचार्यों के ध्यान में रहा है। मम्मट रुय्यक के लक्षणों का सामान्यत उत्तर आचार्यों में अनुकरण है।

७८ अधिक

रुद्रट

जहाँ एक ही कारण से अन्योन्यविरुद्ध स्वभाव के अथवा अन्योन्य विरुद्ध क्रिया के पदार्थ उत्पन्न हो वह 'अधिक' का प्रथम भेद है—

यत्रान्योन्यविरुद्ध विरुद्धबलवत्क्रियाप्रसिद्ध वा।

वस्तुद्वयमेककस्माज्जायत इति तदभवेदधिकम् ॥९।२६॥

स्वभावविरुद्ध का उदाहरण है— मुञ्चति वारि पयोदो ज्वलन्तमनल च क्रियाविरुद्ध का उदाहरण है— 'उदपद्यत नीरनिधेर्विषममृत चेति।

अधिक का दूसरा भेद वह है जहाँ सुमहत् आधार में अल्प वस्तु भी न समा सके। लक्षण है—

यत्राधारे सुमहत्याधेयमवस्थित तनीयोऽपि।
अतिरिच्येत कथचित तदधिकमपर परिज्ञेयम ॥९।२८॥

मम्मट

महतोयन महीयासावाश्रिताश्रययो श्रमात।
आश्रयाश्रयिणौ स्याता तनुत्वऽप्यधिक तु तत ॥१०।१२८॥

महान् आधेय और आधार के क्रम से आधार और आधेय छोटे होन पर भी महान् दिखलाना अधिक' अलकार है। यह रुद्रट का द्वितीय अधिक है।

अय आचाय

रुय्यक, जयदेव, विश्वनाथ, दीक्षित एव जगन्नाथ म इसी परम्परा का अनुकरण है—

आश्रयाश्रयिणोरानुरूप्यमधिकम्। (अलकार-सवस्व)
अधिक बोध्यमाधाराद् आधेयाधिकवणनम ॥५।८३॥ (चन्द्रालोक)
आश्रयाश्रयिणोरेकस्याधिक्यऽधिकमुच्यत ॥१०।७२॥ (साहित्यदपण)
अधिक पृथुलाधाराद आधेयाधिक्यवणनम ॥९५॥
पृथ्वाधेयाद्यदाधाराधिक्य तदपि तन्मतम ॥९६॥ (कुवलयानन्द)
आधारस्याधेयाद आधेयस्यापि वाधारात।
यदि वण्यते महत्त्व तत्कथयन्त्यधिकमधिकज्ञा ॥ (रसगगाधर)

हिन्दी के आचाय

अधिक अल्प आधार। (शब्दरसायन, पृ० १८२)
अधिकारी आधेय की जह आधार तें होइ।
अरु अधार आधेय तें अधिक अधिक ये दोइ॥ (काव्यनिणय)

पोद्दार ने भी 'अधिक' के दो भेदो का वणन किया है, जो मम्मट के प्रभाव से ग्रहण किया है।

उपसहार

रुद्रट ने 'अधिक' अलकार की कल्पना की थी। 'अधिक' के वे दोनो प्रकार आचार्यों म प्रचलित न रहे। मम्मट ने रुद्रट के केवल एक भेद का वणन किया और उसके दो रूप स्वय बतलाये। उत्तर आचार्यों पर मम्मट का प्रभाव है। हिन्दी के आचाय भी मम्मट-कृत लक्षण एव भेदो का वणन करते रहे हैं।

७९ असगति

रुद्रट

एक ही काल म प्रकट कारण और काय का यदि अलग अलग स्थानो पर वणन किया जाय तो वह *असगति अतिशय का चमत्कार है*—

विरुद्धे समकाल कारणमन्यत्र कार्यमन्यत्र ।
यस्यामुपलभ्यते विज्ञेयासगति सेयम् ॥९।४८॥

इस अलकार का चमत्कार भिन्न देशत्व तो है ही 'समकालत्व' भी है । उदाहरण म अग तो तन्वी के भरते हैं पर तु काम की वृद्धि विरहिया के हृदय म होती है—

नवयौवनेन सुतनोरिन्दुकलाकोमलानि पूर्यन्त ।
अगान्यसगतानां यूनां हृदि वर्धते काम ॥९।४९॥

मम्मट

भिन्नदेशतयात्यन्त कार्य-कारणभूतयो ।
युगपद् धर्मयोयत्र ख्याति सा स्यादसगति ॥१०।१२४॥

इस सौन्दय का प्राण भिन्नदेशता तथा 'युगपद्' है । वृत्ति ध्यान देने योग्य है— एषा विरोधबाधिनी न विरोध भिन्नाधारतयैव द्वयोरिह विरोधिताया प्रतिभासात् । (पृ० ५३४)

रुय्यक

'अलकार-सवस्व' का लक्षण सक्षिप्त करने की चेष्टा है—

'तयोस्तु भिन्नदेशत्वेऽसगति ।

इसम 'युगपद' का आग्रह नहीं है काय कारण का अध्याहार पूव प्रतिपादित अतिशयोक्ति लक्षण से हो जाता है ।

जयदेव एव विश्वनाथ

'चन्द्रालोक' तथा साहित्यदपण के लक्षणों पर मम्मट रुय्यक के लक्षणों का प्रभाव है—

आख्यात भिन्नदेशत्व कायहेत्वोरसगति ॥५।७९॥ (चन्द्रालोक)
काय-कारणयोर्भिन्नदेशतायामसगति ॥१०।६९॥ (साहित्यदपण)

अप्पय्यदीक्षित

विरुद्ध भिन्नदेशत्व कायहेत्वोरसगति ॥८५॥
अन्यत्र करणीयस्य ततोऽन्यत्र कृतिश्च सा ।
अन्यत्कर्तु प्रवृत्तस्य तद्विरुद्धकृतिस्तथा ॥८६॥ (कुवलयानन्द)

प्रथम लक्षण जयदेव का प्रभाव है । द्वितीय तथा तृतीय प्रकार स्वतन्त्र चिन्तन है ।

अन्यत्र करणीयस्य वस्तुनोऽन्यस्मिन्नधिकरणे करणमप्यसगति । तथा अन्यत्कार्य कर्तु प्रवृत्तस्य तद्विरुद्धकार्यकरण तृतीया असगति । (अलकारचन्द्रिका, पृ० ११०)

जगन्नाथ

'रस-गगाधर' का लक्षण सरल तथा स्पष्ट है—

"विरुद्धत्वेनापाततो भासमान हेतुकार्ययोर्वैयधिकरण्यम असंगति ।" (पृ० ५९०)

हिन्दी के आचार्य

कारन कारज औरई अथ असंगति साखि । (शब्दरसायन, पृ० १७४)

दासकवि के वर्णन पर अप्पय्यदीक्षित का प्रभाव लक्षण तथा भेदों में है—

जहँ कारन है और थल कारज औरै ठाम ।
अनत करन को चाहिये, करै अनत ही काम ॥
और काज करने लगै, करै जु और काज ।
त्रिविध असंगति कहत हैं सुकविन के सिरताज ॥ (काव्यनिर्णय)

पोद्दार तथा मिश्र ने भी इसी प्रकार असंगति के तीन-तीन भेदों का वर्णन किया है।

उपसंहार

रुद्रट ने 'असंगति' की कल्पना की थी। मम्मट ने इसके लक्षण को वैज्ञानिकता प्रदान की। उत्तर आचार्य मम्मट से प्रभावित हैं। दीक्षित ने असंगति के तीन भेदों का वर्णन किया है। हिन्दी के आचार्यों में असंगति बड़ा प्रिय सौन्दर्य रहा है। असंगति का चमत्कार विरोधमूलक अलंकारों के चमत्कार में मुख्य है इसलिए भाषा के कवि भी इस चमत्कार का बाहुल्य से प्रयोग करते हैं। हिन्दी के आचार्यों ने असंगति वर्णन में 'कुवलयानन्द' का अनुकरण किया है।

८० पिहित

रुद्रट

अति प्रबलता के कारण जब कोई गुण समानाधिकरण (=समानाधार) परन्तु असमान अर्थान्तर को, आविर्भूत होने पर भी, आच्छादित कर दे तो वह पिहित अतिशयालंकार का चमत्कार है—

यत्रातिप्रबलतया गुणः समानाधिकरणमसमानम् ।
अर्थान्तरं पिदध्यात् आविर्भूतमपि तत्पिहितम् ॥९।५०॥

मीलित अलंकार से अन्तर करने के लिए 'असमान' पद पर लक्षण में बल दिया गया है। उदाहरण में अंगों से उत्पन्न कान्ति समानाधिकरण परन्तु 'असमान' कृशता को आविर्भूत होने पर भी, आच्छादित कर देती है—

प्रियतमवियोगजनिता कृशता कथमिव तवेयमङ्गेषु ।
लसदिन्दुकला कोमलकान्तिकलापेषु लक्ष्येत ॥९।५१॥

मम्मट, रुय्यक, विश्वनाथ और जगन्नाथ में पिहित अलंकार का वर्णन नहीं है।

जयदेव एवं अप्पय्यदीक्षित

'चन्द्रालोक' तथा 'कुवलयानन्द' में पिहित का एक जैसी शब्दावली में वर्णन है—

पिहित पर-वृत्तान्तज्ञातुरन्यस्य चेष्टितम् ॥५।१०९॥ (चन्द्रालोक)
पिहित पर-वृत्तान्त ज्ञातु साकूत चेष्टितम् ॥१५२॥ (कुवलयानन्द)

दूसरे के गुप्त आचरण को चेष्टा द्वारा प्रकट करना पिहित है।

हिन्दी के आचार्य

'पिहित छिपी। (शब्दरसायन पृ० १८२)
जहाँ छपी पर-बात को जानि जनाव कोइ।
तहाँ पिहित भूषन कहैं छन्द पहेली सोइ॥ (काव्यनिर्णय १५,५)

पोद्दार ने रुद्रट के अनुसार पिहित का लक्षण दिया है परन्तु मिश्र ने इसका वर्णन नहीं किया।

उपसंहार

रुद्रट ने पिहित की कल्पना की थी, जयदेव-दीक्षित ने इसकी व्याख्या की है। हिन्दी के कतिपय आचार्यों ने इसको अपनाया है। सामान्यत आचार्यों में इस अलंकार की उपेक्षा रही है। मम्मट विश्वनाथ के अनुयायी इस अलंकार का वर्णन नहीं करते।

८१ व्याघात

रुद्रट

सामान्यत प्रतिहत होने पर कारण कार्य का उत्पादन नहीं करता परन्तु यदि अन्य कारणों द्वारा अप्रतिहत होने पर भी कारण कार्य का उत्पादन न करे तो उस अतिशय सौन्दर्य को व्याघात कहते है—

अन्यैरप्रतिहतमपि कारणमुत्पादन न कार्यस्य ॥९।५२॥

उदाहरण सरल है—

यत्र सुरतप्रदीपा निष्कज्जलवतयो महामणय ।
माल्यस्यापि न गम्या हृतवसनवधूविसृष्टस्य ॥९।५३॥

व्याघात तथा अहेतु दोनो अलकारो में कारण विद्यमान रहता है, परन्तु कार्य का उत्पादन नहीं होता, व्याघात कारण के अप्रतिहतत्व का वर्णन करता है, अहेतु अर्थ के स्थैर्य का व्याघात (अहेतु के समान) विकार का आग्रह नहीं करता।

मम्मट

यद्यथा साधित केनाप्यपरेण तदन्यथा।
तथैव यद्विधीयेत स व्याघात इति स्मृत ॥१०।१३८॥

येनोपायेन यदेकेनोपकल्पित तस्यान्येन जिगीषुतया तदुपायकमेव यदन्यथाकरण स साधित वस्तु व्याहतिहेतुत्वाद् व्याघात । (वृत्ति)

रुय्यक

अलकार सवस्व' म दो प्रकार क व्याघात का वणन है—

(क) यथा साधितस्य तथवा येना यथाकरण व्याघात ।

य कचिद उपायविशेषमवलम्ब्य केनचिद यन्निष्पादित वस्तु तत ततोऽयेन केनचित् तत्प्रतिद्वद्विना तेनवोपायविशेषेण यद यथा क्रियते स निष्पादित वस्तु-व्याहतिहेतुत्वाद् व्याघात । (पृ० १७३)

(ख) सौकर्येण काय विरुद्ध क्रिया च व्याघात ।

किंचित्काय निष्पादयितु सभाव्यमान कारणविशेष तत्कायविरुद्धनिष्पादकत्वेन यत्समथ्यते सोऽपि सभाव्यमानकायव्याहतिनिब धनत्वाद व्याघात । (पृ० १७५)

जयदेव

स्याद याघातोऽयथाकारि वस्त्व यक्रियमुच्यते ॥५।८६॥

एक पदाथ से जो काय किया जाता है, दूसरा यक्ति उसी पदाथ स तद्विरुद्ध काय करे, ता याघात का चमत्कार है । जयदेव ने रुय्यक के प्रथम व्याघात का ही वणन किया है ।

विश्वनाथ

व्याघात स तु केनापि वस्तु येन यथाकृतम ।
तेनव चेदुपायेन कुरुतेऽयस्तद यथा ॥१०।७५॥

रुय्यक के प्रथम याघात का ही मम्मट के अनुकरण पर वणन है ।

अप्पय्यदीक्षित

स्यादव्याघातोऽयथाकारि तथाकारि क्रियेत चेत् ॥१०२॥
सौकर्येण निबद्धापि क्रिया कायविरोधिनी ॥१०३॥

प्रथम व्याघात का लक्षण जयदेव की शब्दावली म है और द्वितीय व्याघात म रुय्यक के द्वितीय व्याघात का अनुकरण है । (जयदव तथा विश्वनाथ न इस भेद का वणन नही किया) ।

जग नाथ

रसगगाधर' म शब्दावली का चम कार मुख्य है—

यत्र ह्येकेन कत्रा येन कारणेन काय किञ्चिन्निष्पादित निष्पिपादयिषित वा तद येन कर्त्रा तेनव कारणन तद्विरुद्धकायस्य निष्पादनेन निष्पिपादयिषया वा व्याह यत स व्याघात ।'
(पृ० ६१६)

हि दी के आचाय

जाहि तयाकारी गन, कर अ यथा सोउ ।
काहू मुद्ध विरुद्ध ही, है व्याघात दोउ ॥ (काव्यनिणय, १३, २७)

पोद्दार ने रुय्यक के अनुसार तथा मिश्र ने दीक्षित के अनुसार व्याघात का वर्णन किया है।

उपसंहार

रुद्रट ने 'व्याघात' की कल्पना की थी। मम्मट ने उसकी स्पष्ट व्याख्या की। रुय्यक का वर्णन अधिक स्पष्ट है। उत्तर आचार्यों ने इसका अनुसरण किया है। व्याघात के दो भेद हैं। प्रथम व्याघात किसी व्यक्ति द्वारा सिद्ध किये गये कार्य को दूसरे द्वारा उसी साधन से अन्यथा करने में है। द्वितीय व्याघात है किसी व्यक्ति द्वारा सुगमतापूर्वक किसी कार्य को अन्यथा कर देना।

८२ अहेतु

रुद्रट

अतिशयाश्रित अलंकारों में अंतिम अहेतु है। काव्यालंकार के नवम अध्याय में इसका लक्षण है—

बलवति विकारहेतौ सत्यपि नवोपगच्छति विकारम्।
यस्मिन्नर्थ स्थैर्यान्न मन्तव्योऽभावहेतुरिति ॥९।५४॥

बलवान् विकारहेतु के विद्यमान रहने पर भी जहां वर्ण्य अर्थ स्थिरता के कारण, विकार को प्राप्त न हो उस अतिशय सौन्दर्य को अहेतु मानना चाहिए।

रुद्रट का उदाहरण सरल है जिसमें स्थैर्य पर पूरा आग्रह है। स्थैर्य के अवर्णन में यह अलंकार विरोध का सजातीय बन जायगा—

रूक्षोऽपि पेशलेन प्रखलऽप्यखलेन भूषिता भवता।
वसुधेयं वसुधाधिप मधुरगिरा परुषवचनेऽपि ॥९।५५॥

मम्मट, रुय्यक, जयदेव, विश्वनाथ, दीक्षित, जगन्नाथ में इस अलंकार का वर्णन नहीं है। हिन्दी के आचार्यों ने भी इसका वर्णन नहीं किया।

उपसंहार

रुद्रट ने 'अहेतु' अलंकार का वर्णन किया है अन्य आचार्य इसको न अपना सके। अहेतु की कल्पना 'हेतु' अलंकार के सहारे की गई थी परन्तु उसमें चमत्काराधिक्य नहीं है इसलिए इसको लोकप्रियता प्राप्त नहीं हुई। मम्मट के पश्चात कोई आचार्य 'अहेतु' अलंकार को नहीं अपनाता यद्यपि भोज तक (सरस्वतीकण्ठाभरण पृ० १३७) इसका वर्णन चलता रहा है।

(घ) श्लेष-मूल के नवीन अलंकार

८३ अर्थश्लेष

रुद्रट

'काव्यालंकार' के द्वितीय अध्याय में शब्दालंकारों का विवेचन प्रारम्भ करते हुए रुद्रट ने

लिखा था— श्लेपोऽथ्म्यापि'। शब्दश्लेप का विवेचन यथास्थान (चतुथ अध्याय म) भामह, दण्डी तथा उदभट की परम्परा म उद्गान कर दिया था। अथश्लेष का विवेचन[1] अर्थालकार-प्रसग मे ग्रन्थ के दशम अध्याय मे किया गया है। अर्थालकारा का वर्गीकरण वास्तव, 'औपम्य' 'अतिशय तथा 'श्लेप वर्गो म करते हुए इनम से प्रत्येक के लिए एक एक अध्याय दिया गया है और प्रत्यक को एक अथालकार मानकर उस वग के अलकारा का उनका 'विशेप' (=भेद) समझकर विवेचन किया गया है। इस प्रकार अथश्लेप अर्थालकार विवेचन के अन्त म, अपने आप म पूण है।

अथश्लेप का लक्षण है—

यत्रकमनेकार्थवाक्य रचित पदरनेकस्मिन्।
अर्थे कुरुते निश्चयमथश्लप स विज्ञेय ॥१०।१॥

जहा अनेकाथक पदो से रचित एक वाक्य अनेक अर्थो का निश्चय करता है वहाँ अथश्लेप है। शब्दश्लेप म 'अनेक वाक्यो की युगपद[2] रचना होती है— युगपदनेक वाक्य यत्र विधीयते' (४।१) अथश्लेप म 'एक वाक्य म अनेक अर्थो का द्योतन होता है।

सामान्यत अथश्लेप के दो रूप है—सकीण तथा शुद्ध[3]। भामह आदि न सहोक्ति, उपमा और हेतु के आधार पर श्लेष के तीन रूप माने हैं, वे सकीण हैं शुद्ध नही उनमे श्लेप स्वतन्त्र नही है, प्रस्तुत प्रसग म वह स्वतन्त्र अर्थात शुद्ध है।

अथश्लेप के दस भेद हैं—
अविशेप विरोधाधिक वक्रव्याजोक्त्यसभवावयवा।
तत्त्वविरोधाभासाविति भेदास्तस्य शुद्धस्य ॥१०।२॥

(१) अविशेष

जिस वाक्य म एक अथ स दूसर अथ की प्रतीति का आधार दोना का समान विशेपणा स युक्त होना हो। (अविशिष्ट समान विशेपणरुपेत युक्तम्। यादशानि चकस्य विशेपणानि तादृशान्यवापरस्यापीत्यर्थ।)

(२) विरोध

जहाँ प्रकान्त (कथ्यमान) वाक्य विरुद्धविशेषण वाले अन्य अथ सामान्य की प्रतीति कराव वहाँ विरोध का कथन है। अविशेप श्लेप म समान विशेपण युक्त अथ की प्रतीति होती है, विरोध श्लेप म विरुद्ध विशेपण युक्त अथ की।

---

१ राजशेखर के अनुसार अथश्लेष का प्रथम विवेचन उतथ्य ने किया था।

२ एक वाक्यमित्येकग्रहण श "श्दया" अ"य विशेषणव्यावर्तनाथम्। तत्र हि युगपदनेक वाक्य यत्र विधीयेत स श्लेप (४।१) इत्युक्तम्। किं च तत्र शब्दानां श्लेष अत्र त्वर्थानामिति। (नमिसाधु, पृ० १३२)।

३ शुद्धग्रहण पर-मत-निरासायम्। यत कश्चित् तत्सहोक्त्युपमाहेतुनिर्देशात् त्रिविधम् इति सकीर्णत्वेन त्रैविध्यमुक्तमिति। (नमिसाधु, पृ० १३२)।

(३) अधिक

प्रकृत अथ से ऐसे अर्थान्तर की प्रतीति जो प्रकृत अथ से अधिक एव असमान विशेषण युक्त हो। यहाँ 'अधिक' से उत्कृष्ट का तात्पय है, उदाहरण म प्रकृत अथ नप-वणन है उसस प्रतीति हो रही है देव-वर्णन की।

(४) वक्रश्लेष

ऐसे अर्थान्तर की प्रतीति जो प्रकृत अथ स प्रतिबद्ध (सम्बद्ध) होता हुआ भी अन्य रस का बोधक हो। उदाहरण म प्रकृत वीर रस स अर्थान्तर शृगार की प्रतीति हो रही है।

(५) व्याजश्लेष[1]

इसके दो भेद हैं—स्तुति स निन्दा की प्रतीति और निन्दा से स्तुति की प्रतीति—

यस्मिन्निन्दा स्तुतितो निन्दाया वा स्तुति प्रतीयेत।
अन्या विवक्षिताया व्याजश्लेष स विज्ञेय ॥१०।११॥

स्तुति से निन्दा का उदाहरण—

त्वया मदर्थे समुपेत्य दत्तम
इद यथा भोगवते शरीरम।
तथास्यते दूति कृतस्य शक्या
प्रतिक्रियानेन न जन्मना मे ॥१०।१२॥

(६) उक्तिश्लेष

जहाँ विवक्षित अथ को पुष्ट करती हुई लौकिक प्रसिद्धोक्ति की प्रतीति हो।

(७) असभवश्लेष

ऐसे अथ की प्रतीति जिसके विशेषण प्रकृताथ के साथ असभव हो असभवत्तदविशेषणो ऽयोऽथ।

(८) अवयवश्लेष

जहाँ समग्र विशेषण प्रकृत अथ के साथ घटित हा और उन विशेषणा के अवयव, पोषक अप्रकृत अथ क साथ घटित हा।

(९) तत्त्वश्लेष

प्रतीत अथ जहाँ प्रकृत अथ के तत्त्व का पोषक हो।

---

1 व्याजश्लेष वस्तुत भामह का व्याजस्तुति अलंकार है। उत्तर आचार्यों ने व्याजस्तुति का ही वणन किया है।

(१०) विरोधाभासश्लेष[1]

एक ही वाक्य दो एस पृथक अर्थों का द्योतक हो जो स्वरूप स अविरुद्ध होते हुए भी विरुद्ध लगते हों—

स इति विरोधाभासो यस्मिन्नर्थद्वय पृथग्भूतम ।
अन्यद्वाक्य गमयदविरुद्ध सविरुद्धमिव ॥१०।२२॥

उदाहरण सरल एव रोचक है—

तव दक्षिणोऽपि वामो बलभद्रोऽपि प्रलम्ब एष भुज ।
दुर्योधनोऽपि राजन्युधिष्ठिरोऽस्तीत्यहो चित्रम ॥१०।२३॥

मम्मट

श्लेष स वाक्ये एकस्मिन यत्रानेकार्थता भवेत ॥१०।९६॥

एक ही अर्थ के प्रतिपादक शब्दों के जहाँ अनेक अर्थ हों, वहाँ शब्द-परिवृत्ति-सह होने के कारण श्लेष अर्थालकार है ।

मम्मट ने इसका वर्णन बहुत सक्षिप्त कर दिया है ।

अन्य आचार्य

उत्तर आचार्यों ने अर्थश्लेष का सक्षेप म वर्णन किया है । उनमें पर्याप्त मतभेद भी है। कतिपय लक्षण हैं—

विशेष्यस्यापि साम्ये द्वयोर्रुपादान श्लेष ॥ (अलकार सर्वस्व)
अर्थश्लेषोऽर्थमात्रस्य यद्यनेकार्थसश्रय ॥५।६५॥ (चन्द्रालोक)
शब्दै स्वभावादेकार्थै श्लेषोऽनेकार्थवाचनम् ॥१०।५८॥ (साहित्यदर्पण)

इस लक्षण पर वृत्ति भी ध्यान देने योग्य है—

'स्वभावादेकार्थे' इति शब्दश्लेषाद व्यवच्छेद ।
'वाचनम' इति च ध्वने । (पृ० ३४२)
नानार्थसश्रय श्लेषो वर्ण्यावर्ण्योभयाश्रित ॥६४॥ (कुवलयानन्द)

वृत्ति पर ध्यान दिया जाता है—

तत्र सभगश्लेष शब्दालकार । अभगश्लेषस्त्वर्थालकार इति केचित । उभयमपि शब्दालकार इत्यन्ये । उभयमप्यर्थालकार इति स्वाभिप्राय । एतद्विवचन तु चित्रमीमासाया द्रष्टव्यम् ।' (पृ० ८२)

"श्रुत्यैकयानेकार्थप्रतिपादन श्लेष ।" (रस-गगाधर, पृ० ५२३)

हिन्दी के आचार्य

कविप्रिया में श्लेष का वर्णन 'काव्यादर्श' के आधार पर लगभग पच्चीस पृष्ठों में है,

---

[1] यह सौन्दर्य आगे चल कर शब्दालकार विरोधाभास नाम से प्रचलित हुआ ।

जिसमे श्लेप को 'श ्श्लप के अथ म लिया गया ह । काव्यनिणय' म श्लेप आदि का अर्था लकार मानने का विरोध किया गया है—

श्लेप विरद्धाभास है श ् अलङ्कति दास।
मुद्रा अर वक्रोक्ति पुनि, पुनरुक्तवदाभास ॥
इन पाँचहु कौ अथ को, भूपन कहै न कोइ।
जदपि अथ भूपन सक्ल शब्दशक्ति म होइ॥ (२० १ २)

दासकवि ने चार अर्थो तक के श्लेप का वणन किया है। पोद्दार न शब्दश्लेप का 'अलकार-मजरी के अष्टम स्तवक म एव अथश्लेप का नवम स्तवक म वणन किया है।

उपसहार

श्लेप एक महत्त्वपूण सौदय विधा है। इसकी उदभावना भामह म हो गई थी । पश्चात् रुद्रट ने 'अथश्लेप एव श दश्लेप रूपा का वणन किया और अथश्लेप के शुद्ध एव सकीण भेदा की अलग-अलग व्याख्या पर बल दिया। उत्तर आचार्यों के विवेचन म दो विशेपताएँ लक्षित होती है—

(क) श दश्लेप तथा अथश्लेप अलकारा का विवचन अलग-अलग प्रसगो म है।

(ख) श्लेप सदा स्वतन्त्र रूप स नही मिलता। जब वह दूसरे अलकारा क साथ आता है तो प्रधानता श्लेप को मिल अथवा उस दूसरे अलकार का, यह विवादास्पद है।

रुय्यक का मत है कि सभग श्लेप शब्दालकार है और अभग श्लेप अर्थालकार। परन्तु मम्मट अभग एव सभग दोना को शब्दालकार मानते थ। मम्मट का निष्कप ही उचित लगता है कि जिस अलकार की विचित्रता श दाश्रित हो वह श द श्लेप है, एव जिसकी विशेपता शब्द बदलन पर भी नष्ट न हो वह अथश्लेप है।

दूसरी विशेपता के सम्बध म कुछ आचार्यों का मत है कि श्लेप प्राय दूसरे अलकारो क साथ आता है। यदि ऐस स्थलो पर श्लेष का प्रधानता न दें तो उसका क्षत्र बहुत सीमित हो जाएगा। मम्मट यह नही मानत। उनका कहना है कि श्लेप स्वतन्त्र रूप स भी रहता है और जहाँ स्वतत्र रूप से रहे वही श्लप को प्रधानता देनी चाहिए अयत्र वह अग बनकर रहता हुआ माना जाएगा।

सप्तम अध्याय

मम्मट, रुय्यक, विश्वनाथ, जगन्नाथ द्वारा उद्भावित अलकार

(क) मम्मट द्वारा उद्भावित नवीन अलकार

८४ विनोक्ति

मम्मट

काव्यप्रकाश के दशम उल्लास म सहोक्ति का विवेचन करने के उपरान्त मम्मट ने 'विनोक्ति अलकार का प्रतिपादन किया है। विनोक्ति का लक्षण है—

विनोक्ति सा विनाऽन्येन यत्रान्य सन्न नेतर ॥११३॥

जहा एक के बिना दूसरा अर्थ सुन्दर न हो अथवा असुन्दर न हो अर्थात कही अशोभन हो और कही शोभन हो। विनोक्ति के दो भेद हैं—अशोभन का वर्णन तथा शोभन का वर्णन। अशोभन का उदाहरण—

अरुचिर्निशया विना शशी, शशिना सापि विना महत्तम ।
उभयेन विना मनोभवस्फुरित नव चकास्ति कामिनो ॥

शोभन का उदाहरण—

मृगलोचनया विना विचित्रव्यवहारप्रतिभाप्रगल्भ ।
अमृतद्युतिसुन्दराशयोऽय सुहृदा तन विना नरेन्द्रसूनु ॥

रुय्यक

अलकारसर्वस्व म भी सहोक्ति के पश्चात् विनोक्ति का प्रतिपादन है। विनोक्ति को 'सहोक्ति प्रतिभटभूता' कहा गया है। लक्षण मम्मट की अपेक्षा सुगम है—

विना कञ्चिदन्यस्य सदसत्त्वाभावो विनोक्ति ।'

सत (शोभनत्व) एव असत् (अशोभनत्व) भाव जहाँ किसी दूसरे के बिना वर्णित न किय जायें वहाँ दो प्रकार की विनोक्ति होती है। उदाहरण है—

विनयेन विना का श्री, का निशा शशिना विना।
रहिता सत्कवित्वेन कीदृशी वाग्विदग्धता ॥

जिस प्रकार 'सह' शब्द के बिना भी सहार्थविवक्षा होती है उसी प्रकार 'विना' शब्द के बिना भी विनार्थविवक्षा[1] सभव है। उदाहरण—

निरथक जन्म गत नलिन्या यया न दष्ट तुहिनाशुबिम्बम्।
उत्पत्तिरिन्दोरपि निष्फलव न येन दष्टा नलिनी प्रबुद्धा॥

विनोक्ति के दूसरे भेद के लिए रुय्यक ने मम्मट का उदाहरण ही ले लिया है।

जयदेव

'चन्द्रलोक' का लक्षण उदाहरण अत्यन्त सरल है—

विनोक्तिश्चेद विना किंचित प्रस्तुत हीनमुच्यते।
विद्या हृद्यापि सावद्या विना विनयसम्पदम ॥५।६१॥

यहाँ विनोक्ति का केवल एक ही रूप है और विनार्थविवक्षा का वर्णन भी नही किया गया।

विश्वनाथ

विनोक्तियद विनान्येन नासाध्वन्यदसाधु वा।

इस लक्षण म काव्यप्रकाश का अनुकरण है। एक उदाहरण शोभनत्व का है और दूसरा अशोभनत्व का। रुय्यक के उदाहरण के द्वारा ही विश्वनाथ ने यह प्रतिपादित किया है कि विनार्थ की विवक्षा बिना शब्द के अभाव मे भी हो सकती है—

'अत्र परस्परविनोक्तिभङ्ग्या चमत्कारातिशय विनाशब्दप्रयोगाभावेऽपि विनार्थविवक्षाया विनोक्तिरेवेयम। एव सहोक्तिरपि सहशब्दप्रयोगाभावेऽपि सहार्थविवक्षया भवतीति बोध्यम। (वृत्ति पृ० ३३६)।

अप्पय्यदीक्षित

कुवलयानन्द म लक्षण उदाहरण चन्द्रालोक से ही आया है। एक अन्य उदाहरण देकर दीक्षित ने बतलाया है कि विना शब्द के अभाव म भी विनोक्ति अलकार हो सकता है।

चन्द्रालोक म केवल अशोभनत्व (=हीं) का था कुवलयानन्द म मम्मट रुय्यक विश्वनाथ के अनुसार शोभनत्व (=रम्य) का अलग वर्णन किया है विनोक्ति के दूसरे प्रकार के रूप म—

तच्चेत किंचिद्विना रम्य विनोक्ति सापि कथ्यते।
विना खलैर्विभात्येषा राजेन्द्र[1] भवत सभा॥६०॥

जगन्नाथ

रस गगाधर म सहोक्ति के उपरान्त विनोक्ति का वर्णन है और इसे रमणीयत्व तथा

---

१ अत्र विना शब्दमन्तरेणापि विनार्थविवक्षा यथाकथंचित् निमित्तीभवति। यथा सम्भावनो सहार्थविवक्षा।

जगन्नाथ

'रस गगाधर' म तक वितक के उपरान्त सम के तीन ही भेद निश्चित किय गय हैं। लक्षण व्यापक एव सरल है—

अनुरूप-ससग समम्। (पृ० ६०३)

हिन्दी के आचाय

'सम सम विषम सु विषम ।' (शब्द रसायन)

दासकवि न भी अप्पय्यदीक्षित के अनुकरण पर सम अलकार के भी विषम की प्रति द्वद्विता म तीन भेद माने हैं। लक्षण इस प्रकार है—

जाको जसो चाहिय ताको तसो अग।
कारज म सब पाइये कारन ही को अग॥१५।४॥
उद्यम करि जो है मिल्यो वहे उचित धरि चित्त।
है विषमालकार को प्रतिद्वदी सम मित्त॥१५।५॥

पाद्दार तथा मिश्र न भी दीक्षित के अनुसार ही सम अलकार का भेद-सहित वणन किया है।

उपसहार

मम्मट न विषम की प्रतिद्वद्विता म सम अलकार की कल्पना की थी और उसका प्रति पादन विषम' के विवचन से पूव किया था। परन्तु मम्मटोत्तर आचाय सम अलकार का विवेचन 'विषम के अनन्तर उसके प्रतिद्वन्द्वी के रूप म करते हैं। रुय्यक न मम्मट के विचार को अधिक स्पष्ट किया कि विषम अलकार के अन्तिम भेद का प्रतिद्वन्द्वी सम अलकार है प्रथम तथा द्वितीय भेदा की प्रतिपक्षिता म अलकारत्व का स्पष्ट निषध किया। जयदेव विश्वनाथ के वणन रुय्यक के अनुकरण पर हैं। अप्पय्यदीक्षित ने रुय्यक का विरोध करत हुए यह स्थापना की कि विषम के तीनो भेदो के प्रतिद्वन्द्वी सम के तीन भेद हो सकत है। जगन्नाथ भी दीक्षित से सहमत हैं और रुय्यक का खडन करते है। हिन्दी के आचार्यों न दीक्षित का अनुकरण किया है।

कुछ विद्वान[२] रुद्रट के साम्य एव मम्मट के सम को एक मानकर रुद्रट से सम अलकार की कल्पना मानते हैं। रुद्रट के अनुसार साम्य के दो रूप है—अथ की क्रिया द्वारा उपमान की उपमेय म समता तथा उपमेयोपमान म सवाकार समता प्रदर्शित करने के निमित्त उपमेय की उत्कषकारी विशेषता का वणन। परन्तु इनम से कोई भी मम्मट का सम अलकार नही है। मम्मट क सम म उपमयोपमान भाव अनिवाय नही है।

---

१ तस्मासममपि त्रिविधमेव। (प० ६ ७)

२ दक्षिण अलकारानशीलन प० ३ ६।

८६ सामाय

मम्मट

विशेप' अलकार का वणन करने मे पूव मम्मट न 'मामाय' अलकार का प्रतिपादन किया है। लक्षण है—

प्रस्तुतस्य यन्येन गुण-साम्य विवक्षया।
एकात्म्य वध्यते यागात तत्सामायमिति स्मतम् ॥१०।१३४॥

मामाय अलकार म प्रस्तुत के अप्रस्तुत क साथ सम्बन्ध से गुणा की समानता प्रतिपादन करने की इच्छा स उन दोना क एकात्म्य का वणन किया जाता है। वत्ति म इस लक्षण का और भी स्पष्ट किया गया है—

अतादशमपि तादृपतया विवक्षितु यत् अप्रस्तुतार्थेन सम्पृक्तम अपरित्यक्त निज गुणमव तदेकात्मतया निबध्यत तत् समानगुणनिबन्धनात सामायम।"

मम्मट न दो उदाहरण दिये हैं। एक म अभिमारिका (प्रस्तुत) और चन्द्रमा (अप्रस्तुत) दोनो का एक-सा धवलत्व उनकी एकात्मता का हतु है। दूसरा उदाहरण है—

वेत्रत्वचा तुल्यरुचा वधूना कर्णाग्रतो गण्डतलागतानि।
भृगा सहेल यदि नापतिष्यन् कोऽवेदयिष्यन्नवचम्पकानि ॥

यहा गुणसाम्य की विवक्षा म प्रस्तुत-अप्रस्तुत की अभेदप्रतीति वर्णित होने के कारण 'सामाय अलकार है।

रुय्यक

'अलकार-सवस्व' म 'विशेप' और 'सामाय' अलकारो के बीच अष्टादश अलकार और वर्णित हैं। 'सामाय का लक्षण मम्मट की शब्दावली म किया गया है—

प्रस्तुतस्यान्यन गुणसाम्यादैकात्म्य सामायम्।

इसकी वत्ति लक्षण का और भी स्पष्ट कर देती है—

'यत्र प्रस्तुतस्य वस्तुनाप्रस्तुतेन साधारणगुणयोगाद् एकात्म्य भेदानध्यवसायात् एकरूपत्व निबध्यत तत समानगुणयोगात सामायम। न चयमपह्नुति। किचिन्निषध्य कस्यचित्प्रतिष्ठापनात्।

रुय्यक के उदाहरण पर मम्मट के प्रथम उदाहरण की छाया है।

जयदेव

'चन्द्रालोक' म 'सामाय' अलकार विशेष' मे चालीस अलकार पूव है, और अलकार-सवस्व के समान मीलित म तत्काल पश्चात है। इन आचार्यों के ध्यान म 'मीलित' एव 'सामाय अलकारा की सामाय समानता भी रही है। जयदेव का सामाय का लक्षण-उदाहरण देखिए—

'प्रत्यक्षविषयस्यापि वस्तुना वलवत सजातीयग्रहणकृन तदभिन्नत्वनाग्रहण सामान्यम ।'

हिन्दी के आचाय

दासकवि ने मीलित तथा सामान्य का लक्षण एक साथ दिया है, उनका वणन एक साथ किया है—

मिलित जानिये जह मिल, छीर-नीर क न्याय ।
है सामान्य मिन जहाँ हीरा फटिक सुभाय ॥१४।३८॥

पोद्दार तथा मिश्र न मम्मट रुय्यक के आधार पर सामान्य अलकार का वणन किया है।

उपसहार

मम्मट न सामान्य अलकार की कल्पना की थी आर उसका प्रतिपादन 'विशेष अलकार के वणन स पूव किया था। रुय्यक न मम्मट का अनुकरण करत हुए भी मीलित अलकार क सन्दभ म सामान्य का वणन किया। उत्तर आचार्यों न रुय्यक का ही अनुकरण किया ह और सामान्य तथा 'विशेष अलकारा के वणन के बीच म पर्याप्त व्यवधान कर दिया है।

रुय्यक ने अपह्नुति म सामान्य का अन्तर स्पष्ट किया जयदेव विश्वनाथ स आचाय लाग मीलित से 'सामान्य' का अतर करते हुए लक्षण की व्याख्या करने लग। हिन्दी म जयदव विश्वनाथ का अनुकरण ही लाकप्रिय हुआ।

८७ अतदगुण

मम्मट

'तद्गुण अलकार का विवेचन करने के उपरान्त मम्मट ने अतद्गुण अलकार का निरूपण किया है। यह अलकार पूर्वोक्त अलकार तद्गुण के ठाक विपरीत है—

तदरूपानुहारश्चेदस्य तत स्यादतदगुण ॥१३८॥

अत्यन्त उत्कृष्ट गुणवाली समीपस्थ वस्तु का योग होने पर भी न्यून गुण वाले अप्रकृत के द्वारा उस प्रकार के गुण का अनुसरण न हाना अनदगुण का चमत्कार है। यहा ग्रहण करने की योग्यता होने पर भी यह न्यूनगुण अप्रस्तुत उस प्रस्तुत के गुण का ग्रहण नही करता।

अतदगुण का दूसरा[१] रूप वह है जहाँ अप्रकृत क रूप को किसी भी कारण स प्रकृत ग्रहण नही करता। उदाहरण है—

गागमम्बु सितमम्बु यामुन कज्जलाभमुभयत्र मज्जन ।
राजहम ! तव सव शुभ्रता चीयते न च न चापचीयत ॥

रुय्यक

अलकारसवस्व म तद्गुण के विपययरूप म अतद्गुण का वणन है। सामान्यत न्यूनगुण

---

१ तेन यद् अप्रकृतस्य रूप प्रकृतन कुतोऽपि निमित्तान नानुविधीयते सोऽतद्गुण इत्यपि प्रतिपत्तव्यम्। (वृत्ति)

"सामान्य यदि सादृश्याद् भेद एव न लक्ष्यते ।
पदमाकरप्रविष्टाना मुख नालक्षि सुभ्रुवाम् ॥३४॥

मीलित[1] अलकार मे उपमान के स्वरूप का ज्ञान नही होता, सामान्य म भेद ज्ञान होते हुए भी अन्तर स्पष्ट नही होता।

विश्वनाथ

'साहित्यदपण म, 'अलकार-सवस्व के समान, विशेष एव सामान्य अलकारो के वर्णन मे विंशतिप्राय अलकारा का व्यवधान है और सामान्य अलकार मीलित के तत्काल पश्चात है। सामान्य के लक्षण पर भी रुय्यक की शब्दावली का अधिक प्रभाव है—

सामान्य प्रकृतस्यान्यतादात्म्य सदशगुण ।

उदाहरण एक ही है । परन्तु वत्ति म 'मीलित एव 'सामान्य अलकारो का अन्तर स्पष्ट कर दिया गया है—

मीलिते प्रकृतस्य वस्तुनो वस्त्वन्तरेणाच्छादनम । इह तु वस्त्वन्तरगुणेन आक्रान्तता प्रतीयते—इति भेद ।'

अप्पय्यदीक्षित

'कुवलयानन्द का सामान्य लक्षण चन्द्रालोक की शब्दावली मे परन्तु अधिक विकसित है उदाहरण चन्द्रालोक का ही है—

सामान्य यदि सादश्याद विशेषो नोपलभ्यते ।
पदमाकर प्रविष्टाना मुख नालक्षि सुभ्रुवाम ॥१४७॥

वत्ति म मीलित एव सामान्य का अन्तर स्पष्ट किया गया है—

मीलितालकारे एकेनापरस्य भिन्नस्वरूपानवभासरूप मीलन क्रियत । सामान्यालकारे तु भिन्नस्वरूपावभासेऽपि व्यावतकविशेषो नापलभ्यत इति भेद । अतएव भद तिरोधानान् मीलित तदतिरोधानेऽपि साम्यन व्यावतकानवभासे सामान्यम्—इत्युभयोरप्यन्वथता।

(पृ० १६४)

जगन्नाथ

रस-गगाधर म भी मीलित के अनन्तर सामान्य अलकार का लक्षण दिया गया है और मीलित स सामान्य अलकार का अन्तर भी स्पष्ट किया गया है— मीलित तु निगूह्यमानवस्तु न प्रत्यक्ष विषय इति न तत्रातिव्याप्ति ' (पृ० ६९८) । सामान्य का लक्षण है—

---

१ मीलित बहुसादश्याद् भन्दवन्न लक्ष्यते ॥३३॥
सामान्य यदि सादश्याद् भद एव न लक्ष्यत ॥३४॥

प्रत्यक्षविषयस्यापि वस्तुनो बलवत् सजातीयग्रहणकृत तदभिन्नत्वेनाग्रहण सामान्यम ।"

हिन्दी के आचाय

दासकवि ने मीलित तथा सामान्य का लक्षण एक साथ दिया है उनका वणन एक साथ किया ह—

मिलित जानिय जह मिल, छीर-नीर के न्याय ।
है सामान्य मिल जहाँ हीरा फटिक सुभाय ।।१४।३८।।

पोद्दार तथा मिश्र ने मम्मट रुय्यक के आधार पर सामान्य अलकार का वणन किया है।

उपसहार

मम्मट न सामान्य' अलकार की कल्पना की थी और उसका प्रतिपादन विशेष' अलकार के वणन स पूव किया था। रुय्यक ने मम्मट का अनुकरण करत हुए भी मीलित अलकार क सन्दभ म सामान्य का वणन किया। उत्तर आचार्यो न रुय्यक का ही अनुकरण किया है और 'सामान्य तथा 'विशेष अलकारो के वणन के बीच म पर्याप्त व्यवधान कर दिया है।

रुय्यक ने अपह्नुति स सामान्य का अन्तर स्पष्ट किया जयदेव विश्वनाथ स आचाय लाग मीलित स सामान्य का अन्तर करते हुए लक्षण की व्याख्या करने लग। हिन्दी म जयदव विश्वनाथ का अनुकरण ही लोकप्रिय हुआ।

८७ अतदगुण

मम्मट

'तदगुण' अलकार का विवेचन करते के उपरान्त मम्मट ने अतद्गुण अलकार का निरूपण किया है। यह अलकार पूर्वोक्त अलकार तदगुण के ठीक विपरीत है—

तदरूपाननुहारश्चेदस्य तत स्यादतदगुण ।।१३८।।

अत्यन्त उत्कृष्ट गुणवाली समीपस्थ वस्तु का योग होने पर भी न्यून गुण वाले अप्रकृत के द्वारा उस प्रकार के गुण का अनुसरण न होना, अतद्गुण का चमत्कार है। यहा ग्रहण करने की योग्यता होने पर भी यह न्यूनगुण अप्रस्तुत उस प्रस्तुत के गुण को ग्रहण नही करता।

अतदगुण का दूसरा[1] रूप वह है जहा अप्रकृत के रूप को किसी भी कारण स प्रकृत ग्रहण नही करता। उदाहरण है—

गागमम्बु सितमम्बु यामुन कज्जलाभमुभयत्र मज्जत ।
राजहस ! तव सव शुभ्रता चीयते न च न चापचीयत ।।

रुय्यक

अलकार सवस्व म तद्गुण के विपययरूप' म अतदगुण का वणन है। सामान्यत न्यूनगुण

---

१ तेन यत् अप्रकृतस्य रूप प्रकृतेन कुतोऽपि निमित्तात नानुविधीयते सोऽतद्गुण इत्यपि प्रतिपत्तव्यम्। (वृत्ति)

वाली वस्तु विशिष्ट गुण वाले पदार्थ का धर्म स्वीकार कर लेती है, परन्तु यदि उत्कृष्ट गुण वाले पदार्थ के सान्निध्य में भी न्यूनगुण वाली वस्तु उत्कृष्ट गुण का अनुहरण नही करती तो वह अतदगुण का चमत्कार[1] माना जाता है। लक्षण है—

सति हेतौ तदगुणाननुहारोऽतद्गुण ।

अतद्गुण का सौन्दर्य विषम के सौन्दर्य से भिन्न है, क्योंकि इसमें कार्य-कारण भाव नहीं होता। अलकार सर्वस्व में दोनो उदाहरण 'काव्यप्रकाश' से ही ले लिये गये हैं।

जयदेव

चन्द्रालोक' (एवं कुवलयानन्द) का लक्षण उदाहरण सरल एवं सुगम है—

सगतान्यगुणानगीकारमाहुरतद्गुणम ।
बिभ्रन्नपि रवेमध्य शीत एव सदा शशी ॥५।१०५॥

विश्वनाथ

मम्मट की शब्दावली में अतदगुण का लक्षण है—

तद्रूपाननुहारस्तु हेतौ सत्यप्यतद्गुण ॥१०।९१॥

दो उदाहरणो में से द्वितीय मम्मट से ही ले लिया गया है।

विश्वनाथ ने उदाहरणो का विश्लेषण करते हुए विशेषोक्ति तथा विषम से अतदगुण का अन्तर भी वृत्ति में स्पष्ट किया है—

"अत्र च गुणाग्रहणरूपविच्छित्ति विशेषाश्रयाद विशेषोक्तेर्भेद । वर्णान्तरोत्पत्त्यभावाच्च विषमात।"

जगन्नाथ

रस गगाधर में तदगुण और मीलित के बीच में अतदगुण अलकार का संक्षिप्त विवेचन है। जगन्नाथ के अनुसार अतदगुण अलकार तदगुण का विपर्यय है—

"तद्विपर्ययोऽतदगुण ' (पृ० ६९२)

हिन्दी के आचार्य

लहै न परगुन हू लहे कहो अतदगुन ताहि। (शब्दरसायन, पृ० १७८)

सु अतदगुन क्यो हू नही सगति को गुन लेत। (काव्यनिर्णय, १४,३२)

पोद्दार ने रुय्यक के अनुसार तथा मिश्र ने जयदेव के अनुसार अतदगुण अलकार का वर्णन किया है।

---

१ न्यूनगुण य विशिष्टगुणपदार्थधर्मस्वीकार प्रत्यासत्त्या न्याय्य । यत्र पुन उत्कृष्टगुण पदार्थसान्निध्यात्म्य हेतौ स यदि तद्रूपस्य उत्कृष्ट गुणस्याननुहरण न्यूनगुणनाननुवर्तन भवति सो अतद्गुण । (वृत्ति पृ २१४)

उपसहार

'तद्गुण' अलकार के अनन्तर उसके विपयय के रूप म मम्मट न अतदगुण अलकार की कल्पना की थी। रुय्यक म मम्मट का अनुकरण है। दोनो उदाहरण भी मम्मट के हैं। उत्तर आचार्यों न मम्मट रुय्यक के अनुसार विवेचन किया है। मम्मट का द्वितीय उदाहरण तो विश्व नाथ ने ज्यो का त्यो ले लिया है। जगन्नाथ न तो अतदगुण का लक्षण ही तद्गुण का विपयय कहकर किया है—तद्विपययाऽ तदगुण ।

मम्मट न चार नवीन अलकारो की कल्पना की थी जिनके नाम विनोक्ति, सम सामान्य, अतद्गुण हैं। इन चारो के नाम विद्यमान अलकारो के नाम के विपयय हैं—

सहोक्ति—विनोक्ति
विपम—सम
विशेष—सामान्य
तद्गुण—अतद्गुण

परन्तु इन चारो का वैपरीत्य भिन्न भिन्न प्रकार का है।

सहोक्ति विनोक्ति का वपरी य प्रतिद्वद्विता का है साहित्य म जिस प्रकार सहोक्ति अल कार होता ह उसी प्रकार साहित्य म विनोक्ति हो सकता है—इन दोनो अलकारो का विपरीत दिशा म समानान्तर वणन आचार्यों न किया है।

विपम-सम का वैपरीत्य अभाव भाव का ह, यदि अभाव म अलकार हो सकता है तो भाव म भी सभव है यह अलकार अपने विपरीत अलकार के समान चमत्कारी नही है, विपम के समस्त भेदो के समानान्तर सम के समस्त भेदो को अधिकतर आचाय स्वीकार भी नहीं करते।

विशेप-सामान्य का वपरीत्य नाम-वधम्य का है, इनके स्वरूप म यदि कोई सम्बन्ध है तो वह केवल नाम-वधम्य है, इसी कारण रुय्यक ने सामान्य अलकार का विशेष के पूव स्थान न देकर मीलित के साथ रखा और उत्तर आचार्यों न इस क्रम का अनुकरण भी किया।

तद्गुण-अतद्गुण का वपरीत्य विरोध का ह, उत्कृष्ट गुण के ग्रहण म तदगुण अलकार है तो उत्कृष्ट गुण के ग्रहण न करन म अतद्गुण अलकार होगा। तदगुण अतदगुण के युगल स प्रेरणा लेकर उत्तर आचार्यों ने अन्य अलकारो की भी कल्पना की है, जिनका विवेचन यथास्थान देखा जा सकता है।

(ख) रुय्यक द्वारा उद्भावित नवीन अलकार

८८ परिणाम

रुय्यक

रूपक अलकार का विवचन करने के तत्काल पश्चात रुय्यक ने परिणाम अलकार का प्रतिपादन किया है। लक्षण है—

आराप्यमाणस्य प्रकृतोपयोगित्वे परिणाम ॥

रूपक अलकार म आरोप्यमाण विषय प्रकृतिविषय का उपरजक[1] बनकर ही रहता है, परिणाम अलकार म आरोप्यमाण विषय प्रकृत विषय क स्वरूप म उपयोगी बनकर रहता है। 'रूपक' के समान ही अय किसी भी अलकार म प्रकृतोपयोगिता[2] नहा है, केवल 'परिणाम' अलकार म प्रकृत वस्तु आरोप्यमाण के उपयागी रूप से व्यवहार करती है।

परिणाम क दा भेद हो सकते हैं—समानाधिकरण्यगत तथा वयधिकरण्यगत। समानाधिकरण्यगत परिणाम का उदाहरण है—

तीर्त्वा भूतेश मौलिस्रजममरधुनीमात्मनासौ तृतीय
तस्मै सौमित्रिमैत्रीमय मुपहृतवानातर नाविकाय।
व्यामग्राह्यस्तनीभि शबरयुवतिभि कौतुकोदचदक्ष
कृच्छाद वीयमानस्त्वरितमथ गिरिं चित्रकूट प्रतस्थे॥

यहाँ सौमित्रिमैत्री प्रकृत है जो आराप्यमाण विषय क अनुसार परिणत हाती है। समासोक्ति और परिणाम दोना म व्यवहारसमारोप[3] हाता है परन्तु समासोक्ति म विषय का प्रयोग होता है और विषयी गम्य रहता है परिणाम म दोना का अभिधान है और तादात्म्य के द्वारा परिणामित्व हा जाता है।

व्याधिकरण स परिणाम का उदाहरण है—

अय पवित्रमतामुपेयिवद्भि सरसवक्रपथाश्रितवचोभि।
क्षितिभितुरपायन चकार प्रथम तत्परतस्तुरगमाद्य॥

जयदेव

चद्रालोक म परिणाम का लक्षण उदाहरण सरल एव सुगम है—

परिणामोऽनयोयस्मिन्नभेद पयवस्यति।
कान्तेन पृष्टा रहसि मौनमेवोत्तर ददौ॥५।२२॥

विश्वनाथ

विषयात्मतयारोपे प्रकतार्थोपयोगिनि।
परिणामो भवत तुल्यातुल्याधिकरणो द्विधा॥१०।३५॥

जहाँ आरोप्य पदाथ विषय (उपमय) क स्वरूप स ही प्रस्तुत काय मे उपयोगी हो वहा परिणाम का चमत्कार है। इसके दो भेद—तुल्याधिकरणक तथा अतुल्याधिकरणक (=विरुद्धाधिकरणक)—है। रूपक के समान ही विश्वनाथ न परिणाम का रूपक स अन्तर बतलाकर उसकी स्वतन्त्र सत्ता की घोषणा की है—

---

१ आरोप्यमाण रूपके प्रकृतोपयोगित्वाभावात प्रकृतोपरजकत्वेनव केवलम अन्वय भजते परिणाम तु प्रकृतात्म तया आरोप्यमाणस्य उपयोग इति प्रकृतम आरोप्यमाणरूपत्वेन परिणमति। (वत्ति पृ० ५१)

२ अन्यश्च नास्त्यवालकारान्तरप्रकृतोपयोगित्वम। (जयरथ प ५१)

३ अत एव तत्र तद्व्यवहारसमारोप। एवमिहापि नयम। केवल तत्र विषयस्यैव प्रयोग विषयिणो गम्यमानत्वात्। इह तु द्वयोरप्यभिधान तादात्म्यान तयो परिणामित्वम्। (वत्ति प ५२)

"रूपके मुखचन्द्र पश्यामि इत्यादौ आरोप्यमाणचन्द्राद उपरञ्जकतामात्रम न तु प्रकृते दश नादौ उपयोग । अत एव रूपके आरोप्यस्य अवच्छेदकत्वमात्रेण अन्वय अत्र तु तादात्म्येन ।' (वृत्ति, पृ० ३०८ ९)

अप्पय्यदीक्षित

परिणाम क्रियाथश्चेद विषयी विषयात्मना ।
प्रसन्नेन दृगब्जेन वीक्षते मन्दिरेक्षणा ॥२१॥

दीक्षित ने दूसरा उदाहरण वही दिया है जो रुय्यक म था— तीर्थीभूतश इत्यादि । परिणाम अलकार की वृत्ति भी रुय्यक के प्रभाव से है—"यत्र आरोप्यमाणो विषयी किंचित्कार्यो पयोगित्वेन निबध्यमान स्वत तस्य तदुपयोगित्वासभवात प्रकृतात्मना परिणतिमपेक्षते तत्र परिणामालकार ।' (पृ० २०)

जगन्नाथ

रस-गगाधर' म भी रूपक को ध्यान म रखकर परिणाम का विवेचन किया गया है। अत्र च विषयाभेदा विषयिणि उपयुज्यते । रूपके तु नवमिति रूपकादस्य भेद ।' (पृ० ३२८) । लक्षण है—

' विषयी यत्र विषयात्मतयव प्रकृतोपयोगी न स्वातन्त्र्यण स परिणाम ।

हिन्दी के आचाय

दासकवि न परिणाम को रूपक का एक प्रकार मानकर इस अलकार का परिणाम रूपक नाम दिया है और रूपक के भेदों के बीच म इसका वणन किया है। लक्षण-उदाहरण सरल है—

करत जुहै उपमान ह्वे, उपमयहि को काम ।
नहिं दूपन उनमानिये, है भूपन परिनाम ॥१०।३१॥
करकजनि खजनदगनि, ससिमुखि अजन देति ।
बाज-हास तें दासजू, मन बिहग गहि लेति ॥१०।३२॥

इस उदाहरण पर जगन्नाथ का प्रभाव जान पडता है । जगन्नाथ क अनुसार उपमान स्वय किसी काय को करन म असमथ होन के कारण उपमेय के एकरूप होकर उस काय को करता है तो वहाँ परिणाम होता है और जहा उपमान स्वय किसी काय को करन म समथ होता ह वहाँ रूपक अलकार होता है ।" (अलकार मजरी, पृ० १५५)

पोद्दार तथा मिश्र का वर्णन जगन्नाथ के अनुसार है ।

उपसहार

परिणाम' अलकार की कल्पना रुय्यक न की थी। उत्तर आचार्यों म रूपक-परिणाम के अन्तर को लेकर दो वग है। रुय्यक क अनुयायी यह मानते हैं कि रूपक म उपमान का किसी

कार्य का करने में औचित्यमात्र होता है, परिणाम में उपमेय उपमान रूप होकर उपमेय का कार्य करता है। नव्याचार्य यह मानते हैं कि उपमान स्वयं असमर्थ होने के कारण उपमेय रूप होकर उस कार्य को करता है। नागेश ने परिणाम का खंडन किया है फिर भी उत्तर आचार्य परिणाम को अलग अलंकार मानते रहे हैं। निश्चय ही परिणाम का सौंदर्य रूपक के सौन्दर्य से भिन्न तथा अधिक आकर्षक है। शालिग्राम शास्त्री के अनुसार परिणामालंकार में उपमान का अभेद उपमेय में भासित होता है और रूपक में उपमेय का अभेद उपमान में भासित होता है।' (विमला, पृ० ३०९)

८९. उल्लेख

रुय्यक

सादृश्य के कारण वस्त्वन्तरप्रतीति भ्रान्तिमान् अलंकार है, परन्तु निमित्त वश एक का अनेकधा ग्रहण उल्लेख है। उल्लेख एक प्रकार से भ्रांति की माला है परन्तु अन्तर यह है कि उल्लेख का आधार निमित्त है और उल्लेख में 'अनेकधा' ग्रहण होता है, उल्लेख में 'ग्रहण' है कल्पना नहीं। भ्रांतिमान और उल्लेख का दूरारूढ सम्बन्ध है। इसलिए 'अलंकार-सर्वस्व' में भ्रान्तिमान् के तत्काल पश्चात 'उल्लेख' अलंकार की कल्पना की गयी है—

एकस्यापि निमित्तवशादनेकधा ग्रहणमुल्लेखः।

एक वस्तु का अनेकधा जो ग्रहण होता है उस रूप-बाहुल्य के उल्लेख को 'उल्लेख' अलंकार कहते हैं। यह निर्निमित्त नहीं होना चाहिए। उल्लेख का सौंदर्य रूपक भ्रांतिमान के सौन्दर्य से भिन्न है। उल्लेख में रूपक का योग नहीं भी हो सकता, भ्रांतिमान में अनेकधा ग्रहण नहीं होता। अस्तु—

ग्रहीतभेदाख्येन विषयविभागेन अनेकधात्वोद्‌ङ्कनात् तस्य च विच्छित्त्यन्तररूपत्वात्सर्वथा नास्यान्तर्भावः शक्यक्रिय इति निश्चयः।' एवमलंकारान्तरविच्छित्त्याश्रयेणाप्ययमलंकारो निदर्शनीयः। (वृत्ति)

जयदेव

चन्द्रालोक का लक्षण-उदाहरण सरल है—

बहुभिर्बहुधोल्लेखाद् एकस्योल्लेखिता मता।
स्त्रीभिः कामः, प्रियश्चन्द्रः, कालः शत्रुभिरक्षि सः ॥५।२३॥

विश्वनाथ

उल्लेख अलंकार के विषय को रुय्यक से भी अधिक विश्वनाथ ने स्पष्ट किया है। लक्षण भी सुगम तथा स्पष्ट है—

क्वचिद् भेदाद् ग्रहीतॄणां, विषयाणां तथा क्वचित्।
एकस्यानेकधोल्लेखो यः, स उल्लेख उच्यते॥

विश्वनाथ ने यह भी स्पष्ट किया है कि उल्लेख मालारूपक, भ्रातिमान अतिशयोक्ति आदि के सौदय मे स्वतन्त्र सौंदय है।

रुय्यक तथा विश्वनाथ न उल्लेख के दो रूप बतलाये है—ग्रहीतृणा भेदात तथा विषयाणा भेदात ।

अप्पय्यदीक्षित

'कुवलयानन्द' म उल्लेख क प्रथम' प्रकार का लक्षण उदाहरण (एक पद के परिवतन से) चन्द्रालोक' से आया है—

बहुभिबहुधोल्लेखाद् एकस्योल्लेख इष्यते।
स्त्रीभि कामोऽर्थिभि, स्वद्रु काल, शत्रुभिरपि स ॥२२॥

दूसर भेद का लक्षण उदाहरण है—

एकेन बहुधोल्लेखेऽप्यसौ विषयभेदत ।
गुरुवचस्यजुनोऽय कीर्तौ भीष्म शरासन ॥२३॥

यह उल्लेख ग्रहीतभेद तथा विषयभेद स दो प्रकार का हो सकता है।

जगन्नाथ

रस-गगाधर म उल्लेख के साथ उल्लेख ध्वनि का भी उल्लेख है। उल्लेख का लक्षण परम्परा क अनुसार ही है—

एकस्य वस्तुनो निमित्तवशाद यदनेकगृहीतभि अनकप्रकारक ग्रहण तदुल्लेख । (पृ० ३५७)

हिन्दी के आचाय

देवकवि का लक्षण दीक्षित के अनुसार है—

एक निश्चित भाँति बहु क बहु एक विशेष।
लख्यौ कि बहुतन भाति बहु ताहि कहौ उल्लेख ॥(शब्दरसायन, पृ० १६७)

दासकवि का लक्षण है—

एकहि म बहु बोध क बहु गुन सो उल्लेख ।
परम्परित मालानि सो, लीन्हे भिन्न विसेष ॥१०।४१॥

पोद्दार ने उल्लेख अलकार का विस्तृत वणन किया है। प्रथम उल्लेख (नाताओ के भेद स एक वस्तु का अनकधा उल्लेख) के दो भेद है—शुद्ध तथा सकीण। उल्लेख अलकार मे कही स्वरूपोल्लेख कहा फलोल्लेख एव कही हतूल्लेख होता है। (अलकार मजरी पृ० १५७) यह विस्तार जगन्नाथ क अनुसार है।

निरवयव माला रूपक म ग्रहण करन वाले अनेक व्यक्ति नही होते, किंतु उल्लेख म अनेक

---

१ यत्र नानाविधधर्मयोगित्वात् वस्तु तत्तद्धर्मयोगरूप निमित्तभेदेन अनेकेन ग्रहीत्रा अनेकधा उल्लिख्यते तत्रोल्लेख । (वृत्ति)

व्यक्ति होते हैं, और रूपक एक वस्तु में दूसरी वस्तु का आरोप में होता है, शुद्ध उल्लेख में आरोप नहीं होता किंतु एक वस्तु का उसके वास्तविक धर्मों द्वारा अनेक प्रकार से ग्रहण किया जाता है। 'भ्रांतिमान्' में भ्रम होता है, शुद्ध उल्लेख में भ्रम नहीं होता है।" (अलकार मजरी, पृ० १६१)

विषय भेद से एक ही वस्तु को एक ही व्यक्ति के द्वारा अनेक प्रकार से उल्लेख किय जाने को द्वितीय उल्लेख कहते हैं।

रामदहिन मिश्र ने विश्वनाथ के अनुसार उल्लेख का वर्णन किया है।

उपसहार

उल्लेख अलकार की कल्पना रुय्यक ने की थी। एक वस्तु का निमित्तवश अनेकधा ग्रहण उल्लेख है, यह विषय भेद एव ज्ञातृभेद से दो प्रकार का हो सकता है। उत्तर आचार्यों ने रुय्यक के लक्षण को ही आधार बनाया है। विश्वनाथ के वर्णन में अधिक स्पष्टता है। अप्पय्यदीक्षित ने 'चित्रमीमासा' (पृ० २२५) में उल्लेख का विस्तृत विवेचन किया है।

उल्लेख (प्रथम) एक वस्तु का निमित्त वश अनेकधा ग्रहण है। उल्लेख (द्वितीय) एक वस्तु का अनेकश चित्रण भी है यह भेद रुय्यक-सम्मत नहीं है, दीक्षित आदि द्वारा कल्पित एव हिन्दी में बहुश प्रचारित है। जगन्नाथ ने प्रथम उल्लेख के स्वरूपोल्लेख, फलोल्लेख तथा हेतूल्लेख उपभेद किये हैं (रस-गगाधर, पृ० ३५८)

उद्योतकार नागेश भट्ट एव विश्वेश्वर पण्डित ने उल्लेख का खण्डन किया है। उल्लेख का भ्रान्तिमान् रूपक तथा अतिशयोक्ति के अन्तर्गत रखने के प्रयत्न समय-समय पर किये गये हैं। रुय्यक ने इस अन्तर्भाव का प्रारम्भ में ही खण्डन कर दिया था। उल्लेख की कल्पना भ्रांतिमान से अन्तर करने पर हुई थी जिसकी चर्चा यथास्थान की गई है।

६० विचित्र

रुय्यक

विषम और उसके विपरीत सम अलकारो के अनन्तर रुय्यक ने विरोधमूलक विचित्र' अलकार का प्रतिपादन किया है। विचित्र का लक्षण है—

'स्व विपरीत फल निष्पत्तये प्रयत्नो विचित्रम्।

यस्य हेतो यत फल, तस्य यदा तद्विपरीत भवति, तदा तद्विपरीत फलनिष्पत्त्यर्थ कस्य चित् प्रयत्न उत्साहो विचित्रालकार।'

विचित्र अलकार का सौन्दर्य प्रथम विषम अलकार के सौन्दर्य से भिन्न है, क्योंकि विषम (प्रथम) का विषय[1] विपरीत प्रतीति के द्वारा स्वनिषेध है परन्तु विचित्र में अन्यथा

---

१ न चाय प्रथमो विषमालकारप्रकार। स्वनिषेधमुखेन वैपरीत्यप्रतीते।
विपरीतप्रतीत्या तु स्वनिषेध तस्य विषय। इह त्वन्यथा प्रतीति। (वृत्ति, पृ० १६८)

प्रतीति होती है। विचित्र अलकार का उदाहरण —

उन्नत्य नमति प्रभु, प्रभुगृहान् द्रष्टु बहिस्तिष्ठति।
स्वद्रव्यव्ययमातनोति जडधीरागामि वित्ताशया।
प्राणान् प्राणितुमेव मुचति रणे, विनश्नाति भागच्छया
सव तद्विपरीतमेव कुरुते तृष्णान्धदवसेवक ॥

जयदेव

विषम और सम क अनन्तर ही विचित्र अलकार का सरल प्रतिपादन है —

विचित्र चेत प्रयत्न स्याद विपरीतफलप्रद ।
नमन्ति मन्तस्त्रलोक्यादपि लब्धु समुन्नतिम ॥८२॥

विश्वनाथ

रुय्यक क लक्षण एव उदाहरण की छाया म विश्वनाथ ने विचित्र का सक्षिप्त लक्षण एव उदाहरण दिया है। लक्षण स्वतन्त्र एव सरल है —

विचित्र तदविरुद्धस्य कृतिरिष्टफलाय चेत।

उदाहरण म रुय्यक के उदाहरण की छाया है —

प्रणमत्युन्नतिहेतो जीवितहेता विमुचति प्राणान।
दुखीयति सुखहेतो को मूढ सेवकादन्य ॥

अप्पय्यदीक्षित

'कुवलयानन्द म चन्द्रालोक की शब्दावली से ही विचित्र का लक्षण है और उदाहरण तो अक्षरश जयदेव से ही ले लिया गया है —

विचित्र तत्प्रयत्नश्चेत् विपरीत फलेच्छया ॥९८॥

जगन्नाथ

'रस गगाधर मे विचित्र का वणन अत्यन्त सक्षिप्त है —

इष्टसिद्धचथमिष्टपिणा क्रियमाणमिष्ट विपरीताचरण विचित्रम। '(पृ०६०७)

हिन्दी के आचाय

दासकवि ने लेश क पश्चात विचित्र अलकार का वणन किया है और उसे गुण-दोष मय माना है —

करत दाप की चाह जह ताही म गुन देखि।
तहि विचित्र भूपन कहौ हिये चित्र अवरेखि॥१४।२५॥

पोद्दार ने रुय्यक क अनुसार एव मिश्र ने विश्वनाथ के अनुसार विचित्र अलकार का वणन किया है।

उपसहार

विचित्र अलकार की कल्पना रुय्यक ने की थी। उत्तर आचार्यों ने उसी स्वरूप का स्वीकार कर लिया है। अभीष्ट के विपरीत फल की प्राप्ति का प्रयत्न विचित्र है आश्चय प्रतीति के कारण इसका विचित्र नाम दिया गया है। नागेश भट्ट ने इसके स्वतत्र अलकारत्व का खण्डन करके इसका विषम के अतगत अतर्भाव किया है। परतु आदि आचाय रुय्यक (पृ० १६८) एव उत्तर आचाय जगन्नाथ (पृ० ६०९) दोनो ही विचित्र को स्वतन्त्र अलकार सिद्ध करते हैं और विषम म अतर्भाव का विरोध करते हैं। जगन्नाथ के अनुसार—

(क) विषम म व्यक्ति के प्रयत्न का वणन नही होता परन्तु विचित्र म अभीष्ट के विरुद्ध व्यक्ति के प्रयत्न का वणन होता है —

विषम पुरुषकृतरनपक्षणात।

(ख) विषम म काय एव कारण की विचित्रता के आधार पर भेदनिरूपण होता है विचित्र म विपरीत फल की प्राप्ति के प्रयत्न का वणन होता है —

काय कारण गुणवलक्षण्यनव तदभेदनिरूपणाच्च।

६१ मालादीपक

रुय्यक

दीपक अलकार का वणन तो भरत से प्रारम्भ हो गया था और दीपक की माला का प्रसग दण्डी म भी आ गया है, परतु रुय्यक ने मालादीपक को दीपक अलकार से दूर कारणमाला एव एकावली के तत्काल पश्चात रखकर उसको कारणमाला की परम्परा का स्वतत्र अलकारत्व प्रदान किया। कारणमाला का लक्षण है —

पूवस्य पूवस्योत्तरोत्तर हेतुत्व कारणमाला।

इसी क समानातर मालादीपक का लक्षण है —

पूवस्य पूवस्योत्तरोत्तर गुणावहत्वे मालादीपकम्।

अलकारा क नामा के अतिरिक्त दोनो लक्षणा म हेतुत्वे और गुणावहत्व का ही अतर है। एकावली और मालादीपक की समानातरता तो रुय्यक न स्वयमव अपनी वत्ति म स्पष्ट की है —

'उत्तरोत्तरस्य पूव पूव प्रत्युत्कर्षहेतुत्वे एकावली। पूवस्य पूवस्योत्तरोत्तरोत्कर्षनिबन्धत्वे तु मालादीपकम। (पृ० १७८)

जयरथ ने अपनी टीका म मालादीपक के स्वतत्र अलकारत्व एव कारणमाला एकावली परम्परा के महत्व को और भी अधिक स्पष्ट किया है —

मालाशब्दनात्र शृखला लक्ष्यत। तस्या एवोपक्रान्तत्वात। न चात्र मालोपमावत मालाशब्दो नेय। एकस्य उपमेयस्य बहूपमानोपादानाभावात। अत ह्यौपम्यमत्र नास्ति। अत एवास्य दीपक भेदत्व न वाच्यम्। औपम्यजीवित हि तत। प्राच्य पुनरेतद दीपकमालानु

गुण्यात तदनन्तर लक्षितम। शृखलात्वेन[1] तु विशिष्टमस्य चारुत्वमितीह लक्षण युक्तम्।" (पृ० १७८ ९)

जयदेव

'चन्द्रालोक' मे रुय्यक के मत को सरल भाषा म कहा गया है कि दीपक और एकावली के योग से जो सौन्दय उत्पन्न होता है उसको मालादीपक कहते हैं —

दीपकैकावलीयोगात मालादीपकमुच्यते ।
स्मरेण हृदये तस्यास्तेन त्वयि कृता स्थिति ॥८९॥

विश्वनाथ

साहित्यदपणकार न कारणमाला और एकावली के बीच म मालादीपक का वणन किया है। लक्षण भिन्न शब्दावली मे है —

धर्मिणामेकधर्मेण सम्बन्धो यद्यथोत्तरम् ॥७७॥

साहित्यदपण के लक्षण म अलकार-सवस्व के लक्षण की छाया स्पष्ट झलकती है।

अप्पय्यदीक्षित

'कुवलयानन्द' म लक्षण-उदाहरण यथावत 'चन्द्रालोक' से आया है। साथ ही रुय्यक के उदाहरण को दूसरे उदाहरण के रूप म रखकर उसम लक्षण का समन्वय भी कर दिया गया है (पृ० १२६ ७)

हिन्दी के आचाय

केशवदास न दण्डी के अनुसार दीपक के एक भेद के रूप म मालादीपक को लिखा है। परन्तु देवकवि न प्राचार्यों के अनुसार 'मालादीपक दीपक' एकावली प्रकार (शब्द रसायन, प० १७९) मानते हैं।

दासकवि न मालादीपक को दीपक का भेद भी माना है, परन्तु एकावली आदि के साथ दीपक मालादीपक का वणन किया है। लक्षण नव्याचार्यों के अनुसार ही है —

दीपक एकावलि मिले मालादीपक जानि।
सतसगति सगति-सुमति, मति गति गति सुखदानि ॥१८।४२॥

कन्हैयालाल पोद्दार न दीपक के प्रत्येक भेद को अलग अलकार मानकर दीपक कारक-दीपक मालादीपक, आवत्तिदीपक का एक साथ क्रम से वणन किया है। साथ ही लक्षण नव्याचार्यों के समान लिखा है और यह स्पष्ट कर दिया है कि पूर्वोक्त दीपक की भाति प्रस्तुत अप्रस्तुत भाव नहीं रखता। (प० २१६) रामदहिन मिश्र का मालादीपक वणन अपूण एव अस्पष्ट है। (प० ३७८)

---

१ रुय्यक की वत्ति है— मालात्वेन चारुत्वविशेषमाश्रित्य दीपकप्रस्तावोल्लघनेनेह लक्षण कृतम। ((पृ १७६)

उपसंहार

प्राच्यों ने मालादीपक नाम से दीपक भेद की चर्चा की है। परन्तु रुय्यक ने मालादीपक की स्वतन्त्र अलंकार के रूप में कल्पना की और इसका प्रतिपादन दीपक के अन्तर्गत नहीं, कारण माला एकावली के प्रसंग में किया। उत्तर आचार्यों ने इस नवीनता का अनुसरण किया यहां तक कि जयदेव ने तो 'दीपकैकावलीयोग' को ही मालादीपक का लक्षण माना।[1] हिन्दी के पहले आचार्य जयदेव के साथ सहमति व्यक्त करते हैं, पीछे के आचार्य विश्वनाथ से अधिक प्रभावित होने के कारण प्राच्य और नव्य स्थितियों में समझौता करते हुए दिखलाई पड़ते हैं।

मालादीपक में प्रस्तुत अप्रस्तुत भाव (सादृश्य सम्पर्काभावात्) नहीं होता जो दीपक अलंकार का आधार है केवल दीपक-न्याय से उत्तरोत्तर के प्रति कथन होता है। दीपक-न्याय के कारण ही इसका नाम मालादीपक है। इस अलंकार में प्राच्यों ने दीपकत्व पर अधिक बल दिया है और नव्यों ने मालात्व पर। नवीन विचार से यह मानना उचित है कि 'मालादीपक में माला शब्द एक विशेष अर्थ का द्योतक होता है। इसका प्रयोग उसी अर्थ में नहीं होता जैसाकि मालोपमा का मालारूपक में होता है।'[2]

जगन्नाथ ने मालादीपक के विषय में दोनों मतों का समन्वय करने का प्रयत्न किया है—

'उत्तरोत्तरस्मिन् पूर्वपूर्वस्य उपकारकताया मालादीपकम्। एतच्च प्राचामनुरोधाद् अस्माभिरिहोदाहृतम्। वस्तुतस्त्वेतद्दीपकमेव न शक्यं वक्तुम् सादृश्यसम्पर्काभावात्। किं त्वेकावलीप्रभेद इति वक्ष्यते। (पृ० ४३७ ८)

६२ अर्थापत्ति

रुय्यक

मीमांसा दर्शन के अनुसार अर्थापत्ति एक प्रमाण है। पीनो देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते वाक्य को सुनकर श्रोता स्वयं कल्पना कर लेता है कि, पीनो देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते रात्रौ भुङ्क्ते। रात्रौ भुङ्क्ते अर्थ अर्थापत्ति प्रमाण से ग्रहण किया जाता है। आचार्यों के लिए 'अर्थापत्ति' पद और उसका अर्थ अपरिचित नहीं है। भरत ने अलंकारेतर[3] प्रसंग में अर्थापत्ति की चर्चा की है। भोज भी प्रमाणों को गिनाते हुए अर्थापत्ति की चर्चा करते हैं।[4]

अलंकार रूप में अर्थापत्ति का प्रतिपादन रुय्यक से प्रारम्भ होता है। जिस प्रकार प्रमाण को अलंकार न मानने पर भी अनुमान का अलंकार रूप में वर्णन किया गया है उसी प्रकार अर्थापत्ति का भी है। वस्तुतः यह अर्थापत्ति कविप्रतिभोत्थिता होने के कारण काव्यार्थापत्ति नाम से ज्ञात होनी चाहिए। रुय्यक ने अर्थापत्ति का लक्षण दिया है अनुमान के सौन्दर्य से इसके

---

१ प्रस्तुताप्रस्तुतोभयविषयत्वाभावेऽपि दीपकच्छायापत्तिमात्रेण दीपकव्यपदेशः। (कुवलयानन्द)

२ अलंकारानुशीलन पृ० २३३।

३ नाट्यशास्त्र १६ ३२।

४ सरस्वतीकण्ठाभरण पृ० १६८।

सौन्दय का अन्तर बतलाया है और इनके भेदो के उदाहरण दिये हैं। अर्थापत्ति का लक्षण है—

दण्डपूपिकयार्थान्तरापतनमर्थापत्ति ।

यदि मूषक ने दण्ड भक्षण कर लिया है तो उसमे लगा हुआ पूप[1] तो अवश्य ही खा लिया होगा—यह दण्ड-पूपिका-न्याय है इससे जो अर्थान्तर प्राप्त होता है वह अर्थापत्ति का चमत्कार है।

यह चमत्कार 'अनुमान के चमत्कार से भिन्न है। अनुमान म समवाय[2] का सम्बन्ध होता है अर्थापत्ति मे नही, दण्डभक्षण म समवाय से अपूपभक्षण निश्चित नही है—दण्डभक्षण करने पर भी अपूप का भक्षण नही भी हो सकता। दूसरा अन्तर है कि अनुमान केवल नियत सम्बन्ध म ही होता है, अर्थापत्ति के लिए यह आवश्यक नही।

अर्थापत्ति के दो भेद है—(क) प्राकरणिक स अप्राकरणिक की अर्थापत्ति (ख) अप्राकरणिक से प्राकरणिक की अर्थापत्ति। प्रथम भेद का उदाहरण है—

पशुपतिरपि तान्यहानि कृच्छादगमयद अद्रिसुतासमागमोत्क ।
कमपरमवश न विप्रकुर्यु विभुमपि त यदमी स्पृशन्ति भावा ॥

द्वितीय भेद का उदाहरण—

धृतधनुषि बाहुशालिनि शैला न नमन्ति यत्तदाश्चयम ।
रिपुसज्ञकेषु गणना क इव वराकेषु काकेषु ॥

अर्थापत्ति का चमत्कार श्लेष पर आधृत हो जाता है।

जयदेव

चन्द्रालोक मे 'अर्थापत्ति का वणन अनुमान' अलकार के तत्काल उपरान्त है। लक्षण-उदाहरण स्पष्ट एव सरल हैं—

अर्थापत्ति स्वय सिध्येत पदार्थान्तरवणनम ।
स जितस्त्वन्मुखेनेन्दु का वार्ता सरसीरुहाम ॥५।३७॥

विश्वनाथ

'साहित्य दपण' मे अर्थापत्ति का वणन अलकार सवस्व' की शब्दावली मे ही है। रुय्यक के समान विश्वनाथ ने दो भेदो का वणन किया है और अनुमान स अन्तर स्पष्ट किया है। लक्षण है—

दण्डापूपिकयान्यार्थागमोऽर्थापत्तिरिष्यते ॥

प्राकरणिक से अप्राकरणिक का उदाहरण है—

हारोऽय हरिणाक्षीणा लुठति स्तनमण्डले ।
मुक्तानामप्यवस्थय के वय स्मरकिङ्करा ॥

---

१ यथा दण्डभक्षणाद् अपूपभक्षणम् अर्थायात तद्वत् कस्यचिद अथस्य निष्पत्तौ सामर्थ्यात समानन्यायत्व लक्षणाद् यद अर्थान्तरम् आपतति सा अर्थापत्ति । (वत्ति प १६७)

२ न चेदमनुमानम्। समवायस्य सम्ब धरूपत्वाभावात्। सम्बन्ध चानुमानोत्थानात्। (वही प १६७)

अप्राकरणिक से प्राकरणिक का उदाहरण दिया—

विललाप स बाष्पगद्गदं सहजामप्यपहाय धीरताम्।
अतितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिणाम्॥

विश्वनाथ की टिप्पणी महत्त्वपूर्ण है—

'अत्र च समानन्यायस्य श्लेषमूलत्वे वैचित्र्यविशेषः यथोदाहृते हारोऽयं हरिणाक्षीणाम्। न चेदमनुमानम् समानन्यायस्य सम्बन्धरूपत्वाभावात्।' (पृ० ६५९)

अप्पय्यदीक्षित

'कुवलयानन्द' में अर्थापत्ति का मूल उदाहरण उदाहरणों में आया है परन्तु लक्षण में 'दण्डापूपिकान्याय' के स्थान पर 'कैमुत्य न्याय'[1] का प्रयोग है—

कैमुत्येनार्थसंसिद्धिः काव्यार्थापत्तिरिष्यते॥१२०॥

जगन्नाथ

'रसगंगाधर' में अर्थापत्ति के चौबीस भेदों का वर्णन है। लक्षण है— 'केनचिदर्थेन तुल्यन्यायत्वादर्थान्तरस्यापत्तिः अर्थापत्तिः।' (पृ० ६५२)

जगन्नाथ कैमुत्य से अर्थापत्ति के लक्षण का खंडन करते हैं। (पृ० ६५६)

हिन्दी के आचार्य

यहै भयो तो यह कहा यहि विधि जहाँ बखान।
बहुत भाँय पद सहित तिहि अर्थापत्ति सुजान॥ (काव्यनिर्णय)

दासकवि के अनुसार इस अलंकार का नाम 'काव्यार्थापत्ति' है। पोद्दार तथा मिश्र भी इसका 'काव्यार्थापत्ति' नाम से वर्णन करते हैं। पोद्दार के वर्णन (पृ० ३५४) पर रुय्यक का प्रभाव है मिश्र (पृ० ४१२) का वर्णन अत्यन्त सामान्य है।

उपसंहार

मीमांसा-दर्शन से अर्थापत्ति प्रमाण साहित्यशास्त्र में आकर अर्थापत्ति अथवा काव्यार्थापत्ति अलंकार बन गया। इस का आधार दण्डापूपिका-न्याय है कैमुत्य मात्र नहीं।

'अर्थापत्ति' का सौन्दर्य 'अनुमान' के चमत्कार से भिन्न है। इसके दो भेद है यद्यपि उत्तर आचार्य चौबीस भी मानते है। यदि श्लेष का आधार हो तो विशेष चमत्कार आ जाता है। यह सौन्दर्य कवि प्रतिभा पर निर्भर है अन्यथा तर्क का चमत्कार बन जायगा।

---

१ किमुत का भाव कैमुत्य है। किमुत का अर्थ है तो फिर क्या है। जब ऐसा हो गया तो फिर वह क्या है —यह कैमुत्य है।

६३ विकल्प

रुय्यक

अलकार-सवस्व' म 'अर्थापत्ति' अलकार के विवचन क पश्चात एव 'समुच्चय अलकार से तत्काल पूव, समुच्चय के प्रतिपक्षभूत' विकल्प अलकार की कल्पना है। समुच्चय में दोनो (गुण क्रिया) की युगपत स्थिति हाती है। इसके विपरीत विकल्प म तुल्यबल विरोध के अनुसार एक की स्थिति का चमत्कारी वणन होता है। लक्षण है—

तुल्यबल विरोधो विकल्प ।

अर्थात "विरुद्धयो तुल्यप्रमाण विशिष्टत्वात तुल्यबलयो एकत्र युगपत्प्राप्तौ विरुद्धत्वादेव यौगपद्यासभवे विकल्प । औपम्यगभत्वाच्चात्र चारुत्वम्।" (पृ० १९८)

औपम्य के अतिरिक्त विकल्प म श्लेषावलम्ब[2] स भी चारुत्व पाया जाता है। श्लेषावलम्ब का उदाहरण है—

भक्तिप्रह्वविलोकन प्रणयिनी नीलोत्पलस्पर्धिनी
ध्यानालम्बनता समाधिनिरतर्नीते हितप्राप्तये।
लावण्यस्य महानिधी रसिकता लक्ष्मीदशोस्तन्वती
युष्माक कुरता भवार्तिशमन नेत्रे तनुर्वा हरे ।

यहा लिगश्लेप एव वचनश्लेप ने चमत्कार म वद्धि की है।

जयदेव

चन्द्रालोक म विकल्प का वणन परिसख्या एव समुच्चय के बीच म है। लक्षण उदाहरण सामान्य एव सरल है—

विकल्पस्तुल्यबलयो विरोधश्चातुरीयुत ।
कान्ताचित्तेऽधरे वापि कुरु त्व वीतरागिताम ॥९६॥

विश्वनाथ

'साहित्यदपण म 'अलकारसवस्व के अनुकरण पर अर्थापत्ति एव समुच्चय के बीच विकल्प अलकार का वणन है। लक्षण पर रुय्यक एव जयदेव दोनो की शब्दावली का प्रभाव है—

विकल्प *तुल्यबलयो* विरोध *चातुरीयुत* ।

रुय्यक द्वारा प्रस्तुत उदाहरण नमयन्तु शिरासि धनूपि वा को देकर विश्वनाथ ने वत्ति म उसका समन्वय भी किया है—

'तुल्यबलत्व चात्र धनु शिरोनमनयो द्वयारपि स्वव्यापारे सभाव्यमानत्वात। चातुय चात्रौपम्यगभत्वेन।' (वत्ति, पृ० ३५९)

---

१ तस्मात समुच्चयप्रतिपक्षभूतो विकल्पाख्योऽलकार पूर्वैरकृतविवेकोऽत्र दर्शित इत्यवगन्तव्यम। (वत्ति पृ २००)

२ औपम्यगभत्वान्नात्र चारुत्वम् क्वचित श्लेषावलम्बनाप्यस्य दश्यते। (वत्ति पृ० १९९)

रुय्यक ने द्वितीय उदाहरण में अंतिम चरण 'युष्माकं कुरुतां भवार्तिशमनं नेत्रे तनुर्वा हरे' को उद्धृत करके 'शलपायस्तम्भन तारयम्' को मिलाया गया है। चारुत्व के अभाव में विकल्प का चारुत्व नहीं है, यथा 'दीपतारर्जित वित्त देवाय ब्राह्मणाय वा' में अलकार नहीं है (वृत्ति, पृ० ३६०)।

अप्पय्यदीक्षित

विकल्प का लक्षण पूर्व आचार्यों के अनुसार है और उदाहरण रुय्यक के प्रथम उदाहरण का ही शब्दान्तर है—

> विरोध तुल्यबलयो विकल्पालङ्कृतिमता।
> नम शिरासि चापानि नमयन्तु महीभुज ॥११४॥

दीक्षित ने एक अन्य उदाहरण भी दिया है जिसका अनुवाद हिन्दी के आचार्यों में पाया जाता है—

> पतत्यविरत वारि नृत्यन्ति च कलापिन ।
> अद्य कान्त कृतान्तो वा दुःखस्यान्त करिष्यति ॥

जगन्नाथ

'रस-गगाधर' में विकल्प का सक्षिप्त लक्षण है—

> 'विरुद्धयो पाक्षिकी प्राप्तिर्विकल्प (पृ० ६५६)

हिन्दी के आचार्य

> विकलप बिबि रिपु तुल्य-बल । (शब्दरसायन पृ० १८०)
> है विकल्प यह कै वहै यह निहच जहँ राजु।
> सत्रु-सीस कै सस्त्र निज भूमि गिराऊँ आजु ॥
>
> (काव्यनिर्णय १५ ४४)

विकल्प का वर्णन हिन्दी के आचार्यों ने प्राय अप्पय्यदीक्षित के अनुसार किया है। पोद्दार तथा मिश्र ने भी उसी परम्परा का पालन किया है।

उपसहार

रुय्यक ने समुच्चय अलकार से तत्काल पूर्व उसके प्रतिपक्षभूत[1] विकल्प अलकार की कल्पना की थी। उत्तर आचार्यों ने इसे स्वीकार किया है। औपम्यगर्भता के द्वारा लौकिक[2] विकल्प से इस कवि प्रतिभोत्थित विकल्प को अलग किया जा सकता है। रुय्यक से जगन्नाथ तक सब

---

१ अय च समुच्चयस्य प्रतिपक्षभूतो व्यतिरेक इवोपमाया। (रसगगाधर)

२ अत्र च विकल्प्यमानयोरौपम्यम् अलकारताबीजम्॥ तदाधारैव चमत्कारस्योल्लासात् अन्यथा तु विकल्पमात्रम्। (वही पृ० ६५७)

विकल्प के स्वरूप के विषय म एकमत है। नागेश न विकल्प क स्वतत्र अलकारत्व का खडन किया है और उसका अन्तर्भाव 'सन्देह अलकार मे करने का प्रयत्न किया है।

६४ भावोदय भावसधि भावशबलता

रुय्यक

रसवत्प्रय उजस्वि समाहित का एक साथ वणन करने के तत्काल पश्चात अलकार-सवस्व' म भावादय भावसधि भावशबलता का प्रतिपादन किया गया है।

पूर्वाचार्यों न इनका अलग प्रतिपादन नही किया। य ससृष्टि-सकर से भी भिन्न हैं क्योकि इनकी स्थिति असपृक्त है सपृक्त नही—

एत च पृथग् रसवदादिभ्यो भिन्नालकारा। ससृष्टि सकरयोहि सपृक्ततयालकाराणा स्थिति, तद्वैलक्षण्यप्रतिपादनमेतत। (वत्ति, पृ० २३९)

भाव की उदगमावस्था'[1] को भावोदय' कहते हैं। औत्सुक्योदय का उदाहरण है—

एकस्मिन्न छयन विपक्ष रमणी-नामग्रहे मुग्धया
सद्य कोप-परिग्रह-ग्लपितया चाटूनि कुवन्नपि।
आवेगादवधीरित प्रियतमस्तूष्णी स्थितस्तत्क्षणान
माभूत्सुप्त इवत्यमन्दवलितग्रीव पुनर्वीक्षित॥

दा विरुद्ध भावा के स्पर्धित्व स उपनिबन्ध का 'भावसन्धि'[2] कहत हैं। स्नहाख्यरतिभाव, रणोत्सुक्य भावा की भावसन्धि का उदाहरण—

वामेन नारी नयनाश्रुधारा कृपाणधारामथ दक्षिणेन।
उत्पुसयन्नकतर करण कत्तन्यमूढ सुभटो बभूव॥

भावशबलता म बहुत से भाव'[3] परस्पर मिले रहते है। वितर्क, औत्सुक्य, मति, स्मरण, शका, दय धृति, चिन्ता भावा की भावशबलता का उदाहरण—

क्वाकाय शशलक्ष्मण क्वच कुल भूयोऽपि दश्यत सा
दोषाणा प्रशमाय न श्रुतमहा कोपऽपि कान्त मुखम।
किं वक्ष्यन्त्यपकल्मषा कृतधिय स्वप्नऽपि सा दुलभा
चेत स्वास्थ्यमुपहि क खलु युवा धन्योऽधर पास्यति॥

जयदेव

चन्द्रालोक' मे रसवदादि के अनतर भावोदय आदि अलकारो की अनादरपूवक चचा ह ग्रन्थकार इनको अलकार नही मानता—

अनकारानिमान् सप्त केचिदाहुमनीषिण ॥५।११८॥

---

१ भावस्योक्तरूपस्योदय उद्गमावस्था। (पृ २३६)
२ सधि द्वयोविरुद्धयो स्पर्धित्वनोपनिबन्ध। (वही)
३ शबलता च बहूना पूवपूर्वोपमर्देनोपनिबन्ध। (वही)

विश्वनाथ

भावोदय आदि का वणन करने के साथ साहित्य-दपण-कार ने इन अलकारो के विषय म आचार्यों के तीन वर्गों की समस्या उठाई है। एक वग रसवदादि को अलकार नहीं मानता क्योंकि रस भाव आदि शब्द-अथ के उपकाय हैं उपकारक नहीं। दूसरा वग यह कहता है कि चिरतन प्रसिद्धि के कारण इनको अलकार मानना उचित है। तीसरे वग के अनुसार रसवदादि ही प्रधान अलकार है, रूपक आदि तो प्रधानतया अथ के उपकारक हैं गौणतया रस के उनको अजागल स्तनन्याय से ही अलकार कहा जाता है। विश्वनाथ ध्वनिकार के मत से यह सिद्ध करते हैं कि रसादिक जहाँ अन्य वाक्याथ म अगभूत हो वहाँ अलकार हैं। अस्तु रसवदादि भावादयादि सात को अलकार मानना उचित ही है

अप्पय्यदीक्षित

कुवलयानन्द म रसवदादिक के साथ भावोदय आदि के उदाहरण द दिये (पृ० १८६) गये हैं वर्णन नहीं किया गया, जिससे दीक्षित का इन अलकारो के प्रति उपेक्षाभाव सूचित होता है।

हिन्दी के आचार्य

दासकवि ने 'काव्यनिणय' के रसागवणन नामक चतुथ उल्लास म एव रस भाव अपराग वणन नामक पचम उल्लास म भावोदय आदि का वणन किया है। चतुथ उल्लास म रस के साथ भी भावोदय आदि का वणन है और पचम उल्लास म रसवदादि के साथ भी भावोदय आदि के लक्षण-उदाहरण है। दासकवि के अनुसार भावोदय आदि रस के भाग तो हैं ही रस के अलकार भी है—चतुथ उल्लास म रस के भाग के रूप म तथा पचम म रस के अलकार रूप म इनका वणन है। चतुथ उल्लास म इनका प्रतिपादन है—

> भाव उद सध्यौ, सबल, सान्त्यौ, भावाभास।
> रसाभास ये मुख्य कहु होत रसहि लौ दास ॥४।४४॥

पचम उल्लास का प्रतिपादन भिन्न है—

> रस भावादिक होत जह और और को अग।
> तहँ अपराग कहै कोऊ कोउ भूषन इहि ढग ॥५।१॥

अलकार प्रसग म भावोदय आदि का वणन न करने से यह सिद्ध है कि दासकवि उनको उस अथ म अलकार नही मानते जिस अथ म उपमा रूपक आदि को।

कन्हैयालाल पोद्दार मम्मट के अनुकरण पर रसवत आदि सात अलकारो (पृ० ४२४) का गुणीभूत व्यग्य के अन्तगत रखकर वणन करते हैं।

---

१ अत एव ध्वनिकारेणोक्तम्—

> प्रधानेऽयत्र वाक्यार्थे यत्राग तु रसादय।
> का य तस्मिन्नलकारो रसादिरिति मे मति ॥

उपसहार

रसवदादि के समान भावोदय आदि का प्राच्याचार्यों न अलकारत्व प्रदान नही किया, नव्याचाय इन सातो को एक साथ रखते हैं भावोदय आदि तीन को तो वणनकर्त्ता एक स्वर म ही अपनाते हैं। इन अलकारो के सम्बन्ध मे दोनो तक ठीक है जिनका समन्वय दामक वि म हो गया है। अथात य रस के रूप तो हैं ही इनको रस भाव स अलग रखन का प्रश्न उपस्थित नही होता। साथ ही य गौण भी हैं इसलिए जहाँ इनका गौणत्व है वहाँ वे अलकार मान जाते हैं। परन्तु अलकार अभिधान एक विशिष्ट सकीण अथ म प्रयुक्त होने लगा था, उस अथ म य अलकार नही है। इनका 'अलकारत्व' भी हो सकता था परन्तु ये अलकार मात्र नही हैं यहा अलकारत्व पद गौणत्व का पयाय है। इनका 'अलकार' के अन्तगत वणन नही हो सकता परन्तु इनका अलकारत्व समझा जा सकता है। रुय्यक तथा विश्वनाथ इनका अलकार रूप म वणन भी करते हैं अन्य आचार्यों म वसा उत्साह नही है।

(ग) विश्वनाथ द्वारा उद्भावित नवीन अलकार

९५ श्रुत्यनुप्रास

विश्वनाथ

साहित्यदपण के दशम परिच्छेद म शब्दालकारो का वणन करते हुए अनुप्रास सामान्य के, लाटानुप्रास विवेचन से पूव, *श्रुत्यनुप्रास तथा 'अन्त्यानुप्रास' भेदो का प्रतिपादन किया गया है।* विश्वनाथ के अनुसार 'अनुप्रास पचधा तत है। प्रथम भेद छेकानुप्रास, द्वितीय भेद वृत्यनुप्रास, एव पचम भेद लाटानुप्रास की गणना अलग-अलग की जाती है। अत ततीय भेद श्रुत्यनुप्रास *तथा चतुथ भेद अन्त्यानुप्रास को भी अलग मानना उचित है।*

श्रुत्यनुप्रास का लक्षण निम्नलिखित है—

उच्चायत्वाद यदेकत्र स्थाने तालुरदादिके।
सादश्य व्यजनस्यव श्रुत्यनुप्रास उच्यते ॥१०।५॥

सहृदयजन इस सौन्दय का अतीव श्रुतिसुखावह[1] मानते है। इसी कारण इसका नाम श्रुत्यनुप्रास है। इस लक्षण के अनुसार श्रुत्यनुप्रास का सौन्दय केवल व्यजनो की समता म है स्वरो पर विचार नही किया जाता। अनुप्रास-मात्र म स्वर की समता[2] पर विचार नही किया जाता, केवल स्वर-समता म कोई सौन्दय नही, केवल व्यजन समता म सौन्दय पाया जा सकता है। श्रुत्यनुप्रास का उदाहरण है—

दशा दग्ध मनसिज जीवयन्ति दशव या।
विरूपाक्षस्य जयिनीस्ता स्तुमो वामलोचना ॥

इस उदाहरण म तालु स्थान से उच्चरित होने वाले 'ज' 'य' की बहुलता है।

---

१ एव च सहृदयानामतीव श्रुतिसुखावहत्वान श्रुत्यनुप्रास। (वत्ति २७६)
२ स्वर मात्र-साम्य तु वचित्र्याभावान्न गणितम्। (वत्ति प २७५)

उपसहार

'श्रुत्यनुप्रास' सुनने म जितना भी मधुर हो, इसको लोकप्रियता प्राप्त न हो सकी। 'वत्यनुप्रास' का क्षेत्र व्यापक है श्रुत्यनुप्रास उस क्षेत्र को उच्चारण-स्थान तक सीमित करके कठिन बना देता है। इसलिए वत्यनुप्रास के सामान्य सौंदय के सम्मुख अथवा सहचरत्व म 'श्रुत्यनुप्रास' का सौंदय टिक न सका। कन्हैयालाल पोद्दार ने ठीक ही कहा है कि—

'किन्तु वत्यनुप्रास म स्वर सहित, स्वर रहित एव सभी प्रकार के वर्णों के साम्य को ग्रहण किया गया है। अत ये दोनो भेद भी वत्यनुप्रास के अन्तगत ही हैं न कि पृथक।" (अलकार मजरी, पृ० ७१)

श्रुत्यनुप्रास की चर्चा सरस्वती कठाभरण' म भी आई है परन्तु अव्यवस्थित सग्रह होने के कारण वहाँ प्रतिपादन की खोज व्यथ है।

८६ अन्त्यानुप्रास

विश्वनाथ

श्रुत्यनुप्रास के प्रसग म यह स्पष्ट किया जा चुका है कि अनुप्रास के भेद होने पर भी पाँचो अनुप्रासो को अलग माना गया है। यह भी कहा जा चुका है कि सामान्यत आचार्यों ने इन सौन्दय रूपो को वत्यनुप्रास ही माना है।

अन्त्यानुप्रास का लक्षण है—

> व्यजन चेद् यथावस्थ सहाद्येन स्वरेण तु।
> आवर्त्यतेऽन्त्य योजत्वाद अन्त्यानुप्रास एव तत् ॥१०।६॥

आद्य स्वर क साथ ही यदि यथावस्थ व्यजन की आवत्ति हो तो उस चमत्कार का नाम अन्त्यानुप्रास है। पद अथवा पाद क अन्त म रहन क कारण इसका नाम अन्त्यानुप्रास है। पदान्त का उदाहरण दखिए—

> मन्द हसन्त पुरन्ह वहन्त' इत्यादि।

शालिग्राम शास्त्री क अनुसार यथावस्थ कहन म यह तात्पय है कि म । यथासभव अनुस्वार विसग स्वर आदि पूववत ही रहन चाहिए। (विमला पृ० २७६)

उपसहार

जयदेव ने चन्द्रालोक म इसे 'स्फुटानुप्रास के नाम से अभिहित किया है।' (अलकारानुशीलन प० ६८)

६७ भाषासम

विश्वनाथ

श्लेष की चर्चा करते हुए भोज ने 'सरस्वती कठाभरण (प० ८४) म भाषाश्लेष के दो उदाहरण दिये हैं और अन्तिम उदाहरण की व्याख्या भी की है कि भूत-सस्कृत भाषाओ म[1] माधव को नमस्कार किया गया है। परतु सरस्वती कठाभरण अव्यवस्थित सग्रह है उससे किसी प्रतिपादन की खोज सफल नही हो सकती।

अस्तु, साहित्यदपण के दशम परिच्छेद म श्लेष से पूर्व विश्वनाथ ने 'भाषासम नामक स्वतत्र शब्दालकार का प्रतिपादन किया है। लक्षण है—

शब्दैरेकविधरेव भाषासु विविधास्वपि।
वाक्य यत्र भवत्सोऽय भाषासम इतीष्यते ॥१०।१०॥

जहा एक ही प्रकार के शब्दो से अनेक भाषाओ म वही वाक्य रहे उसे भाषासम अलकार कहते हैं। विश्वनाथ ने केवल एक उदाहरण दिया है—

मजुल मणिमजीरे कलगभीरे विहारसरसीतीरे।
विरसासि केलिकीरे किमालि धीरे च गधसारसमीरे ॥

यह श्लोक सस्कृत प्राकृत शौरसेनी प्राच्या अवन्ती नागर अपभ्रश (वत्ति प० २८२) सब भाषाओ मे एक सा ही है। इसम भाषासम अलकार है।

भाषासम' अलकार की दो विशेषताए है—'एकविध शब्द तथा यत्र वाक्य भवेत। जब अनेक भाषाओ मे वे ही (एकविध) पद रहे तब यह अलकार होता है और यदि पद भिन्न हो जाय तो भाषाश्लेष होता है। (विमला, प० २८१) यही 'भाषाश्लेष 'सरस्वती कठाभरण म है—यद्यपि अस्पष्ट है—और इसी की श्लेष के भेद के रूप म चर्चा विश्वनाथ ने की है। 'यत्र वाक्य भवेत विशेषता का स्पष्टीकरण विश्वनाथ ने वत्ति म कर दिया है कि वाक्यगत समानता के बिना वचित्र्य नही होता। अत अलकार भी नही होगा—

'सरस कइण कव्व' (=सरस। कवे काव्यम) इत्यादौ तु 'सरस इत्यत्र सस्कृत प्राकृतयो साम्येऽपि वाक्यगतत्वाभाव वैचित्र्याभावात् नायमलकार।' (पृ० २८२)

उपसहार

'भाषासम एक सौन्य विधा है परन्तु इसम प्रतिभा की अपेक्षा कौशल का चमत्कार अधिक है। इसीलिए उत्तर आचार्य इसको अपना न सके। इसके खण्डन की भी आवश्यकता न समझी गई।

---

१ भूत-सस्कृतभाषाभ्यां द्विनमस्कृत्य माधवम्।

६८ निश्चय

विश्वनाथ

सन्देह, भ्रम, उल्लेख तथा अपह्नुति के वर्णन के पश्चात् साहित्यदर्पणकार ने 'निश्चय अलंकार का प्रतिपादन किया है—

प्रकृत प्रतिषिध्य अन्यस्थापन अपह्नुति है और
अन्यत निषिध्य प्रकृतस्थापन' निश्चय है।

विश्वनाथ ने निश्चय अलंकार के लक्षण में 'पुनः' पद का प्रयोग करके यह संकेत दिया है कि उनके ध्यान में अपह्नुति के साथ निश्चय अलंकार की वैपरीत्य से तुलना रही है, लक्षण है—

अन्यन्निषिध्य प्रकृतस्थापनं निश्चयः पुनः ॥१०।३९॥

दो उदाहरण दिये गये हैं। प्रथम 'वदनमिदं न सरोजम्' आदि तथा द्वितीय 'गीतगोविन्दम्' का प्रसिद्ध पद —

हृदि बिसलताहारो नायं भुजंगमनायकः
कुवलय-दल-श्रेणी कण्ठे न सा गरलद्युतिः।
मलयजरजो नेदं भस्म प्रियारहिते मयि
प्रहर न हरभ्रान्त्यानङ्ग क्रुधा किमु धावसि ॥'

वृत्ति में विश्वनाथ ने सन्देह, भ्रम, रूपकध्वनि तथा अपह्नुति से स्वतन्त्र निश्चय अलंकार के स्वरूप की स्थापना की है—

न ह्ययं निश्चयान्तः सन्देहः। तत्र संशयनिश्चययोरेकाश्रयत्वेन अवस्थानात्। अत्र तु भ्रमरादेः संशयो नायकादेर्निश्चयः। तर्हि भ्रान्तिमानस्तु। अस्तु नाम भ्रमरादेर्भ्रान्तिः। न चेह तस्याश्चमत्कारविधायित्वम्। न च रूपकध्वनिरयम् मुखस्य कमलत्वेन अनिर्धारणात्। नाप्यपह्नुतिः, प्रस्तुतस्य अनिषेधात्। इति पृथगेवायमलंकारश्चिरन्तनोक्तालंकारेभ्यः। (पृ० १३८)

उपसंहार

निश्चय निश्चय ही एक विशेष चमत्कार है परन्तु यह भ्रम के सौन्दर्य से नितान्त विविक्त नहीं है। गीतगोविन्दम् के प्रसिद्ध उदाहरण में अनंग को भ्रान्ति हुई है और वही भ्रान्ति सौन्दर्य का आधार भी है। यदि नायिका उस भ्रान्ति का निवारण करने के लिए यथार्थ का बोध कराती है तो यह भ्रान्ति के आगे की विचार प्रक्रिया अवश्य है परन्तु इससे सौन्दर्य में वृद्धि तो नहीं होती। एक चमत्कार से बढ़कर चमत्कार ही पाठक को आकृष्ट कर सकता है पूर्व चमत्कार का यथार्थ रहस्य नहीं। अन्तु इस उदाहरण में भ्रान्तापह्नुति का चमत्कार है उसके निषेध का नहीं निषेध का निषेध उस निषेध का आवश्यक बना सकता है किसी नवीन सौन्दर्य का जनक नहीं हो पाता।

किया है। यदि, प्रतिकूलता ही अनुकूल काय का सपादन करे तो वह अनुकूल अलकार का सौंदय है। लक्षण है—

अनुकूल प्रातिकूल्यमनुकूलानुबन्धि चेत ॥१०।६८॥

एकमेव उदाहरण है—

कुपितासि यदा तन्वि निधाय करजक्षतम्।
वधान भुजपाशाभ्या कठमस्य दृढ तथा ॥

समाधि अलकार म वस्त्वन्तर क दैवात[1] आगमन मे प्रस्तुत काय सुकर बन जाता है अनुकूल म प्रतिकूलता अनुकूल काय का सपादन करती है। प्रहषण म परिश्रम क बिना वाछित[2] अथ स अधिक की प्राप्ति होती है, अनुकूल म परिश्रम क स्थान पर 'प्रतिकूलता' और अधिक प्राप्ति क स्थान पर 'अनुकूलानुबधन है। यद्यपि विश्वनाथ न वत्ति म भी इस अलकार के अन्यत्र अन्तर्भाव का खण्डन नहीं किया तथापि अनुकूल के स्वतत्र अलकारत्व को न्याय्य ठहराया है—

अस्य च विच्छित्ति विशेपस्य सवालकार विलक्षणत्वेन स्फुरणात पृथग अलकारत्वम न्याय्यम। (पृ० ३४९)

अनुकूल अलकार का वणन उत्तर आचार्यो न नही किया।

उपसहार

अनुकूल अलकार का सौदय समाधि प्रहषण, हतु आदि स भिन्न है यह ऊपर दिखाया जा चुका है। प्रतिकूलता ही अनुकूल बनकर काय का सपादन करती है। इस दष्टि स यह सौन्दय मौलिक है। चमत्कार होत हुए भी ब्रजभाषा क आचार्यों तक न इस सौदय का सम्मान नहा किया। कारण क्वल यह है कि इस सौदय की वत्त-परिधि अत्यन्त सीमित है। अलकार का महत्त्व कभी-कभी उसकी लोकप्रियता पर भी निभर होता है। आकषक होत हुए भी यदि उसकी परिधि सीमित है तो उत्तर आचाय उसको नही अपनात। जो जितने व्यापक क्षेत्र मे जितनी अधिक गहराई तक फला रहगा, उसका उतना ही महत्त्व एव उतनी ही लोकप्रियता प्राप्त होगी। यह सिद्धात जड और चेतन, व्यक्ति और वस्तु, सब पर समान रूप से सिद्ध होता है।

(घ) जगन्नाथ द्वारा उद्भावित नवीन अलकार

१०० तिरस्कार

जगन्नाथ

गुणदोष स सम्बन्धित उल्लास, अवज्ञा एव अनुज्ञा अलकारो का वणन करने के उपरान्त तथा लेश अलकार का वणन करन स पूव जगन्नाथ न तिरस्कार अलकार की कल्पना की है।

---

१ समाधि सुकरे कार्ये दैवाद वस्त्वन्तरागमात्। साहित्यदर्पण १०, ८६।

२ वाञ्छिताद् अधिक-प्राप्ति अयत्नेन प्रहषणम्। चन्द्रालोक ५ ४६।

'रस-गगाधर' का क्रम उल्लास-अवज्ञा-अनुज्ञा तिरस्कार-लेश है। जिस प्रकार 'उल्लेख का विपयय 'अवज्ञा' है उसी प्रकार अनुज्ञा' का विपयय 'तिरस्कार' है। लक्षणा की तुलना से अधिक स्पष्ट हो सकेगा—

उत्कट-गुण विशेष-लालसया दोषत्वेन प्रसिद्धस्यापि वस्तुन प्रार्थनमनुज्ञा।

दोष विशेषानुबन्धाद गुणत्वेन प्रसिद्धस्यापि द्वेषस्तिरस्कार।

अनुज्ञा म गुण विशेष की लालसा से दोष के कारण प्रसिद्ध वस्तु की इच्छा होती है तो तिरस्कार मे दोष विशेष से अनुबध से गुण के कारण प्रसिद्ध वस्तु का द्वेष होता है। एकमात्र उदाहरण है—

श्रियो मे मा सन्तु क्षणमपि च माद्यदगजघटा
मद भ्राम्यद भृ गावलि मधुर सगति सुभगा।
निमग्नाना यासु द्रविण रसपर्याकुलहृदा
सपर्यासौकय हरिचरणयोरस्तमयते॥

यहाँ पर हरिचरणभजनच्युति के भय से राज्यसुख का तिरस्कार है। लक्षण उदाहरण के अनन्तर जगन्नाथ ने ग्रन्थ से कुवलयानन्द म अनुज्ञा के प्रतिपादन एव 'तिरस्कार' के अकथन का प्रसग उठाया है—

अमु च तिरस्कारम् अलक्षयित्वा अनुज्ञा लक्षयत कुवलयानन्दकृतो विस्मरणमेव शरणम।' (पृ० ६८६)

दीक्षित ने अनुज्ञा के जो दो स्वतत्र उदाहरण दिये हैं उनम द्वितीय उदाहरण ह—

व्रजेम भवदन्तिक प्रकृतिमेत्य पैशाचिकी
किमित्यमरसपद प्रमथनाथ[1] नाथामहे।
भवदभवनदेहलीविकटतुण्डदण्डाहति
त्रुटन मुकुटकोटिभि मघवदादिभिर्भूयते॥

इस उदाहरण म किमित्यमरसपद[2] म अनुज्ञा अलकार नहीं माना जा सकता। क्योंकि अनुज्ञा म 'दोषस्याभ्यर्थना' होती है और इस उदाहरण म अमरसपद का निरादर है— किम? अत इस उदाहरण को अनुज्ञा के अन्तगत नही माना जा सकता और इस उदाहरण को जानकर अनुज्ञा के विपयय रूप अलकार की कल्पना करनी होगी। जगन्नाथ ने अनुज्ञा विपयय रूप अलकार को तिरस्कार' नाम दिया है—

अमु च तिरस्कारमलक्षयित्वाऽनुज्ञा लक्षयत कुवलयानन्दकृतो विस्मरणमेव शरणम्। अन्यथा भवदभवनदेहली' इति तदुदाहृतपद्ये किमित्यमरसपदा' इत्यशे तिरस्कारस्य स्फुरणा मापत्ते। ननु कथमनयोरलकारयो सभव ? यावता प्रार्थनमिच्छा तिरस्कारश्च द्वेष।"

---

१ वस्तुत मूल पद्य का प्रथम चरण व्रजेम भवन्तिकम है भवदभवन-देहली— तो तृतीय चरण है। यद्यपि कुछ विद्वान् इस पद्य का क्वचित् पूर्वार्धोत्तरार्धयोर्वैलोम्यन पाठ भी मानते हैं। (द० कुवलयानन्द प १५५ पादटिप्पणी सख्या २)

२ कुवलयानन्द का पाठ किमित्यमरसपद अथवा किमित्यमरसप है। (वही पादटिप्पणी सख्या ३)

उपसहार

यदि अनुना अलकार स्वीकाय है तो जगन्नाथ के तक का स्वीकार करते हुए तिरस्कार अलकार को भी स्वीकार करना होगा। 'अनुज्ञा' का क्षेत्र सीमित है उसम 'तिरस्कार' का सौदय नही आ सकता जो उस का विपयय है। जगन्नाथ से पूव अतदगुण, 'उन्मीलित आदि विपयय-जन्मा अलकार स्वीकार किये गये हैं। अस्तु, तक की दृष्टि से 'तिरस्कार अलकार का तिरस्कार नही हो सकता।

तथापि यह तथ्य है कि तिरस्कार अलकार लोकप्रिय न हो सका। रसगगाधर की प्रस्तर परिखा भी इसका कारण हो सकती है और इस अलकार का अल्प उपयोग भी यदि कुवलया नन्द मे इसका वणन होता तो उसका अनुकरण करने वाले हिंदी के आचाय इस अलकार को भी लोकप्रिय बना देते।

अष्टम अध्याय

संस्कृत के कतिपय आचार्यों द्वारा उद्भावित अलंकार

(क) जयदेव द्वारा उद्भावित नवीन अलंकार

१०१ स्फुटानुप्रास

जयदेव

चन्द्रालोक में छेक, वृत्ति तथा लाट अनुप्रास के अनन्तर स्फुटानुप्रास की कल्पना की गई है। कुछ आचार्यों का मत है कि जयदेव का स्फुटानुप्रास विश्वनाथ के श्रुत्यनुप्रास का ही एक भेद है। कुछ आचार्यों के मत से प्रतीत होता है कि बाद में यही हिंदी वालों का अन्त्यानुप्रास हो गया है।[1]

स्फुटानुप्रास का लक्षण उदाहरण है—

श्लोकस्यार्धे तदर्धे वा वर्णावृत्तिर्यदि ध्रुवा।
तदा मता मनिमता स्फुटानुप्रासता मताम् ॥५।५॥

श्लोक के पूर्वार्द्ध अथवा उत्तरार्द्ध में अथवा चरण में यदि वर्णों की निश्चित (= नियमानुसार) आवृत्ति हो तो वह स्फुटानुप्रास का सौन्दर्य है।

इस आवृत्ति का एक रूप तो यह है कि जो वर्ण श्लोक के पूर्वार्द्ध के अवसान में हो वही उत्तरार्द्ध के अवसान में भी हो। यह रूप हिंदी के अन्त्यानुप्रास अथवा तुक नाम से प्रसिद्ध एवं प्रचलित हुआ। दूसरा रूप यह कि चारों पादों के अन्त में एक वर्ण प्रयुक्त हो।

यह आवृत्ति एक अन्य दृष्टि से दो प्रकार की हो सकती है। आदि से अन्त पर्यन्त वर्णों की आवृत्ति। उपर्युक्त उदाहरण में श्लोक के उत्तर भाग में आदि से अंत तक [illegible] की आवृत्ति है। द्वितीय प्रकार है पादावसान में उसी वर्ण (अथवा उन्हीं वर्णों) का रहना। यथा ताम वर्णसमूह मनिमताम् तथा मताम् का अन्त्यवर्ण उपर्युक्त उदाहरण में आया है।

उपसंहार

फिर भी स्फुटानुप्रास लोकप्रिय नही हुआ। क्योकि इसका चमत्कार विरल है—अनुप्रास के दूसरे भेदा स विविक्त स्फुटानुप्रास का चमत्कार अयत विरल ही होगा। इसका अतर्भाव, इसके उदाहरणा का समवय, अय भेदा मे किया जा सकता है। अनुप्राम के इस प्रकार के भेद वणन मात्र हैं वनानिक भेद नही।

१०२ अर्थानुप्रास

जयदेव

स्फुटानुप्रास के पश्चात जयदेव ने 'अर्थानुप्रास की कल्पना की है। लक्षण उदाहरण निम्न लिखित है—

> उपमयोपमानादौ अर्थानुप्राम इष्यत।
>
> चदन खलु गोविद चरण द्वद्व-वदनम ॥५।६॥

यदि उपमयोपमानादि मे वर्णों की निश्चित[1] आवत्ति हो तो उस सौन्य का अर्थानुप्रास कहते हैं। अर्थात साम्यमूलक अलकारा के प्रमग म प्रस्तुत-अप्रस्तुत आदि म वणसाम्य अथानुप्रास कहलाता है। उपयुक्त उदाहरण मे उपमेय वन्दन' एव उपमान चन्दन म वर्णों की उमी क्रम स आवत्ति है।

उपसहार

अर्थानुप्राम का सौदय कृत्रिम है। अनुप्रास का सौन्य यदि अय (अर्थालकार साम्यमूलक उपमा आदि) के प्रमग म भी समवित होता हो तो इस विशेषता म चमत्कार की कोई वद्धि नही हुई। इसी कारण उत्तर आचाय अर्थानुप्रास को अलग अनुप्रास स्वीकार न कर सके। वस्तुत इस सौन्य का ममावश छेक वत्ति अथवा लाट अनुप्रास के सौन्य म हो जाता है।

१०३ उन्मीलित

जयदेव

'मीलित एव 'सामाय अलकारा का वणन करन के उपरात जयदव न इन दोना अलकारा के सौन्य के वपरीत्य मे उन्मीलित नामक अलकार की कल्पना की है। नाम से स्पष्ट है कि 'उन्मीलित तो 'मीलित अलकार का विपरीत है परतु स्वरूप स विदित होगा कि यह अलकार सामाय का भी विपरीत है।

मीलित म वद्दुमादश्य के कारण उपमान की भिन्न रूप स प्रतीति नही हाती मामाय म सादश्य के कारण उपमान उपमेय की भिन्न रूप स प्रतीति नही हाती मीलित म उपमान के रूप का उपमय के रूप म विलय हा जाता है सामाय म दोना मिलकर एक हो जाते हैं। इनक विपरीत, अत्यत सदश उपमान उपमेय म कारण क वशिष्टय स भेद की स्फूर्ति उन्मीलित का चमत्कार है। लक्षण—

---

१ वर्णावत्तिय" ध्रुवा का पूवश्लोक से अध्याहार किया जायगा।

२ मान्द्याद भेदाध्यवमाय प्राप्त कस्मान्ि हेतो भदस्फुरणे मति मीलितविरोध्युन्मीलितालकार। (पीयूषवर्षी पृ १२३)

हतो कुतोऽपि वशिष्टयात स्फूतिरुन्मीलित मतम ॥५।३५॥

कमलो के बीच म खडी हुई नायिका का मुख कमलो की काति म छिप गया—यह सामान्य अलकार है, परन्तु जब चन्द्रोदय हुआ तो कमल मुरझा गये और नायिका का मुख अम्लान होने के कारण अलग दिखाई पडने लगा—यह उन्मीलित का सौदय है।

'चन्द्रालोक' म 'सामान्य' तथा 'उन्मीलित' के क्रमश उदाहरण निम्नलिखित हैं—

पदमाकर प्रविष्टाना मुख नालक्षि सुभ्रुवाम ॥५।३४॥ (सामान्य)

लक्षितान्युदिते चन्द्रे पदमानि च मुखानि च ॥५।३५॥ (उन्मीलित)

अप्पय्यदीक्षित

'कुवलयानन्द' मे भी मीलित तथा सामान्य[1] के अनन्तर 'चन्द्रालोक' के अनुकरण पर उस शब्दावली का उपयोग[2] करके उन्मीलित का वणन है और 'चन्द्रालोक' के उदाहरण को ही यहा अपना लिया गया है। दीक्षित ने वृत्ति म उन्मीलित के स्वरूप को भी स्पष्ट किया है—

मीलितन्यायेन भेदानध्यवसाये प्राप्ते कुतोऽपि हेतो भेदस्फूर्तौ मीलितप्रतिद्वन्द्वयुन्मीलितम्।' (वृत्ति, पृ० १६५)

हिन्दी के आचार्य

देवकवि ने उन्मीलित (शब्द रसायन, पृ० १८२) का वणन किया है। दासकवि ने दीक्षित के अनुकरण पर मीलित के वपरीत्य म उन्मीलित और सामान्य के वपरीत्य म विशेष अथवा विशेषक' का वणन किया है —

जह मीलि सामान्य म कछू भद ठहराइ।
तह उनमिलित विशेष कहि बरनत सुकवि सुभाइ ॥१४।४२॥

कन्हैयालाल पोद्दार ने उन्मीलित का वणन (अलकार मजरी पृ० ३९३) चन्द्रालोक के अनुसार किया है कुवलयानन्द के अनुसार नही। रामदहिन मिश्र ने उन्मीलित का वणन मीलित के पश्चात एव विशेषक का वणन सामान्य के पश्चात (पृ० ४१७ ८) किया है। यह अप्पय्य दीक्षित का अनुकरण है।

उपसहार

'उन्मीलित अलकार की कल्पना जयदेव ने की थी अप्पय्यदीक्षित न उनका अनुकरण किया है, परन्तु जगन्नाथ स्वतत्र अलकारत्व का खडन करत हैं। मीलित के समान उन्मीलित भी हिन्दी के आचार्यों का बहुत प्रिय रहा है उन्होने इसके अनक सुन्दर उदाहरण दिये हैं।

---

१ कुवलयानन्द न उन्मीलित को सामिल कर लिया है मीलित का विपरीत मात्र और सामान्य के विपरीत नवीन विशष अलकार की कल्पना की जिस पर यथास्थान विचार किया गया है।

२ कुवलयानन्द श्लोक-सख्या १४८।

जयदेव ने मीलित' एवं 'सामान्य के अनन्तर लिखकर एवं 'उन्मीलित' का उदाहरण 'सामान्य के उदाहरण की विपरीतता में बनाकर यह संकेत दिया था कि नाम से मीलित का विपरीत होकर भी उन्मीलित मीलित-सामान्य दोनों का विपरीत है। दीक्षित जयदेव से सहमत नहीं हैं। इसलिए कुवलयानन्द में सामान्य' की विपरीतता में एक नये अलंकार 'विशेषक' की कल्पना करके 'उन्मीलित का क्षेत्र मीलित की विपरीतता तक सीमित कर दिया गया है। रीतिकाल के अनेक आचार्य दीक्षित से सहमत प्रतीत होते हैं।

विश्वनाथ ने 'उन्मीलित का वर्णन नहीं किया और जगन्नाथ ने तो इसका खंडन करके उन्मीलित विशेषक अलंकारों का अनुमान में अन्तर्भाव[1] कर दिया है।

१०४ परिकरांकुर

जयदेव

'परिकर अलंकार से प्रेरणा लेकर जयदेव ने 'परिकर के पश्चात 'परिकरांकुर' अलंकार की कल्पना की है। साभिप्राय विशेषण के प्रयोग में परिकर अलंकार है और साभिप्राय विशेष्य के प्रयोग में परिकरांकुर। लक्षण सरल एवं स्पष्ट है —

अलंकार परिकर साभिप्राय विशेषणे ॥५।३९॥
साभिप्राये विशेष्ये तु भवेत् परिकरांकुर ॥५।४०॥

परिकरांकुर का उदाहरण एकमेव तथा स्पष्ट है—

चतुर्णां पुरुषार्थानां दाता देवश्चतुर्भुज ॥५।४०॥

अप्पय्यदीक्षित

'कुवलयानन्द के परिकरांकुर के लक्षण-उदाहरण (श्लोक ६३) चन्द्रालोक से यथावत आ गये हैं। एक अन्य उदाहरण भी अन्त में लिख दिया गया है।

हिन्दी के आचार्य

जयदेव का अनुकरण दीक्षित में ही नहीं हिन्दी के समस्त कवियों में भी है विशेषत रीतिकाल के कवियों में। दासकवि ने लिखा है —

बरननीय जु विशेष है सोई साभिप्राय।
परिकर-अंकुर कहत हैं तिहि प्रवीन कविराय॥१६।३०॥

पद्माकर तथा मिश्र ने भी जयदेव-अप्पय्यदीक्षित के अनुसार इस अलंकार का वर्णन किया है।

उपसंहार

रुद्रट ने परिकर अलंकार की जब कल्पना की थी तो 'साभिप्राय विशेषण' के सन्दर्भ में की थी। 'साभिप्राय विशेषण के साथ 'साभिप्राय विशेष्य' की कल्पना अनिवार्य है। जयदेव ने

[1] अनुमानान्तर्भावेण गतार्थत्वात् अनयो अलंकारान्तरयोगात। (रस-गंगाधर पृ० ६६७)

इसीलिए इस नवीन अलकार की कल्पना की । 'परिकर' का लक्षण सीमित (विशेषण तक सीमित) होने से यह परिकराकुर अलकार आवश्यक हो जाता है। हिन्दी के सभी आचार्य इसीलिए परिकराकुर को भी स्वीकार करते हैं। सस्कृत के कुछ उत्तर आचार्य परिकराकुर को स्वतन्त्र अलकार नही मानते। नागेश ने 'परिकर' के लक्षण मे उपलक्षण द्वारा विशेष्य को भी समाविष्ट करने का मत व्यक्त किया है —

अत्र विशेषणरत्युपलक्षण विशेष्यापि। तेन साभिप्राये विशेष्येऽप्ययम्। एतेन साभिप्राये विशेष्ये परिकराकुरनामा भिन्नोऽलकार इत्यपास्तम।[1]

१०५ प्रौढोक्ति

जयदेव

अतिशयोक्ति का वर्णन करने के अनन्तर जयदेव ने प्रौढोक्ति अलकार की कल्पना की है। प्रौढोक्ति का लक्षण-उदाहरण है —

प्रौढोक्तिस्तदशक्तस्य तच्छक्तत्वावकल्पनम ।
कलिन्दजा तीररुहा श्यामला सरलद्रुमा ॥५।४७॥

अयोग्य पदार्थ को किसी कार्य के योग्य कहना प्रौढोक्ति का चमत्कार है। कालिन्दी का तीर उगने वाले वृक्षो को नीला नही बना सकता परन्तु उदाहरण मे उन सरल के नील वृक्षो को नीला बनाने मे कालिन्दी-तीर की योग्यता का कथन है।

अप्पय्यदीक्षित

कुवलयानन्द मे चन्द्रालोक' के अनुकरण पर प्रौढोक्ति का वर्णन है। लक्षण उदाहरण 'चन्द्रालोक' से स्वतन्त्र हैं —

प्रौढोक्ति रुत्कर्षाहेतौ तदधेतुत्वप्रकल्पनम।
कचा कलिन्दजा-तीर-तमाल-स्तोम मेचका ॥१२५॥

जगन्नाथ

रस-गगाधर-कार के अनुसार भी—

कस्मिश्चिदर्थे किंचिदधर्मकृतातिशय प्रतिपिपादयिषया प्रसिद्धतदधर्मवता ससर्गस्योदभावन प्रौढोक्ति। (पृ० ६७०)

पोद्दार

पोद्दार ने कुवलयानन्द की शब्दावली से ही लक्षण उदाहरण दिए हैं।

---

१ अलकारानुशीलन पृ २७८ पर उद्धृत (उद्योत पृ० ५४२)

उपसहार

'प्रौढोक्ति' का चमत्कार अतिशय का चमत्कार है। दीक्षित न वत्ति मे ठीक ही लिखा है कि "कार्यातिशयाहेतौ तदहेतुत्वप्रकल्पनम्' को 'प्रौढोक्ति' कहते हैं। इस चमत्कार का इसी हेतु अधिक प्रचार न हो सका। मम्मट-परम्परा के आचाय इस अलकार को अतिशयोक्ति (असम्बधे-सम्बधरूपा) के अतगत ही रखते हैं। (चन्द्रालोक, पौणमासी पृ० १२९ ३०)

१०६ सभावना

जयदेव

प्रौढोक्ति के पश्चात 'चन्द्रालोक' मे सभावना अलकार की कल्पना की गई है। लक्षण उदाहरण है —

सभावना यदीत्थ स्याद इत्यूहोऽन्यप्रसिद्धये।
सिक्त स्फटिककुम्भात स्थितिश्वेतीकृत जल ॥५।४८॥

किसी काय की सिद्धि के लिए यह कल्पना की जाय कि यदि ऐसा हो तो ऐसा हो सकता है। उदाहरण मे कहा गया है कि यदि श्वेत जल से मोती का सीचा जावे और फिर श्वेत रग की लता उत्पन्न हो जिस पर श्वेत रग के फूल आवें तो उनकी श्वतता से आपके यश की तुलना हो सकती है।

अप्पय्यदीक्षित

कुवलयानन्द का लक्षण तो 'चन्द्रालोक' से ही आया है, परन्तु उदाहरण भिन्न है —
यदि शेषो भवेद्वक्ता, कथिता स्युगुणास्तव ॥१२६॥

भिखारीदास

जी या होइ तौ होइ या सभावना सुजानि ॥ (काव्यनिणय, १५ २६)

उदाहरण—कुवलयानन्द के एक उदाहरण का अनुवाद है —

कस्तूरी थपि नाभि विधि बादि दई मृग मीच।
मैं विधि होउँ तौ उहि धरौं खलजीभन के बीच ॥

उपसहार

प्रौढोक्ति के समान सभावना म भी चमत्कार अतिशय का ही है। काव्यप्रकाश के अनुयायी इसको अतिशयोक्ति का ही एक भेद मानते हैं। इसी हेतु आचार्यों ने इसका स्वतन्त्र वणन प्राय नही किया।

१०७ प्रहर्षण

जयदेव

अतिशयोक्ति एव तुल्ययोगिता अलकारों के बीच 'चन्द्रालोक' म तीन नये अलकार हैं—

प्रौढोक्ति सभावना, प्रहषण तथा विपादन। प्रौढोक्ति तथा सभावना का वणन पारस्परिक अपेक्षा स है और प्रहषण तथा विपादन का पारस्परिक अपेक्षा से। 'प्रहषण तथा 'विपादन परस्पर विपरीत भी हैं। 'प्रहषण' का लक्षण-उदाहरण है —

वांछितादधिक प्राप्ति रयत्नेन प्रहषणम।
दीपमुद्योतयेत् यावत् तावदभ्युदितो रवि ॥५,४९ ५०॥

यत्न के बिना वाञ्छित अथ से अधिक प्राप्ति प्रहषण का चमत्कार है। प्रकाश का इच्छुक व्यक्ति दीपक जलाने का प्रयत्न कर रहा था कि इतने मे सूय का प्रकाश फल गया।

अप्पय्यदीक्षित

उत्कठिताथ ससिद्धि विना यत्न प्रहषणम्।
तामेव ध्यायते तस्मै निसृष्टा सव दूतिका ॥१२९॥

लक्षण म जयदेव का अनुकरण है। एक स्वतन्त्र उदाहरण के रूप मे 'गीतगोविन्द' का प्रथम पद्य लिखा गया है।

दीक्षित ने प्रहषण के दो अय भेद भी बतलाये है —

वाञ्छितादधिकाथस्य ससिद्धिश्च प्रहषणम्।
दीपमुद्योजयेत यावत तावदभ्युदिता रवि ॥१३०॥[1]
यत्नादुपायसिदध्यर्थात साक्षाल्लाभ फलस्य च।
निध्यजनौपधीमूल खनता साधितो निधि ॥१३१॥

जगन्नाथ

साक्षात तदुद्देश्यकयत्नमन्तरेणाप्यभीष्टथलाभ प्रहणम ॥

यह प्रहषण का सामाय लक्षण है। इसमे तीन भेद हैं —

(क) अकस्माद अभीप्सिताथलाभ।
(ख) वाञ्छिताथसिदध्यथ यत्ने क्रियमाणे ततोऽप्यधिकतराथलाभ।
(ग) उपायसिदध्यर्थाद यत्नात साक्षात्फलस्य लाभ। (पृ० ६७९)

भिखारीदास

अप्पय्यदीक्षित के समान ही प्रहषण क तीन भेदा का वणन है —

जतन घनी करि थाकिये वाञ्छित योंही जासु।
वाञ्छित थारी लाभ अति दवयोग तें आसु ॥१५।१९॥
जतन ढूढते वस्तु की वस्तुहि आव हाथ।
त्रिविध प्रहपन कहत है लखि-लखि कविता-नाथ ॥१५।२०॥

---

[1] यह लक्षण उदाहरण जयदेव के प्रभाव से लिखा गया है।

कन्हैयालाल पोद्दार

अलकार मजरी' म भी, 'कुवलयानन्द' के अनुसार प्रहषण के तीन भेदा का वणन है। रामदहिन मिश्र म भी इसी परम्परा का निर्वाह है।

उपसहार

प्रहषण अलकार की कल्पना जयदेव ने की थी। अप्पय्यदीक्षित स इसके तीन भद प्रारम्भ हो गये। केशवोत्तर हिन्दी आचार्यों म इसी परम्परा का पालन है।

'काव्यप्रकाश के अनुयायी प्रहषण को स्वतत्र अलकार नही मानते और समाधि अलकार के सौन्दय से पथक सौंदय 'प्रहषण मे नही देखते। उद्योतकार का मत है कि कारणान्तर के सुयोग द्वारा काय की सिद्धि 'समाधि' के अन्तगत आती है, इसके लिए स्वतन्त्र अलकार मानने की आवश्यकता नही है।

१०८ विषादन

जयदेव

प्रहषण अलकार का विपयय 'विषादन है। प्रहषण म वाछित अथ से अधिक की प्राप्ति बिना यत्न के हो जाती है विषादन म इच्छा के विरुद्ध अथ की प्राप्ति होती है। लक्षणा की तुलना से अधिक स्पष्ट हो सकगा —

वाछिताद अधिकप्राप्ति अयत्नेन प्रहषणम ॥५।४९॥

इष्यमाण विरुद्धाथ सम्प्राप्तिस्तु विषादनम ॥५।५०॥

जयदेव ने दोनो अलकारा के उदाहरण भी एक ही प्रसग के दिय हैं —

दीपकमुदयोजयत यावत् तावद अभ्युदितो रवि । (प्रहषण)

दीपकमुदयातयत यावत तावद निर्वाण एव स । (विषादन)

इस प्रकार यह स्पष्ट ह कि जयदेव की दृष्टि म प्रहषण एव विषादन अलकारो का सौन्दय परस्पर विपरीत था।

अप्पय्यदीक्षित

कुवलयानन्द म विषादन के लिए लक्षण-उदाहरण दोनो ही यथावत 'चन्द्रालोक से ले लिये गये हैं। प्रहषण के समानान्तर विषादन के भेदो की कल्पना दीक्षित ने नही की। एक अतिरिक्त उदाहरण रात्रिगमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम' भी दे दिया गया है।

जगन्नाथ

रस-गगाधर' म विषादन का लक्षण सरल एव सक्षिप्त है—

अभीष्टाथ विरुद्धलाभो विषादनम्।

विषादन का विषम स अन्तर है। विषादन म अभीष्टाथ की इच्छामात्र स ही विरुद्धलाभ

होता है, विषम म इच्छा स आगे काय तक चलकर विरुद्ध लाभ होता है। जगन्नाथ के शब्दो म—

'अस्य चाभीष्टाथलाभाथ कारणप्रयोगो तत्र न कृत ' केवलमिच्छव कृता जातश्च विरुद्धा थलाभ । यत्र त्विष्टाथ प्रयुक्तात् कारणादेव विरुद्धाथलाभ तत्र विषमम्, इष्यमाण विरुद्धाथ लाभसत्वाच्च विषादनम् ।" (पृ० ६८१)

भिखारीदास

लक्षण-उदाहरण सरल है—

सो विषाद चित चाह सों, उलटो कछु ह्वै जाइ।
सुरत-समय पिकि पापिनी, कुहूँ दियो समुझाइ ॥१५।२४॥

कन्हैयालाल पोद्दार

कुवलयानन्द' से लक्षण तथा दूसरा उदाहरण अनुवाद करके ले लिया गया है। पोद्दार ने ठीक ही लिखा है कि 'यह अलकार पूर्वोक्त प्रहषण का प्रतिद्वन्द्वी है (पृ० ३७५)। रामदहिन मिश्र म भी वही अनुकरण है।

उपसहार

जयदेव ने प्रहषण एव विषादन की कल्पना की थी। अधिकतर उत्तर आचाय इनको स्वीकार करत आय है। उद्योतकार के मत से विषादन 'विषम अलकार के अतगत है परन्तु इस स्थापना का खण्डन जगन्नाथ ने कर दिया है।

१०६ विकस्वर

जयदेव

अर्थान्तरन्यास अलकार का वणन करने के पश्चात उस सौन्दय क सन्दभ म जयदेव ने विकस्वर अलकार की कल्पना की है। अर्थान्तरन्यास म सामान्य का विशेष स अथवा विशेष का सामान्य से समथन होता है विकस्वर म सामान्य तथा विशेष दो अथ किसी विशेष अथ का समथन करत हैं। लक्षण उदाहरण है —

यस्मिन विशेष-सामान्य विशेषा स विकस्वर ।
स न जिग्य महान्तो हि दुधर्षा क्ष्माधरा इव ॥५।६९॥

इस उदाहरण म विशेष वर्ण्याथ है स न जिग्ये इसका समथन एक सामान्य अथ ' महान्तो हि दुधर्षा तथा एक दूसरा विशेष अथ क्ष्माधारा इव कर रहे है।

विशेष सामान्य विशेष' इस योग म दो प्रश्न उठते हैं।

---

१ उद्योजयेदयावत इत्यनेन तदिच्छामात्र न त तत्करणमिति विषमान्भद ।
(अलकारचन्द्रिका पृ० १५२)

(क) क्या इस सौन्दय म यही क्रम अनिवाय है ?

(ख) क्या इन तीना अर्थों मे से कोई भी वण्य हो सकता है ?

लक्षण-उदाहरण दोना पर ध्यान देने से ऐसा लगता है कि आचाय की दष्टि म यह क्रम रहा है अत यह अनिवाय है। दूसरे प्रश्न का उत्तर उदाहरण से दिया जाय तो यह होगा कि प्रथम अथ वण्य है शेष दोनो उसके समथक हैं। परन्तु एक व्याख्याकार[1] का मत है कि मध्य मे रहने वाले सामान्य अथ का दोना ओर रखे हुए विशेष अर्थों द्वारा समथन होने से इस अलकार का नाम विकस्वर पडा है, अत वर्ण्याथ मध्य म रहना चाहिए।

अप्पय्यदीक्षित

'कुवलयानन्द मे विकस्वर का लक्षण चन्द्रालोक स आया है, उदाहरण भी यथावत है केवल 'क्ष्माधरा' के स्थान पर सागरा आ गया है। वत्ति म इस सौन्दय को अधिक स्पष्ट किया गया है—

यत्र कस्यचिद् विशेषस्य समथनाथ सामान्य विन्यस्य तत्प्रसिद्धावपि अपरितुष्यता कविना तत्समथनाय पुनर्विशेषान्तरम उपमानरीत्या अर्थान्तरन्यासविधया वा विन्यस्यते तत्र विकस्वरा लकार ।' (प० १४४)

हिन्दी के आचाय

दासकवि का लक्षण अत्यन्त स्पष्ट तथा सरल है —

कहि विसष, सामान्य पुनि, कहिये बहुरि विसेष ॥८।६९॥

पोद्दार और मिश्र ने इसी परम्परा म विकस्वर का वणन किया है। रामदहिन मिश्र का लक्षण इस सौन्दय की विकसित व्याख्या करता है —

विशेष का सामान्य स समथन करके फिर सामान्य का विशेष से समथन करना विकस्वर अलकार है। (पृ० ४२९)

मिश्रजी को यह व्याख्या जयदेव के उदाहरण म खोजी जा सकती है, परन्तु सब इससे सहमत हो—यह आवश्यक नही।

उपसहार

'विकस्वर अलकार की कल्पना जयदेव ने की थी। उत्तर आचार्यों ने इसके स्वरूप म कोई विकास अथवा परिवतन नही किया। अब भी यह प्रश्न बना हुआ है कि स्वीकृत क्रम विशेष—सामान्य—विशेष म वण्य कौन माना जा सकता है। रमाव्याख्या तथा रामदहिन मिश्र के विचार इस प्रश्न पर भिन्न भिन्न हैं हम यह देख चुके हैं।

'विकस्वर' सवस्वीकृत अलकार नही है—पूर्वाचाय इस सौन्दय को भी अर्थान्तरन्यास

---

१ मध्यवृत्तिसामान्यस्य पूर्वोत्तराभ्या विशेषाभ्या स्फुटीकरणाद् विकस्वरालकार इति रमा व्याख्या । (पौर्णमासी पृ० १५०)

मानते थे। उत्तर आचार्यों म जगन्नाथ ने उपमा द्वारा समर्थित विकस्वर को अर्थान्तरन्यास क अन्तगत माना है। (अलकार मजरी, पृ० ३६७)

११० असभव

जयदेव

असभवोऽर्थनिष्पत्तौ, असभाव्यत्ववणनम्।
को वेद गोपशिशुक शैलमुत्पाटयिष्यति ॥५।७६॥

असम्भव एक साधारण अलकार है। इसकी कल्पना विरोध एव विरोधाभास के सन्दभ म की गई है। किसी काय के सम्पन्न हो जान पर उसके असम्भवत्व का वणन, असम्भव अलकार है। उदाहरण सरल है।

'कुवलयानन्द' मे 'चन्द्रालोक' के लक्षण और उदाहरण दोनो ही अपना लिये गये हैं।

हिन्दी के आचाय

दासकवि ने सरल लक्षण दिया है —

बिनु जाने ऐसो भयो, असभवै पहिचान ॥१५।२६॥
बिन जान्यो लुटि जाहिगी अबला अजुन साथ ॥१५।२८॥

कन्हैयालाल पोद्दार म जयदेव का छायानुवाद है।

उपसहार

असभव अलकार का सौन्दय मम्मट रुय्यक क 'विरोध' क अन्तगत आ जाता है। अत आचार्यों न इसको कम अपनाया है। जयदेव क लक्षण उदाहरण ही छायानुवाद, अनुकरण बन कर दूसरो म आते गये हैं।

१११ उल्लास

जयदेव

चन्द्रालोक म उल्लास अलकार की कल्पना प्रतीप अलकार के वणन के पश्चात की गई है। एक पदाथ के गुण अथवा दोष के वणन स दूसरे पदाथ के गुण अथवा दोष की प्रतीति उल्लास अलकार का चमत्कार है—

उल्लासोऽन्यमहिम्ना चेल्लोपाढ्यन्यत्र वण्यत।
तदभाग धनस्यव यन्नाश्रयति सज्जनम ॥५।१०१॥

अप्पय्यदीक्षित

कुवलयानन्द म उल्लास अलकार का विकास हुआ है। लक्षण सरल एव अधिक स्पष्ट है

एकस्य गुणदोषाभ्याम उल्लासोऽन्यस्य तौ यदि ॥१३३॥

उल्लास क चार भद हैं —

(क) कस्यचित् गुणेन अन्यस्य गुण।

(ख) कस्यचिद् दोषेण अन्यस्य गोप ।
(ग) कस्यचिद् गुणेन अन्यस्य दोष ।
(घ) कस्यचिद दोषेण अन्यस्य गुण ।

जगन्नाथ

अन्यदीय गुणदोषप्रयुक्तमन्यस्य गुणदोषयोराधानमुल्लास ।
दीक्षित के अनुसार उल्लास के चार भेदो का वणन है। (पृ० ६८२)

दासकवि

और के गुन दोष त, औरै के गुन दोष ॥१४।२॥

'कुवलयानन्द' के अनुसार चार भेदो का वणन है। अ त म दासकवि व्यावहारिक दृष्टि स सूचित करते हैं कि—

अप्रस्तुतपरसम जहँ अरु अर्थान्तरन्यास ।
तहाँ होत अनचाहूहू विविध भाति उल्लास ॥१४।१०॥

पोद्दार तथा मिश्र ने भी इसी परम्परा मे उल्लास के चार भेदा का वणन किया है।

उपसहार

उल्लास अलकार की कल्पना जयदेव न की थी, अप्पय्यदीक्षित ने इसके चार भेदा को प्रकट किया जगन्नाथ तथा हिन्दी के आचार्यों म अनुकरण ह। उद्योतकार क अनुसार उल्लास के दो भेद (गुण से दोष, तथा दोष स गुण) विषम अलकार क अन्तगत ह। जगन्नाथ का भी ध्यान इस ओर गया है—

काव्यलिगेन गतार्थोऽयम, नालकारान्तरत्वभूमिमारोहति इत्यके । 'लौकिकाथमयत्वाद अनलकार एव इत्यहर (पृ० ६८४)

११२ पूवरूप

जयदेव

तदगुण अलकार का वणन करने के पश्चात् जयदेव न पूवरूप अलकार की कल्पना की। पूवरूप एक प्रकार से 'तदगुण का विपयय है। दोनो के लक्षणो को साथ-साथ रखिए—

तद्गुण स्वगुणत्यागाद अन्यत स्वगुणोदय ॥१०२॥
पुन स्वगुणसप्राप्ति विज्ञेया पूवरूपता ॥१०३॥

तद्गुण मे अपना गुण त्याग कर पर-गुण-ग्रहण है पूवरूप मे पुन अपना रूप प्राप्त कर लेना है। उदाहरण है—

हर-कठाशुलिप्तोऽपि शेषस्त्वद यशसा सित ॥१०३॥

पूवरूप का एक दूसरा प्रकार भी है —

यद्वस्तुनोऽयथारूप तथा स्यात्पूर्वरूपता ।
दीपे निर्वापितेऽप्यासीत् काञ्चीरत्नै रहर्महः ॥१०४॥

प्रथम भेद म गुण का सवथा नाश नही था दूसरे भद म जो आवश्यक है।

अप्पय्यदीक्षित

'कुवलयानन्द' म पूवरूप क दोनो भेदो क उदाहरण 'चन्द्रालोक' स आ गय हैं परन्तु लक्षण की शब्दावली म पर्याप्त सुधार है —

पुन स्वगुणसप्राप्ति पूवरूपमुदाहृतम् ॥१४२॥
पूर्वावस्थानुवृत्तिश्च विकृते सति वस्तुनि ॥१४३॥

हिन्दी के आचार्य

दासकवि ने जयदेव दीक्षित क प्रभाव स पूवरूप के दोनो भदो का वर्णन किया है परन्तु सुगमता की दृष्टि स उनके अलग-अलग नाम मान लिय हैं—वे क्रमश स्वगुण तथा 'पूवरूप' हैं। ये दोनो नाम जयदेव क भेद-लक्षणो म विद्यमान थे। दास ने इनको अलग-अलग अलकार मान लिया है और इन दोनो क बीच म 'अतदगुन' अलकार का वणन कर दिया है। मानो तदगुण के निकट 'स्वगुण है और अतदगुण क निकट पूवरूप । दोनो के लक्षण देखिए —

पाए पूरवरूप फिरि, स्वगुन सुमति कहि देत ॥१४।२८॥
पुरुवरूप गुन नहिं मिट, भए मिटन क हेत ॥१४।३२॥

पोद्दार ने पूवरूप का खण्डन किया है और रामदहिन मिश्र ने चर्चा ही नही की।

उपसहार

पूवरूप की कल्पना जयदेव ने की थी और उसके दो भेद बतलाय थे अप्पय्यदीक्षित तथा भिखारीदास ने उनका अनुकरण किया है। काव्यप्रकाश के अनुयायी पूवरूप को तदगुण म विलीन कर देते है (अलकार मजरी पृ० ३८६)। भिखारीदास ने पूवरूप के दोनो भेदो को क्रमश स्वगुण तथा पूवरूप नाम देकर स्वतन्त्र अलकारत्व प्रदान कर दिया।

११३ अनुगुण

जयदेव

अतदगुण का वणन करके अनुगुण अलकार की कल्पना की है। लक्षण उदाहरण है—

प्राक्सिद्ध स्वगुणोत्कर्षोऽनुगुण परसनिधे ।
कर्णोत्पलानि दधते कटाक्षैरपि नीलताम् ॥५।१०६॥

दूसरे की सन्निधि म अपने गुण की वृद्धि अनुगुण का चमत्कार है। उदाहरण मे कर्णोत्पल कटाक्षो के कारण और भी नीले लगते है।

अप्पय्यदीक्षित

चन्द्रालोक' के लक्षण-उदाहरण यथावत 'कुवलयानन्द म आ गये हैं, केवल कटाक्षैरपि

नीलताम् के स्थान पर 'कटाक्षैरति नीललाम' पाठ हो गया है।

दासकवि

अनुगुन सगति तें जहा पूरन गुन सरसाइ ।
नील सरोज कटाछ लहि अधिक नील ह्व जाइ ॥१८।३६॥

पाद्दार का वणन 'चन्द्रालोक' के अनुसार है। रामदहिन मिश्र ने अनुगुण का वणन नही किया।

उपसहार

'अनुगुण की कल्पना जयदेव ने की थी। अप्पय्यदीक्षित तथा भिखारीदास न जयदेव का अनुकरण किया। हिन्दी के अनक आचाय भी उसी परम्परा मे चले।

'काव्यप्रकाश के अनुयायी अनुगुण को स्वतन्त्र अलकारत्व प्रदान नही करत। प्रत्युत इसका अन्तर्भाव तदगुण म कर दते है। परन्तु कन्हैयालाल पोद्दार इस अन्तभाव का खण्डन करते है—

'उद्योतकार ने इसका तदगुण के अन्तगत बनाया है। किन्तु तदगुण म गुण शब्द का प्रयोग वण (रग) के अथ म है और अनुगुण म 'गुण का प्रयोग इस अथ मे नही। अत यह तदगुण के अन्तगत नही माना जा सकता। (पृ० ३९०)

११४ अवज्ञा

जयदेव

उल्लास अलकार के साथ तदगुण, पूवरूप अतदगुण अनुगुण का वणन करने के पश्चात जयदेव ने अवज्ञा अलकार की कल्पना की है। किसी एक के गुण अथवा दोष से अन्य को हानि अथवा लाभ न हो तो वह अवज्ञा का चमत्कार है। लक्षण उदाहरण देखिए —

अवज्ञा वण्यते वस्तु गुणदोषाक्षम यदि।
म्लायन्ति यदि पदमानि का हानिरमृतद्युत ॥५।१०७॥

अप्पय्यदीक्षित

'कुवलयानन्द मे अवज्ञा का वणन उल्लास के वणन के तत्काल पश्चात है। जयदेव के उदाहरण के पूव दीक्षित ने अपने लक्षण-उदाहरण रखे है—

ताभ्या तौ यदि न स्यातामवज्ञालकृतिस्तु सा।
स्वल्पमेवाम्बु लभते प्रस्थ प्राप्यापि सागरम ॥१३६॥

जगन्नाथ

रस-गगाधर म न केवल उल्लास के पश्चात प्रत्युत उल्लास के विपयय रूप म अवज्ञा अलकार का वणन किया गया है। लक्षण है —

तद्विपययोऽवज्ञा।

जगन्नाथ न इनके 'शाब्द' तथा 'आथ' रूप भी बतलाय हैं और यह भी कह दिया है कि कुछ लोग यह मानते हैं कि अवज्ञा अलग अलकार नहीं है, विशेषोक्ति का ही रूप मात्र है—

'विशेषोक्त्यैव गतार्थत्वाद् अवज्ञा नालकारान्तरमित्यपि वदन्ति।

भिखारीदास

दासकवि ने उल्लास के समानान्तर अवज्ञा के भी चार भेद बतलाये हैं और उनके लक्षण उदाहरण दिये हैं—

(क) औरै के गुन और का गुन न, अवज्ञा गाइ ॥१४।१२॥
(ख) औरै दोष न और के दोष, अवज्ञा साउ ॥१४।१४॥
(ग) जहाँ दोष तें गुन नहीं, यहौ अवज्ञा दास ॥१४।१६॥
(घ) जहँ गुन तें दोषौ नहीं यहौ अवज्ञा बेस ॥१४।१८॥

कन्हैयालाल पोद्दार

अलकार मजरी तथा काव्यदपण म अवज्ञा के दो-दो भेदा का वणन है—गुण से गुण का न होना, दोष से दोषी न हो। अवज्ञा का वणन 'उल्लास क विपरीत क रूप म किया गया है।

उपसहार

अवज्ञा की कल्पना जयदेव न उल्लास' के वपरीत्य म की थी। जयदेव उल्लास एव तद विपरीत अवज्ञा अलकारो क उद्भावक है। कुछ आचाय अवज्ञा को विशषोक्ति का भेद मात्र मानत है, स्वतन्त्र अलकार नही।

जयदेव म अवज्ञा क दो भेदा के बीज थे जो आगे चलकर स्पष्ट भी हो गये। जगन्नाथ ने शाब्द तथा 'आथ' रूप भी अवज्ञा के माने हैं। दासकवि उल्लास क समानान्तर अवज्ञा के चार भेदो का वणन करत है।

११५ भाविकच्छवि

जयदेव

चन्द्रालोक म भाविक के समानान्तर एक भाविकच्छवि अलकार की कल्पना है। भाविक मे काल के व्यवधान को दूर कर भूत एव भावी पदार्थों का प्रत्यक्षवत् चित्रण किया जाता है। भाविकच्छवि' म देश के व्यवधान को दूरकर दूरस्थ पदाथ को निकट चित्रित किया जाता है। लक्षण-उदाहरण है—

देशात्मविप्रकृष्टस्य दशन भाविकच्छवि।
त्व वसन् हृदये तस्या साक्षात् पश्येपुरीक्ष्यसे ॥५।११४॥

उपसहार

यदि भाविक अलकार को स्वीकार करते हैं तो भाविकच्छवि को भी स्वीकार करना चाहिए, एक मे काल के व्यवधान को दूर किया जाता है, दूसरे मे देश के व्यवधान को। तक एव शास्त्र की दृष्टि से 'भाविकच्छवि' का कोई खडन नही कर सकता परतु मौन रहकर आचार्यों ने इस अलकार को भुला दिया। 'कुवलयानद' तक मे 'भाविकच्छवि' अलकार की चर्चा नही है और हिदी के आचाय भी इसको छोड बैठे। कारण कदाचित इस अलकार के विस्तार-क्षेत्र की अति सकुचित सीमा है।

११६ अत्युक्ति

जयदेव

उदात्त अलकार का वणन करने के पश्चात जयदेव ने उसी प्रसग म अत्युक्ति अलकार की कल्पना की है। सम्पत्ति एव चरित्र की समृद्धि का वणन उदात्त है, और गुण विशेष का अलौकिक अथवा अदभुत चित्र अत्युक्ति है। उदात्त म समन्वित चित्र है अत्युक्ति म बिखरा हुआ। अत्युक्ति का लक्षण उदाहरण दखिए—

अत्युक्ति रदभुतातथ्य शौर्यौदार्यादिवणनम।
त्वयि दातरि राजेद्र याचका कल्पशाखिन ॥५।११६॥

अप्पय्यदीक्षित

कुवलयानद म अत्युक्ति के लक्षण-उदाहरण चद्रालोक स ही ले लिये गय हैं। दीक्षित न वत्ति मे उदात्त तथा अतिशयोक्ति से अत्युक्ति का अतर भी स्पष्ट किया है—

(क) सपद्युक्तौ उदात्तालकार। शौर्याद्युक्तौ अत्युक्त्यलकार इति भेदमाहु।
(ख) इति सदसदुक्तितारतम्येनातिशयोक्त्यत्युक्त्योर्भेद। (पृ० १७८)

हिदी के आचाय

हिदी म अत्युक्ति का बडा प्रचार रहा है और सभी कवि-आचार्यों ने जयदेव के अनुसार ही अत्युक्ति का वणन किया है। दासकवि न अत्युक्ति का वणन अतिशयोक्ति-वणन क बीच म किया है। लक्षण व्यापक है—

जहा दीजिए जोग्य का अधिक जोग्य ठहराइ ॥११।१७॥

पोद्दार ने उदात्त के साथ अत्युक्ति का वणन किया है और अत म इसके स्वतत्र अलकारत्व का खडन कर दिया है (पृ० ४१६)। रामदहिन मिश्र ने अत्युक्ति का वणन किया है।

उपसहार

जयदेव ने अत्युक्ति की स्वतत्र अलकार के रूप म कल्पना की थी। दीक्षित न इसका उदात्त एव अतिशयोक्ति स अलग अलकार सिद्ध कर दिया। 'काव्यप्रकाश के अनुयायी कुवलयानद

से ठीक विपरीत सोचते हैं। हिन्दी म अत्युक्ति अत्यन्त प्रिय रहा है और इसके अनक भेदा की भी कल्पना की गई है।

(ख) अप्पय्यदीक्षित द्वारा उद्भावित नवीन अलकार

११७ प्रस्तुताकुर

अप्पय्यदीक्षित

अप्रस्तुतप्रशसा का वणन करने के उपरान्त उसी सन्दभ म अप्पय्यदीक्षित ने 'प्रस्तुताकुर' अलकार की कल्पना की है। अप्रस्तुतप्रशसा' म अप्रस्तुत के वणन म किसी प्रस्तुत का सकेत होता है यह प्रस्तुतपरक[1] अप्रस्तुत वणन है। इससे भिन्न प्रस्तुताकुर' मे प्रस्तुत के वणन म किसी अन्य प्रस्तुत का अकुर[2] रहता है।

अप्रस्तुत स प्रस्तुत का गमन—अप्रस्तुतप्रशसा।
प्रस्तुत से अप्रस्तुत का गमन—समासोक्ति।
प्रस्तुत से प्रस्तुत का गमन—प्रस्तुताकुर।
अप्रस्तुत से अप्रस्तुत का गमन— कोई अलकार नही।

'कुवलयानन्द म 'प्रस्तुताकुर का लक्षण उदाहरण है—

प्रस्तुतेन प्रस्तुतस्य द्योतने प्रस्तुताकुर ।
किं भृग ! सत्या मालत्या केतक्या कटकेदधया ॥६७॥

प्रियतम के साथ उद्यान म विहार करती हुई [नायिका की भ्रमर के प्रति यह उक्ति भ्रमर (प्रस्तुत) के प्रति है साथ ही इसम प्रियतम (प्रस्तुत) के प्रति भी उक्ति का अकुर है। इस अलकार म वर्ण्य और अवर्ण्य दोना ही साक्षात प्रस्तुत रहते है। कुछ आचाय इस प्रकार के वणन म ध्वनि का चमत्कार मानते हैं, परन्तु दीक्षित ने यह प्रतिपादित किया है कि इसमे अलकार ही ह ध्वनि नहा। (वृत्ति, पृ० ९०)

जगन्नाथ

प्रस्तुताकुर' का खडन जगन्नाथ ने जमकर किया है। उनके अनुसार अप्रस्तुतप्रशसा के नाना प्रकार हैं, उनमे एक प्रकार यह भी है कि जहां स्थल विशेष पर दोना वृत्तान्त प्रस्तुत रह उस स्थिति मे अप्रस्तुत का अथ अवर्ण्य से है—

वस्तुतस्तु प्रथमस्य अप्रस्तुतप्रशसा प्रकारस्य नानाविधत्व सभवति। यत्र च स्थलविशेष वृत्तान्तद्वयमपि प्रस्तुतसोऽप्येक। अप्रस्तुतशब्देन हि मुख्यतात्पर्य विषयीभूतार्थातिरिक्तोऽर्थो विवक्षित। स च क्वचिद अत्यन्ताप्रस्तुत क्वचित प्रस्तुतश्चेति न कोऽपि दोष। (पृ० ५६१)

कुवलयानन्द के तर्कों का खडन करते हुए व कहते हैं—

---

१ प्रस्तुतपरम अप्रस्तुतवणनम अप्रस्तुतप्रशसा। (अलकार चन्द्रिका पृ० ८२)
२ प्रस्तुतस्य अभिव्यजकत्वाद् अकुर इव अकुर इति ख्यातास्त। (वही पृ० ८८)

"एतेन 'द्वयो प्रस्तुतत्वे प्रस्तुताकुरनामा योऽलकार' इति कुवलयानन्दाद्युक्तमुपक्षणीयम। किंचिद वलक्षण्यमात्रेणव अलकारा तरताकल्पने वाग्भगीनाम आनन्त्याद अलकारानन्त्यप्रसग इत्यसकृद आवेदितत्वात। द्वयो प्रस्तुतत्वे तु ध्वनित्व निर्विवादमव। (पृ० ५४२)

भिखारीदास

दासकवि ने 'अप्रस्तुत प्रशसा और 'समासोक्ति दोनो के मध्य 'प्रस्तुताकुर' का वणन किया है। इस सौन्दय की पहिचान है—'दाऊ प्रस्तुत'[1] दासकवि ने अप्रस्तुतप्रशसा के समान प्रस्तुताकुर के भेद बनाने का प्रयत्न किया है—

(क) कारन काय दोना प्रस्तुत।
(ख) सामान्य विशेष दोना प्रस्तुत।
(ग) वण्य अवण्य दोना प्रस्तुत।

प्रथम भेद के उदाहरण रूप मे विरह को तेज (कारण), असुवा को अधिकार (काय) दोऊ बनत है। द्वितीय भेद उदाहरण रूप मे 'अग की सुकुमारता (सामान्य) पाय की ललाई (विशेष) सब प्रस्तुत है। तृतीय भेद के उदाहरण रूप मे कटि को बनबु (अवण्य) मनु को बरजिवो (वण्य) दोऊ प्रस्तुत हैं। (पृ० ११७)। यह तीसरा भेद 'कुवलयानन्द स आया है, प्रथम तथा द्वितीय स्वकीय स्थापना है।

उपसहार

प्रस्तुताकुर अप्पय्यदीक्षित की स्वकीय कल्पना है। इसका आधार 'अप्रस्तुत प्रशसा' अलकार का परिवेश है। इस अलकार का विकास व्रजभाषा म आचाय भिखारीदास ने किया। प्रस्तुताकुर' का खडन जगन्नाथ ने किया है काव्यप्रकाश रसगगाधर परम्परा के हिन्दी आचाय (कन्हैयालाल पोद्दार रामदहिन मिश्र आदि) भी उस खडन को मानकर इस अलकार का वणन नही करत। परन्तु हिन्दी के अधिकतर प्राचीन आचार्यों ने कुवलयानन्द' के आधार पर इस अलकार का वणन किया है, और प्राय सस्कृत के उस उदाहरण का अनुवाद करके ही उदाहरण रूप से रख दिया है।

११८ व्याजनिन्दा

अप्पय्यदीक्षित

'व्याजस्तुति अलकार का वणन करक, उसी सन्दभ म, दीक्षित न व्याजनिन्दा अलकार की कल्पना की है। 'व्याजस्तुति अलकार म निन्दा स स्तुति अथवा स्तुति स निन्दा का

---

[1] अप्रस्तुतप्रशसा प्रस्तुताकुर समासोक्ति तीनों के तुलनात्मक लक्षण—

अप्रस्तुत के कहत जह प्रस्तुत जान्यो जाइ ॥६॥
दाऊ प्रस्तुत वर्णिये प्रस्तुत अकुर लेख।
समासोक्ति प्रस्तुतहिं अप्रस्तुत अवरेखि ॥७॥

(काव्यनिर्णय द्वादश उल्लास)

अवगमन होता है, और व्याजनिंदा अलंकार में 'निंदा से निंदा'[1] का अवगमन है। लक्षण उदाहरण देखिए —

> निंदाया निंदया व्यक्तिः, व्याजनिंदेति गीयते।
> विधे! स निंद्यो यस्ते प्रागेवमेवाहरच्छिरः ॥७२॥

दासकवि

अधिकतर आचार्य 'व्याजनिंदा' को 'व्याजस्तुति' का ही एक रूप मानना चाहते हैं। भिखारीदास ने व्याजस्तुति के चार भेद बतलाये हैं जिसमें अंतिम भेद 'निंदा से निंदा' है—

> स्तुति निंदा व्याज कहुँ निंदा स्तुति के व्याज।
> अस्तुति अस्तुति-व्याज कहु, निंदा निंदा-सात ॥१४॥
>
> (काव्यनिर्णय, द्वादश उल्लास)

यही रामदहिन मिश्र का प्रतिपादन है। (पृ० ३९२)

उपसंहार

अप्पय्यदीक्षित ने 'व्याजनिंदा' अलंकार की कल्पना व्याजस्तुति अलंकार के सहारे की थी। परंतु यदि 'व्याजस्तुति' में ही इस सौन्दर्य का समावेश हो जाता है तो अलग अलंकार की आवश्यकता क्या है। इसी कारण उत्तर आचार्य 'व्याजनिंदा' को अलग अलंकार प्रायः नहीं मानते।

११६ अल्प

अप्पय्यदीक्षित

अधिक अलंकार का वर्णन करके उसी संदर्भ में दीक्षित ने 'अल्प' नामक अलंकार की कल्पना की थी। आधार की अपेक्षा आधेय की पृथुलता का वर्णन 'अधिक' है तो आधेय की अपेक्षा आधार की सूक्ष्मता का वर्णन 'अल्प' है। लक्षणों की तुलना से स्पष्ट हो सकता है—

> अधिकं पृथुलाधारादाधेयाधिक्य-वर्णनम् ॥९५॥
> अल्पं तु सूक्ष्मादाधेयाद् यदाधारस्य सूक्ष्मता ॥९७॥

उदाहरण में बतलाया गया है कि मणिमय अँगूठी जो विरहिणी का कंकण बन गई थी अब हाथ में जयमाला के समान लटकी रहती है—

> मणिमालोर्मिका तऽद्य करे जपवटीयते ॥९७॥

हिन्दी के आचार्य

अल्प अलंकार का वर्णन देव कवि (शब्द रसायन पृ० १८१) ने किया है। दासकवि ने दीक्षित के अनुसार ही 'अल्प' का वर्णन किया है—

---

[1] यत्रार्यनिन्द्या अन्यस्य निन्दाया अभिव्यक्तिः पर्यवस्यति सा व्याजनिंदा इतरनिन्दाभाजनं निन्दति व्यज्यते। (अलंकारचन्द्रिका पृ० ९९)

अल्प, अल्प-आधार त, सूक्षम होइ आधार।
छला छिगुनिया छोर को पहुँचनि करत बिहार ॥११।४१॥

कन्हैयालाल पोद्दार[1] तथा रामदहिन मिश्र[2] ने भी अल्प अलकार का अधिक अलकार के पश्चात सक्षिप्त वणन किया है।

उपसहार

'अल्प एक साधारण अलकार है। दीक्षित ने इसकी कल्पना 'अधिक' अलकार के वपरीत्य म की थी। हिन्दी के आचार्यों ने इसका वणन प्राय किया है और लक्षण उदाहरण दोना मे 'कुवलयानन्द का सहारा लिया है।

१२० कारकदीपक

अप्पय्यदीक्षित

समुच्चय' अलकार का वणन करके 'प्रथम समुच्चय क प्रतिद्वन्द्वी'[3] के रूप मे, 'कुवलयानन्द म कारकदीपक अलकार की कल्पना की गई है। लक्षणा की तुलना स अधिक स्पष्ट हो सकेगा—

वहूना युगपद्भावभाजा गुम्फ समुच्चय ॥११५॥
क्रमिकैकगताना तु गुम्फ कारकदीपकम ॥११७॥

कारकदीपक म बहुत सी क्रियाओ का एक कारक के द्वारा निबन्धन होता है।

जगन्नाथ

'रस-गगाधर' म कारकदीप का वणन 'दीपक अलकार के एक भेद के रूप म किया गया है इसको स्वतत्र अलकार नही माना गया—

अमुनव न्यायन अनेकासा क्रियाणाम एककारकान्वय कारकदीपकम्। यथा—
वसु दातु यशो धातु, विधातुमरिमदनम्।
त्रातु तु मादशान राजन्नतीव निपुणो भवान ॥ (रसगगाधर पृ० ४३१)

भिखारीदास

'काव्यनिणय म भी दीपक के भेद के रूप म कारकदीपक का वणन है—

एक भाँति के वचन को, काज बहुत जहँ होइ।
कारक दीपक जानिये कहैं सुमति सब कोइ ॥१८।३९॥

कन्हैयालाल पोद्दार[4] दीपक के प्रत्यक भेद को अलग अलकार मानकर उसका अलग इकाई

---

१ अलकार मजरी पृ० ३१८।
२ काव्यादर्श पृ० ४०२।
३ दीपक छायापत्तया कारकदीपक प्रथमसमुच्चय प्रतिद्वन्द्वीदम्।' (कुवलयानन्द वृत्ति पृ० १३४)
४ अलकारमजरी, पृ० २१५।

के रूप म एकत्र वणन करते हैं। रामहिन मिश्र[1] ने दीपक के एक भेद के रूप म कारकदीपक का वणन किया है।

उपसहार

'दीपक' अलकार प्रारम्भिक अलकारा म से है, क्रियादीपक एव कारकदीपक भेदा का भी उसम सकेत है। दीक्षित ने इसकी स्वतत्र अलकार के रूप म कल्पना की और इसका प्रतिपादन प्रथम समुच्चय के प्रतिद्वन्द्वी के रूप म किया। उत्तर आचाय इस विशेषता को ग्रहण न कर सके और सवत्र दीपक के साथ, कही भेद रूप से और कही स्वतत्र रूप से, कारकदीपक का वर्णन करते रहे। हिन्दी के आचार्यों म 'कारकदीपक' लोकप्रिय रहा है।

१२१ मिथ्याध्यवसिति

अप्पय्यदीक्षित

'सभावना' अलकार के वणन के पश्चात उसी सन्दभ म, कुवलयानन्दकार ने मिथ्याध्यवसिति अलकार की कल्पना की है। किसी काय की सिद्धि के लिये यह सभावना कि एसा हो तो ऐसा हो सकता है सभावना' अलकार है। 'मिथ्याध्यवसिति की सभावना विशिष्ट है। मिथ्यात्व सिद्ध करने के लिए यह मिथ्याभूत अर्थान्तर की कल्पना है यह मिथ्या को सिद्ध करने के लिए मिथ्या की सम्भावना है। लक्षण उदाहरण देखिए—

किंचिन मिथ्यात्वसिद्ध्यथ मिथ्यार्थान्तरकल्पनम।
मिथ्याध्यवसितिर्वेश्या वशयत खस्रज वहन॥१२७॥

'असम्बन्धे सबधरूपा अतिशयोक्ति से इस अलकार को मिथ्या के आधार पर अलग सिद्ध किया जा सकता है—

असबन्धे सबधरूपातिशयोक्तितो मिथ्याध्यवसिते किंचिन मिथ्यात्व सिद्ध्यथ मिथ्यार्थान्तरकल्पनात्मना विच्छित्तिविशषेण भेद। (वत्ति, १४६)

जगन्नाथ

रसगगाधर मे मिथ्याध्यवसिति के स्वतन्त्र अलकारत्व का खडन करके इसको प्रौढोक्ति के अन्तगत माना गया है—

एकस्य मिथ्यात्वसिद्धयथ मिथ्याभूतवस्त्वन्तरकल्पन मिथ्याध्यवसिति इत्याध्यमलकारान्तरमिति न वक्तव्यम प्रौढोक्त्यव गताथत्वात। यदि च मिथ्याध्यवसितिरलकारान्तर स्यात[2] सत्याध्यवसितिरपि तथा स्यात। (पृ० ६७२)

---

१ काव्यदपण पृ० ३७७।

२ वस्तुत हिन्दी के आचार्यों ने सत्याध्यवसिति को स्वतन्त्र अलकार माना है जिसका वणन यथास्थान देखा जा सकता है।

भिखारीदास

मिथ्याध्यवसाय अथवा मिथ्याध्यवसिति' का लक्षण सरल एव स्पष्ट है—

एक झुठाई सिद्धि को झूठा बरन और।
सो मिथ्याध्यवसाय है भूषन कवि सिरमौर ॥१६।१५॥

अलकार मजरी' तथा 'काव्यदपण म भी इस अलकार का वणन है।

उपसहार

मिथ्याध्यवसिति का एक विशेष चमत्कार है जो प्रौढोक्ति, निदशना, अतिशयोक्ति के चमत्कार स भिन्न है। फिर भी इसका क्षेत्र इतना सीमित है कि आचार्यों म इसकी लोकप्रियता न हो सकी। सामान्यत इस अलकार की उपेक्षा रही है।

१२२ ललित

अप्पय्यदीक्षित

'मिथ्याध्यवसिति' की कल्पना के अनतर दीक्षित ने 'ललित अलकार की कल्पना की। लक्षण-उदाहरण है—

वर्ण्ये स्याद् वण्यवृत्तान्त प्रतिबिम्बस्य वणनम्।
ललित निगत नीर सतुमेपा चिकीपति ॥१२८॥

प्रस्तुन धर्मिणि यो वणनीयो वत्तान्त तम अवणयित्वा तत्रव तत्प्रतिबिम्बरूपस्य कस्यचिद अप्रस्तुतवत्तान्तस्य वणन ललितम्।' (वत्ति पृ० १४७)

इसका सौन्दय अप्रस्तुतप्रशसा समासोक्ति निदशना आदि से भिन्न है।

जगन्नाथ

ललित अलकार की स्थापना जगन्नाथ न दीक्षित स भी अधिक की है[1] और स्वतन्त्र अलकारत्व क समस्त आक्षेपो का उत्तर दे दिया है। लक्षण है—

प्रकृतधर्मिणि प्रकृत व्यवहारानुल्लेखेन निरूप्यमाणोऽप्रकृतव्यवहारसम्बधो ललितालकार।

भिखारीदास

ललित कह्यो कछु चाहिय, कहिय तासु प्रतिबिम्ब।
दीप बारि देख्यो चहे कूर जु सूरज बिम्ब ॥१६।१७॥

कन्हैयालाल पोद्दार तथा रामदहिन मिश्र ने भी इस अलकार का वणन किया है।

उपसहार

जहा वणनीय वत्तान्त का वणन न कर उसकी छाया का वणन किया जाय, वहा ललित

---

१ रस गगाधर, पृ ६७४ स ६७८ तक।

अलकार है। इसकी कल्पना अप्पय्यदीक्षित ने की थी, जगन्नाथ ने इसकी सबल स्थापना की। 'काव्यप्रकाश' के अनुयायी इसका स्वतत्र अलकार नही मानते। हिन्दी के आचार्यों ने भी इसका वर्णन किया है। फिर भी, ललित अलकार का चमत्कार प्रभावशाली नही है, इसलिए इस अलकार को लोकप्रियता न मिल सकी।

१२३ अनुज्ञा

अप्पय्यदीक्षित

गुण-दोष के अलकारो मे 'उल्लास' और 'अवज्ञा' का वर्णन करने के अनन्तर एव 'लेश' अलकार के वर्णन से पूर्व 'कुवलयानन्द' मे 'अनुज्ञा' अलकार की कल्पना की गई है। लक्षण उदाहरण है—

दोषस्याभ्यर्थनानुज्ञा तत्रैव गुणदर्शनात।
विपद सन्तु न शश्वद यासु सकीर्त्यते हरि ॥१३७॥

जगन्नाथ

रसगगाधर' का लक्षण अधिक स्पष्ट एव सरल है—
उत्कृष्ट गुणविशेषलालसया दोषत्वेन प्रसिद्धस्यापि वस्तुन प्रार्थनमनुज्ञा। (पृ० ६८६)

भिखारीदास

देवकवि ने भी (पृ० १७८) अनुज्ञा का वर्णन किया है। दासकवि का वर्णन स्वच्छ है—
दोषहु म गुन देखिये, ताहि अनुज्ञा नाम।
भलो भयो मगभ्रम भयो मिले बीच बन स्याम ॥१४।२०॥
कन्हैयालाल पोद्दार ने अनुज्ञा का वर्णन किया है (पृ० ३८०)।

उपसहार

अनुज्ञा' अलकार की कल्पना अप्पय्यदीक्षित ने की थी। यह गुण-दोष-वर्णन के अलकारो म से है। किसी उत्कृष्ट गुण की इच्छा से दोष के लिए प्रसिद्ध वस्तु की अभिलाषा अनुज्ञा अलकार का सौन्दर्य है। क्षेत्र सीमित होने से इस सौन्दर्य विधा को लोकप्रियता प्राप्त न हो सकी।

१२४ मुद्रा

अप्पय्यदीक्षित

'मुद्रा' अलकार का सौन्दर्य दूसरे सौन्दर्य प्रकारो स भिन्न है। प्रस्तुत अर्थ म प्रयुक्त पदो द्वारा किसी विशेष सूच्य अर्थ की सूचना, मुद्रा अलकार का सौन्दर्य है। लक्षण उदाहरण देखिए—

सूच्यार्थ-सूचन मुद्रा प्रकृतार्थपर पदै।
नितम्बगुर्वी तरुणी दृग्युग्मविपुला च सा ॥१३९॥

हि दी के आचाय

देवकवि के अनुसार—

मुद्रा सज्ञा सूचना, सूच्य सुअथ विचार।

दासकवि क शब्दो म—

औरो अथ कवित्त को, सब्दो छल व्योहारु।
झलक नाम कि नामगन, औरस मुद्रा चारु ॥२०।११॥

क हयालाल पाद्दार ने भी मुद्रा अलकार का वणन किया ह।

उपसहार

मुद्रा अलकार की कल्पना 'कुवलयान द म की गइ ह। हि दी क आचार्यों न इसको अपना लिया ह। मुद्रा का सौन्दय प्रकृत अथ म प्रयुक्त पदा द्वारा किसी सूच्य अथ की सूचना म ह। सरस्वतीकठाभरण[1] म मुद्रा नामक शब्दालकार का वणन ह जिसका लक्षण ह—

साभिप्रायस्य वाक्य यद्वचसा विनिवशनम्।
मुद्रा ता मुत्प्रदायित्वात का यमुद्राविदो विदु ॥२।४०॥

इसके छह भेद बतलाये गये है। परन्तु कुवलयान द का मुद्रा अलकार उससे कुछ भिन्न है। श दाश्रित होने के कारण मुद्रा' को शब्दालकार माना जायगा।

१२५ रत्नावली

अप्पय्यदीक्षित

'मुद्रा' की कल्पना के पश्चात कुवलयान दकार न रत्नावली नामक अलकार की कल्पना की है। लक्षण-उदाहरण निम्नलिखित है—

क्रमिक प्रकृतार्थाना यास रत्नावली विदु ।
चतुरास्य पतिलक्ष्म्या सवनस्त्व महीपत ॥१४०॥

प्रसिद्धिक्रम के अनुसार प्रकृत अर्थों का वर्णन रत्नावली अलकार है।

हि दी के आचाय

क्रमी वस्तु गनि विदित जा, रचि राख्या करतार।
सो क्रम आने काव्य म, रत्नावली प्रकार ॥१८।१७॥ (काव्य निणय)

जिनका साथ कहा जाना प्रसिद्ध हो ऐस प्राकरणिक अर्थों क क्रमानुसार वणन को रत्ना वली अलकार कहते हैं।' (अलकार मजरी, पृ० ३८५)

य लक्षण कुवलयान द के ही अनुसार है।

---

१ सरस्वतीकठाभरण (बरुआ) पृ० ५६।

उपसहार

रत्नावली' अलकार की कल्पना अप्पय्यदीक्षित ने की थी। पीछे के आचार्यों ने इसकी उपेक्षा कर दी है। हिन्दी के कुछ आचार्यों ने इसका चलता हुआ वणन कर दिया है। 'रत्नावली का सौन्दय बहुत प्रभावशाली नही है। इसी कारण इसको लोकप्रियता प्राप्त न हो सकी।

१२६ विशेषक

अप्पय्यदीक्षित

मीलित एव सामान्य अलकारा का वणन करन क पश्चात कुवलयानन्दकार न उन्मीलित विशेषक अलकार द्वय का एक साथ वणन किया है। इनम 'उन्मीलित' की कल्पना जयदेव ने का थी और विशेषक का प्रतिपादन दीक्षित ने किया है।

जो सम्बन्ध मीलित उन्मीलित' का है, वही सामान्य 'विशषक' का है अर्थात इनका वपरीत्य सम्बन्ध है। सामान्य अलकार म सादश्य के कारण विशेषा नोपलक्ष्यत' और विशेषक अलकार म भेदवशिष्ट्य है। सामान्य के लक्षण की शब्दावली का विशष' पद यहाँ अलकार बनकर आ गया जिसका काय भेद है। उन्मीलित विशेषक का एक शब्दावली में लक्षण देखिए—

भेदवशिष्टययो स्फूर्तौ उन्मीलित विशेषकौ ॥१४८॥

सामान्यरीत्या विशेषास्फुरणे प्राप्त कुतश्चित कारणाद विशषस्फूर्तौ तत्प्रतिद्वन्द्वी विशषक । (कुवलयानन्द, वत्ति पृ० १६५ ६)

हिन्दी के आचाय

कुवलयानन्द के अनुकरण पर 'कान्यनिणय' म भी उन्मीलित विशेष क लक्षण एक ही साथ दिये गये है—

जहँ मीलित सामान्य म कछू भेद ठहराइ।
तहँ उनमिनित विशेषकहि बरनत सुकवि सुभाइ ॥१४।४२॥

कन्हैयालाल पोद्दार (पृ० ३९४) ने उद्योतकार के अनुकरण पर विशेषक क स्वतन्त्र अलकारत्व का खडन किया है। रामदहिन मिश्र ने इस अलकार का वणन (पृ० ४१८) किया है और कुवलयानन्द के एक पद्य का अनुवाद करके ही उदाहरण बना दिया है।

उपसहार

विशेषक साधारण अलकार है इसकी कल्पना 'सामान्य अलकार के प्रतिद्वन्द्वी क रूप म हुई थी। हिन्दी क आचार्यों म भी इस अलकार की लोकप्रियता अधिक नही है।

१२७ गूढोक्ति

अप्पय्यदीक्षित

व्याजोक्ति क वणन क अनन्तर कुवलयानन्द म गूढोक्ति अलकार की कल्पना की गयी है। लक्षण उदाहरण है—

गूढोक्तिरन्याद्देश्य चेद यदन्य प्रति कथ्यत ।
वपापेहि परक्षेत्रादायाति क्षेत्ररक्षक ॥१५४॥

य प्रति किचिद वक्तव्य तत तटस्थर्मा ज्ञायीति तदेव तदन्य कचित प्रति श्लेषेण उच्यत चेत् सा गूढोक्ति । नेयम् अप्रस्तुतप्रशसा, काय-कारणादि व्यग्यत्वाभावात् । नापि श्लेषमात्रम् अप्रकृतार्थस्य प्रकृतार्थान्वयित्वेन अविवक्षितत्वात ।" (वृत्ति, पृ० १७०)

हिन्दी के आचार्य

गूढोक्ति का वणन देव कवि ने किया है (पृ० १७९) । दासकवि का लक्षण सरल है—

अभिप्राय जुत जहँ कहिय, काहू सा कछु बात ।
तहँ गूढोक्ति बखानही कवि पडित अवदात ॥१६।१३॥

कन्हैयालाल पोद्दार ने 'अन्योद्देशक वाक्य के दूसर के प्रति कहे जान' वाल गूढोक्ति अलकार का वणन करके अन्त मे प्रदीप तथा 'उद्योत' के अनुसार इस सौन्दय को ध्वनि का विषय सिद्ध करके इसके अलकारत्व का खडन (पृ० ४०६) कर दिया है। रामदहिन मिश्र ने इसको लिखा ही नही ।

उपसहार

'गूढोक्ति' का चमत्कार अधिक प्रभावशाली नही है । इसका अन्य समान अलकारा (पर्यायोक्ति आदि) से अन्तर भी अत्यन्त सूक्ष्म है। हिन्दी के आचार्यों म भी यह अलकार अधिक लोकप्रिय नही हुआ ।

१२८ विवृतोक्ति

अप्पय्यदीक्षित

गूढोक्ति की कल्पना क साथ ही 'कुवलयानन्द मे विवृतोक्ति अलकार की कल्पना की गयी है। 'विवृतोक्ति' का सौन्दय गूढोक्ति क वपरीत्य म है दोना क उदाहरण एक ही प्रसग एव शब्दावली के है—

वपापहि परक्षेत्राद आयाति क्षेत्ररक्षक ॥१५४॥ (गूढोक्ति)
वपापहि परक्षेत्राद इति वक्ति ससूचनम ॥१५५॥ (विवृतोक्ति)

विवृतोक्ति का लक्षण है—

विवृतोक्ति श्लिष्टगुप्त कविनाविष्कृत यदि ॥१५५॥
श्लिष्टगुप्त वस्तु यथाकथचित कविना आविष्कृत केद विवृतोक्ति । (पृ० १७१)

हिन्दी के आचार्य

देवकवि ने विवृतोक्ति अलकार का सक्षिप्त वणन (पृ० १८०) किया है। दासकवि का लक्षण स्वच्छ एव सरल है—

जहाँ अथ गूढोक्ति को, मोऊ कर प्रकास।
बिव्रतोक्ति तासा कहै, सकल सुकवि-जनदास ॥१६।२०॥

क हैयालाल पोद्दार (पृ० ४०७) ने 'कुवलयानन्द' की शब्दावली म ही लक्षण लिखा है। रामदहिन मिश्र म यह अलकार नहीं है।

उपसहार

कुवलयानन्द' म गूढोक्ति के वैपरीत्य म विवृतोक्ति अलकार की कल्पना की गई है। परन्तु अत्यन्त सामान्य होने के कारण यह अलकार लोकप्रिय न हो सका।

१२६ युक्ति

अप्पय्यदीक्षित

युक्ति परातिसन्धान क्रियया ममगुप्तये।
त्वामालिखन्ती दृष्ट्वान्य धनु पौष्प करेऽलिखत ॥१५६॥

'स्वस्य मर्मगोपनाय क्रियया यत्परस्य अतिसन्धान वचन सा युक्तिरलकार।' (अलकार चन्द्रिका, पृ० १७३)

व्याजोक्तौ आकारगोपन युक्तौ तदन्यगोपनम—इति भेद। यद्वा व्याजोक्तावप्युक्त्या गोपनम इह तु क्रियया गोपनम्—इति भेद।' (वृत्ति, पृ० १७३ ४)

हिन्दी के आचाय

देवकवि ने (शब्दरसायन, पृ० १८०) युक्ति अलकार का वणन किया है। दासकवि का लक्षण है—

क्रिया चातुरी सो जहाँ कर बात को गोप।
ताहि जुक्ति भूपन कहैं, जिन्है काव्य की चोप ॥१६।१॥

कन्हैयालाल पोद्दार न व्याजोक्ति और युक्ति अलकारा का साथ-साथ कुवलयानन्द क अनुसार, वणन किया है तथा अन्त म युक्ति के स्वतन्त्र अलकारत्व का खडन करके इसको व्याजोक्ति के अन्तगत (पृ० ४०५) सिद्ध किया है। काव्यदपण म युक्ति अलकार नहीं है।

उपसहार

युक्ति का सौन्दय अत्यन्तसामान्य है और उसका समावेश अन्यत्र हो सकता है। कुवलयानन्द म इसकी कल्पना की गई थी और कुवलयानन्द' म ही आमन्त्रमालोक्य हरि— उदाहरण को *व्याजोक्ति तथा युक्ति दोना का उदाहरण'* मान लिया गया है। भोज ने' शब्दलकारो म एक 'युक्ति अलकार का वणन किया है दीक्षित का युक्ति' अलकार उससे भिन्न अर्थालकार है।

---

१ कुवलयानन्द प १६६ (व्याजोक्ति) तथा पृ० १७४ (युक्ति)।
२ सरस्वतीकठाभरण (बरुआ) पृ० ६१।

१३० लोकोक्ति

अप्पय्यदीक्षित

लोकप्रवाद की अनुकृति को लोकोक्ति कहते हैं। लक्षण-उदाहरण है—

लोकप्रवादानुकृति, लोकोक्तिरिति भण्यते।
सहस्व कतिचिन् मासान् मीलयित्वा विलोचने ॥१५७॥

हिन्दी के आचार्य

दासकवि का 'लोकोक्ति' कुवलयानन्द की छाया मात्र है—

सब्द जु कहिय लोकगति, सो लोकोक्ति प्रमान ॥१७।३४॥

कन्हैयालाल पोद्दार[1] में भी उसी परम्परा में 'लोकोक्ति' अलकार का वर्णन है।

उपसहार

लोकोक्ति लोकप्रसिद्ध चमत्कार है, और काव्य में भी इसका व्यवहार होता है। इसलिए कुवलयानन्द में इसकी अलकार रूप में कल्पना की गई थी। हिन्दी के आचार्यों ने इस सौन्दर्य को रुचि से अपनाया है।

१३१ छेकोक्ति

अप्पय्यदीक्षित

लोकोक्ति की कल्पना के अनन्तर कुवलयानन्द में लोकोक्ति के विशेष उपयोग की कल्पना 'छेकोक्ति' अलकार के नाम से की गई है। लोकोक्ति के अर्थान्तरगर्भित प्रयोग को छेकोक्ति कहते हैं। लक्षण-उदाहरण है—

छेकोक्तिर्यद्व लोकोक्ते स्यादर्थान्तरगर्भिता।
भुजग एव जानीते भुजगचरण सखे ॥१५८॥

हिन्दी के आचार्य

दासकवि ने इसी हेतु लोकोक्ति-छेकोक्ति का एक साथ वर्णन किया है—

सब्द जु कहिये लोकगति, सो लोकोक्ति प्रमान।
ताही छेकोक्त्यौ कहैं, होइ लिये उपखान॥

कन्हैयालाल पोद्दार का वर्णन कुवलयानन्द' का अनुकरण है।

उपसहार

अप्पय्यदीक्षित ने छेकोक्ति' अलकार की कल्पना की थी। यह लोकोक्ति का विशेष उपयोग

---

[1] अलंकार-मजरी पृ ४०७।

मात्र ह । इसलिए इसम प्रभावशाली चमत्कार नही है। वस्तुत 'छेकोक्ति' का वणन 'लोकोक्ति' के अतगत ही करना चाहिए, अलग नही।

१३२ निरुक्ति

अप्पय्यदीक्षित

प्रयोग के कारण प्रयुक्त नामा का विशेष अर्थान्तर[1] निरुक्ति का चमत्कार है। लक्षण उदाहरण देखिए—

निरुक्तिर्योगतो नाम्नाम याथत्वप्रकल्पनम।
ईदशश्चरितर्जाने सत्य दोषाकरो भवान ॥१६४॥

विशेष प्रयोजन के लिए यहाँ दोषाकर' का अथ 'दोष + आकर' के रूप म करना निरुक्ति अलकार का चमत्कार है।

हिन्दी के आचाय

दासकवि ने कुवलयानन्द के लक्षण उदाहरण का छायानुवाद कर दिया है—

है निरुक्ति जहँ नाम को अथ कल्पना आन।
दोषाकर ससि का कहैं, याही दाष सु जान ॥१७।३१॥

कन्हैयालाल पोद्दार ने भी (अलकार मजरी पृ० ४१६ ७) छायानुवाद की इस परम्परा का पालन किया है।

उपसहार

निरुक्ति की कल्पना अप्पय्यदीक्षित न की थी। इसका सौन्दय स्वतन्त्र तथा आकर्षक है। प्राय सभी उत्तर आचाय इसका वणन करते हैं। परन्तु क्षत्र सीमित हान क कारण इसका महत्व अधिक नही है।

१३३ प्रतिषेध

अप्पय्यदीक्षित

प्रतिषेध प्रसिद्धस्य निषधस्यानुकीर्तनम्।
न द्यूतमतत कितव ! क्रीडन निशितै शर ॥१६५॥

प्रसिद्ध निषध का अनुकीतन प्रतिषेध अलकार है।

निषिता निषेध स्वतोऽनुपयुक्त वा" अर्थान्तर गर्भीकरोति। तेन साम्यादिनाम्ना प्रति षेधनामालकार। (वृत्ति पृ० १७९)

हिन्दी के आचाय

स्वरदि न प्रतिषध अलकार का वणन किया है। नागरवि क अनुसार यह नहि यह पर

१ दोषाकार: कस्मात् कर्णाविशेषाविकारिणात् ... । (अलकारचन्द्रिका पृ० १०९)

तच्छहो, वहिय प्रतिपेधोक्ति।' कन्हैयालाल पोद्दार ने कुवलयानन्द' के अनुसार 'प्रतिपेध' का वणन किया है।

उपसहार

विशेप अथ के निमित्त किसी विषय के निपेध का कथन प्रतिपेध कहलाता है। भीमसेन ने शकुनि से कहा— यह बाणा की क्रीडा है, चौपड का खेल नही। बाणा की क्रीडा के अवसर पर उसका चौपड का खेल न होना ता सवविदित है, परन्तु इस निपेध के अनुकीतन म अर्थान्तर छिपा हुआ है—चौपड म तुम कपट चातुरी कर सकते हो, युद्ध म नही। यह चमत्कार निश्चय ही आकपक है परन्तु क्षेत्र सीमित होने के कारण इसको अधिक लोकप्रियता न मिल सकी। अलकार का यह काय शब्दशक्ति से ही चल जाता है।

१३४ विधि

अप्पय्यदीक्षित

प्रतिपेध अलकार के वपरीत्य म 'विधि' अलकार की कल्पना कुवलयानन्द म की गई है। लक्षण उदाहरण है —

सिद्धस्यव विधान यत्तमाहु, विध्यलकृतम ।
पचमोदचन काल कोकिल कोकिलोऽभवत ॥१६६॥

इस अलकार के सम्बन्ध म दीक्षित का वत्ति बडी महत्त्वपूण है —

(क) यद्यपि अनयो विधिनिपेधयो उदाहरणेपु व्यग्यानि अर्थान्तरसक्रमितवाच्यरूपाणि तथापि न ध्वनिभावास्पदानि। स्वोक्त्यव व्यग्यविशेपाविष्करणात। व्यग्याविष्करणे चालकारत्वमवति प्राक प्रस्तुताकुर प्रकरणे व्यवस्थितत्वात।

(ख) पूव बाधितो विधि प्रतिपेधो आक्षेपभेदत्वेनाक्तो। इह तु प्रसिद्धो विधि प्रतिपेधो तत्प्रतिद्वद्विनो अलकारत्वेन वर्णितो। (पृ० १८० ८१)

हिन्दी के आचाय

देवकवि ने विधि अलकार का वणन किया है। दासकवि न लिखा है—

अलकार विधि सिद्धि का फेरि कीजिय सिद्धि।
भूपति है भूपति वही, जाक नीति-समृद्धि ॥१५।५३॥

पोद्दार न (अलकार मजरी, पृ० ४२०) कुवलयानन्द का अनुवाद कर दिया है।

उपसहार

'कुवलयानन्द मे विधि का वणन प्रतिपध' के विपरीत म हुआ है। हिन्दी के आचार्यों ने उसका अनुवाद कर दिया है। 'विधि' का चमत्कार सीमित क्षेत्र म है, इसलिए यह अलकार लोकप्रिय नही है।

(ग) इतर आचार्यों द्वारा उद्भावित नवीन अलकार

१३५ वितक

भोज

'भ्रान्ति' के अनन्तर भोज ने 'वितक' नामक नवीन अलकार की कल्पना की है। 'वितक' का लक्षण है —

ऊहो वितक सन्देहनिणयान्तरधिष्ठित । (पृ० १५६)

वितक के दो भेद हैं—निणयान्त वितर्क अनिणयान्त वितक। निणयान्त के दो उपभेद तत्त्वानुपाती तथा 'अतत्त्वानुपाती' हैं और अनिणयान्त के दो उपभेद 'मिथ्या तथा 'अमिथ्या हैं।

अतत्त्वानुपाती निणयान्त वितक के उदाहरण मे कालिदास का प्रसिद्ध श्लोक 'अस्या सगविधौ प्रजापतिभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रद' दिया गया है। समन्वय मे कहा गया है— अत्र किमिद रूप निर्म्मातु यथोक्त पुराणो मुनि प्रभवत अत चन्द्रादिषु अन्यतमन प्रजापतिना भवितव्यम इत्यतत्वानुपादितत्वाद अतत्वानुपाति अय निणयान्त वितक । (पृ० १५७)

मम्मट ने इस श्लोक को ससन्देह अलकार के 'अनुक्तभद नामक भेद के उदाहरण रूप स उदधृत किया है जिस पर नागेशभट्ट का समन्वय है— अत्र उपमयभूतस्य प्रजापत उपमानभूतस्य चन्द्रादवा कस्यापि वधम्य नोक्तमिति भेदानुक्तौ सन्देहालकारोऽयम।

परन्तु भोज ने सशय अलकार केवल वहा माना ह जहाँ अतिसादश्य के कारण मन निश्चय न कर सके —

अथयोरतिसादश्याद यत्र दोलायत मन । (पृ० १९२)

निणय की ओर जाने से सन्देह समाप्त हो जायगा और वितक का प्रारम्भ हो जायगा। मम्मट का सन्देह भाज के वितक को अपने भीतर समेट लेता है।

उपसहार

भाज के अन्य नवीन अलकारा क समान ही वितक आग न चल सका। मम्मट का सन्देह जब व्यापक बनकर वितक की विशेषता को अपना एक भेद बना बठा तो वितक की सत्ता की सम्भावना न रही।

१३६ प्रत्यक्ष

भोज

सरस्वतीकण्ठाभरण म प्रत्यक्ष अनुमान आप्तवचन, उपमान अर्थापत्ति, अभाव आदि सबको अलकार मान लिया गया है। प्रत्यक्ष का लक्षण है —

प्रत्यक्षमक्षज ज्ञान मानम चाभिधीयत ।
स्वानुभूतिभव चवमुपचारण कथ्यत ॥ (पृ० १९२)

---

१ काव्यप्रकाश (काशी-सस्कृत-ग्रन्थमाला), पृ० २३४।

एक उदाहरण है —

> यात यात वदन प्रतिबिम्बे भूननासहकारसुगन्धौ ।
> स्वादुनि प्रणिहितालिनि शीते निर्ववार मधुनीन्द्रियवग ॥

अत्र मदिराश्रयाणा मुख प्रतिबिम्ब-सौगन्ध्य-स्वादुताश्रव्यत्वशत्याना दृगघ्राण रसन-श्रवण त्वगिन्द्रिय प्रत्यक्षता प्रतीयत ।

उपसहार

प्रत्यक्ष आदि प्रमाणा का प्राय काव्यशास्त्रिया न अलकार नही माना, क्योकि इनम चमत्कार नही है। काव्यादश की परम्परा म विश्वास रखन वाले विद्वान् जो स्वभावोक्ति को भी वक्रोक्ति के समान ही काव्य म महत्त्व दत हैं इन प्रमाणा का भी अलकाररूप मे वणन करते रहे है। अप्पय्यदीक्षित ने इसीलिए सौ अलकारा का वणन करन के अनन्तर और चार रस वदादि एव तीन भावादय आदि के पश्चात आठ[1] प्रमाणालकारा का परिचय मात्र दे दिया है।

प्रत्यक्षालकार[2] का कुवलयानन्द म लक्षण नही है केवल दा उदाहरण दे दिय गय हैं— एक प्रत्यक्षमात्र का दूसरा विशप दशनजन्य सशयोत्तर प्रत्यक्ष का।

भिखारीदास न भी उपेक्षाभाव से प्रमाणालकारो का वणन कर दिया है।[3] इस सम्बन्ध म कन्हैयालाल पोद्दार की टिप्पणी महत्त्वपूण है—

कुछ ग्रथा म प्रत्यक्ष, अनुमान शब्द उपमान, अर्थापत्ति अनुपलब्धि सम्भव और एतिह्य इन आठ प्रमाणा के अनुसार आठ प्रमाणालकार लिखे गय है। किन्तु न्यायशास्त्र म प्रत्यक्ष, अनुमान उपमान और शब्द ये चार और वैशेषिक दशन म प्रत्यक्ष और अनुमान दो ही प्रधान प्रमाण मान गय हैं— अन्य सब प्रमाण इनक अन्तगत मान गये हैं। हमन केवल अनुमान' अलकार ही लिखा है क्योकि अनुमान के सिवा प्रत्यक्षादि प्रमाणालकार काव्यप्रकाश आदि म नही है। वस्तुत इनम लोकोत्तर चमत्कार न हान स यहाँ भी उनको लिखकर विस्तार करना अनावश्यक समझा है (अलकार मजरी पृ० ४२४)

१३७ आप्तवचन

भोज

> यदाप्तवचन तद्धि ज्ञेयमागमसज्ञया ।
> उत्तम मध्यम चाथ जघन्य चेति तत्त्रिधा॥ (पृ० १६५)

प्रत्यक भेद के दो दो उपभेदा का वणन है। उत्तम आप्तवचन के निषेध रूप उपभद का उदाहरण कालिदास के कुमारसम्भव स लिया गया है—

> निवार्यतामालि किमप्यय वटु, पुनर्विवक्षु स्फुरितोत्तराधर ।
> न केवल यो महतोऽपभाषत शणोति तस्मादपि य स पापभाक ॥

---

१ अष्टौ प्रमाणालकारा प्रत्यक्षप्रमुखा क्रमात । १७१।
२ कुवलयानन्द पृ० १८७ ।
३ काव्यनिणय पृ० १६०१।

उपसहार

प्रमाणालकारो का सग्रह[1] अप्पय्यदीक्षित ने कर दिया है। 'आप्तवचन' अथवा 'शब्दप्रमाण' का 'कुवलयानन्द' मे लक्षण नही है, केवल एक उदाहरण (पृ० १८९) कुमारसम्भव से गृहीत कर लिया गया है।

१३८ उपमान

भोज

सदृशात् सदृशज्ञानम् उपमान द्विधेह तत्।
स्यादेकम् अनुभूतेऽर्थे अननुभूते द्वितीयकम्॥ (पृ० १६६)

उपमान का एक भेद अनुभूतविषय उपमान मीमासको के अनुसार,[2] और दूसरा भेद अननुभूत विषय उपमान नैयायिको के अनुसार[3] माना गया है।

अननुभूत विषय उपमान का उदाहरण है—

ता रोहिणी विजानीहि ज्योतिषामत्र मण्डले।
समूहस्तारकाणा य शकटाकारमाश्रित॥

उपसहार

प्रमाणालकारो को 'काव्यप्रकाश' की परम्परा मे विश्वास रखने वाले आचार्यों ने नही लिखा। अप्पय्यदीक्षित ने अपनी पुस्तक के अन्त मे उपेक्षाभाव से प्रमाणालकारो का परिचय दिया है। उपमानालकार का कुवलयानन्द मे लक्षण नही दिया गया दो उदाहरण मात्र (पृ० १८८) है जिनमे एक 'ता रोहिणी विजानीहि' सरस्वती कण्ठाभरण से ही लिया गया है।

१३९ अभाव

भोज

असत्ता या पदार्थानाम्, अभाव सोऽभिधीयते।
प्रागभावादिभेदेन स षड्विध इहेष्यते॥ (पृ० १७०)

सामर्थ्याभाव का उदाहरण 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' से लिया गया है —

मानुषीषु कथ वा स्यात् अस्य रूपस्य सम्भव।
न प्रभातरल ज्योति, उदेति वसुधातले॥

---

१ भोज ने अलकार रूप मे सभी प्रमाणो का वर्णन किया है इनमें से 'अनुमान प्राय मान्य रहा है अर्थापत्ति को काव्यार्थापत्ति रूप मे आगे स्वीकृति मिली शेष उपेक्षित ही रहे'। इस विवेचन मे केवल उन्ही प्रमाणो को लिया गया है जो प्रामाणिक न बन सके इसलिए अनुमान अर्थापत्ति का वर्णन यथास्थान उनके अलकार पद प्राप्त करने पर किया गया है इस प्रसग मे नही।

२ तस्मिन् अनुभूतविषय नामोपमान मीमासका वर्णयन्ति। (पृ० १६६)

३ तस्मिन् अननुभूतविषयम् उपमान नैयायिका समामनन्ति। (वही)

उपसहार

अभाव का वणन सरस्वती कठाभरण म न्यायशास्त्र के आधार पर किया गया है। प्रमाणालकारो के समान इसको लोकप्रियता प्राप्त न हो सकी। चमत्कार का अभाव होने से भी 'अभाव, अलकारत्व का सवथा अधिकारी न बन सका।

१४० समाधि

भोज

समाधिमन्यधर्माणाम अन्यत्रारोपण विदु।
निरुद्भेदोऽथ सादभेद स द्विधा परिपठ्यत॥४६॥ (पृ० १९५)

अन्य धर्मों का अन्यत्र आरोप समाधि अलकार का सौदय है। इसके दो भेद निरदभेद' तथा सादभेद हैं। प्राकृत के दो उदाहरणो मे स एक म दिनकर दिनलक्ष्मी प्रतीचीना समारोपित नायक-नायिका प्रतिनायिका धर्म्माणाम दूरप्रतिबद्धराग इत्यादिभि श्लिष्टपदैरनुद्भेद है। दूसर म प्रियतमव्यलीकासहिष्णु कापि कामिनी हिमानीप्लुष्टा कमलिनीमालोक्य तस्याम आत्म धर्म्मान प्रिये च सूयधर्म्मान आरोपयति। (पृ० १९६)

इन उदाहरणो और उनके समन्वय स विदित होता है कि जिस सौदय को 'समासोक्ति कहा जाता है वही भोज का समाधि अलकार है।

इस समाधि क एक रूप को मीलित[1] भी कहत हैं जिसके दो भेद है—

अन्य धर्मों का अन्य वस्तु म अध्यास अन्य धर्मियो का अन्य वस्तु म अध्यास। प्राकृत उदाहरणो का लक्षण मे समन्वय करते हुए भोज ने लिखा है—

(क) सोऽयम अन्यवस्तुनि पुन अन्यधर्म्माणामेव आरोपण मीलित नाम समाधिभेदो भवति।

(ख) तदतद गुणक्रियावता द्रव्याणा प्रधानक्रियाध्यारोपे धर्मिधर्माध्यासे मीलित नाम समाधेरेव भेदो भवति।

वस्तुत भोज ने समाधि और मीलित दोनो पदो का प्रयोग उस अथ म नही किया जिस अथ म काव्यशास्त्री इन अलकार-नामो का समथक है। समाधि के पश्चात जिस समासोक्ति' अलकार का वणन किया है वह वस्तुत अन्य आचार्यों का 'अप्रस्तुतप्रशसा है 'समासोक्ति नही—

यत्रोपमानादेवैतद उपमेय प्रतीयत।
अतिप्रसिद्धेस्तामाहु समासोक्ति मनीषिण॥४८॥
सक्षेपेणोच्यत यस्मात् समासोक्तिरिय तत।
सवायोक्तिरनन्यापित स्मयोक्तिश्च कथ्यते॥४९॥

---

[1] समाधिमेव मन्यन्ते मीलित तदपि द्विधा।
धर्माणामेव चाध्यासे धर्मिणा चान्यवस्तुनि॥४७॥

अस्तु भोज के अधिकतर अलकार, के नाम भ्रामक हैं, अन्य आचार्यों ने उनको स्वीकार नही किया। भोज की दष्टि म अनेक अलकारो का स्वरूप भी स्पष्ट नही था।

भोज का समाधि कालातर में नष्ट हो गया और उसके स्थान पर एक नवीन 'समाधि' अलकार आ गया जिसका उदगम आचाय जन भरत के 'समाधि' गुण से जोडते हैं।

'समाधि' का दूसरा रूप

अभियुक्तविशेषस्तु योऽथस्यैवोपलभ्यते।
तन चार्थेन सम्पन्न समाधि परिकीत्यत ॥१६।१०२॥

भरत ने नाट्यशास्त्र म 'समाधि' नाम के गुण का वणन किया है। यही गुण आधुनिकों का 'समाधि' अलकार बन गया। 'समाधि म दो कारण होते हैं—एक तो पहले ही वतमान रहता है दूसरा आनेवाला होता है। इसका सौदय या चमत्कार अनायास उपस्थित होनेवाले कारण के द्वारा काय की सिद्धि मे निहित रहता है। समाधि अलकार म काय की सम्पन्नता का श्रेय मूल कारण या प्रथम कारण को न होकर अचानक उपस्थित होनेवाले कारणान्तर को ही होता है और उसी कारण पर इसका अलकारत्व आश्रित है।'[1]

मम्मट

समाधि अलकार का नव्य रूप भामह तथा दण्डी के समाहित से मिलता जुलता है। मम्मट के अनुसार—

समाधि सुकर काय कारणान्तरयोगत ॥१०।१२५॥

साधनान्तरोपकृतेन क्वा यत्र अक्लेशेन कायमारब्ध समाधीयते स समाधिर्नाम।

जब प्रारभ किया गया काय निश्चित साधन के अतिरिक्त साधनान्तर की सहायता से अनायास सिद्ध हो जाय तो समाधि का चमत्कार है।

उत्तर आचाय

रुय्यक जयदेव विश्वनाथ तथा दीक्षित के लक्षणो म मम्मट का ही अनुसरण है—

कारणान्तरयोगात् कायस्य सुकरत्व समाधि। (अलकार-सवस्व)
समाधि कायसौकय कारणान्तरसन्निधे[2] ॥५।९८॥ (चन्द्रालोक)
समाधि सुकर काय दवाद् वस्त्वन्तरागमात ।१०।८५॥ (साहित्यदपण)

जगन्नाथ

'रस गगाधर' का लक्षण समुच्चय की प्रतिद्वन्द्विता म समाधि का वणन करता है—

---

१ अलकारानुशीलन पृ० ४०६।
२ कुवलयानन्द ११८।

"एक-कारणजयस्य कार्यस्य आकस्मिक-कारणान्तर-समवधानाहित-सौकर्य समाधि ।' (पृ० ६६३)

हिन्दी के आचार्य

मयो हूँ कारज को जतन, निपट सुगम ह्व जाइ।
तासो कहत समाधि लखि, काव्तास को चाइ ।।१५।११।।

कन्हैयालाल पोद्दार (पृ० ३५०) तथा रामदहिन मिश्र (पृ० ४१३) ने द्वितीय समुच्चय के पश्चात समाधि का, मम्मट के अनुकरण पर, वर्णन किया है।

उपसहार

समाधि अलकार का विकास बडा भ्रामक है। समीक्षको ने इसका विकास भरत के समाधि गुण से चित्रित किया है। प्राचीनो का 'समाहित' लगभग नव्याचार्यों का समाधि था। इसलिए रामदहिन मिश्र न तो वर्णन करते हुए इस अलकार का नाम 'समाधि वा समाहित' लिखा है कन्हैयालाल पोद्दार के अनुसार 'आचार्य दण्डी और महाराजा भोज ने इसका समाहित नाम लिखा है। (अलकार मजरी, प० ३५१)

'समाहित' अलकार रसवत आदि प्रसग मे एक विशेष अर्थ म प्रयुक्त होने लगा तो पुराना 'समाहित' नवीन 'समाधि' बन गया। इस प्रकार समाधि का जन्म नवीन है क्योंकि 'समाधि' न अपना अर्थ बदल लिया था। समाधि नाम स यह अलकार 'सरस्वतीकण्ठाभरण' स प्रारम्भ होता है और उसके सौन्दर्य का एक ही रूप नही है।

१४१ अन्य

वाग्भट

वाग्भट ने 'काव्यानुशासन' म दो नये अलकारो की कल्पना की है—'अन्य' तथा 'अपर'। 'अन्य' का लक्षण है—

अनेकेषामेकत्र निबन्धस्त्वन्य । (काव्यानुशासन, पृ० ४१)

उदाहरण—

माहिष दधि सशर्कर पय, कालिदासकविता नव वय ।
शारदेन्दुरबला च कोमला, स्वर्गशेषमुपभुञ्जते जना ।।

इस अलकार की कल्पना 'समुच्चय' अलकार के सन्दर्भ म हुई थी। कन्हैयालाल पोद्दार के अनुसार 'अन्य तुल्ययोगिता के अन्तर्गत'[1] है। यह अलकार प्रचलित न हो सका, इसका सौन्दर्य मन म उत्साह उत्पन्न करने वाला नही है।

---

१ अलकारमजरी, प्राक्कथन पृ २१

१४२ अपर

वाग्भट

वाग्भट का द्वितीय नवीन अलकार 'अपर' है। इसकी कल्पना भी 'समुच्चय' के सदर्भ म हुई। कन्हैयालाल पोद्दार इसका अन्तर्भाव भी समुच्चय म करते हैं। वाग्भट के अपर का लक्षण है—

गुणक्रियाना युगपदभिधानमपर। (पृ० ४१)

उदाहरण एक ही है—

अलस लुलित मुग्ध स्निग्ध निस्पन्द मन्द
अधिक विकसदन्तर्विस्मयस्मेरतार।
हृदयमशरण मे पक्ष्मलाक्ष्या कटाक्ष
अपहृतमपविद्ध पीतमुन्मूलित च॥

उपसहार

वाग्भट के दोनो अलकार 'अन्य' तथा 'अपर' नवीन होते हुए भी आकर्षक नहीं हैं। उत्तर आचाय इनके सौन्दय को स्वीकार न कर सके, इनका अन्तर्भाव अन्यत्र हो जाता है।

१४३ असम

शोभाकर मित्र

'असम' अलकार की कल्पना शोभाकर मित्र ने सादृश्यमूलक अलकार के एक भेद के रूप म की थी। लक्षण है—

तद् विरहोऽसम ॥१०॥

उपमान के विरह अर्थात असभवत्व का प्रतिपादन असम अलकार का सौन्दय है। मालती कुसुम सदृश भ्रमर ! भ्रमन्नपि न प्राप्स्यसि—इस उदाहरण म उपमान की असभवता की प्रतीति है। इसके स्वतन्त्र अलकारत्व का प्रतिपादन निम्नलिखित तक से किया गया है—

तेन उपमानानुपादानात् लुप्तोपमेयमिति न वाच्यम्। उपमानस्य सभवतोऽनुपादाने लुप्तोपमा। अत्र च चोपमानस्य असभव एव उपनिबद्ध। न चास्य अनन्वयादौ अन्तर्भाव इत्यल कागन्तरमेव। (अलकार रत्नाकर पृ० ११)

यत्रोपमानस्य न सभवोऽस्ति, तत्रासम स्यादुपमा न लुप्ता।
सभाव्यमानस्य मत समानधर्मादिकस्य त्वनुदीरण सा॥

जगन्नाथ

'रस गगाधर' मे असम अलकार का विवेचन अनन्वय अलकार के तत्काल अनन्तर है। लक्षण है—

सवथवोपमानिषेधोऽसमाख्योऽलकार ॥

इस सम्बन्ध म 'सवथा' पद इस अलकार के अस्तित्व को सिद्ध करता है— 'सवथवोपमानिषेधेन सादृश्यस्याप्रतिष्ठानात नोपमागन्धोऽपि।' (पृ० २७८)

कन्हैयालाल पोद्दार

'अलकार मजरी' म 'असम' अलकार का वणन 'रस गगाधर' के अनुसार, किया गया है। इस सम्ब ध मे पाद्दार की टिप्पणी भी महत्त्वपूण है—

'अनन्वय अलकार म उपमेय का ही उपमान कहा जाता है, और असम म उपमान का सवथा अभाव वणन किया जाता है। धर्मोपमान-लुप्ता उपमा म उपमान का सवथा अभाव नहीं कहा जाता। यह कहा गया है कि सभव है, कही हो। किन्तु 'असम म तो उपमान की सवथा स्थिति ही नही कही जाती है। अत 'असम म उपमानलुप्ता का विलय नही हो सकता है। यह अलकार यद्यपि अनन्वय अलकार व्यग्याथ म रहता है किन्तु इसमे उपमान का निषेध शब्द द्वारा स्पष्ट कहा जाता है।' (पृ० १२८)

उपसहार

शोभाकर मित्र ने जिस *'असम' अलकार की कल्पना की थी उसे आज भी कुछ काव्यशास्त्री* स्वीकार करते हैं। इसका सौन्दय प्रभावशाली तथा अन्य अलकारा से भिन्न है परन्तु इस अलकार का क्षेत्र अत्यन्त सीमित है।

१४४ उदाहरण

शोभाकर मित्र

मामान्योद्दिष्टानामेकस्य निदशनमुदाहरणम ॥१२॥

मामा येन अभिहितानाम एकस्य इवाद्युपादानमुखेन प्रतीतिविशदीकरणाथ निदशनम उदाहरणमलकार। (पृ० १३)

शाभाकर मित्र ने इस अलकार के लिए कुमारसभव का उदाहरण दिया है—

अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य, हिम न सौभाग्यविलोपि जातम।
एको हि दाषा गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दो किरणेष्विवाक ॥

इसके स्वतन्त्र अलकारत्व का प्रतिपादन भी देखिए—

"न चेयमुपमा। उपमेयाद उपमानस्य वस्त्वन्तरभूतत्व तस्याभावात। किं चात्र न मामा यस्य विशषेण सादश्य विवक्षितम। सादश्यजीवितोपमा। नापि द्वितीयोऽनन्वय। *उपमावत सादश्याविवक्षणाद उपमानासभवतात्पर्याभावाच्च।* (पृ० १४)

जगन्नाथ

रस गगाधर मे असम अलकार के पश्चात उदाहरण अलकार का विवेचन है। लक्षण है—

सामान्यन निरूपितस्य अथस्य सुखप्रतिपत्तय तदेकदेश निरूप्य तयोरवयवावयविभाव उच्यमान उदाहरणम। (पृ० ३८०)

अनक उदाहरणो म से एक कुमारसभव का उपयुक्त उदाहरण भी है। जगन्नाथ न अन्य अलकारो म उदाहरण के अन्तर्भाव का खडन किया है।[1]

---

1 रस गगाधर पृ २८ ८४।

पोद्दार

कन्हैयालाल पोद्दार ने उदाहरण को स्वतत्र अलकार मानकर इसका वणन किया है और जगन्नाथ के लक्षण का अनुवाद स्वकृत लक्षण रूप म दे दिया है —

"जहाँ सामान्य रूप से कही गई बात को, भली प्रकार समझाने के लिये, उसका एक अश (विशेष रूप) कहकर उदाहरण दिखाया जाता है।"[1]

'दृष्टान्त' अलकार मे उपमेय और उपमान का बिबप्रतिबिब भाव होता है और 'ज्यो' आदि उपमावाचक शब्दो का प्रयोग नही होता है।

उपसहार

उदाहरण अलकार का सौन्दय आकषक एव प्रभावशाली है। इसलिए उत्तर आचाय प्राय जगन्नाथ क अनुकरण पर इसके स्वतन्त्र अस्तित्व का स्वीकार करते है। जब तक शोभाकर मित्र का समय निश्चित नही होता एव विशेष ज्ञातव्य विदित नही होता, तब तक यह कहना कठिन है कि जगन्नाथ से उनका आदान प्रदान कितना है और असम एव उदाहरण अलकारो के उद्भव म किसको कितना श्रेय मिलना चाहिए। 'असम और 'उदाहरण' दोना अलकार महत्त्वपूण हैं। उदाहरण तो दृष्टान्त का सजातीय होने से और भी अधिक महत्त्वपूण एव लोकप्रिय है।

परिशिष्ट

जगन्नाथ के पश्चात अलकार साहित्य की दृष्टि स सस्कृत म जो नाम जाने जाते हैं उनम शोभाकर मित्र आशाधर भट्ट, विश्वेश्वर पडित यशस्क तथा भानुदत्त ही मुख्य हैं। भाषा म काव्यशास्त्र का समारभ होने पर भी सस्कृत म, अलकार और रस विषय को लेकर सत्रहवी शती के अनन्तर भी ग्रन्थ रचना का क्रम चलता रहा। 'एकावली की परम्परा म, प्रतापरुद्रयशो भूषण, रघुनाथ भूपालीय, तथा नञ्जराजयशोभूषण के पश्चात् अलकार मजूषा 'की रचना अठारहवी शताब्दी के उत्तराध म हुई थी, परन्तु अलकार का मुख्य विषय बनाकर लिखने वाले महत्त्वपूण आचाय सख्या म अधिक नही है।

सस्कृत के अतिम आचार्यों म शोभाकर मित्र का नाम प्रमुख है। कालक्रम से शोभाकर जगन्नाथ के पूववर्ती (तेरहवी' शताब्दी) थ, उनका 'अलकार रत्नाकर जगन्नाथ तक का मान्य रहा होगा। असम' तथा उदाहरण की चर्चा यथास्थान हो चुकी है। शोभाकर न एक सौ बारह सूत्रा म अलकारा का वणन किया है। छत्तीस अलकारा क नाम नय हैं। असम तथा 'उदाहरण अलकारा का वणन ऊपर हो चुका है, शप तीन अलकार (वणन क्रम स आगार) निम्नलिखित हैं—

---

[1] अलकार मजरी पृ० १२६ ।

[2] अलकार-मजूषा इन्ट्रोडक्शन पृ० ३४ ।

[3] अलकार रत्नाकर इन्ट्रोडक्शन पृ० १२।

प्रनिमा विनाद, व्यासग, वधम्य, अभेष्ट प्रतिभा, क्रियातिपत्ति विध्याभास, सन्देहाभास, विकल्पाभास, अचिन्त्य, असाकरय अशक्य व्यत्यास, समता उद्रेक, तुल्य अनादर आदर, अनुकृति, प्रत्यूह, प्रत्यान्श, व्याप्ति, आपत्ति नियम प्रतिप्रसव, तन्त्र प्रसग, वधमानक अवराह विवेक, परभाग, उदभेद गूढ।

इन अलकारा म सौन्दय नही ह—ऐसा नही कहा जा सकता। परन्तु इनका अनुकरण तथा लोकप्रियता का अवसर न मिल सका। कारण दोना ही हैं। अलकार रत्नाकर चिरकाल तक अधकार म रहा है और इन नवीन अप्रचलित अलकारो के सौन्दय का क्षेत्र प्राय सीमित है। तथापि आधुनिक काल म मुरारिदान के जसवतजसा भूषन ग्रन्थ म इनमे से कतिपय नाम दिखलाई पडत है।

आशाधर भट्ट (सत्रहवी शती का अन्त) अलकारदीपिका क रचयिता है। इसम जितने अलकार माने गये हैं उतने सभवत किसी अन्य अलकार ग्रन्थ म नही हैं। अलकारा की सख्या लगभग १२५ के है। अलकारशास्त्र म प्रवेश करन के लिये—विशेषत अलकारो के लक्षण सुगमता स याद करने के लिए—यह ग्रन्थ अतीव उपयोगी सिद्ध हो सकता है।[१]

विश्वेश्वर पण्डित ने अलकारमुक्तावली अलकारप्रदीप तथा अलकारकौस्तुभ ग्रन्थ अलकार विपय पर लिखे है। "इनम अलकार-कौस्तुभ सर्वोत्तम ग्रन्थ है।[२]

यशस्क के 'अलकारोदाहरण' का परिचय भी समीक्षको स प्राप्त होता है। यशस्क के आठ अलकार नवीन प्रतीत होते हैं—किन्तु इन आठ म एक प्रतिपध ही कुवलयानन्द म लिखा गया है। शेप अलकार महत्त्वपूण न होन के कारण अन्य किसी ग्रन्थ म स्वीकृत नहा किय गय हैं। यशस्क का समय अज्ञात है। यशस्क और उसक इस ग्रन्थ का नामोल्लेख या उद्धहरण जसवतजशोभूषण क अतिरिक्त किसी ग्रन्थ म दृष्टिगत नही होता है।[३] यशस्क के सात नवीन अलकारा के नाम हैं—

अग, अनग, अप्रत्यनीक अभ्यास, अभीष्ट, तात्पय तत्सदशाकार।

इसी प्रकार भानुदत्त का परिचय भी सीधा उनकी रचना स नहा मिलता। भानुदत्त ने दा अलकार नवीन लिखे है, जिनका परिचय भी जसवन्तजसोभूषण द्वारा मिलता है —'अनध्यवसाय और भगी।[४] भानुदत्त की रचना का नाम अलकारतिलक है।

'इन तीना ग्रन्था (अलकार रत्नाकर, अलकारोदाहरण, तथा 'अलकार तिलक') म जो अलकार अधिक दृष्टिगत हाते हैं, उनम बहुत से अलकारो के तो केवल नामा म भेद है और बहुत स पूववर्ती आचार्यों द्वारा निरूपित अलकारा के अन्तगत आ जाते है। इनम कुछ अलकार एस भी हैं जिनम काइ विशेप चमत्कार नही है इसलिए इन अलकारा का प्रचार प्राय उन्ही ग्रन्था तक सीमित है जिनम यह निरूपित किय गय है।'[५]

---

१ भारतीय साहित्यशास्त्र प्रथम खड, पृ० १६४।

२ काव्यप्रकाश (विश्वेश्वर) भूमिका पृ० ६६।

३ सस्कृत साहित्य का इतिहास (पोद्दार) प्रथम भाग पृ० १६६।

४ वही द्वितीय भाग, पृ० १०१।

५ अलकार मजरी, प्राक्कथन पृ० ३४।

नवम अध्याय

हिन्दी-भाषा के कतिपय आचार्यो द्वारा उद्‌भावित अलकार

(क) केशवदास द्वारा उद्‌भावित नवीन अलकार

१४५ गणना

केशवदास

'कविप्रिया' के ग्यारहवें प्रभाव' म 'गणना अलकार की (क्रम-सख्या नौ) चर्चा की गयी है। गणना अलकार का वणन 'क्रम' अलकार के उपरात है।' सभवत केशव ने क्रम स ही गणना को अलकार बनाना सोचा है और एक से दस तक की गिनती के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्दो को गिना दिया है।[1] गणना अलकार 'सामान्य अलकारो के साथ रहता तो अधिक अच्छा था, इसम उदीयमान कवि को यह बतलाया है कि लोक म किस वस्तु की कितनी सख्या मानी गई है और एक स लेकर दस तक की सख्या की शिक्षा पाठक को मिल जाती है।[2] गणना के सम्बन्ध म केशव की इस सामग्री का आधार काव्यकल्पलतावृत्ति प्रतान चतुथ स्तबक छह और अलकारशेखर मरीचि अठारह हैं।'[3]

कविप्रिया म क्रम अलकार क साथ ही गणना अलकार का निम्नलिखित लक्षण दिया गया है—

> आदि अन्त भरि वरणिय सो क्रम केशवदास।
> 'गणना' गणना सो कहत जिनके बुद्धि प्रकाश ॥११।१॥

तदनन्तर एकसूचक स लेकर दससूचक तक की गणना की वस्तुओ को विस्तार स गिना दिया है (दोहा सख्या ५ स २१ तक)। तत्पश्चात दो कवित्तो म दो 'उदाहरण दिये गये हैं। अन्तिम उदाहरण है—

> दरस न गुर स नरम गिर नाव निन
> घर दरसा हा को गिर नाम्यु है।

---

१ रीतिकालीन अलकार-साहित्य का शास्त्रीय विवेचन पृ० ७१।

२ हिन्दी अलकार साहित्य पृ ६६।

३ केशव का आचाय्त्व पृ २६६।

केशोदास पुरी-पुर पुजन का पालक पै
मात ही पुरी सा पूरो प्रेम पाइयतु है।
नाइका अनेकन को नायक नागर नव
अष्ट नायिकान ही सो मन लाइयतु है।
नवधाई हरि को भजन इन्द्रजीत जू का
दश अवतार ही को गुन गाइयतु है ॥११।२३॥

'सूचक शब्दा की गणना को उदाहरण न समझ लेना चाहिए वह तो लक्षण' की वत्ति' मात्र है। उदाहरण तो केवल दो हैं—कवित्ता म लक्षण-वत्ति के पश्चात। यदि उदाहरणा से वत्ति म होकर, लक्षण की ओर जावें तो लक्षण का अथ अथवा अभिप्राय यह होगा कि जहाँ पर गणना म प्रसिद्ध शब्दो का गणना के स्थान-पूवक वा सयोगपूवक प्रयोग हो वहा गणना अलकार का चमत्कार है। आलोचका न केशव के साथ याय नही किया और जो परम्परा हिन्दी-अलकार साहित्य' स भ्रम-पूवक चल पडी, उसी पर उत्तर आलोचक लीक पीटते रहे। गणना अलकार को लोकप्रियता नही मिली, परन्तु उसके सौन्दय की उपेक्षा नही हो सकती। वणन म गणना सूचक शब्दा का प्रयाग एक विशेष विच्छित्ति है, इसका केशव ने 'गणना' अलकार नाम दिया है, इसक दो भेद हो सकते हैं— गणना के स्थान पर गणना-सूचक शब्दो का प्रयाग', तथा 'गणना के साथ गणना-सूचक शब्दो का प्रयाग'। व्रजभाषा के अधिकतर कवि अपने ग्रथ का रचना काल' लिखत हुए इस अलकार का प्राय प्रयोग किया करते थ।[1]

१४६ अमित

केशवदास

जहा साधक को मिलने वाली सिद्धि का भोग ऐसा व्यक्ति प्राप्त कर ले जो उस सिद्धि म साधक का साधन मात्र है। स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए केशव ने इस अलकार के दो उदाहरण दिये है जो लक्षण म सामजस्य तो रखते ही हैं साथ ही उनमे विशेष चमत्कार का पुट भी है।[2]

कविप्रिया म अमित अलकार का लक्षण निम्नलिखित है—

जहाँ साधन भोगई साधक की शुभ सिद्धि।
अमित नाम तासा कहत, जाकी अमित प्रसिद्धि ॥१२।२६॥

केशव न लक्षण म ही बडा सुन्दर व्यग्य किया है कि ससार म एसा प्राय होता है— जाकी अमित प्रसिद्धि। कदाचित इसी कारण इस अलकार का नाम 'अमित' पडा है। 'अमित' किस बात म? उत्तर है— ससार की नित्यप्रति की घटनाआ म।

---

१ आधुनिक काल के काव्यशास्त्रीय आलोचक डॉ० रसाल ने अलकार-पीयूष का रचना काल ग्रन्थ के उत्तरार्ध के अन्त में इन शब्दों में लिखा है—

ऋतु वसु ग्रह शशि विक्रमी सवत कातिक मास।
शक्ल पूणिमा ग्रथ यह कियौ 'रसाल' प्रकाश ॥

२ केशव का आचायत्व पृ० २८७।

साधन साध एक भव, भोग सिद्धि अनक।
तासो कहत प्रसिद्ध सब, केशव सहित विवक ॥१३।७॥

इनम पारस्परिकता नही है। अमित' का बल 'एक साधन' पर है, प्रसिद्ध म अनेक सामान्य' का निर्देश है। प्रसिद्ध अलकार का आधार लोक गति का निरीक्षण है और अमित अलकार नीति की दृष्टि से सचेत था।

एक दृष्टि से 'प्रसिद्ध और 'प्रत्यनीक' अलकारो का भी सम्बन्ध है, और यह सम्बन्ध वधम्य का है। प्रत्यनीक तो परिणाम है एक के अपराध का, जो पूरी जाति को भोगना पड़ता है, सुसिद्ध परिणाम है एक की सिद्धि का, जो पूरा वग अथवा जन समूह भोगता है न 'प्रत्यनीक में कारण अर्थात् साधक पर आच है और न 'प्रसिद्ध में कारण अर्थात साधक का लाभ। प्रत्यनीक का फल अवाछित है और प्रसिद्ध का अभीष्ट।

केशव ने प्रसिद्ध का एक ही उदाहरण दिया है—

मात के मोह पिता परितोषन केवल राम भरे रिस भारे।
औगुन एक ही अजुन को छितिमडल के सब छत्रिय मारे।
देवपुरी कहँ औधपुरी जन कशवदास वडे अरु बार।
सूकर स्वान समेत सब हरिचद के सत्य सदेह सिधारे ॥१३।८॥

१५० विपरीत

केशवदास

केशव न विपरीत' अलकार का निम्नलिखित लक्षण दिया है—

कारज साधक को जहाँ, साधन बाधक होय।
तासो सब विपरीत कहि, कहत सयाने लोय ॥१३।९॥

साधन के बाधक बन जाने म विपरीत अलकार का चमत्कार है। विषादन' क सौन्दय से इसम अन्तर है। केशव के अलकारो म इतिवृत्तात्मकता है आकस्मिक स्फुरण नही। 'विषादन' म प्रयत्न की विपरीतता देवयोग पर निभर है और विपरीत' अलकार म व्यक्ति क व्यवहार पर। इसलिए 'विषादन' म आकस्मिकता का आकषण है विपरीत म व्यक्ति क परिवतन पर दुख।

कविप्रिया क इस अलकार के उदाहरण बहुत आकषक नही हैं उनम ऐसा चमत्कार नही उपजता जो सहृदय को आकृष्ट कर सक।'[1] एक समीक्षक ने तो यहाँ तक कह दिया है कि 'केशव का यह प्रयास मौलिक तो है, लेकिन अधिक महत्वपूर्ण नही क्योकि एक तो इनको अन्य अलकारो म अन्तर्भाव दिखाया जा सकता है दूसरे इनक चमत्कार की भी मात्रा पर्याप्त नही है।[2]

---

१ रीतिकालीन-अलकार साहित्य का शास्त्रीय अध्ययन पृ० ७८।
२ केशव का आचार्यत्व पृ० २१०।

परन्तु हम इन समीक्षाओ से सहमत नही। केशव के मौलिक अलकारो म जो सौदय है, उसका क्षेत्र सीमित हो, परन्तु महत्व कम नही। अलकार का महत्व सौदय पर निभर है उसकी माला पर भी नही, सामाजिक उपयोग का भी प्रश्न नही आता। सौन्य की नवीन विधाए समय समय पर उदघाटित होती रहती हैं, आचाय उनका नामकरण करता है केशव ने भी ऐसा ही किया है और बडे विश्वास के साथ। डा० रामशकर शुक्ल रसाल' ने केशव के 'नवीन अलकार आठ गिनाये है। इनम से हमने यहाँ छह का विवचन किया है, शष दो 'प्रेमालकार तथा 'आशाप का नही। 'प्रेम और आशीप क्रमश प्राचीना क प्रेयस तथा 'आशी' है, वणन की शिथिलता के कारण इनसे नवीन अलकारो का भ्रम हाने लगता है।[1]

(ख) भूपण द्वारा उद्भावित नवीन अलकार

१५१ सामान्य-विशेप

भूपण

शिवराजभूपण म अतिशयावित अलकार के पाच भेदो का वणन करने क उपरान्त भूपण न एक नवीन अलकार सामान्य विशप की चर्चा की है। लक्षण निम्नलिखित है—

> कहिब जहँ सामान्य है कहे जु तहा विशेप।
> सो सामान्य विशेप है, बरनत सुकवि अशेप ॥' १२०॥

जहा पर सामान्य अथ अभीष्ट हो वहा विशेप अथ का कथन, सामान्य विशेप अलकार का चमत्कार है। अर्थान्तरन्यास अलकार म सामान्य और विशप दोनो अर्थो का कथन होता है और एक अथ दूसर का समथन करता है। प्रस्तुत मौन्दय म एक सामान्य अथ पर पहुचन क लिए किसी विशेप अथ अथवा किन्ही विशेप अर्थो का कथन भर होता है। उदाहरण स स्पष्ट किया जा सकता है—

> जीति लई वसुधा सिगरी घमसान घमड क बीरन हू की।
> भूपण भौसिला छीनि लई जगती उमराव अमीरन हू की।
> साहिन्तन सिवराज की धाकनि छटि गई घति धीरन हू की।
> मीरन के उर पीर बन्यो यो जु भूलि गई सुधि पीरन हू की ॥१२२॥

टीकाकार लिखत हैं— साधारणतया देखा जाता है कि जब किसी की पृथ्वी छिन जाती है तो उमक होश-हवाश भी जाते रहते हैं। यहाँ इस सामान्य बात को प्रकट करने के लिए शिवाजी के कार्यों का विशेप वणन किया है।[1]

जहाँ किसी चमत्कारिक उक्ति म किसी विशेप अलकार का नाम निर्दिष्ट नही किया गया हो, वहाँ अतिशयोक्ति अलकार कहा जा सकता है।'[4] परन्तु भूपण क इस सौदय का नाम

---

१ अलकार पीयूष उत्तरार्ध पृ० ३७० से ३७२ तक।

२ भूपण ग्रथावली (हिन्दी भवन) पृ० ८५। ३ वही पृ० ८७।

४ अलकार मजरी पृ० १६८।

अप्रस्तुत प्रशसा म खोजा जा सकता है। "तत्र सामान्यविशेषभाव सामान्याद् विशेषस्य, विशेषाद्वा सामान्यस्य अवगतौ द्वविध्यम्।"[1] 'विशेष निबन्धना' अप्रस्तुत प्रशसा म वक्तव्य तो सामान्य होता है, परन्तु कथन विशेष का किया जाता है। अत 'शिवराजभूषण' म "सामान्य विशेष ही एकमात्र नया अलकार लगता है परन्तु लक्षण तथा उदाहरण स जान पडता है कि यह प्रस्तुत प्रशसा का ही एक भेद, विशेष निबन्धना, कहा जा सकता है।[2]

इस निष्कष से सहमत होना कठिन है। क्योंकि भूषण ने जो उदाहरण दिया है उसम सामान्य विशेष भाव तो मिल सकता है, प्रस्तुत-अप्रस्तुत भाव नही जो अप्रस्तुतप्रशसा का प्राण है। अत 'सामान्य विशेष अलकार की मौलिकता म अधिक सन्देह नही करना चाहिए।

(ग) देवदत्त द्वारा उद्भावित नवीन अलकार

१५२ सिंहावलोकन

देवदत्त

देवकवि ने शब्दरसायन के अष्टम प्रकाश शब्दालकार प्रसग म, यमक के एक रूप सिंहावलोकन का वणन किया है। सिंहावलोकन यमक का ही एक रूप है, देव ने इसका लक्षण नही दिया परन्तु दासकवि के अनुसार[3] छन्द के चरणान्त का अक्षर यदि दूसर चरणारभ म यमक बनाव तो उस सौन्दय को सिंहावलोकन कहते हैं।[4] सिंहावलोकन नया प्रयास है। यमक अलकार का यह नया रूप वस्तुत आकषक है।

देव कवि ने सिंहावलोकन का लक्षण नही दिया, परन्तु उदाहरण का कवित्त इस लक्षण नाम प्रकाश अलकार को समझान म समथ है—

> दूल है सुहाग दिन, तूल है तिहार तिन
> तूल है तिहारे, सो अयान ही की भूल है।
> भूल है न भाग की, प्रवाह सो दुकूल है
> दुकूल है उज्यारो 'देव प्यारो अनुकूल है। (पृ० १४०)

दासकवि का उदाहरण अधिक समथ है—

> सर सो बरसो कर नीर अली जनु लौंहे अनग पुरदर सो।
> दरसो चहु ओरन तें चपला करि जाति कृपानि को औझर सो।
> झर सोर सुनाइ हन हियरा जु कियै घन अबर-डबर सो।
> बरसौ तें बडी निसि बरिनि बीत, तौ बासर भो विधि-बासर सौं॥६२॥

---

१ कुवलयानन्द, पृ० ८२। २ हिन्दी अलकार-साहित्य पृ० १०६।

३ चरन अत अरु आदि के जमक कडलित होइ।
सिंह विलोकन है वहै मुक्तक-पद ग्रस सोइ॥११॥
(काव्य निर्णय एकोनविंशतितम उल्लास)

४ हिन्दी-अलंकार-साहित्य पृ० १३५।

५ काव्यनिर्णय पृ० १८५।

सिंहावलोकन यमक अलंकार का ही एक रूप है। 'सरस्वती कण्ठाभरण' में पादसंधि के स्थूलव्यपेत का जो उदाहरण दिया गया है वह सिंहावलोकन का भी उदाहरण है—

हठपीत महाराष्ट्री दशनच्छद पाटला।
पाटला कलिकानेकरेकैका लिलिहेऽलिभि ॥ (द्वितीय परिच्छेद, पृ० ७९)

१५३ गुणवत

देवदत्त

शब्दरसायन में 'मुख्यालंकार विवेचन' के पश्चात् अतद्गुण अनुज्ञा अवज्ञा का एकत्र एवं 'गुणवत प्रत्यनीक लेख-सार मीलित' का तदनंतर एकत्र वर्णन किया गया है। इस पिछले वर्ग में 'गुणवत' एवं 'लेख' अलंकार नवीन है।

गुणवत और देव के 'प्रत्यनीक' का सम्बन्ध वैधर्म्य का है। यदि गुणियों की संगति के कारण गुणवत्ता का वर्णन हो तो अलंकार गुणवत है परन्तु यदि गुणहीन की संगति के कारण गुणी भी गुणहीन बन जाय तो देव के प्रत्यनीक का चमत्कार होगा। तात्पर्य यह है कि प्रत्यनीक के चमत्कार में एक व्यक्ति की शत्रुता (दोष) अन्य को भोगनी पड़ती है। यदि इसका विपरीत देखा जाय तो एक व्यक्ति का गुण अन्य व्यक्ति में फल जाता है। देवकवि ने इस पर बल दिया है कि 'गुणवत' प्रत्यनीक का उलटा है—

गुनवत संग गुनीन के निगुनी गुननि प्रवीन।
प्रत्यनीक उलटो, गुनहि निगुन करै गुनहीन ॥ (पृ० १७८)

दोनों अलंकारों के उदाहरण भी एक ही साथ सवैये के एक ही चरण में है—

चंदन के संग जाइ मिल्यौ अंग अम्बर झापि लियौ मुख इंदु सो।

चंदन के साथ निरंतर संपर्क से नायिका के अंग भी सुरभित हो गये—यह गुणवत का चमत्कार है। गुणहीन इंदु के समान होने से गुणवान मुख को भी अंबर में छिपना पड़ा—यह प्रत्यनीक है। देवकवि का 'प्रत्यनीक' दूसरे आचार्यों से भिन्न है और प्रस्तुत उदाहरण में 'अंबर' पर श्लेष का चमत्कार सारे अर्थ पर छा जाता है। फिर भी 'गुणवत' का चमत्कार आकर्षक है —इसमें कोई संदेह नहीं। देव कवि ने प्रसिद्ध प्रत्यनीक को जिस रूप में भी ग्रहण किया उससे वैधर्म्य पर 'गुणवत' अलंकार की सुंदर कल्पना कर ली।

केशवदास ने प्रसिद्ध अलंकार की कल्पना की थी। हमने यथास्थान[1] लिखा है कि 'एक दृष्टि से प्रसिद्ध और प्रत्यनीक अलंकारों का भी संबंध है और यह सम्बन्ध वैधर्म्य का है। यदि तुलना करें तो केशव 'प्रसिद्ध' और देव के 'गुणवत' में भी समानान्तरता का सम्बन्ध है दोनों प्रत्यनीक (अपने-अपने अर्थ में) के वैधर्म्य पर कल्पित किये गये हैं।

'देव के गुणवत' के अनुरूप ही गुणवत अलंकार का निरूपण अलंकारपंचाशिका-कार मति

---

१ द० प्रसिद्ध अलंकार का विवेचन।

राम ने किया था परन्तु उसम सम्पत्ति पाकर छोटे व्यक्ति क बडे बनने का वणन है।'[1]

भामह ने रसवत अलकार का वणन किया था। उसमें रस' का अलकारवत उपयोग होता है रस 'अग बनकर आता ह, अगी रूप स नही। सभव है रसवत्' क अनुकरण पर देव ने 'गुणवत' की कल्पना की हो। रसवत अलकार म 'रस का अलकार रूप स वणन होता है, गुणवत् अलकार म गुण का अलकार रूप म वणन होता है। 'गुण के दोनो अथ हैं– काव्यगुण तथा 'व्यक्तिगत विशेषताएँ। गुणवत्' का सामान्य अथ गुणवान है, गुणहीन व्यक्ति के गुणिजन-सपर्क से गुणवान् बनने का वणन गुणवत् अलकार का चमत्कार है।

१५४ लेख

देवदत्त

'गुणवत् जिस अलकार-समूह का सदस्य है उसी का लेख भी है। दोष का गुण रूप से अथवा गुण का दोष रूप स वणन 'लेख अलकार है। देवकवि के अनुसार—

गुण दोषनि क दोष-गुन लेख सु कहौ बखानि।[2]

लेख अलकार के दो भेद है—गुण का दोष रूप स वणन तथा दोष का गुण रूप स वणन। दोनों के अलग उदाहरण सवैये के एक ही चरण म है—

(१) निमलता-गुन मोती विधाइ,

(२) छिप्यो कुटिलालक लाल फनिद सो।

शोभाकर मित्र ने अलकार रत्नाकर' म एक नवीन अलकार 'व्यत्यास का वणन इस प्रकार किया है—

दोषगुणयोर्यथात्व व्यत्यास ॥६६॥

यत्र दोषस्य गुणत्व गुणस्य दोषत्व च भवति स व्यत्यास ।[3]

शोभाकर का रत्नाकर दीघकाल तक अधकार मे रहा है। अस्तु 'देव न शोभाकर मित्र का ग्रन्थ तो नही पढा लगता परन्तु अनायास ही दोनों आचार्यों न गुण दोष परिवतन-मय भाव के लिए इस अलकार की उत्पत्ति की है, जो नाम भेद होत हुए भी कालक्रम से मिल गई है।

एक दूसरी सभावना भी है। लेश को भाषा म 'लेष और उच्चारण की सुविधा से 'लेख भी लिख देते है—किसी किसी प्रदेश म तो वर्षा को 'वर्खा षडऋतु का खडरितु आज भी बोला और लिखा जाता है। क्या आश्चय है कि देवकवि का लेख' (लष=लेश) दण्डी का स्तुति निन्दा विधानात्मक लेश अलकार ही हो, जिसका वणन है—

दोषस्य या गुणीभावो, दोषाभावो गुणस्य वा।

---

१ रीतिकालीन अलकार साहित्य का शास्त्रीय विवेचन पृ० ६८।

२ शब्दरसायन पृ १७८।

३ अलकार रत्नाकर पृ १६६।

४ रीतिकालीन अलकार साहित्य का शास्त्रीय विवेचन पृ० ६६।

अप्पय्यदीक्षित तक के आचाय लेश के इस रूप को अपनाते रहे हैं—

लेश स्याद दोषगुणयो गुणदोषत्व कल्पनम ॥१३८॥ (पृ० १५५)

यह भी हमको ध्यान है कि 'कुवलयानन्द मे भी 'लेश' अलकार का वणन अवना-अनुना तदगुण-अतदगुण मीलित आदि के बीच मे ही हुआ है। लेश लेख रूपी इस सभावना के अभाव म लेख के नाम रूपकी कोई सगति नही बैठती। वस्तुत दण्डी के लेश के दो रूप थे—"लेशेन निर्भिन्न वस्तु रूप निगूहनम्"(२ २६५)तथा निन्दा स्तुति वा लेशत कृताम (२ २६८)।रुद्रट से दण्डी के दूसरे लक्षण को प्रधानता मिलने लगी। केशव न फिर दण्डी के प्रथम लक्षण को जगाया देव ने दण्डी-केशव के लेश भेद को मुख्य चालीस' अर्थालकारा मे स्थान दिया, तथा उत्तर परम्परा स प्राप्त भेद का लेख नाम से "गौन सुतीस प्रकार के मध्य वणन कर दिया।[1]

१५५ सकीण

देवदत्त

देवकवि न विकल्प सकीण भाविक-आसिप का एक समूह म वणन किया है। 'विकल्प तथा 'सकीण' म वधम्य है एव भाविक' तथा 'आसिप म भी। अर्थात सकीण प्रसिद्ध विकल्प' अलकार का विरोधी है। 'विकल्प अलकार मे तुल्य-बल विरोध की वस्तुआ मे से एक की ओर उन्मुख होने का वणन होता है इसके विपरीत सकीण म प्रवत्ति बहुमुखी रहती है। दव के शब्दो म ही देखिए—

विकलप बिबि रिपु तुल्य बल सकीरण बहुलभ्र। (पृ० १८०)

सवये के एक एक चरण म दोना अलकारो के उदाहरण हैं। 'विकल्प का उदाहरण—

केई बसे की बसें हमही पतिनी कहौ तौ जिय लाग विनोदिनी।

सकीण का उदाहरण—

व नलिनी अलि, ह्व चलि भोगिय देव' मिली वहु चद कुमोदिनी।

एकोन्मुखी प्रवत्ति का सौन्दय 'विकल्प अलकार म है और अनेकोन्मुखी का 'सकीण म, एक म एकाग्रता है, दूसर म समग्रता एक म केन्द्रीकरण है, और दूसर म विकेन्द्रीकरण एक अनुकूल नायक का गुण है दूसरा दक्षिण नायक का।

(घ) भिखारीदास द्वारा उद्भावित नवीन अलकार

१५६ स्वगुण

भिखारीदास

दूसरे के गुण और अपन गुण के सम्बन्ध स चार अलकार प्रसिद्ध हैं—तदगुण, अतदगुण, पूवरूप तथा अनुगुण। तदगुण अलकार की कल्पना रुद्रट न की थी। तदगुण के विपयय क रूप मे, मम्मट ने अतदगुण उद्भावना की। जयदव न पूवरूप तथा 'अनुगुण अलकार काव्यशास्त्र

---

१ दे० 'शब्द रसायन प० १६८ ८ (लेश) व १७८ (लेख)।

को प्रदान किये। इन चारो मे पाचवाँ नाम 'स्वगुण' भिखारीदास ने जोड दिया।

'अपना गुण त्याग कर संगति का गुण ग्रहण करना 'तद्गुण' है परन्तु 'स्वगुण' फिर से पूर्ण-गुण ग्रहण को कहते हैं। दूसरे आचार्यों ने इसी अलकार को 'पूर्वरूप' नाम दिया था।"[1] भिखारीदास के 'काव्यनिर्णय' मे 'पूर्वरूप' अलग अलकार है, और 'स्वगुण' अलग। 'पूर्वरूप' एव 'स्वगुण' अलकारो के लक्षण एक ही दोहे मे लिखकर इनका पारस्परिक अन्तर भी स्पष्ट कर दिया गया है।

'अनुगुण' अलकार मे दूसरे की समीपता से अपने स्वाभाविक गुण का उत्कर्ष होता है। इसलिये 'अनुगुण' इस समूह से अलग छाटा जा सकता है। शेष चार अलकारो के लक्षणो पर विचार कीजिए। दासकवि के अनुसार—

तदगुन तजि गुन आपनो, संगति को गुन लेत।
पाए पुरवरूप फिरि स्वगुन सुमति कहि देत ॥१४।२८॥
सु अतद्‌गुन क्योहूँ न्ही संगति को गुन लेत।
पुरुवरूप गुन नहि मिटै, भए मिटन के हेत ॥१४।३२॥

तदगुण और अतदगुण तो परस्पर विरोधी हैं, जसा कि उनके नामो और लक्षणो से स्पष्ट है। स्वगुण और 'पूर्वरूप' का अन्तर अत्यन्त सूक्ष्म है।

अपने गुण को त्यागकर संगति के गुण का ग्रहण तद्गुण अलकार है। यदि 'तद्गुण' असफल हो गया तो वह 'स्वगुण' का चमत्कार बन जायेगा। दूसरे की संगति प्राप्त करके भी उसका गुण न ग्रहण करना और अपने गुण मे ही स्थित रहना स्वगुण का सौन्दर्य है। पूर्वरूप मे मिटने की हेतु-परिस्थिति होने पर भी अपना गुण नही मिटता। स्वगुण मे सहज निज रूप है 'पूर्वरूप' मे संघर्ष करते हुए निज रूप की रक्षा है।

दासकवि ने 'स्वगुण' अलकार की प्रेरणा कदाचित जयदेव के तद्गुण-लक्षण से ली होगी—

तदगुण स्वगुणत्यागाद अन्यत स्वगुणोदय ॥५।१०२॥

यहाँ स्वगुण के त्याग का उल्लेख तो है ही 'स्वगुण' के उदय का भी वर्णन है—यही स्वगुण दास कवि में अपनी विशेषताओं को उभार कर स्वतन्त्र अलकार बन गया है।

१५७ देहली दीपक

भिखारीदास

काव्यनिर्णय के अठारहवें उल्लास मे दीपक अलकार का वर्णन करते हुए भिखारीदास ने देहली दीपक नामक नवीन भेद की कल्पना की है। देहली दीपक का लक्षण निम्नलिखित है—

पद एक पद बीच मे दुहुँ दिसि लागै जाइ।
सो है दीपक देहली जानत है सब कोइ ॥१८।७

उदाहरण है—

---

1 हिन्दी अलकार-साहित्य पृ० १९९।

ह्वै नरसिंह महा मनुजाद हयो प्रह्लाद को सकट भारी।
दास विभीषन लक दियो जिन रक सुदामा का सपति सारी।
द्रोपदी चीर बढायो जहान मे पाडव के जस की उजियारी।
गर्विन को खनि गव बहावत दीननि का दुख श्री गिरधारी ॥१८।३८॥

इसम कोई स देह नही कि दो वाक्या के बीच म एक क्रियापद के आ जाने से वणन म एक विशेष चमत्कार आ जाता है इसलिय दीपक अलकार का यह भेद आवश्यक है। ध्यान इस बात पर भी जाना चाहिए कि जिसको दाम कवि देहली दीपक कहत है वही तो 'दीपक' अलकार का सामान्य लक्षण भी है। जिस प्रकार दो कमरा के बीच की दहली पर रखा हुआ दीपक दोनो कमरो को एक साथ और एक समान प्रकाशित करता है उसी प्रकार बीच म रखा हुआ शब्द दो वाक्या का प्रकाशित कर सकता है। दीपक न्याय से ही दीपक अलकार की कल्पना की गई थी कालान्तर म वह अलकार, विशिष्ट सौन्दय का पयाय बन गया। अप्पय्यदीक्षित ने दीपक अलकार के प्रसग म दीपक न्याय को वत्ति म स्पष्ट किया है—

'प्रस्तुतरनिष्ठ समानो धम प्रसगाद न्यत्र उपकरोनीति—प्रमादाथ मारोपितो दीप इव रथ्यायामिति दीपकसाम्याद्दीपकम। (पृ० ५२)

१५८ वीप्सा

भिखारीदास

भिखारीदास न शब्दालकार प्रसग म लाटानुप्रास क पश्चात वीप्मा अलकार का वणन किया है। इसका मौलिक अलकार कहना चाहिए। वीप्सा का लक्षण है—

एक शब्द बहु बार जहँ अति आदर सो होइ।
ताहि वीपमा कहत है कवि कोविद सब होइ ॥१९।८२॥

यदि वणन म एक ही शब्द की अनेक बार आवत्ति उस शब्द को आदर (महत्व) प्रदान करने के लिए होती उस सौन्दय को 'वीप्सा' अलकार कहत हैं।

भोज न सरस्वती कठाभरण के द्वितीय परिच्छेद म अनुप्रास के प्रसग म 'द्विरुक्ति' का वणन करते हुए 'वीप्सा' को द्विरुक्ति का एक आधार बतलाया है—

स्वभावतश्च गौण्या च वीप्साभीक्ष्ण्यादिभिश्च सा।
नाम्ना द्विरुक्तिभिवाक्ये तदनुप्रास उच्यते ॥९९॥

और फिर 'स्वभावत' एव गौण्या द्विरुक्ति के अनन्तर वीप्सा द्वारा द्विरुक्ति के उदाहरण दिये हैं। उनम से प्रथम उदाहरण 'द्रव्यवीप्सा' का है—

शैले शैले न माणिक्य मौक्तिक न गजे गजे।
देशे देशे न विद्वास, चन्दन न वने वने॥ (पृ० ९८)

भोज का वणन बहुत विस्तृत है उस अलकार रूप मे विवेचन नही कर सकते। स्मृ

'वीप्सा अलकार का वर्णन दास कवि का मौलिक प्रयास है। इसका कवल एक उदाहरण दिया गया है जिसके दो चरण हैं—

जानि जानि आयो प्यारो प्रीतम विहारभूमि,
छानि छानि फूल फूल सेजहि सवारती।
दास दृगकजनि वदनसार ठानि ठानि,
मानि मानि मगन सिंगारनि सिंगारती ॥ (पृ० १८३)

(ङ) मुरारिदान द्वारा उद्भावित नवीन अलकार

१५६ अतुल्ययोगिता

मुरारिदान

'जसवन्त जसोभूषन के अस्सी अर्थालकारो म कम स कम बारह अलकार नये हैं—अतुल्य योगिता अनवसर अपूर्वरूप, अप्रत्यनीक, अभेद, आभास नियम, प्रतिमा, मिष, विकास, सकोच सस्कार।[1]

इनम से प्रतिमा और 'अभेद' अलकार शोभाकर मित्र के अलकार रत्नाकर म इन्ही नामो से[2] मिलते हैं आभास नाम शोभाकर मित्र म 'विध्याभास' सन्देहाभास तथा 'विकल्पाभास' नामो म पाया जाता है। अप्रत्यनीक अलकार यशस्क के अलकारोदाहरण म प्राप्त है सस्कार' अलकार यशस्क म 'अभ्यास'[3] नाम से पाया गया है। इन दोनो पुस्तको का उल्लेख मुरारिदान न अपने ग्रन्थ म किया है। इन अलकारो म कुछ तो दूसरो से आये हैं और कुछ अन्य अलकारो की अपेक्षा से लिख गये हैं।

'तुल्ययोगिता म प्रस्तुतो अथवा अप्रस्तुतो के एक ही साधारण धर्म का एक बार कथन होता है। 'अतुल्ययोगिता इसके विपरीत है। विपरीत हुआ—प्रस्तुतो तथा अप्रस्तुतो के एक ही सामान्य धर्म का एक बार कथन यह दीपक' बन गया। दूसरे प्रकार से विपरीत हो सकता है—प्रस्तुतो अथवा अप्रस्तुतो के अनेक (अलग अलग) धर्मों का कथन। उदाहरण से यही पिछली व्याख्या कवि की अभीष्ट जान पडती है—

मेघमाल जल अल्प दे विरल जु फल तरु पत।
कलि प्रभाव कम दान में, भया न नृप-जसवत ॥

यहा नृप-जसवत प्रस्तुत है। 'मेघ माल तथा 'तरु पक्ति' दो अप्रस्तुत हैं। कवि ने दो

---

१ हिन्दी अलकार साहित्य पृ० २१२।
२ अलकार रत्नाकर पृ० १४ ३८।
३ वही पृ० ८६ ८८ ८९।
४ सस्कृत साहित्य का इतिहास (पोद्दार) पृ० १९८ द्वितीय भाग पृ० १०० १०१।
५ सस्कार अलकार का समन्वय करते हुए मुरारिदान ने लिखा है कि 'नायक अपने स्नेह वाली परकीया नायिका के घर जान के अति अभ्यास जनित वासनावश से छोडकर न जाने पर भी उसके घर चला जाता है।

अप्रस्तुतो म दो अलग अलग धर्मो ('जल अल्प' तथा 'विरल फल') का कथन किया है। परन्तु यदि एक ही अप्रस्तुत हो, तो क्या दशा बनेगी ? उस उदाहरण म चमत्कार व्यतिरेक का होगा दीपक तुल्ययोगिता अथवा अतुल्ययोगिता का नही।

१६० अनवसर

मुरारिदान

रुद्रट के अनुसार किसी विशेष[1] अर्थ के कथन द्वारा वर्ण्य अर्थ को उत्कृष्ट अथवा सरस बनाने को अवसर अलकार कहते हैं। उदाहरण है—

तदिदमरण्य यस्मिन दशरथ-वचनानुपालनव्यसनी।
निवसन बाहुसहायश्चकार रक्ष क्षय राम ॥७।१०४॥

यहा राम-कथा के अभिधान प्रसग से वर्ण्य अरण्य के प्रति भावना के अतिरेक का चित्रण है।

'अवसर का विपरीत 'अनवसर है जिसमे अन्यार्थ का आकस्मिक कथन वर्ण्य को क्षति पहुँचाता है। नायिका को विरहविदग्ध छोडकर जसे ही नायक परदेश चलने लगा (वर्ण्य) कि अकस्मात तूती पक्षी ने तूही-तूही बोलना (अन्यार्थ) प्रारम्भ कर दिया और नायक आशकित हो कर जाने से रुक गया—

जौ लौ परदेसी मनभावन विचार कीन्हो
तौं लौं तूती प्रकट पुकारी है तुही तुही।

यहा तू ही नायिका का प्राणघाती होगा ऐसा तूती पक्षी का बोलना अनवसर पर हुआ इसलिए अनवसर अलकार है।'[2]

इस अलकार मे विशेष आकर्षण नही दिखलाई पडता। केवल आकस्मिकता ही काव्य का सौदर्य नही है।

१६१ प्रतिमा

मुरारिदान

शोभाकर ने 'प्रतिमा' अलकार का लक्षण दिया है—

अन्यधर्मयोगाद आर्थमौपम्य प्रतिमा॥१३॥

अत्र हि वस्त्वन्तरसबन्धिना धर्मो प्रकृतिसम्बन्धितयत्व उपनिबध्यते। वस्त्वन्तर सम्बन्ध स्वन-सामर्थ्यादिनावसेय[3]।

---

१ अर्थान्तिरमत्कृष्ट सरस यदि वोपलक्षण क्रियते।
यथस्य तदभिधानप्रसगतो तत्र सोऽवसर ॥७।१०२॥

२ जसवन्त जसोभूषन प १२१।

३ अलकार रत्नाकर प १४।

एव उदाहरण की सस्कृत छाया निम्नलिखित है—

अगे पुलकम्, अधर सकपित, जल्पित गमीतरारम्।
सख {शिशिरेण कृत यत्सत्य प्रियतमन ॥

मुरारिदान 'प्रतिमा' अलकार की व्याख्या इस प्रकार करते हैं—'प्रतिनिधि का पर्याय प्रतिमा है। मुख्य के अभाव म मुख्य के सदृश जो ग्रहण किया जाता है उसको प्रतिनिधि कहते हैं। जसे देवताओ क अभाव म देवताओ की मूर्ति रखी जाती है उसका प्रतिमा कहत हैं। इस लोक-व्यवहार की छाया से चोरी न इस अलकार का अगीकरण किया है।'[1]

प्रतिमा के उदाहरण मे यह दोहा दिया गया है—

हा जीवति हों जगत म अलि याही आधार।
प्रानप्रिया उनिहार यह, ननदी-वदन निहार॥

यहाँ ननद को पति के स्थानापन्न कर लिया गया है वह उसकी प्रतिमा है। "यहाँ विदेशस्थ पति के अभाव म पति के सदृशाकार होने से ननदी को नायिका ने पति के स्थानापन्न किया है।"[2]

शोभाकर के उदाहरण म जो सौन्दय था वह मुरारिदान के उदाहरण म न आ सका। भाई बहन चाहे जितने एक समान हो, विरहिणी नायिका प्रियतम की बहिन को देख-देखकर दिन नही काट सकती। शोभाकर न जब वस्त्वन्तरसम्बन्धस्वय सामर्थ्याद् लिया था तो उनके समक्ष कवि प्रतिभा वर्जिता प्रतिमा की आशका थी जिसके उदाहरण मुरारिदान हैं। जसवत जसोभूषन के अधिकतर नवीन अलकार इसी कवि प्रतिभा के अभाव से पीडित हैं सबका विश्लेषण अनावश्यक ही है।

(च) भगवानदीन द्वारा उद्भावित नवीन अलकार

१६२ विपरीतक्रम

भगवानदीन

'अलंकार मञ्जूषा' म भगवानदीन न क्रम अलकार के तीन भेदो का वणन किया है—यथाक्रम भगक्रम तथा विपरीतक्रम।

'यथाक्रम तो क्रम या यथासख्य अलकार ही है। भगक्रम को फारसी म 'तर्पोशर गर मुरत्तब' कहते है, यह सस्कृत हिन्दी म दोष माना गया है अलकार नही, क्योकि यथाक्रम' तथा 'भगक्रम दोनो ही शोभावद्धक अलकार नही हो सकते। 'विपरीतक्रम लेखक की अपनी सूझ है, परन्तु इसम कोई विशेष चमत्कार तो दिखाई नही पडता।'[3]

---

१ जसवन्त-जसोभूषन पृ० १७२।
२ वही पृ १७३।
३ हिन्दी-अलकार साहित्य पृ० २२४।

लेखक ने निम्नलिखित उदाहरण दिया है—

राज्य नीति बिनु धन बिनु धर्मा। हरहि समर्पे बिनु सतकमा॥
विद्या बिनु विवेक उपजाय। श्रम फल पढ़े किये, अरु पाये॥

राज्य धन सत्कर्म तथा विद्या यदि क्रमश नीति धर्म, हरिसमर्पण तथा विवेक से रहित है तो विपरीत क्रमश उन चारो का पढना करना, प्राप्ति तथा फल (भोग), श्रम ही है।

यह ठीक है कि विपरीतक्रम एक दोष है परन्तु यदि परिस्थितिविशेष में यह सौन्दर्यजनक बन गया तो वहा इसको अलकार कह सकते हैं। कोई भी विशेषता शोभाकर होने से अलकार कहलाती है। सूर का एक पद है—

कोउ व्रज बाचत नाहिन पाती।
कत लिखि लिखि पठवत नदनदन कठिन विरह की काती।
नयन सजल कागद अति कोमल, कर अगुरी अति तातो
परसत जर विलोकत भीज—दुहू भाति दुख छाती॥

अंतिम चरणो में इसी विपरीत क्रम का सौन्दर्य है। कागद अति कोमल (एव) कर-अगुरी अति तातो (अत) परसत (पाती) जर नयन सजल (अत) विलोकत (पाती) भीजै।'

(छ) रामशकर शुक्ल रसाल द्वारा उद्भावित नवीन अलकार

१६३ सत्याध्यवसिति

रसाल

अलकार पीयूष में तीन नवीन अलकारो की कल्पना है— सत्याध्यवसिति', 'विशेषको न्मीलित' तथा 'गर्वोक्ति'।

सत्याध्यवसिति' की कल्पना मिथ्याध्यवसिति[1] के 'विलोम रूप' में की गई है। इसका लक्षण है—

जहा किसी सत्य बात की सत्यता को स्थापित करने के लिए कोई ऐसी सत्य बात कही जाव जिसकी सत्यता सब प्रकार प्रसिद्ध ही हो।[2]

डा० रसाल के अनुसार इसके तीन अन्य रूप भी हैं—

(क) जहा किसी सत्य बात को मिथ्या करने के लिए कोई मिथ्या बात इस प्रकार कही जावे कि वह सत्य ही सी लगती हुई बात को मिथ्या कर दे।

(ख) जहाँ किसी मिथ्या बात को सत्य करने के लिए कोई एसी सत्य (या मिथ्या) बात कही जावे जिसमें सन्देह न हो और जिसमे वह सत्य बात मिथ्या-सी ही हो जावे।

(ग) जहाँ किसी मिथ्या बात को (जिसे कोई सत्य सा दिखला रहा है) उसके विरोधी सत्य बात के द्वारा मिथ्या ही सिद्ध किया जावे।

---

१ मिथ्याध्यवसिति पर जगन्नाथ की टिप्पणी से रसाल जी ने लाभ उठाया है। दे मिथ्याध्यवसिति का इस ग्रन्थ में विवेचन।

२ अलंकार पीयूष उत्तराध, पृ० २४७।

इस अलकार के उदाहरण नही दिय गय। तथापि तर्कों के आधार पर एसा लगता है कि सीमित क्षेत्र म ही सही, इस सौन्दय म आकपण अवश्य है।

१६४ विशेषकोमीलित

रसाल

अलकार-पीयूष' का दूसरा नवीन अलकार विशेषकोमीलित है। इसकी कल्पना उन्मीलित एव विशेषक अलकारा के वणन स प्रेरणा प्राप्त करक हुई है।

'जहाँ मीलित म किसी हेतु स कुछ भेद या अन्तर जान पडे वहा उन्मीलित और जहा किसी कारणवश सामान्य म कुछ भेद वस्तुओ के आकार म जान पडे वहाँ विशषक कहना चाहिए।

"जहा विशेषक और उन्मीलित दोना ही अन्तर प्रकट करत हुए परस्पर मिलकर एक प्रकार का मिश्रालकार उत्पन्न करत है वहाँ विशेषकोमीलित माना जाता है।' (अलकार-पीयूष, उत्तरार्द्ध, पृ० ३०९)

लक्षण निम्नलिखित दोहे म दिया गया है—

जहाँ विशेषक उन्मिलित, मिल भेद दरसाय।
कहुँ विशेषकोमीलित तह, कह रसाल कविराय॥

उदाहरणस्वरूप एक दूसरा दाहा रसाल जी न दिया है—

ससि म मुख म भेद कछु नेक न परत लखाय।
बिन कलक अरु बास तें सिय मुख जाना जाय॥

इस अलकार का चमत्कार इस मान्यता पर निभर है कि मीलित उन्मीलित अलकारा का आधार रग रस और गन्धादि गुण हैं और सामान्य विशेषक अलकारा म वस्तुओ के आकार का ही विशेष प्रधानता दी जाती है। (पृ० ३०९)

१६५ गर्वोक्ति

रसाल

अलकार पीयूष का तृतीय नवीन अलकार गर्वोक्ति है। रसाल जी न इसका वणन बड विस्तार स किया है (पृ० ३६६ स ३७० तक)।

जहा कोई कवि या अन्य व्यक्ति गव एव अहकार (अहम्मन्यता) क साथ कुछ कहता है वहा गर्वोक्ति अलकार मानना चाहिय।[1] सामान्यत इसके तीन रूप पाय जात हैं—

(क) सिंहनाद— अपन ही विषय म गवपूण प्रशसात्मक वाक्य '—
मुनि रतनाकर की रसना रसीली नकु

---

[1] अलकार पीयूष उत्तराद्ध पृ ३६६।

ढीली परी बीरहि सुरीली करि ल्याऊ मैं।

(ख) वस्त्राविनमूना— अपन पिता एव गुरु आदि की गवपूण प्रशसा करता हुआ इससे अपनी महत्ता का स्थापित करना —(पृ० ३६७)

जारि जुग पानि गुरुवर श्री रमाल जू का

जिनरा दुलारो प्यारा अनुज कहाऊ मैं। (मरम कवि)

(ग) किसी अन्य व्यक्ति (जो मान्य एव प्रतिष्ठित होना ?) की आर स उनक लिए कही ' गइ उक्ति—

आवति गिरा है रतनाकर निवाजन कौं ।

गर्वोक्ति अलकार के दा प्रकार दन्याक्ति तथा प्रसादोक्ति हैं इनका हम ध्वन्यात्मक एव व्यग्यात्मक रूप मान मकत हैं। (पृ० ३६८)

दन्योक्ति म दैन्य भाव स ही अपना गौरव स्थापित किया जाता है। उदाहरण म रघुवश का श्लोकाध दिया है— मन्द कवियश प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्।

प्रसादोक्ति— जहा कवि अपनी उन्नति एव प्रतिष्ठा आदि का दिखलाता हुआ उस अपन किसी गुरुजन या इष्टदव की कृपा का ही फलस्वरूप कहता है" (पृ० ३७०)।

घर घर माँगि टूक पुनि भूपति पूज पाय।

त तुलसी तब राम बिन त अब राम सहाय॥

(ज) विहारीलाल भट्ट द्वारा उद्भावित नवीन अलकार

१६६ दीपयोग

विहारीलाल भट्ट

साहित्यसागर की एकादश तरग म दीपक क समस्त भेदा का वणन करन के पश्चात विहारीलाल न 'दीपयाग' नामक एक नवीन अलकार की कल्पना की है। लक्षण इस प्रकार है—

रच एक पद यमक की एक दीप का धार।

दीपयाग भूषन तिन्हें, बरनन कियौ विहार॥

व्याख्या मे स्पष्ट किया गया है—

जहा क्रियावाची पदा की आवत्ति हाती है वहा दीपकावत्ति एव जहा अक्रिया पद की आवृत्ति हाती है, वहाँ यमक हाता है। किन्तु जहा एक पद यमक और एक पद दीपकावत्ति का मिलकर आवृत्ति रूप स आय वहा दीपयोग' नाम का अलकार होता है।

(साहित्य-सागर पृ० ४२२)

उदाहरण दो हैं एक कवित्त दूसरा दोहा। दोनो के अतिम चरणा म यह सौन्दय है—

(क) कीजिए बखान का जहान की विचित्र बात

जगत नही है, तऊ जगत कहाव है।

(ख) आ, तुर प आनद घन, आतुर करी सम्हार॥

इस अलकार पर कवि की टिप्पणी भी है—'सकर-समृष्टि मे पूरे-पूरे अलकारो का मेल होता है, और यह अथयोग से होता है, यही इमम अन्तर है।'

इस अलकार की दो विशेषताएँ है—(क) क्रियापद (दीपक का आधार) तथा अक्रिया पद (यमक का आधार) दोनो का योग अर्थात मिश्रण, (ख) आवृत्ति पदो की विशेषता जानने के लिए अथ की सहायता—अथयोग।

हमको पुरानी समीक्षा से ही सहमत होना पडता है कि 'जिसे बिहारीलाल जी दीपयोग अलकार कहते है, वह अथालकार भी नही शब्दालकार है। यहाँ चमत्कार यमक का ही है।'[1]

१६७ गुणोक्ति

बिहारीलाल भट्ट

उल्लास, अवज्ञा अनुज्ञा, तिरस्कार तथा लेश अलकारो के उपरान्त 'साहित्यसागर' मे 'गुणोक्ति' अलकार की कल्पना की गई है। जहा अनेक गुण छोडकर एक को एक ही गुण से श्रेष्ठता दवे वहा गुणोक्ति अलकार होता है।[2] लक्षण है—

बहुगुन तजि जहँ [एक को इक गुन गुरता देय।
कवि 'बिहार' गुन उक्ति तहँ भूपन चित धरि लेय॥

उदाहरण सरल एव स्पष्ट है—

कामिनी वही है जाकी प्रीति निज प्रीतम सो,
जामिनी वही है जामे जोति है जुन्हाई की।

भट्ट कवि ने इस अलकार पर टिप्पणी भी लिखी है—

इस भाव की कविता कुछ कुछ पहले भी हुई किन्तु इसम प्रधान रूप से कोई अथ अलकार स्पष्ट घटित नहा हाता है। इसा कारण इस भाव क लिय हम यह गुणोक्ति नाम का अलकार नवीन निर्माण करना पडा।

यह चमत्कार अत्यन्त साधारण है इसालिए इसकी आर प्राचीनो का घ्यान नही गया है। इमम कोई विशेष चमत्कार ता लक्षित नही होता'—कथन का भी यही अभिप्राय है कि इसम चमत्कार तो है, परन्तु अत्यन्त साधारण।

(झ) कन्हैयालाल पोद्दार द्वारा उद्भावित नवीन अलकार

१६८ अपरिवृत्ति

पोद्दार

कन्हैयालाल पोद्दार न अलकार मजरी म परिवृत्ति अलकार का वणन करते हुए प्रसग

---

१ हिन्दी-अलकार-साहित्य पृ० २३६।
२ साहित्यसागर पृ० ४८५।
३ हिन्दी अलकार-साहित्य प० २३६।

वश 'अपरिवृत्ति' अलकार की कल्पना[1] की है। यद्यपि 'अपरिवृत्ति' का पूर्वाचार्यों ने निरूपण नही किया है परन्तु इस अपरिवृत्ति मे चमत्कार होने के कारण अलकार मानना उचित अवश्य है।"[2]

पोद्दार ने इस अलकार की कल्पना 'परिवृत्ति' अलकार के विपरीत सौन्दर्य के लिए की है। उनके तर्क साधारण हैं और पाठक को इस नये अलकार की स्वीकृति के लिए फुसलाते हैं। उन्ही के शब्दो मे देखिए—

> अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेक सयानप बाक नही।
> तहाँ साँचे चलै तजि आपुनपौ झझकै कपटी जो निसाक नही।
> "घन आनद" प्यारे सुजान सुनौ इत एक तें दूसरो आँक नही।
> तुम कौन धौं पाटी पढे हो लला मन लेत हो देत छटाँक नही॥"

'यहाँ मन (चित्त अथवा श्लेषार्थ 'तोल मे एक मन — मणभर) लेकर बदले मे छटाक भी न देना कहा है। परिवृत्ति मे कुछ लेकर बदले मे कुछ दिया जाता है। यहाँ इसके विपरीत है। अत. ऐसे वर्णनो मे 'अपरिवृत्ति' अलकार माना जा सकता है।

(अलकार मजरी पृ० ३३९)

इसमे कोई सन्देह नही कि इस अलकार का चमत्कार आकर्षक एव प्रभावशाली है। इसको स्वतन्त्र अलकार मानना चाहिए।

(ग) पाश्चात्य अलकार

जगन्नाथ प्रसाद भानु ने अपने ग्रन्थ 'काव्य प्रभाकर' (स० १९६६ वि०) मे काव्यशास्त्र का आधुनिक शैली से प्रतिपादन किया। ग्रन्थ की प्रस्तावना मे अट्ठाईस पारिभाषिक शब्दो के अग्रेजी पर्याय दे दिये गये हैं जिनमे कम से कम सात पर हमारा ध्यान, इस प्रसग मे, जाता है। ये शास्त्रीय शब्द एव इनके अग्रेजी पर्याय निम्नलिखित हैं—

अनुकरणवाचक शब्द	ओनोमैटोपीया
अजहत् लक्षणा	मटोनमी
उपलक्षण	सिनैकडोकी
चेतनधर्मोत्प्रेक्षा	पर्सोनिफिकेशन
निदर्शना	ट्रासफर्ड एपीथैट
सार	क्लाइमैक्स
भाविक	प्रोसोपोपीया

यह प्रस्तावना (अग्रेजी भाषा मे लिखी हुई) अग्रेजी अधिक एव हिन्दी कम जानने वाले सज्जनो के लिए तो है ही, हिन्दी अधिक एव अग्रेजी कम जानने वालो के लिए भी है। यही से,

१ हिन्दी-अलकार साहित्य प० २४०।
२ अलकार-मजरी पृ० ३३९।

छह दशाब्दी पूव, हिन्दी म पाश्चात्य अलकारशास्त्र एव पाश्चात्य अलकारा की चचा प्रारम्भ हो गई। भगवानदीन की अलकारमजूषा (स० १६७३ वि०) म कुछ अलकारा की तुलना फारसी तथा अग्रेजी स कर दी गई है, भानुकवि म इसके बीज थ परन्तु इसका पल्लवन इसी पुस्तक के कुछ अलकारा के प्रसग म दष्टिगोचर होता है।[1] एक ओर श्यामसुन्दरदास ने अग्रेजी पुस्तका की सहायता स हिन्दी म समीक्षा एव भाषा विज्ञान की पुस्तकें लिखी तो दूसरी ओर रामचन्द्र शुक्ल छायावादी कविता का परखन के लिए उस पर विदेशी प्रभाव खाजने लग—जा अनुभूति एव अभियक्ति दोनो पर था। अस्तु, अग्रेजी के कुछ अलकारो की व्याख्या हिन्दी अलकारशास्त्र के लिए अनिवाय हो गई। प्रतिनिधि रूप म हम रामदहिन मिश्र के 'काव्यदपण (प्रथम सस्करण सन १९४७ ई०) को ले सकते हैं। इसक अन्तिम अध्याय म पाश्चात्य अलकार, हिन्दी-अलकारा के पूरक बनकर वर्णित हैं।

'कायदपण म कवल तीन पाश्चात्य अलकारा का वणन है। ये सबसे लोकप्रिय हैं और इन अलकारा का आधुनिक कविया ने हृदय से अपना लिया है[2]।

१६९ मानवीकरण (पर्सोनिफिकेशन)[3]

पर्सोनिफिकेशन स मानवीकरण का अभिप्राय ह। भावनाआ म मानवगुणो—उसके अगो के कार्यों—का आरोप करना। (पृ ४३०)

'जीवन का सिसकी भरना, मृत्यु का नाचना, अमरता का मुसकाना विलक्षण मानवीकरण है।'

'प्रात काल का हँसना, रोली छीटना, लहरो का मचलना, कलियो का कहना आदि मानवीकरण है।' (पृ० ४३१)

१७० ध्वन्यथ व्यजना (ओनोमैटोपोयीआ)[4]

'ध्वन्यथव्यजना अलकार का अभिप्राय काव्यगत शब्दो की उस ध्वनि से है जो शब्द सामथ्य से ही प्रसग और अथ का उदबोधन कराकर एक चित्र खडा कर देती है।

डिगति उर्वि अति गुर्वि को लिखकर यह बतलाया गया है कि इस प्रसग की तुलसीदास की इन पक्तियो की भाषा ध्वनि ही ऐसी है कि उससे दिग्दिगन्त ही तक विकल नही होता बल्कि पढने-सुनने वाले के मन म भी आतक पदा हो जाता है। (पृ० ४३२)

---

१ हिन्दी-अलकार-साहित्य पृ० २२३।

२ काव्य दपण पृ० ४३०।

३ जगन्नाथप्रसाद भानु ने काव्यप्रभाकर की प्रस्तावना मे पर्सोनिफिकेशन का चेतन धर्मोत्प्रेक्षा नाम दिया था।

४ जगन्नाथप्रसाद भानु ओनोमैटोपीया को अनुकरणवाचक शब्द कहते हैं। (काव्य प्रभाकर, प्रस्तावना)

१७१ विशेषण-विपर्यय वा विशेषण-व्यत्यय

रामदहिन मिश्र ने विशेषण विपर्यय का वर्णन सुधांशु जी के उद्धरण द्वारा किया है—

"किसी कथन को विशेष अर्थगर्भित तथा गम्भीर करने के विचार से विशेषण का विपर्यय कर दिया जाता है। अभिधावृत्ति से विशेषण की जहाँ जगह है वहाँ से हटाकर लक्षणा के सहारे उसे दूसरी जगह बैठा देने से काव्य का सौष्ठव कभी-कभी बहुत बढ़ जाता है। भावाधिक्य की व्यंजना के लिए विशेषण विपर्यय अलंकार का व्यवहार बहुत सुन्दर है।" (पृ० ४३३)

जगन्नाथ प्रसाद भानु ने 'निदर्शना' नाम से ट्रांसफर्ड एपीथेट का वर्णन किया था। वस्तुतः भानु का दिया हुआ कोई भी नाम आगे चलकर स्वीकृत न हुआ। छायावादी समीक्षा के सम्बन्ध में अंग्रेजी अलंकारों के नये नाम चल पड़े। रामदहिन मिश्र उन्हीं प्रचलित नामों को अलंकार-रूप में स्वीकार करते हैं।

परिशिष्ट

पिछले चार सौ वर्षों में हिन्दी भाषा के माध्यम से काव्यशास्त्र का जो निरन्तर चिन्तन शिक्षण चलता रहा, उसका अधिकतर परिणाम अलंकार विषय की रचनाओं की भरमार है। न जाने कितने कवियों ने इस विषय पर लेखनी चलाई होगी? परन्तु न प्रत्येक रचना में मौलिकता है और न प्रतिपद पर मौलिकता का अर्थ नवीन अलंकारों की खोज है। जो प्रथम श्रेणी के आचार्य हैं उनका महत्त्व भी निर्भ्रान्त व्याख्या एवं उपयुक्त उदाहरणों में है। जो साधारण हैं वे सरस उदाहरण बनाकर अपने को कृतकार्य समझ लेते हैं। भिखारीदास श्रेष्ठ आचार्य हैं उनकी विशेषता भाषा की प्रवृत्ति का ध्यान में रखकर स्पष्ट व्याख्या में है, लक्षणों में मौलिक चिन्तन है, भेदों का विस्तार है, एवं ग्रहण-त्याग का विवेक है। यदि यह प्रश्न किया जाय कि उन्होंने कितने नवीन अलंकारों की कल्पना की तो उत्तर सन्तोषजनक नहीं होगा।

अस्तु, इस दीर्घ काल में अनेक अलंकारों का जन्म नहीं हुआ। जो जन्मे हैं उनमें से प्रत्येक का विवेचन द्वारा महत्त्व देने की आवश्यकता भी नहीं है। जिन अलंकारों को इस योग्य समझा गया है, उनका विवेचन हो चुका है। जो छोड़ दिये गये हैं या जिनके विषय में अभी तक ज्ञात नहीं हो सका, उनका भी अपना महत्त्व अवश्य है। रघुनाथ कवि के 'प्रेमात्युक्ति', रसरूप के 'धन्यता एवं निर्णय', एवं जगतसिंह के 'हृद्वृति' आदि का न तो विवेचन है और न खण्डन। 'प्रेमात्युक्ति कवि के अत्युक्ति के प्रति मोह का परिणाम है आगे चलकर भगवानदीन' ने तो अत्युक्ति के और भी अनेक भेदों का वर्णन किया है। 'धन्यता एवं 'निर्णय' में कोई नवीनता नहीं मिली, और 'हृद्वृति' का संकेत अन्यत्र मिल जाता है।

आधुनिक युग में सबसे अधिक अलंकारों की कल्पना मुरारिदान ने की। हमने यह देखा है कि उस कल्पना में मौलिकता कम है पर प्रभाव अधिक। तीन अलंकारों पर हमने विचार किया

---

१ हिन्दी-अलंकार-साहित्य पृ० ३२४।

है, अथा को साधारण समझ कर छोड दिया है। भानुकवि ने अपह नुति का एक नया[1] भेद 'परिहारापह नुति' बतलाया है, जो नवीन होते हुए भी एक साधारण भेद मात्र है। अजुनदास केडिया ने अनुप्रास के एक नवीन भेद 'वण सगाई'[2] की चर्चा की है, परन्तु न उसको विवेचन कह सकते हैं और न कल्पना वह प्रादेशिक विशेषता मात्र है। रसाल जी ने अलकारो का बडा सूक्ष्मएव वज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है परन्तु नव निर्माण कम है, ऊपर उनके तीन मौलिक अलकारा का प्रसग आ गया है। गद्य-युग मे लिखी गई पुस्तको म स सबस अधिक ख्याति भगवानदीन की 'अलकार मजूषा एव कन्हैयालाल पोद्दार की 'अलकार मजरी को मिली, इन दोना मे साधिकार एव प्रामाणिक विवेचन हैं, नवीन कल्पना नही। रामदहिन मिश्र का 'काव्य दपण नवीन उदाहरणो के कारण लोकप्रिय है परन्तु उनका अलकार विषय दुबल है, हमने उस पुस्तक के 'पाश्चात्य अलकार' भाग को प्रतिनिधि रूप म ग्रहण किया है।

अत चार शताब्दियो के अलकार-साहित्य म नवीन-अलकारा ऐस नवीन अलकारा जिनम चमत्कार है—की खोज उत्साहवधक ता नही, परन्तु निराशाजनक भी नही हैं।[3] इसम से ग्रहण-त्याग कवल सौन्दय-योग की दष्टि म रखकर ही किया गया है।

---

१ हिन्दी-अलकार-साहित्य पृ० २२०।

२ भारती भूषण प० १६।

३ केशवदास तथा भिखारीदास तथा अन्य एकाध आचार्यों ने अवश्य ही कुछ मौलिकता दिखाई है और विकास सिद्धान्तों का अनुसरण किया है।"

(अलंकार-पीयूष, पूर्वार्द्ध, पृ० १२४)

उपसहार

(एक)

मानव की सौंदय-साधना अनादि काल से चली आ रही है। वह अपनी सुन्दरतम अनुभूति को सुन्दरतम बनाकर अभिव्यक्त करना चाहता है। कवि की यह तीव्र लालसा होती है कि जो अनुभूति उसके अन्तस्तल में जिस रूप में उदित हुई है उसी रूप में वह उदित अनुभूति सहृदयों को वहन कर। जब कवि का शोक श्लोक म परिणत हो जाता है तो वह प्रथम तो 'का न्वस्मिन साम्प्रत लोक' की तत्परता से किसी महत की खोज करता है और फिर उसके चरित को इस रूप म प्रकट करता है कि वह तावत्[1] स्थायी रहे। कवि कम की साधना के ये दोनों चरण वस्तुत आगे-पीछे चलते हुए दिखलाई पडकर भी एक ही प्राण से स्पदित हैं इनमें कौन सा चरण आगे है और कौनसा पीछे यह कहना कठिन अथवा अनुचित है।

सौदय के उपकरण किसी प्राण से स्पदित होकर हो तो उस प्रकार के लगते हैं। यदि मनोवैज्ञानिक सूत्रों की सहायता से अध्ययन किया जाय तो सौंदर्योपकरण भी हमको कवि तथा उसके जगत का उतना ही यथार्थ चित्र प्रदान कर सकते हैं जितना कि कवि के भाव तथा विचार। अलकारों की सामग्री ही नहीं शैली भी इस प्रकार, समीक्षा का एक ठोस आधार बन जाती है। काव्य के इतिहास के समान ही काव्योपकरणों के विकास का इतिहास रोचक एव उपयोगी है। किस युग का कवि कौन से उपकरणों की सहायता लेता था यह सूत्र युग प्रतिबिम्ब को चित्रित करता है और उसमें भी अधिक वह व्यक्ति का हृच्चित्र (कार्डियोग्राम) प्रस्तुत करता है—यथार्थ स्पष्ट एव निर्भ्रान्त। युग की पृष्ठभूमि म निर्मित होकर भी यह चित्र व्यक्ति के स्पन्दन की गति का कदाचित सबसे विश्वसनीय प्रमाण है।

युग प्रतिबिम्ब का ग्रहण हम अलकारों के स्वरूप एव विकास अथवा स्वरूप के विकास से भी कर सकते हैं। गार्ग्य ने यद्यपि एकमात्र उपमा अलकार का विवेचन किया था और यास्क ने भी उसी एक की व्याख्या की है तथापि वह युग अलकारों के उस स्वरूप से परिचित अवश्य रहा होगा जिसको काव्य-लोक (काव्य एव लोक) से भरत ने ग्रहण कर लिया और अपनी सीमाओं को जानकर उन्होंने पाठकों को सम्मति दी कि वे भी स्वयमेव काव्य-लोक से उसी प्रकार सौन्दय बिन्दुओं का चयन करें।

भरत ने तो नहीं लिखा परन्तु किसी न किसी रूप में वे यह जानते थे कि शब्दार्थ ही काव्य है—जिसका स्पष्ट उल्लेख पीछे भामह ने कर दिया।[2] शब्द चमत्कार का नामकरण यमक पद

[1] यावत स्थास्यन्ति गिरय सरितश्च महीतले।
तावत रामायण-कथा लोकेषु प्रचरिष्यति॥

[2] शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्॥ (भामह)

से हुआ—'शब्दाभ्यासस्तु यमकम्' । जिस प्रकार पश्चिम के 'पन' के भीतर शब्द की अनेक सौदय विधाएँ आ जाती है—'एलीटरेशन' भी उसी प्रकार 'यमक' के भीतर समस्त 'शब्दाभ्यास' आ जाता था, उत्तर आचाय विश्वनाथ का 'श्रुत्यनुप्रास' तक भरत के 'यमक' का नामान्तर-मात्र है, यह हम अपने अध्ययन मे ऊपर देख चुके हैं। यमक ही अनुप्रास बना, यमक ही श्लेप कहलाया यमक ही भाषासम एव अन्त्यानुप्रास है, यहा तक कि वक्रोक्ति एव पुनरुक्तवदाभास भी भरत के यमक के ही रूपान्तर हैं । वशवद्धि के साथ-साथ पीढियाँ अलग स्वतन्त्र एव विख्यात होती चली गइ, जो लोक गति का सहज क्रम है । आज भी यमक के वशजो मे यमक के वशानुगत गुण देखे जा सकते है ।

'शब्दाभ्यास के पश्चात अर्थाभ्यास' पर आइए तो वर्ण्य के स्पष्टीकरण के लिए अवर्ण्य की आवश्यकता पडती है । 'राम बडे गभीर तथा धीर हैं यह वाक्य सौदय के अभाव मे मन पर कोई विशेष छाप नही छोडता, न जाने कितनी बार इस प्रकार के इतिवृत्त-वाक्य मनुष्य प्रतिदिन सुनता है । वातावरण मे वायु सदा विद्यमान है, परन्तु जब तक यह शीत अथवा उष्ण वेगवान अथवा उपद्रवी नही होता, तब तक हमको यह कहा पता लगता है कि हम वायु मे रह रहे हैं—वह हमारे श्वास, अत जीवन का सचार कर रहा है । इसी प्रकार गुण-कथन को एक रूप—एक परिचित रूप—के सन्दभ म देखना होता है । 'राम ऐसे गभीर है जसा समुद्र राम ऐसे धीर है जैसा हिमालय '—इस अभिव्यक्ति को सुन्दर अथवा सालकार कहा जायगा, यह प्रभावशाली है इसमे अप्रस्तुत-योजना का उपयोग एव उपमा अलकार का प्रयोग है ।

अस्तु अथ का लोकप्रिय सौदय उपमा है । ऋषियो ने ऋचाओ की व्याख्या के लिए इस रूप को पहिचाना और इसको एक नाम दे दिया आदि आचाय रूप से नाम पर पहुचते है और उत्तर आचाय 'नाम से रूप पर उतर कर उसकी व्याख्या करते हैं। उपमा जितना सामान्य है उतना ही लोकप्रिय भी जहाँ प्रस्तुत (तत्) का अप्रस्तुत (अतत) के रूप म चित्रण होगा, वहाँ उपमा अलकार होगा । गाग्य एव यास्क ने उपमा को इसी व्यापकतम रूप म लिया है न केवल यह सादृश्य का पर्याय है प्रत्युत प्रस्तुत अप्रस्तुत भाव का भी रूपान्तर है । शन शनै उपमा म शास्त्रीयता आती गई, उसके अनेक भेदो एव रूपो का कल्पित किया गया । भरत से लेकर आज तक के आचाय यही प्रयत्न कर रहे हैं कि अतिव्याप्ति अव्याप्ति-असभव दोषो से नि शक लक्षण देकर उपमा के स्वरूप का सुन्दर 'रूप पाठक के अन्तस्तल पर अकित कर सकें ।

कभी-कभी काव्य चित्र इतनी सन्निधि प्राप्त कर लेता है कि तत्-अतत का भेद ही लुप्त हो जाता है । चन्द्रमिव वदनम' कहकर भी अपनी अनुभूति का अतिरेक अकित न हुआ तो कवि ने चन्द्र-वदनम् ही कह दिया इसम अधिक और क्या कह सकते हैं यह समझा जाय कि मुख म चन्द्र के समस्त गुण हैं—छवि प्रसाद शान्ति माधुय । इस अभेद ने उपमा के क्षेत्र को सीमित करके इस नई शली को रूपक का नाम दिया रूपक का जन्म हो गया परन्तु उपमा

---

१ समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव ।

उपमा ही रहा। 'भेद के निरोहित हो जाने पर' उपमा ही रूपक कहलाती है, उसम 'रूप का आरोप' (अप्रस्तुत के रूप का प्रस्तुत के रूप पर आरोप) हो जाता है। उपमा और रूपक सबसे पुराने अलकार हैं, रूपक भी एक प्रकार की उपमा ही है परन्तु विशिष्ट प्रकार की होने के कारण इसका विशेष नाम हो गया है। उपमा से सन्तोष प्राप्त न करके ही कवि रूपक की शरण म जाता है उपमा मे रूपक म तीव्रता अधिक है उपमा से रूपक अधिक शास्त्रीय है। रूपक अधिक विकसित अलकार है अधिक प्रभावशाली। उपमा पर होकर ही कवि रूपक पर पहुचता है। निरुक्त मे उपमा के जितने उदाहरण दिय गय हैं उनम से कुछ तो रूपक के भी होंगे, इसम स देह नही।

अब हम शब्द और अथ को असम्पृक्त न देखकर 'शब्दाथ समूह' अर्थात वाक्य पर आते हैं। वाक्य का आधार क्रिया है। यदि एक क्रिया भिन्न भिन्न प्रसगो के शब्दार्थों का एकत्र सयोग करे तो यह सौन्दय उपयुक्त सभी सौन्दय रूपो से भिन्न है। जिस प्रकार से एक स्थान पर स्थित रहकर भी दीपक आगे पीछे दाये-बाये सवत्र आलोक फलाता है उसी प्रकार एक क्रिया वाक्य म एक स्थान पर स्थित रहकर नाना अधिकरणो के अथ वाले शब्दो[1] को सयुक्त करती है और 'दीपक' नामक अलकार का सौन्दय प्रत्यक्ष करती है। दीपक' का सौन्दय उपमा रूपक ही नही यमक के सौन्दय से भी अलग है यह शब्द अथवा अथ मात्र म नही पूरे वाक्य मे अवस्थित रहता है। दीपक' अलय का विकास नहीं *पूरक एव यमक के समान स्वतन्त्र है।* आगे चलकर जब दीपक का विकास हुआ तो उसम प्रस्तुत-अप्रस्तुत भाव का भी योग हो गया।

पूरे वाक्य म स्थित सौन्दय का लक्षित करने के पश्चात यह आवश्यक हो गया कि एक से अधिक वाक्यो म उलझे हुए सौन्दय पर विचार किया जाय। इस प्रकार की आवश्यकता न वाक्यो के *अलकारो* का जन्म दिया। आक्षेप' अलकार जिस वणन को लेकर चलता है, वह एक क्रिया तक सीमित नही रह सकता। इसी प्रकार अर्थान्तरन्यास दो वाक्यो स कम का सौन्दय नही है। और भामह के प्रथम तीन अलकारो म मे द्वितीय आक्षेप तथा तृतीय अर्थान्तरन्यास हैं अनुप्रास सवप्रथम है परन्तु वह शब्द-मात्र का अलकार है—भरत के 'शब्दाभ्यास का एक नवोदित सदस्य। भामह के य दोनो अलकार आगे चलकर प्रतिवस्तूपमा[2] तथा दृष्टान्त जसे अलकारो को सौन्दय-जगत म प्रतिष्ठित करने म समथ हुए हैं। भामह न इस दृष्टि को और स्फारित किया और एसे सौन्दय को भी देखा जो केवल वाक्य अथवा वाक्यो म नहीं समझा जा सकता। इस सौन्दय का सामान्य नाम 'भाविक' है। भाविक प्रबन्ध'[3] का गुण (सौन्दय) है इसम

---

१ नानाधिकरणार्थाना शब्दाना सम्प्रकीर्तितम।
एकवाक्येन सयोगात दीपकमिहाच्यते ॥१६।६॥ (नाट्यशास्त्र)

२ प्रतिवस्तूपमा सा स्यात् वाक्ययोगम्यसाम्ययो।
एकोऽपि धम सामान्य यत्र निर्दिश्यते पृथक ॥

३ भाविकत्वमिति प्राहु प्रबन्धविषय गुणम।
प्रत्यक्षा इव दृश्यन्ते यत्रार्था भूतभाविन ॥३।५३॥
चित्रोदात्ताद्भुतार्थत्व कथाया स्वभिनीतता ॥३।५४॥ (काव्यालकार)

भूत एव भावी अथ प्रत्यक्ष के समान चित्रित किये जाते हैं, वक्रता की विवृतता उदारता अदभुतायता एव अभिनीतता इस सौन्दय के आधार है।

इस प्रकार सौन्दय का ग्रहण एव विवेचन शब्द, अथ, वाक्य, एव वाक्यसमूह तक निरतर विस्तृत होता चला गया है। यह विस्तार इस शास्त्र के एक प्रकार के विकास का द्योतक है।

(दो)

अलकारा के इस विकास का प्रभाव अलकारा के 'स्वरूप पर भी पडा। "पूर्णात पूणमादाय पूणमेवावशिष्यते' यह आप वाक्य अलकारा के स्वरूप पर भी सिद्ध होता है। 'उपमा अलकार से 'रूपक' 'उत्प्रेक्षा' 'अपह्नुति', 'उपमेयोपमा', सन्देह', 'अनन्वय आदि अलकारा का जन्म होता चला गया परन्तु उपमा उपमा ही रहा। जस-जस सतति स्वतत्र होती गई, वस वसे उपमा ने अपना सकोच कर लिया। 'उपमा अलकार का स्वरूप विकास वास्तव म उपमा अलकार क सकोच का इतिहास है। स्वरूप म शास्त्रीयता आती गई सतति स्वतन्त्र होती गई, और भेदोपभेद लक्षित होत गय। उपमा आदि अलकारा के 'अर्थानुरोधेन किय गये विभाग आगे चलकर स्वतन्त्र अलकार बन गय, सयुक्त-परिवार प्रथा स सहयोग प्रथा की ओर जाने की यह प्रक्रिया है। अस्तु आचार्यों न 'व्याकरण प्रयोगानुरोधेन' विभाग का सिद्धात चलाया जिसक नेता उद्भट थ यह विभाग उपमा आदि अलकारा का ऐस भेदोपभेद दे सका जिनके स्वतन्त्र होन की कोई आशका नहीं थी। प्राय प्रारम्भिक पचास अलकारा क स्वरूप का विकास इसी पद्धति पर हुआ है दो चार अलकारा को छोडकर सबा अपने नाम तथा अपनी प्रतिष्ठा का अन्त तक सुरक्षित रखा है। इसका तात्पय यह हुआ कि प्रारम्भिक अलकार परम्परा म पूरा है और समष्टि-रूप म एकत्र होकर व सौन्दय का कोई न कोई नाम दे सक हैं। यदि प्रारम्भिक अलकारा क विषय म खण्डन मण्डन मिलता है तो केवल यही सूचित करने क लिए कि एक आचाय जिसका सौन्दय मानता है दूसरा आचाय उसका सौन्दय नहीं मानता। इन अलकारा के विषय म खण्डन का तात्पय यह नहीं है कि उस सौन्दय का अन्तर्भाव अपर

'समाधि अलकार को वलात् मिल गई, और निरीह समाहित को वचित होकर प्रेयस रसवत् ऊर्जस्वित के साथ मिलकर, उनकी परम्परा के अनुसार जीवन बिताना पडा। निर्वासित पुनर्वास की यह गाथा अलकार-जाति के इसी सदस्य के भाग्य म लिखी हुई थी।

प्रस्तुत अध्ययन मे हमने देखा है कि प्रारभिक आचाय काव्य-लोक' मे अनेकश एव बहुलता से सौदय का अनुभव करन के उपरात ही उस सौदय का नामकरण किया करते थे प्राय लोक-व्यवहार म उस सौदय को जो नाम मिल जाया करता था आचाय उसी को ग्रहण कर लत थे—अलग नाम देकर अपना पाडित्य दिखलाने की उनको आवश्यकता नही थी। कालातर मे ऐसे आचाय इस क्षेत्र म आय जिनको 'स्व मत प्रतिपादन की विशेष चिता थी अत उन्होंने सोच-सोचकर वैचित्र्य की कल्पना की और उस वचित्र्य को एक नया नाम देकर उसका उदाहरण स्वय बनाया। जयदेव, अप्पय्यदीक्षित तथा उत्तरकालीन सस्कृत एव हिदी के कुछ आचाय इसी वग के थ।

ऐतिहासिक क्रम से देखा जाय ता जयदेव स पूव अलकारा की एक शती के नाम मिल जाते हैं। इस शती से अग्निपुराण एव सरस्वतीकठाभरण' के वणना को अलग कर दें तो शेष अलकार प्रामाणिक, वैज्ञानिक एव सौदय-पुष्ट है। मम्मट रुय्यक विश्वनाथ जगन्नाथ का अकुश एक प्रकार से भावी आचार्यों के लिए न्यायदण्ड बन गया और समीक्षकमात्र ने उन अलकारा को स्वीकार कर लिया जिन पर इन आचार्यों ने अपनी छाप लगा दी थी। अध्ययन से विदित होता है कि इनका विकास शास्त्रीयता अथवा वैज्ञानिकता म है। अलकार-नामा के विषय म कोई मतभेद नहीं। अलकार भेदा म यत्किंचित मतभेद है—काई भेदा तक सीमित रहता है तो कोई उपभेदा तक पहुँच गया। उदाहरणा का मतभेद भी बहुत कम है, वह भी उपमा रूपक उत्प्रेक्षा जसे महत्त्वपूण अलकारा को लेकर। यदि सभी आचाय अलकार विशेष के लिए एक ही उदाहरण रखन का प्रयत्न करत तो पारस्परिक मतभेद की आशका थी, परन्तु प्राय उदाहरण एक ही नही है। फलत लुप्तोपमा एव रूपक म कहा ऐसा विदु आता है कि दोना एक दिखलायी पडे—यह विवेचन गम्भीर एव महत्त्वपूण है। इसी प्रकार 'इव वाचक उपमा एव उत्प्रेक्षा दोना म रहता है, तो कहाँ उपमा होगी और कहाँ उत्प्रेक्षा—इस प्रकार के विद्वत्तापूण स्थल इन अलकारा के प्रसग मे मिलत हैं।

सबसे अधिक महत्त्व की वस्तु अलकार-लक्षण है। अलकार-लक्षण मे मतभेद के दो आधार है—प्रथम स्वरूप के कारण मतभेद द्वितीय, वैज्ञानिक प्रयत्न के कारण मतभेद। प्रथम प्रकार का मतभेद बहुत कम मिलता है। जिस आचाय का मत परम्परा से अलग है वह तारस्वर स उसका प्रतिपादन करता है जसे विभावना' के सम्बध मे यह प्रश्न उठा कि इसके लक्षण म 'कारण-काय पदो का प्रयोग होना चाहिए अथवा हेतु फल का यह एक मौलिक प्रश्न है इस पर मतभेद का स्वागत होना चाहिए। परन्तु अधिकतर मतभेद प्रयत्न की सफलता-असफलता के कारण हैं जो कतिपय आचार्यों म पाया जाता है। जो आचाय उपयुक्त लक्षण न दे सका उसको काव्य शास्त्र-जगत म प्रतिष्ठा न मिल सकी इसके उदाहरण भाज है। लक्षणा के सम्बध म चित्र मीमासा एव 'रस-गगाधर' का नाम अवश्य लिया जायगा। इसके लक्षण भामह-दण्डी के

समान एक-दूसर का सद्धातिक खण्डन नही करते, प्रत्युत एक-दूसरे का एव समस्त पूर्वाचार्यों का खण्डन इसलिए करते हैं कि विद्वज्जन उनको पण्डितराज मान लें। राजाओ के समान विद्वाना म भी दिग्विजय की भावना प्रचलित थी और दम्भ एव दप के कारण यह भावना कुछ तामसिक होती जा रही थी।

इस समय के पश्चात कुछ आचाय ऐसे आय जो खण्डन एव तक म विश्वास नही करते, प्रत्युत नवीन अलकारा की कल्पना उनका अभीष्ट है। भोज का सकेत ऊपर दिया जा चुका है। वे इस स्थिति से पूव के हैं, परन्तु उनकी रचना उतनी ही शिथिल है जितनी कि किसी भी उत्तरकालीन पडित की। 'सरस्वतीकण्ठाभरण' म क्या है इससे पूव यह पूछना चाहिए कि उसम क्या नही है? चौबीस उभयालकार सुनकर ही आश्चय होता है। इसी प्रकार शोभाकार मित्र एकदम ही छत्तीस नवीन अलकारा की कल्पना कर बठे तो जयदेव तथा अप्पय्यदीक्षित कब पीछे रहनेवाले थे। इन लेखका के नवीन अलकार एक शती को छूने लगते हैं जिनको छान-छानकर देखना पडता है फिर भी बहुत कम सार मिलता है। यह शती अपने स पूव की शती के ठीक विपरीत है—मूल्य अत, स्थायित्व म। आश्चय तो यह है कि जिन अलकारा की कल्पना की गई है उनका इन आचार्यों ने स्वरूप भी स्पष्ट नही किया। प्राय प्रचलित अलकारा के विपरीत अथवा अनुगामी नये अलकार कल्पित किय गये हैं यथा परिकराकुर, अनुगुण, भाविकच्छवि, प्रस्तुताकुर व्याजनिन्दा आदि। अप्पय्यदीक्षित ने गूढोक्ति, विवृतोक्ति युक्ति, लोकोक्ति छेकोक्ति, निरुक्ति आदि उक्ति पदान्त नय अलकारा की एक लम्बी पक्ति तयार कर दी। इन नवीन अलकारा मे या तो सौन्दय हो नही है, यदि है भी तो बहुत हल्का और बहुत सीमित क्षेत्र का। अत इनको न प्रतिष्ठा मिली और न लोकप्रियता। कभी-कभी आश्चय होता है कि जो व्यक्ति चित्र मीमासा म अलकार-लक्षणो का इतना खण्डन मण्डन कर रहा था, वह 'कुवलयानन्द' म इतने बडे पमाने पर नवीन अलकारा की घटिया फक्टरी क्या लगा बठा!

जयदेव एव दीक्षित का प्रभाव हिन्दी के आचार्यों पर पडा और व भी अपना घरलू उद्योग चलाने लगे। पुराने विद्वाना मे केशव तथा नवीन विद्वानो में मुरारिदान का नाम प्रसिद्ध है। केशव ने कम से कम छह अलकारो की कल्पना की, जिनको पीछे न किसी ने माना और न जिनका खण्डन ही किया। मुरारिदान कहाँ-कहा स नवीन अलकारो को पाते है यह हम सम्बद्ध अध्याय म देख चुके है। यदि हिन्दी के आचाय केवल सफल वणन म लग रहत तो भी वे काव्य शास्त्र की उतनी ही सेवा करत जितनी कि उन्हान नवीन कल्पना के द्वारा की है। इस दष्टि से जो स्थान भिखारीदास, भगवानदीन एव कन्हैयालाल पोद्दार का है वह दव, कुलपति पद्माकर मुरारिदान बिहारीलाल भट्ट रसाल आदि का नही है। मम्मट के समान विद्यमान की साधिकार व्याख्या जितनी उपकारिणी हो सकती है उतना भोज के समान नव निर्माण नहा।

अपने अध्ययन क्रम म हमने देखा है कि जब तक कोई सौन्दय इतना प्रचलित न हो कि समाज उसको अनायास ही प्रयोग म ला रहा हो तब तक उसको खोजकर उसका नामकरण करना एव लक्षण देना अलकारा के इतिहास म कोई महत्त्व नही रखता। व्याकरण के समान अलकार भी एक सामाजिक तत्त्व है और उसकी प्रथम कसौटी लोक-व्यवहार है एव द्वितीय

कसौटी काव्य म व्यवहार। परन्तु जिस प्रकार व्याकरण खोज खोजकर शब्द सग्रह करता और उनके नियम का निर्धारण करता है उसी प्रकार अलकारशास्त्री नही करना खाज का प्रयास अलकार को नाम दे सकता है, प्राण नही। अस्तु, 'काव्य लोक' का अवेक्षण अलकार के आचाय का मुख्य कतव्य है। जो सम्मति भरत ने अलकार शास्त्री को दी थी, वह आज भी अलकार विषय के प्रत्येक अध्येता की सफलता का मन्त्र है।

प्रस्तुत अध्ययन म हमने देखा है कि जयदेव से पूव जिन अलकारा की कल्पना की गई थी वे प्राय अमर हैं और उत्तर आचाय उनकी उपेक्षा की बात भी नही सोचते। परन्तु अग्निपुराण 'सरस्वतीकण्ठाभरण तथा जयदेवोत्तर आचार्यो के ग्रन्थ (रस-गगाधर' के अतिरिक्त) जिन जिन नवीन अलकारा की कल्पना करते हैं, उनम से आधे तो अल्पायु में ही प्राण त्याग बठे। सत्य तो यह है कि इन उत्तर आचार्यों का प्रयत्न सहज नहा कृत्रिम था उसमे साधना कम, यशोलिप्सा अधिक थी शथिल्य एव दप की यह अनन्य पारस्परिकता है जो मनायोग क अभाव म और भी निस्पन्द-सा लगती है।

काल क्रम स अलकारा के विकास का अध्ययन यह मानकर चलता है कि उत्तर-आचाय पूव-आचाय से परिचित है और वह एक प्रवाह का विशेष स्थिति विन्दु है। प्रस्तुत प्रबन्ध म केवल उन ग्रन्था एव आचार्यों को आधार बनाया गया है जो काल की कसौटी पर कसे जाकर अलकार विषय के लिए मान्य हो चुके हैं। सौन्दय के बिखरे हुए बिन्दु किस प्रकार ग्रहण किय गये और नाम प्राप्त कर गय, यह अध्ययन रोचक तथा वज्ञानिक भी है। आवश्यकता इस बात की है कि इस प्रकार के अध्ययन के फलस्वरूप अलकारा के विषय म जो निष्कष निकाले गये है उनको व्यवहार म लाया जाय और जो अलकार विषय बीच म जीवन स वियुक्त हो गया था, उसका पुन सयुक्त कर दिया जाय। अलकार वही है जा सुन्दर हो तथा सौन्दयवधक[1] हो यदि वह प्रतीत' (सुन्दर) न हुआ तो सौन्दय-वधन नही करता और यदि केवल सुन्दर है परन्तु पाठक की चेतना का विस्तार नही करता तो भी वह उपकारक नही है। अत अलकारत्व सौन्दय एव सौन्दय-वद्धि का समकाल गुण है। जो इस गुण से रहित है वह अलकार पद स च्युत होकर उल्लेख्य नही रह पाता। ऐसे अलकार त्याग दिये जाते हैं जिनम चमत्कार[2] न हो अथवा जिनका अन्यत्र अन्तभाव हो सकता हो।

---

१ सुन्दरत्वे सत्युपस्कारकत्व मलकारत्वम्। (जगन्नाथ)

२ अचमत्कारिता वा स्यादुक्तान्तर्भाव एव च।
अलक्रियाणामन्यासामनिबन्धे निबन्धनम्॥ (वाग्भट प्रथम)

परिशिष्ट क

१ अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, डा० रामलाल वर्मा प्रथम संस्करण १९५९ ई० नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

२ अलंकार कौस्तुभ कवि कर्णपूर विरचित सं० शिवप्रसाद भट्टाचार्य सरस्वती भवन टैक्स्ट्स १९२५ ई० बनारस।

३ अलंकार कौस्तुभ, कवि कर्णपूर वरेन्द्र रिसर्च सोसाइटी राजशाही, बंगला देश १९२६ ई०।

४ अलंकारानुशीलन, डा० राजवंश सहाय हीरा प्रथम संस्करण सं० २०२६ वि०, चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी।

५ अलंकार पीयूष, पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध डा० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' द्वितीयावृत्ति सन १९५४ ई०, रामनारायणलाल, इलाहाबाद।

६ अलंकार प्रकाश सं० शूरवीरसिंह पँवार, सन १९६२ ई० भारत प्रकाशन मंदिर अलीगढ।

७ अलंकार प्रदीप, श्रीगोविन्दप्रणीत सन् १९३३ ई०, निर्णयसागर मुद्रणालय मुम्बई।

८ अलंकार प्रदीप, विश्वेश्वर १९२३ ई०, चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी।

९ अलंकार प्रस्थान विमर्श, डॉ० लक्ष्मीनारायणसिंह सन १९७१ ई०, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी।

१० अलंकार मीमांसा, डॉ० रामचन्द्र द्विवेदी, १९६५ ई०, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

११ अलंकार मुक्तावली, श्री विश्वेश्वरपाण्डेय निर्मिता १९८४ वि० चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।

१२ अलंकार-मंजरी, सेठ कन्हैयालाल पोद्दार, पंचम संस्करण सं० २००६ वि० प्रकाशक पं० जगन्नाथप्रसाद शर्मा मथुरा।

१३ अलंकार-मंजूषा, भट्ट देवशंकर पुरोहित-कृता सदाशिव लक्ष्मीधर कत्रे, १९४० ई० ओरिएण्टल मैनुस्क्रिप्ट लाइब्रेरी उज्जैन।

१४ अलंकार मंजूषा, भगवानदीन २००८ वि०, रामनारायणलाल इलाहाबाद।

१५ अलंकार रत्नाकर, शोभाकरमित्रविरचित सं० सी० आर० देवधर १९४२ ई० ओरिएण्टल बुक एजेन्सी, पूना।

१६ अलकारशास्त्र की परम्परा, डॉ० राजवशसहाय हीरा, स० २००६ वि०, चौखम्बा सस्कृत सीरीज़, वाराणसी।

१७ अलकार शेखर, केशवमिश्रकृत, शिवदत्तशमणा सशोधित, द्वितीयावृत्ति, १९२६ ई०, निणयसागर, मुम्बई।

१८ अलकार शेखर, केशवमिश्रकृत अनन्तरामशास्त्रिणा सशोधित, १९८४ वि०, चौखम्बा सस्कृत सीरीज, वाराणसी।

१९ अलकार सवस्वम, जयरथकृतया टीकया समेतम, द्वितीय सस्करणम, शाक १८५९, निणयसागर बम्बई।

२० अलकार सवस्वम, स० गौरीनाथ शर्मा, १९८३ वि०, शारदा भवन, काशी।

२१ अलकार सग्रह, अमृतानन्द योगी, वी० कृष्णमाचाय तथा के० रामचन्द्र शर्मा १९४९ ई०, आधार लाइब्रेरी, आधार, मद्रास।

२२ आचाय केशवदास, डा० हीरालाल दीक्षित, २०११ वि० लखनऊ विश्वविद्यालय।

२३ आचाय दण्डी एव सस्कृत का यशास्त्र का इतिहास दशन, डॉ० जयशकर त्रिपाठी १९६८ ई०, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

२४ ऋग्वेद, स० १८६८ शकाब्द वदिक सशोधन मडल, पूना।

२५ एकावली, विद्याधर १९०३ ई०, गवनमट सेण्ट्रल बुक डिपो।

२६ ए हिस्ट्री आफ सस्कृत लिटरेचर, भाग एक दासगुप्त तथा दे कलकत्ता।

२७ औचित्य विचार चर्चा क्षेमेन्द्र, १९५३ ई० हरिदास सस्कृत सीरीज बनारस।

२८ कविकुल कण्ठाभरण, दूलह १९९२ वि० दुलारेलाल भागव, लखनऊ।

२९ कविकण्ठाभरण, क्षेमेन्द्र, १९५३ ई० हरिदास सस्कृत सीरीज, बनारस।

३० कविप्रिया, केशवदास १९५२ ई०, मातृभाषा मदिर प्रयाग।

३१ कवि रहस्य, १९५० ई०, हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद।

३२ काव्यदपण रामदहिनमिश्र, १९५१ ई० ग्रन्थागार-कार्यालय, पटना।

३३ काव्यनिणय, भिखारीदास, १९३७ ई०, बेलवडियर प्रेस, प्रयाग।

३४ काव्यानुशासनम, हेमचन्द्रविरचितम द्वितीयावत्ति, शाक १८५५ निणयसागर बम्बई।

३५ काव्यानुशासनम वाग्भट विरचितम शिवदत्तशमणा सशोधितम् द्वितीयावृत्ति, १९१५ ई० निणयसागर बम्बई।

३६ काव्य परीक्षा वत्सराजन्द्र भट्टाचाय विरचिता २०१२ वि०, मिथिला विद्यापीठ दरभगा बिहार।

३७ काव्यप्रकाश व्याख्याकार आचाय विश्वेश्वर स० २०१७ वि०, ज्ञानमण्डल वाराणसी।

३८ काव्यप्रकाश, नागेश्वरीटीकया समलकृत, ढुण्ढिराजशास्त्रिणा सशोधित, स० २००८ वि०, चौखम्बा सस्कृत पुस्तकालय, बनारस।

३९ काव्यप्रकाश, ए० बी० गजेन्द्र गडकर, १९५९ ई०, पापुलर बुकडिपो, बम्बई।

४० काव्यप्रकाश ,माणिक्यचन्द्रविरचित सकेत समेत , वासुदेव शास्त्री अभ्यकर, शकाब्दा १८४३, पुण्याख्यपत्तने आनन्दाश्रममुद्रणालये मुद्रयित्वा प्रकाशित ।

४१ काव्यप्रकाश, दशम उल्लास, १९४१ ई०, कर्नाटक पब्लिशिंग हाउस बम्बई।

४२ काव्यप्रदीप , श्री गोविन्दप्रणीत , १९३३ ई०, निर्णयसागर, बम्बई।

४३ काव्यप्रभाकर, जगन्नाथप्रसाद भानु, स० २०२८ वि० नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ।

४४ काव्यादर्श , रगाचार्यशास्त्रिणा विरचितया प्रभाख्यया व्याख्यया समेत , १८६० शकवत्सरा भाण्डारकर प्राच्य विद्यामन्दिर, पूना।

४५ काव्यादर्श आफ दण्डिन, इगलिश नोटस द्वितीय परिच्छेद।

४६ काव्यमीमासा, राजशेखरविरचिता, डा० गगासागर राय प्रथम सस्करण, स० २०२१ वि०, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी।

४७ काव्यमीमासा, स० सी० डी० दलाल तथा आर० ए० शास्त्री, तृतीय सस्करण १९३४ ई०, ओरिएण्टल इन्स्टीटयूट, बडौदा।

४८ काव्यमीमासा, १९५४ ई०, विहार राष्ट्रभाषा-परिषद पटना।

४९ काव्यालकार, श्रीभामहाचार्येण विनिर्मित स० प० बटुकनाथ शर्मा तथा प० बलदेव उपाध्याय स० १९८५ वि० चौखम्बा सस्कृत सीरीज बनारस।

५० काव्यालकार, श्रीभामहप्रणीत परिच्छेदा १—६, सी० शकररामशास्त्री, १९५६ ई०, श्री बाल मनोरमा प्रेस मद्रास।

५१ काव्यालकार भामह विरचित प्रा० देवेन्द्रनाथ शर्मा २०१९ वि०, बिहार राष्ट्र-भाषा-परिषद पटना।

५२ काव्यलक्षणम, दण्डिकृत काव्यादर्शापराभिधम रत्नश्रिया टीकया समलकृतम, २०१३ वि० मिथिला विद्यापीठ।

५३ काव्यालकार सार सग्रह इन्दुराज विरचित लघुवृत्तिसमेत ना० द० बनहट्टी प्रथमावृत्ति , १८४७ शकसवत्सरे प्राच्य विद्या सशोधन मन्दिर।

५४ काव्यालकार सार-सग्रह, डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी प्रथम सस्करण, स० १८८८ शकाब्द, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग।

५५ काव्यालकार-सार सग्रह , विवृति समेत , के० एस० रामास्वामी शास्त्री शिरोमणि १९३१ ई०, ओरिएण्टल इस्टीटयूट बडौदा।

५६ काव्यालकार, श्रीरुद्रटप्रणीत नमिसाधुकृतया टिप्पण्या समेत शाक १८३१, निर्णयसागर, बम्बई।

५७ काव्यालकार, रुद्रटप्रणीत श्री रामदेव शुक्ल १९६६ ई०, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।

५८ काव्यालंकार, (रुद्रट प्रणीत), डॉ० सत्यदेव चौधरी, १९६५ ई०, वासुदेव प्रकाशन, दिल्ली।
५९ काव्यालंकार-सूत्र वत्ति, १९२७ ई०, आरिएण्टल बुक एजेंसी, पूना।
६० काव्यालंकार सूत्र वत्ति, आचार्य विश्वेश्वर, सं० २०११ वि०, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली।
६१ काव्यालंकार सूत्र, इंगलिश ट्रांसलेशन, १९२८ ई०, आरिएण्टल बुक एजेंसी, पूना।
६२ काव्य विलास चिरञ्जीव विरचित १९२५ ई०, सरस्वतीभवन टक्स्टस, बनारस।
६३ कुवलयानन्द, वद्यनाथसूरि विरचितया अलंकारचन्द्रिकाव्याख्यया अलंकृत, नवम संस्करणम शाके १८६९, निर्णयसागर बम्बई।
६४ कुवलयानन्द, बुधरञ्जन्या व्याख्यया सहित, डी० टी० ताताचार्य, १९६९ ई० तिरुपति।
६५ केशव का आचार्यत्व, डा० विजयपालसिंह राजपाल एण्ड संस दिल्ली।
६६ चन्द्रालोक, पौर्णमासीसमाख्यया संस्कृत याख्यया कथाभट्टीयाख्यया हिन्दीव्याख्यया च समलंकृत, सं० २००२ वि०, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस।
६७ चित्र चन्द्रिका, आर्यभाषा पुस्तकालय नागरीप्रचारिणी सभा काशी।
६८ चित्र मीमांसा, धरानन्द विरचित सुधा व्याख्यया समलंकृता कालिकाप्रसाद शुक्ल १९६५ ई०, वाणी विहार, वाराणसी।
६९ जरनल आफ दि डिपार्टमेंट आफ लटर्स, वाल्यूम ९ १९२३ ई०, कलकत्ता यूनिवर्सिटी प्रेस, कलकत्ता।
७० जसवंत जसो भूषण, मुरारिदान, १९५४ वि०, मारवाड स्टेट प्रेस, जोधपुर।
७१ डिक्शनरी आफ वर्ल्ड लिटरेचर, फिगर आफ स्पीच।
७२ दि निरुक्त डा० लक्ष्मणस्वरूप, १९२७ ई०, पंजाब विश्वविद्यालय लाहौर।
७३ ध्वन्यालोक १९४४ ई० कुप्पुस्वामी रिसर्च इंस्टीट्यूट, मद्रास।
७४ ध्वन्यालोक, कृष्णमूर्ति, अंग्रेजी अनुवाद १९५५ ई०, पूना।
७५ ध्वन्यालोक, हिन्दी-अनुवाद सहित, १९५२ ई०, गौतम बुकडिपो दिल्ली।
७६ नाट्यशास्त्रम्, द्वितीय संस्करणम १९४३ ई० निर्णयसागर, बम्बई।
७७ नाट्यशास्त्रम, श्रीमदभिनवगुप्ताचार्य विरचित विवृति-समेतम् सं० रामकृष्ण कवि, १९३४ ई०, आरिएण्टल इंस्टीट्यूट, बडौदा।
७८ निरुक्त, १९३०, निर्णयसागर प्रेस बम्बई।
७९ पद्माकर ग्रन्थावली, सं० २०१६ वि०, नागरीप्रचारिणी सभा काशी।
८० प्रतापरुद्रीयम्, विद्यानाथप्रणीतम रत्नापणाख्यया व्याख्या समन्वितम सी० शंकर रामशास्त्री १९५० ई०, श्री बाल मनोरमा प्रेस, मद्रास।
८१ प्रिया प्रकाश भगवानदीन, २०१४ वि०, वाराणसी।

८२ भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका, डॉ० नगेन्द्र, २०१२ वि०, ओरिएण्टल बुकडिपो, दिल्ली।

८३ भारतीय साहित्यशास्त्र और काव्यालकार, भाग १ डॉ० भोलाशकर व्यास, १९६५ ई०, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।

८४ भारतीय साहित्यशास्त्र, प० बलदेव उपाध्याय, प्रथम खण्ड, स० २००७ वि० प्रसाद परिषद काशी।

८५ भारतीय साहित्यशास्त्र, प० बलदेव उपाध्याय द्वितीय खण्ड प्रथम सस्करण, स० २००५ वि० प्रसाद परिषद काशी।

८६ भारती भूषण केडिया १९८७ वि० भारतीभूषण कार्यालय, काशी।

८७ भाव विलास, देवकवि, १९९१ वि० तरुण भारत ग्रन्थावली प्रयाग।

८८ भाषा भूषण, जसवतसिह स० २००६ वि० हिन्दी-साहित्य कुटीर बनारस।

८९ भिखारीदास ग्रन्थावली, द्वितीय खण्ड स० २०१४ वि० नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।

९० भूषण, स० प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र स० २०१० वि० वाणी वितान बनारस।

९१ भूषण और उनका साहित्य, डा० राजमल बोरा सन् १९६८ ई०, विनोद पुस्तक मदिर आगरा।

९२ भूषण ग्रन्थावली, १९५० ई०, हिन्दी भवन इलाहाबाद।

९३ मतिराम ग्रन्थावली, स० कृष्णविहारी मिश्र १९८३ वि०, गगा पुस्तकमाला लखनऊ।

९४ मतिराम कवि और आचार्य, डा० महेन्द्रकुमार, १९६० ई० भारती साहित्य मन्दिर दिल्ली।

९५ यथार्थतामूलक अलकारों का सामान्य विवेचन, डा० ब्रह्मानन्द शर्मा जोधपुर।

९६ रस-गगाधर, नागेशभट्टकृतया गुरुमर्मप्रकाशटीकया मजुनाथकृतया सरलया च समेत, १९३९ ई० निर्णयसागर प्रेस बम्बई।

९७ रस-गगाधर, हिन्दी अनुवाद, तीन भाग पुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी २०१३ वि०, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।

९८ रस-गगाधर का शास्त्रीय अध्ययन, डॉ० प्रेमस्वरूप गुप्त १९६२ ई० भारत प्रकाशन, अलीगढ़।

९९ रस-मीमासा, रामचन्द्र शुक्ल, २००६ वि०, नागरीप्रचारिणी सभा काशी।

१०० रिमार्क्स आन सिमिलीज इन सस्कृत लिटरेचर, जे० गोंडा १९४९ ई० प्रकाशक ई० जे० ब्रिल, लीडेन, हालैंड।

१०१ रीतिकालीन अलकार-साहित्य का शास्त्रीय विवेचन, डॉ० ओमप्रकाश शर्मा, १९६५ ई०, हिन्दी साहित्य ससार दिल्ली।

१०२ रीतिकाव्य की भूमिका, डा० नगेन्द्र नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

५८ काव्यालंकार, (रुद्रट प्रणीत), डॉ० सत्यदेव चौधरी, १९६५ ई०, वासुदेव प्रकाशन, दिल्ली।
५९ काव्यालंकार-सूत्र वृत्ति, १९२७ ई०, आरिएण्टल बुक एजेन्सी, पूना।
६० काव्यालंकार-सूत्र-वृत्ति, आचार्य विश्वेश्वर, स० २०११ वि०, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली।
६१ काव्यालंकार-सूत्र, इंगलिश ट्रान्सलेशन, १९२८ ई०, आरिएण्टल बुक एजेन्सी, पूना।
६२ काव्य विलास चिरञ्जीव विरचित, १९२५ ई०, सरस्वतीभवन टैक्स्ट्स बनारस।
६३ कुवलयानन्द, वैद्यनाथसूरि विरचितया अलंकारचन्द्रिकाव्याख्यया अलंकृत नवम संस्करणम् शाक १८६०, निर्णयसागर, बम्बई।
६४ कुवलयानन्द, बुधरञ्जन्या व्याख्यया सहित डी० टी० ताताचार्य, १९६९ ई० तिरुपति।
६५ केशव का आचार्यत्व डॉ० विजयपालसिंह राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली।
६६ चन्द्रालोक, पौर्णमासीसमाख्यया संस्कृतव्याख्यया रमाभट्टीयाख्यया हिन्दीव्याख्यया च समलंकृत स० २००२ वि० चौखम्बा संस्कृत सीरीज बनारस।
६७ चित्र चन्द्रिका, आर्यभाषा पुस्तकालय, नागरीप्रचारिणी सभा काशी।
६८ चित्र मीमांसा, धरानन्द विरचित सुधा व्याख्यया समलंकृता, कालिकाप्रसाद शुक्ल १९६५ ई०, वाणी विहार वाराणसी।
६९ जरनल आफ दि डिपार्टमेंट आफ लेटर्स, वाल्यूम ९ १९२३ ई० कलकत्ता यूनिवर्सिटी प्रेस, कलकत्ता।
७० जसवंत जसो भूषण, मुरारिदान १९५४ वि० मारवाड़ स्टेट प्रेस जोधपुर।
७१ डिक्शनरी आफ वर्ल्ड लिटरेचर फिगर आफ स्पीच।
७२ दि निरुक्त, डा० लक्ष्मणस्वरूप, १९२७ ई० पंजाब विश्वविद्यालय लाहौर।
७३ ध्वन्यालोक, १९४४ ई० कुप्पुस्वामी रिसर्च इंस्टीट्यूट मद्रास।
७४ ध्वन्यालोक, कृष्णमूर्ति, अंग्रेजी अनुवाद, १९५५ ई० पूना।
७५ ध्वन्यालोक, हिन्दी-अनुवाद सहित १९५२ ई० गौतम बुकडिपो दिल्ली।
७६ नाट्यशास्त्रम्, द्वितीय संस्करणम् १९४३ ई० निर्णयसागर, बम्बई।
७७ नाट्यशास्त्रम्, श्रीमदभिनवगुप्ताचार्य विरचित विवृति समेतम् स० रामकृष्ण कवि १९३४ ई०, आरिएण्टल इंस्टीट्यूट, बड़ोदा।
७८ निरुक्त, १९३० निर्णयसागर प्रेस बम्बई।
७९ पद्माकर ग्रन्थावली, स० २०१६ वि०, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।
८० प्रतापरुद्रीयम्, विद्यानाथप्रणीतम् रत्नापणाख्यया व्याख्या समन्वितम् सी० शंकर रामशास्त्री १९५० ई०, श्री बाल मनोरमा प्रेस, मद्रास।
८१ प्रिया प्रकाश भगवानदीन, २०१४ वि०, वाराणसी।

८२ भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका, डा० नगेन्द्र, २०१२ वि०, ओरिएण्टल बुकडिपो, दिल्ली।

८३ भारतीय साहित्यशास्त्र और काव्यालंकार, भाग १ डा० भोलाशंकर व्यास १९६५ ई०, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।

८४ भारतीय साहित्यशास्त्र, प० बलदेव उपाध्याय, प्रथम खण्ड सं० २००७ वि०, प्रसाद परिषद काशी।

८५ भारतीय साहित्यशास्त्र, प० बलदेव उपाध्याय द्वितीय खण्ड, प्रथम संस्करण सं० २००५ वि०, प्रसाद परिषद काशी।

८६ भारती भूषण केडिया १९८७ वि० भारतीभूषण कार्यालय काशी।

८७ भाव विलास, देवकवि १९९१ वि० तरुण भारत ग्रन्थावली, प्रयाग।

८८ भाषा भूषण, जसवंतसिंह सं० २००६ वि०, हिन्दी-साहित्य कुटीर, बनारस।

८९ भिखारीदास ग्रन्थावली, द्वितीय खण्ड सं० २०१४ वि० नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।

९० भूषण, सं० प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र सं० २०१० वि०, वाणी वितान, बनारस।

९१ भूषण और उनका साहित्य, डा० राजमल बोरा सन १९६८ ई० विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।

९२ भूषण ग्रन्थावली, १९५० ई० हिन्दी भवन, इलाहाबाद।

९३ मतिराम ग्रन्थावली, स० कृष्णबिहारी मिश्र १९८३ वि०, गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ।

९४ मतिराम कवि और आचार्य, डॉ० महेन्द्रकुमार १९६० ई० भारती साहित्य मन्दिर, दिल्ली।

९५ यथार्थतामूलक अलंकारों का सामान्य विवेचन, डा० ब्रह्मानन्द शर्मा जोधपुर।

९६ रस गंगाधर, नागेशभट्टकृतया गुरुमर्मप्रकाशटीकया मंजुनाथकृतया सरलया च समेत १९३९ ई० निर्णयसागर प्रेस, बम्बई।

९७ रस-गंगाधर, हिन्दी-अनुवाद तीन भाग पुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी, २०१३ वि०, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।

९८ रस-गंगाधर का शास्त्रीय अध्ययन, डा० प्रेमस्वरूप गुप्त १९६२ ई०, भारत प्रकाशन, अलीगढ़।

९९ रस-मीमांसा रामचन्द्र शुक्ल २००६ वि० नागरीप्रचारिणी सभा काशी।

१०० रिमार्क्स आन सिमिलीज़ इन संस्कृत लिटरेचर, जे० गाडा १९४९ ई०, प्रकाशक ई० जे० ब्रिल लीडेन, हालैंड।

१०१ रीतिकालीन अलंकार-साहित्य का शास्त्रीय विवेचन, डा० ओमप्रकाश शर्मा १९६५ ई०, हिन्दी साहित्य संसार दिल्ली।

१०२ रीतिकाव्य की भूमिका, डा० नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली।

१०३ रीति-परम्परा के प्रमुख आचार्य, डॉ० सत्यदेव चौधरी साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग।

१०४ वक्रोक्तिजीवितम, डॉ० सुशीलकुमार डे, सन् १९२८ ई०, द्वितीय आवृत्ति।

१०५ वक्रोक्तिजीवित, हिन्दी अनुवाद सहित, २०१२ वि०, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली।

१०६ वाग्भटालकार, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई।

१०७ वाग्भटालकार, १९१७ ई० कलकत्ता।

१०८ व्यक्तिविवेक, महिमभट्ट, १९९३ वि० हरिदास सस्कृत ग्रन्थमाला, काशी।

१०९ शब्दरसायन, स० डॉ० जानकीनाथसिह 'मनोज', स० २०१८ वि०, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग।

११० सरस्वतीकण्ठाभरणम १९३४ ई० निर्णयसागर प्रेस बम्बई।

१११ सरस्वतीकण्ठाभरणम स० आनन्दराम बरुआ, १९६९ ई० पब्लिकेशन्स बोर्ड गोहाटी।

११२ साहित्य दर्पण, श्रीकृष्णाशरण शर्मा १९३८ ई०, मोतीलाल बनारसीदास, लाहौर।

११३ साहित्य दर्पण, शालिग्रामशास्त्रि विरचितया विमलाव्याख्यया विभूषित २०१३ वि० मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली।

११४ साहित्य-सागर, कविराज बिहारीलाल भट्ट प्रथमावृत्ति स० १९९४ वि०, गगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ।

११५ साहित्यसार, सर्वेश्वराचार्य, १९४७ ई० ट्रावनकोर यूनीवर्सिटी, त्रिवेन्द्रम।

११६ सिद्धान्त और अध्ययन, गुलाबराय २००६ वि०, आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली।

११७ सिमिलीज इन मनुस्मृति, डा० एम० डी० पराडकर १९६० ई०, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

११८ सस्कृत साहित्य मे सादृश्यमूलक अलकारो का विकास १९६४ ई०, डा० ब्रह्मानन्द शर्मा, गवनमेंट कालेज अजमेर।

११९ सस्कृत-साहित्य का इतिहास प्रथम तथा द्वितीय भाग सेठ कन्हैयालाल पोद्दार स० २०११ वि०, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।

१२० *सस्कृतसाहित्येर इतिहास, श्री जाह्नवीचरण भौमिक प्रथम सस्करण दि बुक* कम्पनी लि०, कालेज स्क्वायर कलकत्ता।

१२१ स्टडीज आन सम कन्सप्ट्स आफ दि अलकारशास्त्र, १९४२ ई० दि अड्यार लाइब्रेरी, अड्यार मद्रास।

१२२ श्रीरसगगाधर मर्मप्रकाश मर्मोद्घाटनम, जगूवेंकटाचार्येण विरचितम १९३३ ई०, बी० वी० सुब्बया एण्ड सन्स, बगलौर सिटी।

१२३ हाइवेज एण्ड बाइवेज आफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म इन सस्कृत, दि कुप्पुस्वामी शास्त्री रिसर्च इस्टीटयूट, १९४५ ई०, मद्रास।

१२४ हिन्दी-अलकार-साहित्य, डा० ओम्प्रकाश, १९५६ ई०, भारती साहित्य मदिर, दिल्ली।

१२५ हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, डॉ० भगीरथ मिश्र २०१५ वि०, लखनऊ विश्वविद्यालय।

१२६ हिन्दी रीति साहित्य, डॉ० भगीरथ मिश्र १९५६ ई० राजकमल प्रकाशन दिल्ली।

१२७ हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास, अयोध्यासिह उपाध्याय, १९५७ वि०, लहेरिया सराय, बिहार।

१२८ हिन्दी मे शब्दालकार विवेचन, डा० देशराजसिह भाटी १९६९ ई०।

१२९ हिन्दी साहित्य कोष, प्रथम खण्ड २०१५ वि०, ज्ञानमण्डल, वाराणसी।

१३० हिन्दी साहित्य-कोष, द्वितीय खण्ड २०२० वि० ज्ञानमडल, वाराणसी।

१३१ हिन्दी साहित्य का अतीत, दूसरा खण्ड आचाय विश्वनाथप्रसाद मिश्र, २०१७ वि०, वाणी वितान, ब्रह्मनाल वाराणसी।

१३२ हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड, डा० धीरेन्द्र वर्मा २०१५ वि० भारतीय हिन्दी परिषद प्रयाग।

१३३ हिन्दी-साहित्य का इतिहास रामचन्द्र शुक्ल २००८ वि०, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

१३४ हिन्दी साहित्य का बहद इतिहास, पष्ठ खण्ड २०१५ ई०, नागरीप्रचारिणी सभा काशी।

१३५ हिन्दुस्तानी (जुलाइ १९३१ १९३६ ई० अप्रल सितम्बर १९४२ तथा १९४६ ई० के अक), हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद।

१३६ हिस्टी आफ पोइटिक्स, पी० वी० काणे, १९६१ ई०, मातीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

१३७ हिस्टी आफ सस्कृत पोइटिक्स, भाग १ तथा २ डा० सु० कु० दे १९६० इ० के० एल० मुखोपाध्याय कलकत्ता।

१०३ रीति-परम्परा के प्रमुख आचार्य, डॉ० सत्यदेव चौधरी, साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग।

१०४ वक्रोक्तिजीवितम, डॉ० सुशीलकुमार दे, सन् १९२८ ई०, द्वितीय आवृत्ति।

१०५ वक्रोक्तिजीवित, हिन्दी-अनुवाद सहित २०१२ वि०, आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली।

१०६ वाग्भटालकार, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई।

१०७ वाग्भटालकार, १९१७ ई०, कलकत्ता।

१०८ व्यक्तिविवेक, महिमभट्ट, १९९३ वि०, हरिदास सस्कृत ग्रन्थमाला, काशी।

१०९ शब्दरसायन, स० डॉ० जानकीनाथसिंह मनोज, स० २०१४ वि०, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

११० सरस्वतीकण्ठाभरणम, १९३४ ई०, निर्णयसागर प्रेस बम्बई।

१११ सरस्वतीकण्ठाभरणम स० आनन्दराम बरुआ १९६९ ई०, पब्लिकेशन्स बोर्ड, गोहाटी।

११२ साहित्य-दर्पण, श्रीकरणाकर कर शर्मा, १९३८ ई० मोतीलाल बनारसीदास, लाहौर।

११३ साहित्य दर्पण, शालिग्रामशास्त्रि विरचितया विमलाव्याख्यया विभूषित २०१३ वि०, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

११४ साहित्य सागर, कविराज बिहारीलाल भट्ट, प्रथमावृत्ति, स० १९९४ वि० गगा पुस्तकमाला कार्यालय लखनऊ।

११५ साहित्यसार, सर्वेश्वराचार्य १९४७ ई०, ट्रावनकोर यूनीवर्सिटी, त्रिवेन्द्रम।

११६ सिद्धान्त और अध्ययन, गुलाबराय, २००६ वि०, आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली।

११७ सिमिलीज इन मनुस्मृति, डॉ० एम० डी० पराडकर, १९६० ई० मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

११८ *संस्कृत साहित्य मे सादृश्यमूलक अलकारो का विकास*, १९६४ ई०, डा० ब्रह्मानन्द शर्मा, गवर्नमेंट कालेज, अजमेर।

११९ संस्कृत-साहित्य का इतिहास प्रथम तथा द्वितीय भाग सेठ कन्हैयालाल पोद्दार स० २०११ वि० नागरीप्रचारिणी सभा काशी।

१२० संस्कृतसाहित्येर इतिहास, श्री जाह्नवीचरण भौमिक प्रथम सस्करण दि बुक कम्पनी लि०, कालेज स्क्वायर, कलकत्ता।

१२१ स्टडीज ऑन सम कन्सप्ट्स आफ दि अलकारशास्त्र, १९४२ ई० दि अद्यार लाइब्रेरी, अद्यार मद्रास।

१२२ श्रीरसगगाधर मर्मप्रकाश मर्मोद्घाटनम, जगूवेंकटाचार्येण विरचितम १९३३ ई० बी० बी० सुब्बया एण्ड सन्स बगलौर सिटी।

१२३ हाइवेज एण्ड बाइवेज आफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म इन संस्कृत, दि कुप्पुस्वामी शास्त्री रिसर्च इन्स्टीट्यूट १९४५ ई०, मद्रास।

१२४ हिन्दी-अलंकार साहित्य, डा० ओम्प्रकाश, १९५६ ई०, भारती साहित्य मंदिर, दिल्ली।

१२५ हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, डॉ० भगीरथ मिश्र, २०१५ वि०, लखनऊ विश्वविद्यालय।

१२६ हिन्दी रीति साहित्य, डॉ० भगीरथ मिश्र, १९५६ ई०, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

१२७ हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास, अयोध्यासिंह उपाध्याय, १९५७ वि०, लहेरिया सराय, बिहार।

१२८ हिन्दी में शब्दालंकार विवेचन, डॉ० देशराजसिंह भाटी, १९६९ ई०।

१२९ हिन्दी साहित्य कोष, प्रथम खण्ड २०१५ वि०, ज्ञानमण्डल, वाराणसी।

१३० हिन्दी साहित्य-कोष, द्वितीय खण्ड, २०२० वि० ज्ञानमंडल, वाराणसी।

१३१ हिन्दी साहित्य का अतीत, दूसरा खण्ड, आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, २०१७ वि० वाणी वितान, ब्रह्मनाल, वाराणसी।

१३२ हिन्दी-साहित्य, द्वितीय खण्ड, डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, २०१५ वि०, भारतीय हिन्दी परिषद, प्रयाग।

१३३ हिन्दी साहित्य का इतिहास रामचन्द्र शुक्ल, २००८ वि०, नागरी प्रचारिणी सभा काशी।

१३४ हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास, षष्ठ खण्ड, २०१५ ई०, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।

१३५ हिन्दुस्तानी (जुलाई १९३१ १९३६ ई० अप्रल सितम्बर १९४७ तथा १९४६ ई० के अंक), हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद।

१३६ हिस्ट्री आफ पोइटिक्स, पी० वी० काणे, १९६१ ई०, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

१३७ हिस्ट्री आफ संस्कृत पोइटिक्स, भाग १ तथा २ डा० सु० कु० दे १९६० ई० के० एल० मुखोपाध्याय कलकत्ता।

परिशिष्ट ख

अलकारो की अनुक्रमणिका

अलकार	पृष्ठ-सख्या
अ	
अतदगुण	२९३
अतिशयोक्ति	१३२
अतुल्ययोगिता	३७०
अत्युक्ति	३३३
अथश्लेप	२८०
अर्थानुप्रास	३१९
अर्थान्तरन्यास	११६
अर्थापत्ति	३०४
अधिक	२७४
अनन्वय	२०८
अनवसर	३७१
अनुकूल	३१४
अनुगुण	३३०
अनुप्रास	१०२
अनुमान	२४९
अनुना	३४०
अन्त्यानुप्रास	३१२
अन्य	३५३
अन्योन्य	२५५
अपर	३५४
अपरिवृत्ति	३७६
अपह्नुति	१७०
अप्रस्तुतप्रशसा	१८३
अभाव	३५०
अमित	३५९
अल्प	३३६
अवसर	२६०
अवज्ञा	३३१
असम	३५४
असगति	२७५
असम्भव	३२८
अहेतु	२८०
आ	
आप्तवचन	३८९
आवृत्ति	२१३
आशी	२११
आक्षेप	११०
उ	
उत्तर	२५६
उत्प्रेक्षा	१४६
उत्प्रेक्षावयव	२०६
उदात्त	१६४
उदाहरण	३५५
उन्मीलित	३१९
उपमा	१५
उपमान	३५०
उपमारूपक	१९२
उपमेयोपमा	१९३
उभयन्यास	२६६
उल्लास	३२८
उल्लेख	२९८

अलकार	पृष्ठ-सख्या	अलकार	पृष्ठ-सख्या
ऊ		निरुक्ति	३३६
ऊर्जस्वि	१५९	निश्चय	३१४
ए		प	
एकावली	२६२	परिकर	२५१
क		परिकराकुर	३२१
कारकदीपक	३३७	परिणाम	२९५
कारणमाला	२५४	परिवृत्ति	१९८
काव्यहेतु	२३०	पर्याय	२४५
ग		पर्यायोक्त	१६०
गणना	३५८	परिसख्या	२५२
गर्वोक्ति	३७४	पिहित	२७७
गुणवत्	३६५	पुनरुक्तवदाभास	२१८
गुणोक्ति	३७६	पूर्व	२६९
गूढोक्ति	३४२	पूर्वरूप	३२९
च		प्रतिमा	३७१
चित्र	२१४	प्रतिवस्तूपमा	२२४
छ		प्रतिषेध	३४६
छेकानुप्रास	२२१	प्रतीप	२६४
छेकोक्ति	३४५	प्रत्यनीक	२६८
त		प्रत्यक्ष	३४८
तद्गुण	२७३	प्रसिद्ध	३६१
तिरस्कार	३१५	प्रस्तुताकुर	३३४
तुल्ययोगिता	१८०	प्रहर्षण	३२३
द		प्रहेलिका	२१६
दीपक	७४	प्रेयस्	१५६
दीपयोग	३७५	प्रौढोक्ति	३२२
देहलीदीपक	३६८	म	
दृष्टान्त	२३३	भाव	२४४
ध		भाविकच्छवि	३३२
ध्वन्यर्थव्यञ्जना	३७८	भाविकत्व	२०९
न		भावोदय	३०९
निदर्शना	१८८	भाषासम	३१३

अलकार	पृष्ठ-सख्या	अलकार	पृष्ठ सख्या
भ्रान्तिमान	२६६	विपरीतक्रम	३७२
म		विभावना	१२५
मत	२६३	विरोध	१७७
मानवीकरण	३७८	विवृतोक्ति	३८३
मालादीपक	३०२	विशद	२७१
मिथ्याध्यवसिति	३३८	विशेषक	३४२
मीलित	२६०	विशेषण विपर्यय	३७९
मुद्रा	३४०	विशेषोक्ति	१७४
य		विशेषोन्मीलित	२७४
यमक	८७	विषम	२४७
यथासख्य	१४३	विषादन	३२५
युक्त	३६०	वीप्सा	३६९
युक्ति	३४४	व्यतिरेक	१२१
र		व्याघात	२७८
रत्नावली	३४१	व्याजस्तुति	१८६
रसवत्	१५७	व्याजोक्ति	२३८
रूपक	८३	व्याजनिन्दा	३३५
ल		श	
ललित	३३९	श्लिष्ट	१६५
लाटानुप्रास	२२२	श्रुत्यनुप्रास	३११
लव	३६६	स	
लेश	१४१	सत्याध्यवसिति	३७३
लोकोक्ति	३८५	सम	२८७
व		समाधि	३५१
वक्रोक्ति	२३६	समासोक्ति	१२९
विकल्प	३०७	सम्भाहित	१६२
विकस्वर	३२६	समुच्चय	२४१
विचित्र	३००	सन्देह	२०१
वितर्क	३४८	सहोक्ति	१९५
विधि	३४७	सामान्य	२९१
विनोक्ति	२८५	सामान्य विशेष	३३३
विपरीत	३६२	साम्य	२६९
सार	२५९	सिंहावलोकन	३६४